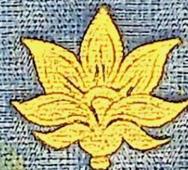
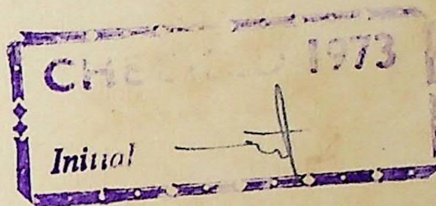
वनौषधि चन्द्रोदय



चन्द्रराज भण्डारी "विशारद"


CHECKED 1973
Initial


6.1.1
37752

वनौषधि-चन्द्रोदय

पहला भाग

(अकारादि क्रमानुसार अ से ओ तक सम्पूर्ण स्वर)

लेखक—

श्री चन्द्रराज भंडारी 'विशारद'



प्रकाशक—

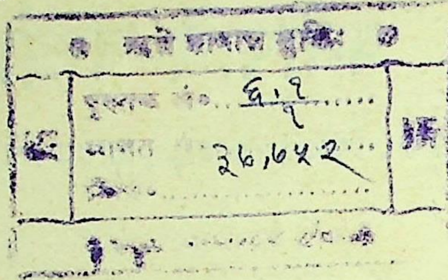
ज्ञान-मन्दिर

भानपुरा (इन्दौर स्टेट)।

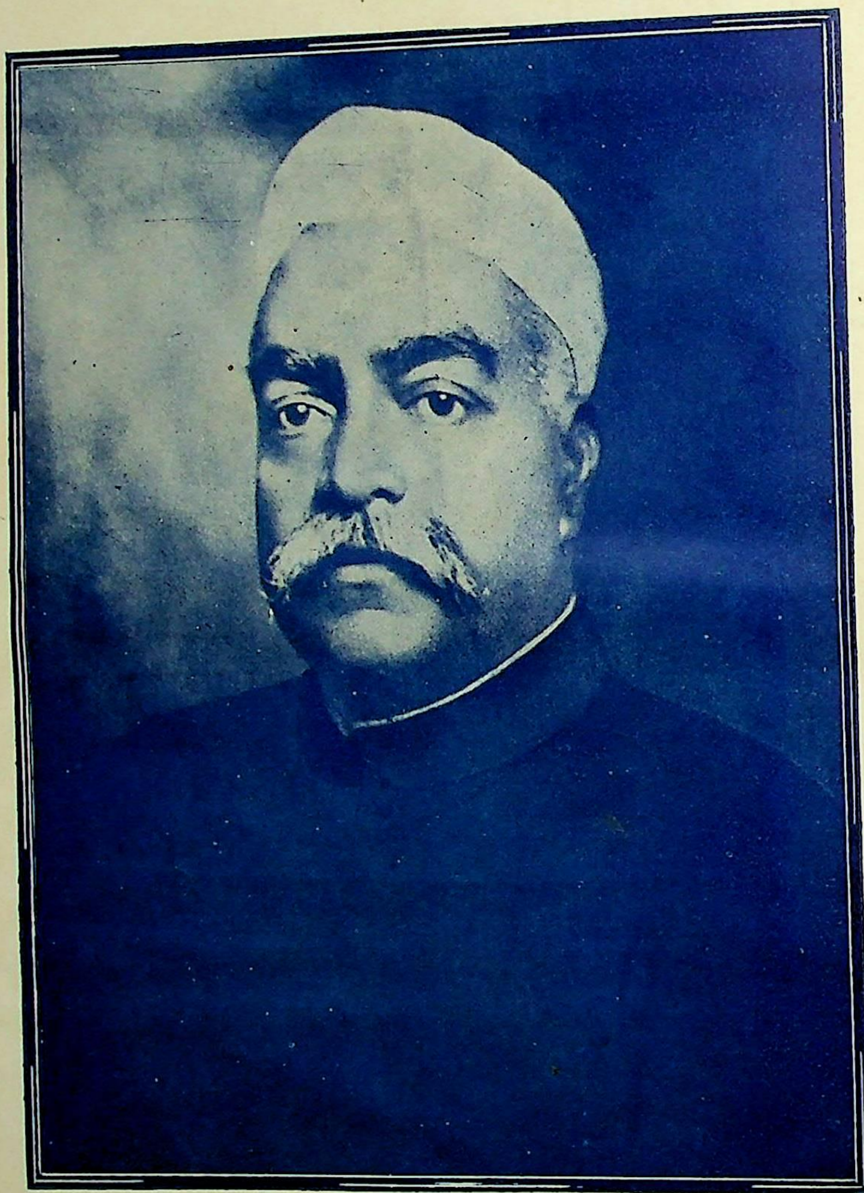
प्रथम संस्करण)　　राज-संस्करण ५)　　(मूल्य ३) साधारण.

जनवरी सन् १९३८ ई०

Published by—
C. R. Bhandari.
Ayurvdediya Granthmala.
Gyanmandir (*BHANPURA*).



Printed by—
Bhramarlal Soni.
At, Gyanmandir Press.
Bhanpura (H. S.).



स्वर्गीय सेठ कमलापतजी सिंघानिया, कानपुर ।

स्मृति

जिस महापुरुष का जीवन अपने देश की व्यापारिक उन्नति में व्यतीत हुआ, जो व्यक्ति अपने देश की औद्योगिक उन्नति में जीवन भर चिन्तनशील रहा, जिसका हृदय, दया, उदारता और उद्योगशीलता का केन्द्र था, उन्हीं यू० पी० के सुप्रसिद्ध सेठ कमलापतिजी सिंहानिया की पवित्र स्मृति में यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रसन्नता के साथ प्रकाशित किया जा रहा है।

—लेखक।



भूमिका

औषधि-विज्ञान मानवीय-जीवन के उन आवश्यक अङ्गों में से एक है, जिनके बिना मनुष्य का व्यवस्था-पूर्वक जीवन धारण करना कठिन हो जाता है । अपनी भौतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिये स्वस्थ शरीर का होना मनुष्य के लिये परमावश्यक और पहली वस्तु है । इसके बिना जीवन-यात्रा में एक कदम आगे रखना भी उसके लिये कठिन हो जाता है और यह स्वस्थ शरीर बिना स्वास्थ्य-विज्ञान और औषधि-विज्ञान की जानकारी के नसीब नहीं हो सकता ।

इसलिये सभ्य देशों में सभ्यता के विकास के साथ ही जहाँ अन्यान्य-शास्त्रों और विज्ञानों की उत्पत्ति हुई, वहाँ चिकित्सा-शास्त्र और वनस्पति-शास्त्र की भी काफी उन्नति और विकास हुआ, अगर कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी कि भारतवर्ष ऐसे सभ्य देशों में सबसे आगे था ।

इस देश में आज से हजारों वर्ष पहले चिकित्सा-शास्त्र और औषधि-विज्ञान के सम्बन्ध में इतनी बारीक और वैज्ञानिक खोजें हुईं, जिन्हें देखकर विकास के इस महान युग में भी हमें आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता, उन दिनों आज के समान न तो लाखों रुपये लागत की लेबोरेटरिज़ (रसायन-शालाएँ) थीं, न हजारों प्रकार के चिकित्सा सम्बन्धी अस्त्र-शस्त्र और लाखों रुपये लागत के यंत्र थे, न एक्सरे के समान मशीनें थीं, मगर ऐसी हालत में भी बस्ती से दूर तपोवन में बैठकर उन ज्ञान-दीप्त महर्षियों ने अपने ज्ञान-बल से चिकित्सा-शास्त्र, औषधि-शास्त्र, शरीर-शास्त्र, शल्य-चिकित्सा-शास्त्र इत्यादि शास्त्रों के सम्बन्ध में जो सुसंगठित, वैज्ञानिक और सूक्ष्म अध्ययनपूर्ण भेंट, मानव-जाति को दी, वह इतिहास के अनेकों युग पलटने पर भी मानव-जाति की वैसी ही अनुपम सेवा कर रही है और भविष्य में भी करती रहेगी ।

आज के युग में इन महर्षियों की महान-कृतियों पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनका कुल विवेचन अतिशयोक्ति-पूर्ण और ऐसा मतभेद पूर्ण है कि कोई ग्रन्थकार एक औषधि को गर्म लिखता है तो कोई उसे सर्द लिखता है, ऐसी हालत में पाठकों को किसी निर्णय पर पहुँचना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

इस प्रकार के आरोप लगाने वाले शायद यह सोचने का कष्ट नहीं उठाते कि मानवीय इतिहास में कोई भी युग ऐसा नहीं रहा, जिसमें मतभेद का अस्तित्व न रहा हो। आज के इस वैज्ञानिक युग में भी जब कि प्रत्येक बात रसायन-शाला की कसौटी पर कसे जाने के बाद ही प्रकाशित की जाती है—जब वैज्ञानिकों के बीच मतभेद पाया जाता है। (जैसे—जहाँ कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि उसबा:मगरबी में रक्त-शोधक और।उपदंश-कीटाणु-नाशक गुण है, वहाँ कुछ वैज्ञानिकों का मत उसके लिए बिलकुल इन्कार करता है) ऐसी स्थिति में अगर राज-निघण्टु और भाव-प्रकाश के बीच में किसी मतभेद का अस्तिव पाया जाय तो इसमें क्या अनर्थ हो सकता है ? इसीलिए तो महर्षियों ने लिखा है कि यह विज्ञान इतना विस्तृत है कि स्वानुभव के बिना जो केवल ग्रन्थ-ज्ञान पर चिकित्सा-विज्ञान में हाथ डालता है, वह कभी कामयाब नहीं हो सकता। रही अतिशयोक्तिपूर्ण विवेचन की बात सो यह तो उस युग का धर्म था, केवल चिकित्सा-शास्त्र ही क्यों, प्रत्येक विज्ञान और प्रत्येक शास्त्र में उस समय अलङ्कार और अतिशयोक्ति का प्रयोग होता था। इसमें उनको दोष देना उनके साथ अन्याय करना है।

आयुर्वेद के पश्चात् चिकित्सा-विज्ञान के सम्बन्ध में यूनानी हकीमों की, की हुई खोजें अत्यन्त महत्व का स्थान रखती हैं। चिकित्सा-विज्ञान और औषधि-विज्ञान के सम्बन्ध में इन लोगों के अन्वेषण भी कई अंशों में मौलिक और सुसंगठित हैं। हालाँ कि मतभेद और अतिशयोक्ति से ये लोग भी नहीं बच पाये हैं, फिर भी इनकी की हुई खोजों ने मनुष्य-जाति की अनुपम सेवाएं की हैं।

आधुनिक-विज्ञान की दृष्टि से भारतीय वनस्पतियों की वैज्ञानिक-खोज का इतिहास अठारहवीं शताब्दी के अन्त से प्रारम्भ होता है। फ्लोरा इण्डिका और प्लेण्ट्स ऑफ कारोमण्डल कॉस्ट के रचयिता डा० डब्ल्यू० रॉक्सवर्ग, मटेरिया मेडिका ऑफ हिन्दुस्तान और मटेरिया मेडिका के लेखक डा० एन्सली फ्लोरा इण्डिया के लेखक डा० एन० एल० बर्मन, मेडिकल बोटानी के लेखक जी० टी० बर्नेट इत्यादि वैज्ञानिकों ने सर्व प्रथम भारतीय वनस्पतियों की उपयोगिता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और उसके पश्चात् तो इस विषय पर सैकडों लेखकों के सैकड़ों ग्रन्थ प्रकाशित हुए, गवर्नमेण्ट ने भी इस खोज के सम्बन्ध में बहुत दिलचस्पी ली और कई ऐसी आवश्यक वनस्पतियों की खेती यहाँ पर प्रारम्भ करवाई, जो पहले यहाँ पैदा नहीं होती थीं।

इस विषय पर आधुनिक ग्रन्थों में लेफ्टिनंट कर्नल के० आर० कीर्तिकर और मेजर बी० डी० वसु कृत इण्डियन मेडिकल प्लांट्स और लेफ्टि० कर्नल आर० एन० चोपरा कृत इण्डिजेन्स-ड्रग्स ऑफ इण्डिया नामक ग्रन्थ बहुत प्रामाणिक और बहुमूल्य हैं। कर्नल चोपरा ने दी स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसन्स कलकत्ता में कई वनस्पतियों के रासायनिक विश्लेषण कर उनके सम्बन्ध के प्राचीन अन्ध-विश्वासों को मिटा दिया है तथा कई वनस्पतियों के नवीन गुणों से जनता को परिचित कर दिया है। इस सम्बन्ध में इनकी की हुई खोजों ने ऐतिहासिक महत्व धारण कर लिया है और इस समय भारतीय-वनस्पतियों के सम्बन्ध में इनके निकाले हुए तथ्य प्रामाणिक माने जाते हैं।

गुजराती साहित्य में पोरबन्दर के प्रसिद्ध वनस्पति-शास्त्री जयकृष्ण इन्द्रजी, जङ्गलनी जड़ी-बूटी के लेखक वैद्यशास्त्री शामलदास, वैद्य-कल्पतरु के सम्पादक स्व० जटाशङ्कर लीलाधर वैद्य आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्रीजयकृष्ण इन्द्रजी ने तो अपने स्वानुभाव से वनस्पतियों के सम्बन्ध में जो खोजें की हैं, वे गुजराती-साहित्य में अमर रहेंगी।

मराठी-साहित्य में वनौषधि-प्रकाश के लेखक वासुदेव शास्त्री सी० वापट, वनौषधि गुणादर्श के लेखक आयुर्वेद महामहोपाध्याय शङ्करदाजी शास्त्री पदे तथा औषधि-संग्रह के रचयिता डा० वामनगणेश देसाई की रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। इनमें भी औषधि-संग्रह नामक ग्रन्थ नवीन होने से बहुत अधिक महत्वपूर्ण है।

इसी प्रकार और २ भाषाओं में भी इस विषय पर बहुत-सा साहित्य प्रकाशित हुआ है और वह बहुमूल्य है।

लेकिन राष्ट्र-भाषा का सम्मान धारण करने वाली हिन्दी-भाषा में अभी तक शालिग्राम-निघण्टु तथा ऐसी ही दो-एक छोटी-बड़ी प्राचीन ढङ्ग की पुस्तकों को छोड़कर एक भी ग्रन्थ ऐसा नहीं था जो वनस्पतियों के ऊपर प्रामाणिक और वैज्ञानिक-प्रकाश डाले। यह कितने बड़े दुर्भाग्य की बात है।

इसी वनस्पति विषयक-अज्ञान की वजह से यहां के जन-समाज के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये प्रतिवर्ष लाखों रुपयों की औषधियाँ विदेशों से आती हैं। कई लोगों का यह ख्याल है कि विदेशी औषधियों के मुकाबिले में देशी औषधियाँ लाभदायक नहीं होतीं। मगर इस प्रकार के ख्याल होना सचमुच भ्रमपूर्ण और हमारी राष्ट्रीय-जागृति के लिये घातक हैं। क्योंकि जब ब्रिटिश फर्माकोपिया के समान प्रामाणिक और सर्वमान्य ग्रन्थ में, अनेक प्रकार की जाँच-पड़ताल और रासायनिक खोजों के पश्चात् दाखिल की हुई औषधियों में भी चालीस प्रति सैकड़ा से अधिक और पचास सैकड़ा के करीब औषधियाँ हमारे भारतीय पैदाइश की हैं, तब ऐसे लोगों का कथन कि हमारे देश

कीऔषधियाँ प्रभावशाली नहीं हैं, कैसे माननीय हो सकता है। ब्रिटिश फर्माकोपिया कोई कल्पना-मूलक ग्रन्थ नहीं है। उसमें तो ऐसी ही औषधियाँ दर्ज की जाती हैं, जिसे हजारों रोगियों पर आजमाई जाने के पश्चात् ब्रिटिश मेडिकल कौन्सिल स्वीकार करती है।

वे ही हमारे देश की बहुमूल्य औषधियाँ, जो हमारे वनस्पति-विषयक-अज्ञान की वजह से दिन-रात हमारे पैरों के नीचे कुचलती रहती हैं, विदेशी जानकारों के हाथ में पड़कर सत्व, अर्क और एक्स्ट्रेक्ट के रूप में सुन्दर २ बोतलों में भरकर नयनाभिराम रूप से हमारे सामने आती हैं और तब हम मोहित होकर उनके पीछे अपने जेबों को ढीला कर देते हैं।

अनुभवों से यह बात साबित हो चुकी है कि हमारे देश में कई ऐसी औषधियाँ पैदा होती है जो प्रभाव में विलायती औषधियों ही के बराबर या उनसे भी अधिक है, उदाहरणार्थ हृदय की गति को व्यवस्थित रखने के लिये जो काम अंग्रेजी दवा डिजीटेलीस करती है, वही काम हमारे देशी वैद्य कुटकी के काढ़े से सफलतापूर्वक लेते हैं। पोटास ब्रोमाईड नामक प्रसिद्ध अंग्रेजी औषधि का मुकाबिला हमारे देश की हरमल (Peganum Harmal) नामक औषधि बहुत अच्छे तरीके से करती है। ब्राइट्स डिसीज अर्थात् गुर्दे की बीमारी पर स्प्रिट ईथरनाइट्रोसी के बदले तथा रक्त-विकार पर सार्सापरिला की जगह हमारे देश की अनन्तमूल से बहुत बढ़िया उपचार हो सकता है। इसी प्रकार इपिकेकोना की जगह अन्तमूल और आँकड़े की जड़, क्वासिया के मुकाबले पर नीम, केलम्बा के मुकाबिले में गिलोय, गोयाकम के मुकाबिले पर चम्पा, जेलप के मुकाबिले पर कालादाना, गैलिक के मुकाबिले पर माजूफल, क्राइसोफेनिक के स्थान पर फुवाँड़िया (Cassiatora), बेलेडोना के मुकाबिले पर धतूरा, वेलेरियन के मुकाबिले में जटामांसी, हैजेलीन के स्थान पर उतरण तथा थायमल के स्थान पर अजवायन इत्यादि कई औषधियाँ विलायती औषधियों के मुकाबिले में या उनसे बढ़कर मनुष्य जाति का उपकार कर सकती हैं।

इस प्रकार विदेशी औषधियों के मुकाबिले में उतरने वाली औषधियाँ तो इस देश में असंख्य हैं ही, मगर ऐसी औषधियाँ भी इस देश में विद्यमान हैं, जिनका मुकाबिला विदेशी औषधियाँ कदाचित नहीं कर सकतीं। कामले का जो भयङ्कर रोग पोडोफोलीन और टेरेक्सी की मात्राएं पीने पर भी नहीं मिटता, वही देशी औषधि कुकरलता (Luffa Echinata) का केवल रस सूंघने मात्र ही से विदा हो जाता है। सहदेई के पौधे को पीसकर उसका रस सिर पर लगाने से भयङ्कर बुखार तक उतर जाता है। शरीर में घुसा हुआ शस्त्र, आयापान का रस चुपड़ने से निकल जाता है और तलवार तथा चाकू के जखम की वेदना नागबला का रस भरने से फौरन बंद हो जाती है।

मतलब यह है कि हमारे देश में प्रभावशाली वनस्पतियों का अभाव नहीं है, प्रस्तुत उनके सम्बन्ध

के ज्ञान का अभाव है। विदेशों के अन्दर एक २ औषधि पर पूर्ण-ज्ञान देनेवाले सैकड़ों ग्रन्थ हैं, यहां तक कि हमारे देश में पैदा होने वाली औषधियों का परिचय देनेवाले भी वहाँ सैकड़ों ग्रन्थ हैं, मगर हमारी देशी भाषाओं में ऐसे ग्रन्थों का एकदम ही अभाव है। ऐसी हालत में अगर कुदरत के द्वारा पुरस्कृत की हुई यह दिव्य-निधि हमारे पैरोंतले कुचलती रहे तो इसमें क्या आश्चर्य !

हर्ष है कि हाल ही में हिन्दी में चुनार-निवासी बाबूरामजीतसिंह और बाबूदलजीतसिंह वैद्य ने महान परिश्रम के साथ एक आयुर्वेदीय विश्व-कोष का प्रणयन प्रारम्भ किया है । इस ग्रन्थ के दो भाग निकल चुके हैं। लेखकों ने जिस महान परिश्रम से यह कार्य्य उठाया है, उसे देखकर कहना पड़ता है कि अगर यह ग्रन्थ अन्त तक सफलतापूर्वक प्रकाशित हो गया तो राष्ट्र-भाषा हिन्दी के गौरव की पूरी तरह से रक्षा करेगा। कमी केवल इतनी ही है कि इसकी भाषा इतनी कठिन रक्खी गई है कि वह सर्वसाधारण को तो क्या मगर कई वैद्यों को भी समझने में कठिन जायगी। अगर इसके लेखक-गण इसकी भाषा पर कुछ ध्यान दें तो पूर्णहोने पर यह ग्रन्थ अनुपम होगा, इसमें सन्देह नहीं। मगर अभी तो यह बिलकुल शैशव अवस्था में है ।

इसी कमी को ध्यान में रखकर और यह सोचकर कि अगर वैद्यों और सर्वसाधारण की वनस्पति विषयक जानकारी के लिए एक प्रामाणिक और वैज्ञानिक-अनुसन्धानपूर्ण ग्रन्थ तैयार किया जाय तो वह बड़ा लाभदायक हो सकता है,हमने इस कार्य में हाथ डाला और ईश्वर की दया से अत्यन्त प्रसन्नता-पूर्वक उसका प्रथम भाग हम पाठकों के सामने लेकर उपस्थित हो रहे हैं।

इस ग्रंथ के अन्दर हमने सबसे पहले इस बात पर ध्यान रक्खा है कि जो विषय इसमें प्रतिपादित किये जायँ वे सरल से सरल भाषा में हों, कोई आवश्यक बात छूटने न पावे, मगर फजूल का विस्तार न हो। प्रत्येक वनस्पति को लेकर उसपर हमारे आयुर्वेदाचार्यों ने क्या कहा है, यूनानी हकीमों का उसपर क्या मत है तथा आधुनिक-वैज्ञानिक खोजों ने उसपर क्या तथ्य निकाले हैं, उन सबका सार क्रमानुसार दे दिया गया है। एक ही बात को अगर निघण्टु-रत्नाकर, राज-निघण्टु, भाव-प्रकाश इत्यादि ने कही है तो उन सबका अलग २ उल्लेख करने की अपेक्षा हमने उन सबका सार एक ही स्थान पर देना ठीक समझा । जहाँ पर कोई मतभेद है, वहाँ पर अलग २ उल्लेख कर दिया है। इसके पश्चात् अगर उस औषधि में कोई उल्लेखनीय दिव्य-गुण हमें मालूम हुआ तो उसका स्वतन्त्र रूप से उल्लेख कर दिया है। इसके पश्चात् भिन्न २ रोगों पर उस औषधि का उपयोग किस प्रकार किया जाता है तथा उसके सम्मेलन से कौन २ सी बनावटें बनती हैं, इस सम्बन्ध की सामग्री जहाँ तक हमें प्राप्त हो सकी, हमने देने का प्रयत्न किया है। जहाँ तक हमारा ख्याल है हमने बिलकुल अनुचित विस्तार न बढ़ाते हुए, संक्षेप में प्रत्येक औषधि के सम्बन्ध में पूरा विवरण देने की कोशिश की है, आशा है पाठकों को हमारी यह पद्धति पसन्द आवेगी ।

औषधियों के नामों के सम्बन्ध में हमारे देश में काफी मतभेद है, इसलिये इस सम्बन्ध में हमने इण्डियन मेडिकल प्लांट्स का अनुकरण किया है, क्योंकि हमारे मत से वह बहुत प्रामाणिक ग्रन्थ है। रासायनिक विश्लेषण और गुण धर्म के सम्बन्ध में हमें कर्नल चोपरा के निकाले हुए तथ्य बहुत मान्य प्रतीत हुए और जहाँ तक वे प्राप्त हो सके, हमने उन्हींका अनुकरण किया है। इनके सिवाय इसकी बहुत-सी सामग्री हमने अनेक ग्रन्थों से एकत्रित की हैं, जिनका नाम धन्यवादपूर्वक आगे दिया जा रहा है।

जहाँ तक हमारा अनुमान है, इस ग्रन्थ में आज तक की खोज हुई सम्पूर्ण वनस्पतियों तथा खनिज द्रव्यों का, जिनकी संख्या ढाई हजार और तीन हजार के बीच में होगी, सम्पूर्ण विवेचन रहेगा और करीब ४००० से ५००० पृष्ठों के भीतर दस भागों में यह महान् ग्रन्थ पूरा होगा।

हम पाठकों को विश्वास दिलाते हैं कि थोड़े शब्दों में वनस्पतियों सम्बन्धी जितनी उपयोगी और चमत्कारिक जानकारी, सरलता और स्पष्टता के साथ इस ग्रन्थ के द्वारा पाठकों को मिलेगी, वह शायद दूसरे स्थान पर प्राप्त न होगी।

हम आशा करते हैं कि भारतवर्ष का वैद्य-समाज तथा शिक्षित-समुदाय इस विशाल आयोजन में हमारा हाथ बटायेगा।

ज्ञान-मन्दिर, भानपुरा।
१ जनवरी, १९३८ ई०

चन्द्रराज भण्डारी "विशारद"



सहायक ग्रन्थों की सूची

———:०:———

इस ग्रन्थ के सङ्कलन में हमको निम्नाङ्कित ग्रन्थों से बहुत सहायता प्राप्त हुई है, अतः हम इनके रचयिताओं के हृदय से आभारी हैं।

(१)

हिंदी और संस्कृत

महर्षि-चरक	चरक-संहिता
महर्षि-सुश्रुत	सुश्रुत-संहिता
महर्षि-वाग्भट्ट	अष्टाङ्ग-हृदय
चक्रपाणि	चक्रदत्त
भाव-मिश्र	भाव-प्रकाश
काशीराज	राज-निघण्टु
श्री चौबे दत्तराम	वृहत् निघण्टु-रत्नाकर
श्री शालिग्राम	शालिग्राम-निघण्टु
श्री रूपलाल वैश्य	रूप-निघण्टु
श्री गंगाप्रसाद दाधीच ...	अनूभूतयोग-प्रकाश (दो भाग)
श्री प्रवासीलाल वर्मा	वृक्ष-विज्ञान
श्री हरिदास वैद्य	चिकित्सा-चन्द्रोदय (सात भाग)
बाबू रामजीतसिंह वैद्य, बाबू दलजीतसिंह वैद्य	आयुर्वेदीय विश्व-कोष (दो भाग)

'धन्वन्तरि' के कुछ फाइल

(२)

यूनानी

मखजनूल अदविया — खजाइनुल अदविया

तर्जुमा नफीसी — मुहीत आजम

मुजर्बिात अकबरी

———

(३)

अंग्रेजी

Lt. Colonel Kirtikar Major B. D. Basu.	Indian Medical Plants. 4 Parts.
W. Dymock. N. K. Gadgil.	The Vegetable Materia Medica of the Hindus.
W. Dymock Warden & Hooper.	Pharmacographia Indica(3 Vols.)
R. N. Khori & N. N. Katrak.	Materia Medica of India & their Therapeutics.
K. M. Nadkarni.	Indian Plants & Drugs, Indian Materia Medica.
Lt. Colonel R. N. Chopra.	Indigenous Drugs of India, A Hand Book of Tropical Therapeutics.
Devaprasad Sanyal & Rasbihari Ghosh.	Vegetable Drugs of India.
G. T. Birdwood.	Practical Bazaar Medicines, Files of Medical Journal of India.
Dr. Moodeen Sheriff.	Materia Medica
Sukhasampati Rai Bhandari	Dictionary of Medical Terms

—❀❀—

(४)

गुजराती

वैद्य-शास्त्री शामलदास गोर	जङ्गलनी जड़ी-बूंटी ३ भाग
वनस्पति-शास्त्री जयकृष्णइन्द्रजी	वनस्पति-शास्त्र
जटाशंकर, लीलाधर त्रिवेदी	घरवैदुं तथा वैद्य-कल्पतरु के बीस वर्षों के फाइल

(५)

मराठी

वासुदेव शास्त्री बापट	वनौषधि-प्रकाश
यज्ञेश्वरगोपाल दीक्षित	वनौषधि-गुणादर्श
डा० वामनगणेश देसाई	औषधि-संग्रह

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी कई छोटे-बड़े ग्रन्थ और सामयिक-पत्रों के फाइलों से इस ग्रन्थ के निर्माण में सहायता मिली है। इसलिए लेखक उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है।

———❀———

विषय-सूची

(१)

हिंदी नाम

विषय-सूची

(२)

संस्कृत नाम

——

विषय-सूची

(३)

बंगाली नाम

———

विषय-सूची

गुजराती नाम

(४)



विषय-सूची

मराठी नाम

(५)

———:o:———



विषय-सूची

(६)

अरबी नाम

———

INDEX

(7)

Latin Names

विषय-सूची

[नं० ८]

(रोगानुक्रम से)

इस विषय-सूची में, इस ग्रंथ में आई हुई औषधियाँ जिन २ रोगों पर काम करती हैं, उनमें से कुछ खास २ रोगों के नाम, औषधियों के नाम और पृष्ठांक सहित दिये जारहे हैं। सब रोगों के नाम इसमें नहीं आसके, इसलिए उनका विवरण ग्रंथ के अन्दर ही देखना चाहिये। जिन रोगों के अंदर जो औषधियां विशेष प्रभावशाली और चमत्कारिक हैं, उनपर पाठकों की जानकारी के लिये ऐसे फूल ❀ लगा दिये गये हैं:—

ज्वर

—

अतिसार

जलोदर

संग्रहणी

कब्जियत

बवासीर

——

मंदाग्नि

——

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजीर्ण

उदरशूल

गुल्म

प्लीहा व यकृतरोग

हिचकी

हैजा

पांडुरोग

सुजाक

उपदंश

प्रमेह

नपुंसकता और वाजीकरण

पथरी और मूत्राघात

प्रदर रोग

बंध्यत्व

प्रसव और आर्तव सम्बन्धी बीमारियां

क्षय या राजयक्ष्मा

खांसी

मूर्छा

दमा

हृदय रोग

कंठमाल

स्नायुरोग या वातव्याधि

(लकवा, संधिवात, सुन्नवात, जोड़ों की अकड़न वगैरह)

गठिया

उन्माद, हिस्टीरिया और मालीखोलिया

मृगी

वातरक्त

आमवात

उरुस्तंभ

सर्पविष

बिच्छू का विष

पागल कुत्ते का विष

अन्यान्य विष

सूजन

अर्बुद

श्लीपद

विद्रधि

कुष्ट

विस्फोटक

मस्तकशूल और आधाशीशी

नेत्ररोग

कर्णरोग

दंतरोग

दाद

चर्मरोग और रक्तविकार

कृमिरोग

नारु

बच्चों का सूखारोग

प्लेग

स्कर्व्ही

कारबंकल

अंडवृद्धि

हड्डी का टूटना या मोच आना

गुर्दे का रोग (Brights Disease)

शस्त्र का जख़म और दूसरे घाव

विषय-प्रवेश

वनस्पति-विज्ञान की उत्पत्ति और उसका विकास

(ग्रंथ को पढ़ने के पूर्व इस विवेचन को पढ़ना विशेष लाभदायक होगा)

(१)

जब से संसार के अन्दर मानव-शरीर की उत्पत्ति हुई है तब से उसके साथ ही रोग की भी उत्पत्ति हुई है, अतएव रोग की उत्पत्ति का इतिहास भी मनुष्य-शरीर के इतिहास के साथ ही प्रारम्भ होता है और जब से रोग की उत्पत्ति हुई तभी से मनुष्य उसको दूर करने के उपायों की खोज करने लगा और तभी से उसके ये उपाय चिकित्सा-शास्त्र की तरह प्रगट होने लगे, अतएव यह कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं कि, चिकित्सा-शास्त्र का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव-जाति का इतिहास। जिस समय मानवी विचारों को लिपि-बद्ध करने के लिये लिपियों का आविष्कार भी नहीं हुआ था उस समय भी औषधि-विज्ञान के तत्व मानव-जाति में विद्यमान थे। मगर लिपिबद्ध न होने के कारण उनका कोई पता नहीं है।

मनुष्य के विचारों को लिपिबद्ध रूप में हम सबसे पहिले संसार की पुरातन पुस्तक ऋग्वेद के अन्दर देखते हैं। इस ग्रन्थ की रचना पुरातत्व-वेत्ताओं के मतानुसार ईसा के ४५०० वर्ष पूर्व से १८०० वर्ष पूर्व तक किसी समय में हुई मानी जाती है। यह ग्रन्थ सोम वृक्ष नामक औषधि का बड़ा ही कौतुहलपूर्ण परिचय हमको देता है। यह सोम वनस्पति क्या वस्तु है, इसका ठीक २ अनुसन्धान अभी तक नहीं हो पाया है, पर प्राचीन ग्रन्थों से मालूम होता है कि यज्ञ इत्यादि पवित्र कार्यों के समय में इस वनस्पति का उपयोग होता था। आर्य लोग इसे उत्तेजक पेय पदार्थ के उपयोग में लेते थे। धीरे२ यह चिकित्सा-द्रव्यों की तरह भी काम में आने लगी और इस के पश्चात् दूसरी वनस्पतियों का भी उपयोग होने लगा।

अथर्ववेद, जिसकी रचना ऋग्वेद के पश्चात् हुई है उसमें जड़ी बूटियों का और भी अधिक विस्तृत वर्णन पाया जाता है। मगर उस समय की पद्धति के अनुसार उन वनस्पतियों का उल्लेख जादू-टोनों के रूप में किया गया है।

ज्यों २ औषधि-विज्ञान के ज्ञान का विस्तार होता गया त्यों २ इस विषय की महत्ता अधिकाधिक लोगों के ध्यान में आने लगी और क्रमशः इस विज्ञान ने एक स्वतन्त्र शास्त्र का रूप धारण किया जिसका नाम आयुर्वेद हुआ।

प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार इस आयुर्वेद के पिता स्वयं ब्रह्मदेव हैं और उन्होंने इस ज्ञान को मनुष्य-जाति में प्रचार करने के लिये दक्ष प्रजापति को दिया। दक्ष प्रजापति के पश्चात् आयुर्वेद के इतिहास में अश्विनीकुमार नामक दो भाईयों का नाम आता है। जो इस विज्ञान में अत्यन्त निपुण और सिद्धहस्त थे। च्यवनऋषि को पुनर्यौवन देना, दक्ष प्रजापति के कटे हुए सिर को जोड़ देना, युद्ध क्षेत्र के अन्दर घायलों का उपचार करना, गिरे हुए दाँतों को पीछा लगा देना, राजयक्ष्मा को मिटा देना, कटी हुई टांग के स्थान पर लोहे की टांग जोड़ देना, इत्यादि अनेकों आश्चर्य जनक काम जड़ी बूटियों की सहायता से इनके द्वारा सम्पन्न हुए थे।

इनके पश्चात् आयुर्वेद के इतिहास में महर्षि आत्रेय और धन्वन्तरी का नाम आता है जिनमें से पहिले चरक-सम्प्रदाय के स्थापक और दूसरे महर्षि सुश्रुत के गुरु थे।

महर्षि चरक और सुश्रुत आयुर्वेद के स्तम्भ रूप में प्रसिद्ध हुए। महर्षि चरक की चरक-संहिता और महर्षि सुश्रुत की सुश्रुत-संहिता आज भी आयुर्वेद-विज्ञान की ऐसी चमकती हुई कलाएँ हैं जिनका प्रकाश समय के प्रहारों से भी मन्द नहीं हो सकता। सुश्रुत संहिता में चिकित्सा के साथ साथ सर्जरी अर्थात शल्य शास्त्र और शस्त्र-चिकित्सा के ऊपर बहुत उत्तम विवेचन किया गया है। इसी प्रकार चरक के अन्दर चिकित्सा-विज्ञान के विषय में अत्यन्त विस्तृत और शास्त्रीय विवेचन है। इस ग्रन्थ के सप्तम अध्याय में वामक और विरेचक औषधियों के सम्बन्ध में और बारहवें अध्याय में भैषज्यतत्वों के सम्बन्ध में विद्वत्ता पूर्वक वर्णन किया गया है। साधारण औषधियों को इन महर्षि ने ४५ भागों अन्दर विभाजित की हैं। इन औषधियों को उपयोग में लेने की विधियों का भी उसमें पूर्णतया उल्लेख किय गया है। काढ़ा, शीतनिर्यास, चूर्ण, गोली, अर्क, अवलेह, तेल, घृत, भस्म, रसायन इत्यादि अनेक रूपों से औषधियों का प्रयोग करने की वैज्ञानिक विधियों का उसमें उल्लेख किया गया है। बहुत से रोगों के लिये सूचिवेध (इंजेक्शन) चिकित्सा का भी इसमें वर्णन किया गया है। इस वर्णन को देखने से उनके वैज्ञानिक ज्ञान का पूर्ण परिचय हम लोगों को मिलता है।

सुश्रुत-संहिता के अन्दर हमको करीब ७०० वनस्पतियों का उल्लेख मिलता है। लेकिन ऐसा मालूम होता है ये सब वनस्पतियाँ भारत की पैदाइश नहीं थीं। उन दिनों भारत के अन्दर बाहर से भी वनस्पतियाँ आती थीं। पुराने समय में भारत-वासियों का दूसरे देश वालों के साथ औषधियों का व्यापार होता था। मुलेठी जो कि इस देश में पैदा नहीं होती थी, एशियामायनर और मध्यएशिया से आती थी। इसका उल्लेख सुश्रुत और चक्रदत्त इत्यादि ग्रन्थों में पाया जाता है और आयुर्वैदिक नुस्खों के अन्दर यह औषधि काम में भी ली जाती थी।

इस काल से लगाकर भारत पर मुसलमानी आक्रमण होने तक हिन्दु-चिकित्सा-काल के चार भेद किये जा सकते हैं।

(१) वैदिककाल (२) मौलिक अन्वेषण और प्रसिद्ध ग्रंथकारों की उन्नति का काल (३) तंत्र, सिद्ध और संकलन का काल (४) अवनति और पुनर्संचय काल । इनमें से दूसरे और तीसरे कालों के अन्दर आयुर्वेदीय चिकित्सा की धाक समग्र सभ्य संसार में फैलगई । सभ्य संसार की सभी जातियां हिन्दुओं से वनस्पति-शास्त्र और चिकित्सा-शास्त्र का ज्ञान उपार्जन करने के लिये उत्सुक हुईं । ग्रीस, रोम, मिश्र, इत्यादि देशों की औषधियों पर, हिन्दु-चिकित्सा-शास्त्र का बहुत अद्भुत प्रभाव पड़ा ।

महान सिकन्दर के आक्रमण के समय हिन्दू वैद्यों का वनस्पति-विज्ञान, विष-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान बहुतही बढ़ा-चढ़ा था । वे लोग वनस्पतियों की सहायता से रोगों की चिकित्सा बहुतही सफलता के साथ करते थे । ग्रीस के केम्प के सिपाहियों में सर्प-विष वगैरे के केसों का इलाज भी वे बड़ी चतुरता से करते थे । ऐसी स्थिति में ग्रीक वनस्पति-विज्ञान पर भारतवर्ष के चिकित्सा-विज्ञान का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था ।

यूनान के महान चिकित्सक डिसकोरिडस के ग्रन्थों से यह स्पष्ट मालूम होता है कि वहाँ के चिकित्सक चिकित्सा-सम्बन्ध में भारतवर्ष के कितने आभारी थे । श्वास या दमे की बीमारी में धतूरे का धूम्रपान , पक्षाघात या लकवा और मंदाग्नि की बीमारी में जहरीकुचले का उपयोग, विरेचक औषधि के रूप में जमालगोटे का उपयोग, इत्यादि बातें प्राचीन भारत से ही संसार में प्रसिद्ध हुई थीं । अधिक मात्रा में धतूरे के धूम्रपान से होने वाले दुष्परिणाम भी भारतवर्ष से ही प्रसिद्ध हुए थे ।

रोमन लोगों ने भी भारतीय जड़ी-बूंटियों के सम्बन्ध में बहुत दिलचस्पी से भाग लिया था । प्लाइनी के समय में रोम का भारतवर्ष के साथ जड़ी-बूंटियों का बहुत विस्तृत व्यापार होता था ।

बुद्धकाल के अन्दर भारतवर्ष में जड़ी-बूंटियों के ज्ञान का और भी अधिक विकास हुआ । सम्राट अशोक के टाइम में बहुत से वानस्पतिक द्रव्यों की खेती की जाती थी और वहीं से वैद्यों को सप्लाय की जाती थीं तथा उनको उपयोग में लेने के लिये कई एक उपयोगी सूचनाएँ भी दी जाती थीं । जैसे- वर्षजीवी वनस्पतियों को बीजों के पकने के पहिले इकट्ठी करना चाहिये । साल में दो बार होने वाली वसंतऋतु के पहिले इकट्ठी की जाना चाहिये । जड़ें ठंड की मौसम में, पत्ते गरमी की मौसम में तथा छिलटे और लकड़ियाँ बरसात की मौसम में संग्रह करना चाहिये । इसी काल में बहुतसी नई औषधियां भारतीय निघंटु-शास्त्र में सम्मिलित की गईं और उनका यथा-विधि अन्वेषण भी किया गया ।

बुद्धधर्म के पतन के साथही-साथ दूसरे ज्ञानों की तरह औषधिशास्त्र के ज्ञान का भी क्रमशः पतन होने लगा । नवीन अन्वेषण बंद हो गये और इसके विकास में बहुत शिथिलता पैदा हो गई ।

ईसा की पाँचवीं या छठी शताब्दी के समय में हिन्दू लोग प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में उल्लिखित औषधियों के ज्ञानपर ही निर्भर रहते थे । उस समय का कल्पस्तनुन नामक ग्रंथ बड़ा रोचक है । इसमें वनस्पतियों और औषधियों के कई विभाग किये गये हैं जैसे-सुगन्धित छिलटेवाली औषधियाँ, फूल फल

और बीज में समानता रखने वाली औषधियां, दूधवाली औषधियाँ, गोंदवाली औषधियां, गांठदार जड़वाली औषधियां, इत्यादि कई प्रकार के आधारों पर इन वनस्पतियों के भेद किये गये हैं । इसी ग्रन्थ में वनस्पति-शास्त्र का भी बड़ा अच्छा वर्णन है। कौनसी वनस्पतियां किस २ आबहवा में परवरिश होती हैं, किसी २ समय उनको इकट्ठा करने से, वे अधिक समय तक टिक सकती हैं, इत्यादि कई-एक बातों का वर्णन है।

[२]

मुसलमानी काल के अन्दर भारतीय जड़ी-बूंटियों के इतिहास में एक नवीनयुग का प्रारंभ हुआ। मुसलमान आक्रमणकारी अपने औषधि विज्ञान को अपने साथ लाये थे और उनका शासन स्थापित होने पर उन्होंने उस विज्ञान की तरक्कीपर विशेष ध्यानदिया । जिस से आयुर्वैदिक इलाजों की तरफ लोगों का ध्यान बहुत कम हो गया और हकीमी चिकित्सा का बहुत प्राबल्य हो गया। अरब लोगों ने विज्ञान और कला की उन्नति के लिये काफी ध्यान दिया। यद्यपि उन्होंने कोई नई चीज नहीं ढूंढी, फिर भी पुराने संसार के ज्ञान को नया चोला पहिनाकर उसका प्रचार किया। उनको इस विषय में इतनी दिलचस्पी थी कि हिन्दु-वैद्य बगदाद के शासक के दरबार में रहा करते थे। चरक, सुश्रुत, इत्यादि आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद हो चुका था । हिपोक्रेटस, डिमाक्रेटस, डिस्कोरिडस, इत्यादि ग्रीक वैद्यों से भी वे लोग परिचित थे। जब भारतवर्ष में मुसलमानी शासन का प्रारम्भ हुआ तब यहां के मुसलमान बादशाहों के दरबार में यूनानी हकीम रहा करते थे। वे लोग ग्रीक सिद्धातों के भी जानकार थे और मध्यएशिया की वनस्पतियों के गुणों और उपयोगों से भी वाकिफ थे। मुसलमानी शक्ति के उदय के बाद हिन्दुस्तानी चिकित्सा-पद्धति जहाँ की तहां रहगई, मगर हिन्दूलोगों ने मुसलमान विजेताओं के द्वारा लाई हुई वनस्पतियों का उपयोग चालू रखा । सबसे महत्व की चीज जोकि मुसलमानी सत्ता के द्वारा यहाँ पर लाई गई वह अफीम थी। मुसलमानी सत्ता के पहिले भारतीय निघंटों में अफीम का कहीं भी उल्लेख नहीं पाया जाता है।

मुसलमानी हकीमों ने इस देश में पैदाहुई वनस्पतियों के तथा अरब और अफगानिस्तान में पाई जानेवाली वनस्पतियों के सम्मिलित निघंटु तैयार किये। मुसलमान शासक इस कार्य के लिये उन्हें बहुत उत्साहित करते रहते थे और इसी कारण इनके लिखेहुए ग्रन्थ बहुत उत्तम हुए। तालीफ शरीफ नाम का ग्रंथ इस विषय का एक उत्तम ग्रन्थ है जिसमें भारतीय वनस्पतियों के ऊपर यूनानी हकीमों के मत को संक्षेप में बतलाया गया है। इसी प्रकार मखज़नूलअदविया भी इस विषय का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

आठवी और नौवीं शताब्दी के करीब मुसलमानों का वनस्पति सम्बन्धी ज्ञान बहुत ही बढ़ा-चढ़ा था। उस समय इस विषय पर फारसी भाषा में वनस्पतियों के सम्बन्ध में सैकड़ों पुस्तकें बन चुकी थीं। एडाल्फ फानाहन(Adolf Fonahn) ने अपने ग्रन्थ में चार सौ ऐसे परशियन ग्रन्थों का

जिक्र किया है जिनका प्रधान विषय वनस्पति सम्बन्धी ही था। इनमें से अबूमन्सूर-मुआफ़क्क जिसकी रचना सन् ६५० में हुई और दाखिरा-ए-ख्वर्जमशाही जिसकी रचना बारहवीं शताब्दी में हुई, बड़े प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इन किताबों में मटेरिया मेडिका के तीन विभाग किये गये हैं। पहिला विभाग जीवधारियों के सम्बन्ध में है दूसरा विभाग साधारण वनस्पतियों के विषय में है, और तीसरा विभाग तयार की हुई औषधियों के सम्बन्ध में है। कुछ ग्रन्थों में चीर-फाड़ करने के पहिले बेहोशी के लिये दी जाने वाली औषधियों का भी वर्णन है। ग्यारहवी शताब्दी के प्रारम्भ में बनेहुए शाहनामा नामक ग्रन्थ में रुस्तम की माता रुदबा को अचेत करने के लिये जो मदिरा पिलाई गई थी उसका वर्णन है। इससे यह मालूम होता है कि अरबी लोगों का मटेरिया मेडिका सम्बन्धी ज्ञान, बहुत बढ़ा-चढ़ा था।

[३]

यह तो जड़ी-बूंटियों के इतिहास का ग्रंथों में आया हुआ ऐतिहासिक विवेचन है, मगर जड़ी-बूंटियों के इतिहास का एक पहलू ऐसा है कि जिसका न तो किसी इतिहास ही में विवेचन है और न जिसको कोई वैज्ञानिक आधार ही है, मगर इतना होने पर भी वह इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि ऐसे समयों में जब कि ऐतिहासिक और वैज्ञानिक औषधि-विज्ञान मनुष्य का प्राण बचाने में असफल हो जाते हैं उस समय यह अवैज्ञानिक विज्ञान चमत्कारिक ढंग से मनुष्य के प्राण बचाने में सफल हो जाता है। औषधि-विज्ञान का यह पहलू जंगल में रहने वाली जंगली जातियों का तथा शिकारी लोगों का औषधि-ज्ञान है। यद्यपि सुशिक्षित लोगों ने इन लोगों की बहुतसी औषधियों को प्राप्तकर अपने ग्रंथों में सम्मिलित कर दिया है फिर भी सैकड़ों औषधियां ऐसी हैं जिनका उल्लेख न तो आयुर्वेदिक और न यूनानी ग्रंथों में ही किया गया है। मगर अशिक्षित जन-समुदाय सैकड़ों वर्षों से इस प्रकार की औषधियों का उपयोग कर लाभ उठाता आरहा है।

उदाहरणार्थः—प्लेग की बीमारी को लीजिये, इस बीमारी से इस देश में करुणाजनक रीति से लाखों मनुष्यों की अकाल मृत्यु हुई है और इसके लिये आयुर्वेदिक, यूनानी और एलोपेथी इत्यादि करीब २ सभी पद्धतियां असफल हो चुकी हैं। इसी प्लेग की बीमारी के सम्बध में एक जैन साधु के द्वारा असगंध की जड़ या गांठ पोर बन्दर के सुप्रसिद्ध वनस्पति-शास्त्री श्रीजयकृष्ण इंद्रजी को प्राप्त हुई, जिसके लिये उन साधु ने बतलाया कि यह जड़ चाहे जैसी गांठ के ऊपर घिसकर लगाने से वह गांठ फूटकर आराम हो जाती है। इस जड़ को उसके बाद प्लेग के कई रोगियों पर अजमाया गया और शुरू से आखिर तक प्लेग की गांठ को नष्ट करने के लिये यह औषधि रामबाण साबित हुई और इस की प्रशंसा कई बड़े २ डॉक्टरों और सर्जनों ने की, जिसका उल्लेख इस ग्रंथ के अन्दर असगन्ध के प्रकरण में विस्तार के साथ किया गया है।

इसी प्रकार इसी प्लेग के ऊपर एक जंगली मनुष्य के द्वारा गुजरात के एक गृहस्थ को लाल इंद्रायण की जड़ का योग मालूम हुआ और उन्होंने भी इस जड़ के द्वारा पचासों ऐसे रोगियों को प्लेग

के पंजे में से मुक्त किया जिनको डॉक्टर और वैद्य जवाब दे चुके थे। इस औषधि का वर्णन भी इन्द्रायण के प्रकरण में इस ग्रन्थ के अन्दर विस्तार से किया गया है।

इसी प्रकार बिच्छू के जहर के सम्बन्ध में गुलतुर्रा नामक वृक्ष की जड़ का उपयोग भी एक ऐसा चमत्कारिक उपाय है जिसका शास्त्रीय ग्रंथों में कहीं उल्लेख नहीं है मगर जो बड़े २ डॉक्टरों के द्वारा हजारों केसों में अजमाने के पश्चात् भी पूर्ण रूप से विजयी साबित हुई है।

बंगाल के अंदर "बक्खो" नामक एक औषधि होती है, इस औषधि का वर्णन आयुर्वेदिक और यूनानी के किसी भी ग्रंथ में पाया नहीं जाता, पर यह औषधि बंगाल के ढाका जिले में बहुत बड़े परिमाण में पैदा होती है। यह वनस्पति पातालगरुड़ी के समान होती है। इस औषधि का उपयोग वहां के रहने वाले संथाल लोग निर्भीक होकर करते हैं। बंगाली लोगों में से जब किसी को सांप काटता है तब वे लोग बड़े २ डॉक्टरों को बुलाने की जगह पर संथाल लोगों को बुलाकर उनसे इलाज करवाते हैं। इसी बूंटी के प्रताप से संथाल लोगों के बच्चे काले सांपों को निर्भीकता के साथ खिलवाड़ की तरह गले में पहन लेते हैं।

'जंगलनी जड़ीबूंटी' नामक ग्रंथ के लेखक लिखते हैं कि शान्ति-निकेतन के एक विद्यार्थी को बड़े जोर से 'नकसीर' (नाक से खून बहना) शुरू हुआ। कई डॉक्टरों का इलाज करने पर भी, उसको लाभ नहीं हुआ और सब लोग बड़े हैरान हो गये, इतने ही में उधर एक संथाल आ निकला उसने बक्खो की जड़ लेकर पानी के साथ पीसकर रोगी को पिलादी जिससे तुरन्त खून का बहना बन्द होगया। एक स्त्री को भयंकर प्रदर रोग था, करीब घड़ा भर खून उसके रोज बहता था। बक्खो की २ तोला जड़ लेकर पानी में पीसकर उसको पिलाई गई जिससे उसे ऐसा लाभ हुआ कि फिर दूसरी बार दवा लेने की उसे आवश्यकता ही न रही। सर्पदंश के ऊपर भी यह औषधि इसी प्रकार पानी में घिसकर पिलाई जाती है और कहा जाता है कि बिलकुल मृत्यु के मुख में पहुँचे हुए मनुष्य के पेट में भी अगर यह पहुँच जाय तो १०-१५ मिनट में ही वह चैतन्य लाभ करलेता है।

नर्मदा के किनारे पर बड़ौदा राज्य की सरहद में गौला नामक एक औषधि होती है, इसके लिये कहा जाता है कि पानी में डूबे हुए मनुष्य, को यदि वह मृत्यु के मुख में भी पहुँचगया हो तो यह औषधि पुनर्जीवन दे देती है। इसकी तरकीब यह है कि मुर्दे को गाड़ने के लिये गड्ढा बनाया जाता है वैसा गड्ढा खोदकर उसमें उपले कंडे भरकर जलादेना चाहिये। जब वे कंडे जलकर अंगारे हो जाँय तब उनको उस गड्ढे में से निकालकर उस गड्ढे में नीम के पत्ते भरकर उन पत्तों के ऊपर पानी में डूब कर मरे हुए मनुष्य को नग्न करके सुलादेना चाहिये और मुँह खुला रखकर उसको रजाई ओढा देना चाहिये। फिर इस गौला नामक वनस्पति को बारीक पीसकर उसके मुंह और ललाट पर लेप करना चाहिये। इससे करीब एक घंटे के बाद पसीना और पेशाब होकर वह रोगी चैतन्य लाभ करता है।

कई डाक्टरों का ऐसा खयाल है कि क्लोरोफार्म की तरह मनुष्य को बेहोश करने वाली कोई औषधि भारतवर्ष में पैदा नहीं होती है पर हिमालय के अन्दर नेपाल से भूटान के बीच में " विखमा " नामक एक वनस्पति के पौधे पाये जाते हैं, जिनकी ऊँचाई ४ से ५ फीट तक होती है। इस औषधि के अन्दर यह तासीर है कि इसके नजदीक होकर अगर कोई मनुष्य निकल जाय तो वह मूर्छित हो जाता है। इस औषधि की जड़ को लाकर सुँघाने से यह क्लोरोफार्म का काम कर सकती है। इस औषधि की दर्प-नाशक एक वनस्पति जिसको " निर्विषी " कहते हैं, वह भी इसके नजदीक ही पैदा होती है और उसमें यह गुण है कि उसकी जड़ को नाक के पास रखने से बेहोश व्यक्ति तुरन्त होश में आ जाता है।

एक चाँद मरवा नामक पहाड़ी वनस्पति हिमालय में बरफ के अन्दर पैदा होती है। इस बूँटी का वर्णन भी किसी आयुर्वेदिक या यूनानी ग्रन्थ में नहीं मिलता, मगर जंगली लोग इससे अच्छी तरह परिचित हैं। यह वनस्पति स्नायु-रोगों के लिये एक अचूक औषधि है। न्यूरेस्थनिया, स्नायविक दुर्बलता इत्यादि अनेक प्रकार के स्नायु-रोगों में जटामांसी के काढ़े के साथ इसको लेने से यह शास्त्रीय रस, भस्म, घृत, तेल इत्यादि दूसरी औषधियों से बहुत ज्यादे लाभ पहुँचाती है।

इसी प्रकार कुछ वर्षों के पहिले गुजरात के अन्दर एक फकीर ने सैकड़ों वातरक्त, (जिसे गुजराती में " पत " का रोग कहते हैं) नामक कुष्ठ के रोगियों को खिचड़ी में छिपकली पका २ कर, उस खिचड़ी को खिलाकर आराम किया था।

इसी प्रकार ऐसी सैकड़ों वनस्पतियाँ इस देश में पैदा होती हैं जिनके गुण-दोष केवल जंगली लोगों, शिकारियों और योगी-यतियों को ही मालूम है और वे गुरु परम्परा से उन्हीं लोगों की जानकारी में रहती आई हैं। उनका ज्ञान न तो प्राचीन ग्रन्थकारों को था और न शायद आधुनिक रसायन-शास्त्रियों को ही है। दुर्भाग्य से इस देश में यह विचार-पद्धति बहुत दिनों से चली आ रही है कि लोग अपने ज्ञान को संसार के सन्मुख प्रकाशित करने में बड़ी हानि समझते हैं और इसी विचार-पद्धति के कारण यहाँ का ज्ञान प्रकाश में न आकर मनुष्य के जीवन के साथ ही खतम हो जाता है, अगर कोशिश करके इन जंगली लोगों के पास रहा हुआ जड़ी-बूँटियों का ज्ञान संकलन किया जाय तो इस शास्त्र के अन्दर एक नवीन युगान्तर हो सकता है।

[४]

कुछ वनस्पतियाँ हमारे देश में ऐसी भी पैदा होती हैं जो अत्यन्त प्रभावशाली हैं और जिनका ज्ञान हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों को बहुत अच्छी तरह से था और जिन्होंने अपने ग्रन्थों में उनका पूरा वर्णन दिया है, लेकिन काल परम्परा से और समय के भीषण आघातों से लोग उनकी पहिचान को बिलकुल भूल गये और वे औषधियाँ हमारे लिये एकदम अपरिचित सी हो गई। इनमें जीवक, ऋषभक इत्यादि

अष्टवर्ग की औषधियाँ तो प्रसिद्ध ही हैं और जिनके लिये खोज भी चल रही है, मगर इनके सिवाय चरक-संहिता के अन्दर और भी कई दिव्य औषधियों का जिक्र किया गया है, जैसेः—ब्रह्मसुवर्चली नाम की एक औषधि होती है जिसको हिरण्यक्षीरा भी कहते हैं। इसके पत्ते कमल की तरह होते हैं। एक औषधि आदित्यपर्णी अथवा सूर्यकांता नामक होती है जिसका दूध सोने के समान पीला और फूल सूर्य-मण्डल के आकार का होता है। एक औषधि नारी नामक होती है जिसको अश्वबला भी कहते हैं। इसके पत्ते बकरे की तरह होते हैं। एक काष्ठगोधा नामक औषधि होती है जिसका आकार साँड के समान होता है। एक सर्पा नामक औषधि होती है जिसका आकार सर्प की तरह होता है। सोम नामक औषधि जिसे सोमवल्ली भी कहते हैं और जो सब औषधियों की रानी है। इसके पन्द्रह पत्ते होते हैं और चन्द्रमा की कला के अनुसार कृष्णपक्ष में प्रतिदिन एक २ पत्ता घटता जाता है और शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन एक २ पत्ता नवीन आता-जाता है। एक पद्मा नामक औषधि होती है, जो आकार, रंग और गन्ध में कमल के समान होती है। एक अजा नामक औषधि होती है जिसको यजश्रृंगी भी कहते हैं। एक नीला नामक औषधि भी होती है जिसके दूध और फूल नीले रंग के होते हैं तथा शाखा-प्राशाखाएँ बहुत होती हैं।

महर्षि चरक लिखते हैं कि उपरोक्त औषधियाँ महान् दिव्यौषधियाँ हैं। इनके रस का तृप्तिपर्यंत पान करके ऊपर बकरी का दूध पीने से और उसके पश्चात् पलाश की हरी लकड़ी के बनाये हुए ढक्कनदार टब में नग्न स्थिति में सोने से नवीन शरीर की प्राप्ति होती है और वह मनुष्य आयु, वर्ण स्वर, आकृति, बल और प्रभा में देवताओं के समान हो जाता है।

इसी प्रकार भूख और प्यास को दूर करने वाली, दूध पैदा करने वाली, सोना बनाने वाली, इत्यादि अनेक प्रकार के चमत्कृत गुणों से संयुक्त औषधियाँ हमारे यहाँ के पहाड़ों में पैदा होती हैं। मगर जानकारी न होने से हम लोग उनसे बिलकुल लाभ नहीं उठा सकते।

[५]

अंग्रेजी राज्य का इस देश में प्रारंभ होने पर पाश्चात्य लोगों ने और २ बातों के साथ इस देश के वनस्पति-विज्ञान पर पूरी तरह से ध्यान देना आरंभ किया। यूरोप के विद्वानों ने भारतीय चिकित्सा-प्रणाली की महत्ता और उसकी वैज्ञानिकता को सच्चे दिल से महसूस किया और उन्होंने इस देश के आयुर्वेदिक और यूनानी ग्रन्थों का बहुत गहरे अध्ययन से मनन किया। उन लोगों ने न केवल प्राचीन ग्रन्थों पर आश्रित रहकर ही वनस्पतियों के अन्वेषण का कार्य किया, प्रत्युत पहाड़ों २ और जंगलों २, में घूमकर वनस्पतियों की पहिचान की। जंगली लोगों से उनके गुणधर्मों को जाना और उसके बाद उन औषधियों को अपने ग्रन्थों में दर्ज किया।

सबसे पहिले इस विषय में सर विलियम जोन्स ने अपना प्रयत्न प्रारंभ किया। वे वनस्पति-शास्त्र के ऊँचे विद्वान थे। उन्होंने भारतीय औषधियों के सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता

बंगाल एशियाटिक सोसायटी के समक्ष प्रगट किया और बतलाया कि सैकड़ों वनस्पतियां जो भारत के जङ्गलों और मैदानों में पैदा होती हैं, वे यूरोपीय लोगों के परिचय में नहीं हैं, अपने एक ग्रन्थ में उन्होंने ऐसी कुछ वनस्पतियों का परिचय भी लिखा । इसके बाद उनके अनुयायी राक्सबर्ग ने "फ्लोरा ऑफ इन्डिका" में देशी औषधियों का काफी परिचय दिया। फरमा कोपिया ऑफ इंडिया के प्रकाशित होने तक यह ग्रन्थ ही इस देश की औषधियों के लिये एक उत्तम ग्रन्थ माना जाता था । सन् १८७४ में इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में मिस्टर क्लार्क ने लिखा कि राक्सबर्ग ने भारतीय जड़ी-बूटियों के विषय में इतना लिखा है कि उसके आगे हमारा कार्य बहुत ही कम है। इकॉनामिक बोटानी के विषय में रॉक्सबर्ग बहुत ही विश्वसनीय हैं और उनके ग्रन्थ में इस विषय पर बहुत कुछ जानकारी देते हैं।

एंसली कृत मटेरिया मेडिका भी देशी वनस्पतियों के सम्बन्ध में एक बहुत ही महत्व का काम हुआ और इसने इस क्षेत्र के अन्दर बहुत प्रशंसा प्राप्त की।

सन् १८६८ में वेरिंग के सम्पादन में फरमाकोपिया ऑफ इन्डिया नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इसमें यहाँ पर पैदा होने वाली वनस्पतियों पर काफी प्रकाश डाला गया। इस ग्रन्थ ने इस क्षेत्र के अन्दर एक नवीन युग का प्रारम्भ कर दिया । इसके अन्दर की कई महत्वपूर्ण औषधियाँ ब्रिटिश फरमाकोपिया के अन्दर दर्ज की गईं । डाक्टर मोहिदीन शरीफ ने सप्लीमेंट टू दी फरमाकोपिया प्रकाशित किया । इस ग्रन्थ में ऐसी कई नवीन वनस्पतियाँ जिनका इस देश में अधिकतर उपयोग होता है, मगर जिनका उल्लेख वेरिंग ने नहीं किया था, प्रकाश में लाई गईं, मोहिदीन शरीफ ने मटेरिया मेडिका ऑफ मद्रास नामक ग्रन्थ की रचना भी की, जिसको उनकी मृत्यु के पश्चात् हूपर ने प्रकाशित किया। यू० सी० दत्त ने संस्कृत मटेरिया मेडिका का अनुवाद किया जिससे हिन्दू-चिकित्सकों के द्वारा उपयोग में ली जाने वाली मुख्य २ औषधियाँ प्रकाश में आगईं । इसके बाद फ्लूकीगर और हेम्बी कृत फार्मकोग्रेफिया नामक दूसरा ग्रन्थ प्रकाशित हुआ और सन् १८८३ में डायमॉक ने मटेरिया मेडिका ऑफ वेस्टर्न नामक ग्रन्थ की रचना की । सन् १८८५ में वार्डन और हूपर के सम्पादन में फरमेकोग्रेफिया ऑफ इन्डिया नामक महत्व पूर्ण और विस्तृत ग्रन्थ तयार हुआ, जिसमें बहुत ही परिश्रम और सावधानी के साथ पूर्व और पश्चिम के देशों में काम में ली जाने वाली औषधियों का काफी वर्णन है। सन् १८६५ में "डिक्शनरी ऑफ इकॉनामिक प्राडक्टस ऑफ इंडिया" नामक महान् ग्रन्थ सर जार्ज वेट के द्वारा तयार किया गया। यह एक विस्तृत और उपयोगी ग्रन्थ है। इस स्मरणीय ग्रन्थ में पहले के ग्रथों का सारांश ही नहीं लिया गया किन्तु इसके हर एक पेज में भिन्न २ पत्तों, फूलों, जड़ों, छिलटों और लकड़ियों का भिन्न-भिन्न उपयोग बतलाया है। कई वनस्पतियों की खेती के विषय में भी इसमें बहुत कुछ लिखा गया है। इसके बाद कन्हैयालाल दे कृत इंडिजेनस ड्रग्स

ऑफ इंडिया और कीर्तिकर और वसू कृत इंडियन मेडिसिन प्लांट्स नामक ग्रन्थों की रचना हुई। कीर्तिकर और वसू के ग्रन्थ में कई औषधियों के चित्र भी दिये गये हैं जिनसे कि उनके परीक्षण में सहायता मिले।

इन रचनाओं के अतिरिक्त कई सभा-सोसाइटियों, मासिक पत्रों और व्यक्तिगत अनुमानों के द्वारा भी वनस्पति विषयक ज्ञान की बहुत तरक्की हुई। गवर्नमेंट ने भी इस विषय में बहुत दिलचस्पी ली। यह बात भी धीरे-धीरे सर्वमान्य होने लगी कि इस देश की आबहवा में पैदा होने वाली बीमारियों को दूर करने के लिये यहाँ की आबहवा में पैदा होने वाली औषधियां ही अधिक कामयाब हो सकती हैं। चिकित्सा की देशी प्रणाली को पुनर्जीवित करने के लिये कौन्सिल के अन्दर भी सवाल उठाये गये। अधिकारियों का ध्यान भी इस महत्वपूर्ण तथ्य की तरफ आकर्षित हुआ कि इस देश में पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति पर अवलम्बित रहने वाले लोगों की संख्या केवल दश प्रतिशत है, शेष जन समुदाय देशी औषधियों पर ही अपने को निर्भर करता है। लार्ड हार्डिङ्ग ने एक स्थान पर भाषण देते हुए कहा था कि "जब मैं इस बात को सोचता हूँ कि कितने कम लोग ऐसे हैं जिनकी पहुँच एलोपेथिक चिकित्सा तक है और उनमें भी कई ऐसे हैं जिनकी पहुँच एलोपेथिक तक होने पर भी जो देशी इलाज को ही पसन्द करते हैं, तब मैं इस निर्णय पर पहुँचता हूं कि जो भी युक्ति देशी चिकित्सा को पुनर्जीवित होने के लिये मेरे सामने पेश की जावे उसकी अवहेलना करना मेरे लिये भयङ्कर भूल होगी"।

इन्हीं सब बातों के परिणाम स्वरूप, खासकर गवर्नमेंट का ध्यान इधर आकर्षित होने से इस क्षेत्र के अन्दर सर्वतोमुखी उन्नति होने लगी जिसके परिणाम इस प्रकार दृष्टिगोचर होने लगे।

(१) सबसे बड़ा महत्वपूर्ण कार्य इस क्षेत्र में यह हुआ कि यहाँ पर पैदा होने वाली औषधियों पर अर्थशास्त्र की दृष्टि से विचार होने लगा। जन समाज का और जिम्मेदार व्यक्तियों का ध्यान उस भारी रकम की ओर गया जो प्रतिवर्ष विदेशी औषधियों के मूल्य स्वरूप विदेशों में जाती है।

यह कितने बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश में धतूरा, मीठा तेलिया, एट्रोपा वेलेडोना (गिरबूटी, येब्रुज), खुरासानी अजवायन, इत्यादि अनेकों औषधियां, यहां प्रचुर प्रमाण में पैदा होकर बाहर जाती हैं और वहां से वे ही टिंचर, अर्क और मिक्श्चर का रूप धारण कर हमारे देश के अस्पतालों में आती हैं और वहां से यहां की गरीब जनता के पास पहुंचती, इन सब क्रियाओं में हमारा कितना राष्ट्रीय धन व्यर्थ नष्ट होता है, इसका अनुमान करना भी कठिन है।

इसी प्रकार कई औषधियां ऐसी हैं, जो ठीक उसी रूप में तो हमारे यहां पैदा नहीं होतीं जिस रूप में वे बाहर से आती हैं मगर ठीक उन्हीं के समान गुण धर्म और प्रभाव रखने वाली औषधियां हमारे

देश में प्रचुर परिमाण में पैदा होती हैं और जो कौड़ियों के मोल यहांपर प्राप्त हो सकती हैं जैसे इपिकेकोना के बदले अन्तमूल और आंकड़ा, सारसा परिला के बदले अनन्तमूल, एफिड्रा के बदले असमानिया, जेलप के स्थान पर कालादाना, क्वाशिया के स्थान पर नीम, वेलेरियन के स्थान पर जटामांसी, इत्यादि कई औषधियां यहां ऐसी पैदा होती हैं जो विलायती औषधियों का मुकाबिला करती हैं। अगर उन औषधियों के स्थान पर ये औषधियां काम में ली जायँ, तो इससे भी हमारे देश का बड़ा लाभ हो सकता है।

इसके सिवाय कई औषधियां हमारे यहां ऐसी होती हैं जिनकी अगर व्यवस्थित रूप से खेती की जाय तो वे यहां से सफलता पूर्वक बाहरी देशों को भेजी जा सकती हैं और उनसे हमारे देश को काफी लाभ हो सकता है।

इन्हीं सब बातों पर विचार करने के लिए सन् १८६५ में गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया ने एक इण्डिजेनस ड्रग्स कमेटी नियत की थी। इस कमेटी ने गवर्नमेण्ट का ध्यान इन बातों की तरफ आकर्षित किया (१) व्यवस्थित रूप से भारत में देशी औषधियों की खेती को उत्तेजन देना (२) चिकित्सा-शास्त्र में जिन २ औषधियों की उपयोगिता मानली गई है, उनका मेडिकल डिपो में अधिकाधिक उपयोग करवाना (३) डिपो में कुछ विशेष औषधियों को तैय्यार करने की स्वीकृति देना।

इसके परिणाम स्वरूप कई स्थानों पर गवर्नमेंट ने व्यवस्थित रूप से, यहां पैदा होने वाली और न होने वाली कई औषधियों की खेती भिन्न-भिन्न स्थानों पर करवाना प्रारम्भ की, उसमें यथेष्ट सफलता भी मिली तथा देशी औषधियों की बाहर जाने की तादाद में भी काफी वृद्धि हुई।

फिर भी अबतक जैसी चाहिये वैसी सन्तोषजनक उन्नति इस क्षेत्र में नहीं हुई है। इस देश की आबहवा और यहाँ की जमीन इतनी भिन्न २ प्रकार की है कि अगर प्रयत्न किया जाय तो संसार भर की सारी वनस्पतियां यहां पर पैदा हो सकती हैं और यह देश न केवल अपनी प्रत्युत सारे संसार की वनस्पतियों की मांग पूर्ण कर सकता है।

दूसरा महत्व का कार्य्य इस क्षेत्र में यह हुआ कि गवर्नमेण्ट ने इस देश में पैदा होने वाली औषधियों के रासायनिक तत्वों की जानकारी के लिए कुछ स्कूल खोले। यद्यपि इसके पहले भी वार्डनहूवर इत्यादि लोगों ने संगठित और व्यक्तिगत रूप से यहां की औषधियों के रासायनिक-विश्लेषण किये थे, पर इस सम्बन्ध का संगठित काम करने के लिये कलकत्ते में ट्रापिकल स्कूल ऑफ मेडिसन्स की स्थापना हुई। इस संस्था ने देशी औषधियों का परीक्षण करके उनके सम्बन्ध में नवीन प्रकाश डाला। इसके प्रधान कार्य्यकर्ता ले० कर्नल चोपरा ने अत्यन्त परिश्रम करके देशी औषधियों के सम्बन्ध में प्रचलित अनेकों अन्धविश्वासों को नष्ट कर दिया। उन्होंने एक २ औषधि के रासायनिक तत्वों का पृथक्करण कर उसके गुण-धर्मों का विवेचन किया। इनके कार्य्य से भारतीय वनस्पतियों के इतिहास में

एक नवीन युग का निर्माण हुआ ।

फिर भी यह कहना कठिन है कि इस प्रकार के रासायनिक-विश्लेषणों से प्रत्येक औषधि के वास्तविक गुण प्रकाश में आ जाएँगे । कुदरत की रचना इतनी विचित्र है कि एक वनस्पति में स्वाभाविक रूप से जो गुण रहते हैं, वे विश्लेषण को क्रिया करते २ नष्ट हो जाते हैं, कई वनस्पतियां अग्नि का स्पर्श होते ही निःसत्व हो जाती हैं । डाक्टर भुवन मोहन सरकार ने एक बार लिखा कि "उलटकम्बल" को टिंक्चर, गोली, चूर्ण इत्यादि सभी रूपों में प्रयोग किया गया, मगर इसके ताजा रस में जो गुण मिला, वह इसके दूसरे किसी भी रूप में नहीं पाया गया । इसी प्रकार कई वनस्पतियों के टिंचरों और रासायनिक तत्वों से आधुनिक चिकित्सकों को निराश होना पड़ा, मगर उन्हीं वनस्पतियों के द्वारा सैकड़ों वर्षों से यहां के वैद्य सफलता पूर्वक चिकित्सा करते आ रहे हैं ।

केस और महेस्कर ने साँप के विष को दूर करने वाली यहाँ की प्रायः सभी अर्थात् ४०० औषधियों के विश्लेषण किये और अन्त में उनको सब के लिये निराश होना पड़ा । मगर उन्हीं औषधियों के द्वारा यहाँ के वैद्य और संपेरे सैकड़ों साँप के काटे हुए मृतप्रायः रोगियों को सफलता के साथ सैकड़ों वर्षों से अच्छा करते आ रहे हैं ।

मगर इन अपवादों से या इसी प्रकार के और भी सैकड़ों अपवादों से रसायन-शास्त्र की उपयोगिता में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आ सकता । यह जरूर है कि रसायन-शास्त्र अभी अपूर्ण अवस्था में है, फिर भी इसके द्वारा हमको जो ज्ञान प्राप्त हो सकता है उसकी कीमत नहीं आँकी जा सकती । औषधियों के सम्बन्ध में रसायन-शास्त्र की वजह से मानवीय-ज्ञान में जो तरक्की हुई है, वह ऐतिहासिक है । इससे उपयोगी और निरुपयोगी औषधियों के पृथक्करण में बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य हुआ है । आवश्यकता केवल इस बात की है कि किसी भी औषधि का रासायनिक विश्लेषण करते समय हम उस औषधि से सम्बन्ध रखने वाले प्राचीन मतों या पहाड़ी लोगों के अनुभवों को उपेक्षा की दृष्टि से न देखें । इन सब तथ्यों को मद्देनजर रखते हुए किसी भी औषधि के गुण-धर्म और प्रभाव पर हम जिन नतीजों पर पहुँचेंगे, वे अपेक्षाकृत अधिक महत्व पूर्ण होंगे ।

(३) तीसरा महत्व पूर्ण कार्य इस क्षेत्र में यह हुआ कि यहाँ के मेडिकल कालेजों के पाठ्य-क्रम में देशी औषधियों का ज्ञान देने वाली प्रामाणिक पुस्तकें भी सम्मिलित की गई हैं । इससे यहाँ के मेडिकल ग्रेज्युएट्स देशी इलाजों से कॉलेजों में ही परिचित हो जाते हैं और वे अपने भावी जीवन में उनका उपयोग भी लेते हैं ।

(४) इस सम्बन्ध में निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं, प्रदर्शिनियों और दूसरे फुटकर साहित्य ने भी इस विषय के ज्ञान को बढ़ाने में काफी सहायता दी ।

इसके अतिरिक्त कई लेखकों ने प्रान्तीय दृष्टि को मद्देनजर रखकर भिन्न २ प्रान्तों में पैदा होने वाली औषधियों के सम्बन्ध में कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे । इन ग्रन्थों से भी औषधियों के सम्बन्ध के

ज्ञान की बहुत वृद्धि हुई।

पंजाब की जड़ी-बूटियों के सम्बन्ध में डाक्टर स्टैवर्ट ने पंजाब प्लांट्स नामक बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ की रचना की। पंजाब प्रान्त की औषधियों के सम्बन्ध में यह ग्रन्थ बहुत ही महत्वपूर्ण जानकारी देता है।

डा० एटकिनसन ने इकानामिक प्राडक्ट्स ऑफ दी नार्थ-वेस्ट प्राविन्स नामक ग्रन्थ की रचना की, यह ग्रन्थ संयुक्त प्रान्त, आगरा और अवध की वनस्पतियों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी देता है।

बड़ोदा और काठियावाड़ की वनस्पतियों के सम्बन्ध में गुजरात के सुप्रसिद्ध वनस्पति-शास्त्री श्री जयकृष्ण इन्द्रजी ने अत्यन्त अन्वेषण और मनन के साथ अपने वनस्पति-शास्त्र की रचना की है।

इसी प्रकार सर डेविडप्रेन कृत बंगाल प्लांट्स, थियोडोर कुक कृत फ्लोरा ऑफ बाम्बे, हेन्स कृत फ्लोरा ऑफ सेण्ट्रल प्राविन्सेस, गेंबल कृत फ्लोरा ऑफ मद्रास, मोहीद्दीन शरीफ कृत मटेरिया मेडिका ऑफ मद्रास, कर्नल बेंवर कृत पंजाब प्लांट्स, जनरल कॉलेट कृत फ्लोरा सिमलेन्सेस, बर्किल कृत प्लांट्स ऑफ बिलोचिस्तान, इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हो चुकी है।

मतलब यह है कि इस सम्बन्ध में इतना क्षेत्र तैयार हो चुका है कि इस विषय में उत्साह रखने वाले किसी भी व्यक्ति को इस सम्बन्ध की काफी जानकारी प्राप्त हो सकती है।

इतना सब होने पर भी अभीतक इस देश में इस ज्ञान का क्षेत्र बहुत ही संकुचित है। इस देश की जनता का करीब ९९ प्रति सैकड़ा हिस्सा अभीतक इस विषय की आधुनिक जानकारी से अपरिचित है। इसका प्रधान कारण यह है कि इस सम्बन्ध में अभीतक जितने अनुसंधान हुए हैं, प्रायः वे सब अंग्रेजी भाषा में ही प्रकाशित हुए हैं और वे भी ऐसे ढङ्ग से प्रकाशित हुए हैं जिनसे मेडिकल लाइन के आदमी ही उनसे किसी अंश में लाभ उठा सकते हैं। सर्व साधारण को उनसे कोई दिलचस्पी नहीं होती। अगर देशी भाषाओं में इस विषय की जानकारी देने वाला साहित्य और पत्र-पत्रिकाएँ, सरल और सुबोध ढङ्ग से प्रकाशित हों तो सर्व-साधारण के क्षेत्र तक किसी रूप में इस ज्ञान की पहुँच हो सकती है। मगर देशी भाषाओं में इस प्रकार के ग्रन्थों का प्रायः एक प्रकार का अभाव ही रहा है। गुजराती और मराठी भाषाओं में फिर भी इस सम्बन्ध की दो-चार पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। मगर राष्ट्रभाषा का सम्मान प्राप्त करने वाली हिन्दी-भाषा में तो ऐसे साहित्य का करीब २ अभाव ही है। होना तो यह चाहिये कि देशी भाषाओं में वनस्पतियों से सम्बन्ध रखने वाले छोटे २ ट्रेक्ट तथा बड़े २ ग्रन्थ प्रचुर परिमाण में प्रकाशित हों, जिससे जनसमुदाय जीवन में सबसे अधिक आवश्यक औषधि-विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो सके।

इसलिये इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि राष्ट्रभाषा के अन्दर इस विषय का उपयोगी साहित्य छोटे से लेकर बड़े पैमाने पर प्रकाशित किया जाय, जिससे जन-समाज में इस विषय की ओर

अभिरुचि पैदा हो।

इसी कमी की ओर जन-समाज का ध्यान आकर्षित करने के लिये तथा इस अभाव की यत्किंचित पूर्ति करने के लिये इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया है। इस ग्रन्थ में आयुर्वैदिक, यूनानी और आधुनिक वैज्ञानिक ग्रन्थों के अतिरिक्त जंगली लोगों के अनुभव तथा जड़ी-बूँटियों में दिलचस्पी रखने वाले दूसरे लोगों के अनुभवों का भी वर्णन किया गया है। उपयोगिता की दृष्टि से ग्रन्थ कहाँतक सफल हुआ है, इसका निर्णय इस विषय के अधिकारी ही कर सकेंगे !

वनौषधि-चन्द्रोदय

वनौषधि-चन्द्रोदय

---:o:---

अकलकरा

नाम—

संस्कृत—आकल्लकः, आकारकरभः,अकल्लकः, हिन्दी—अकलकरा, गुजराती—अक्कलकरो, मराठी—अक्कलकारा, बंगाली—अकोरकोरा, तेलगू—अक्करकरम्, अरबी—आकरकरहा, लेटिन Angeyclaus, Anacyclus Pyrethrum (एनासायक्लस पाइरिथ्रूम) अंग्रेजी—Pellitory Root (पेलेट्री रूट)।

वर्णन—

यह अरब और भारतवर्ष की प्रसिद्ध बूटी (जड़ी) है । पूर्वकालीन चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि प्रामाणिक ग्रन्थों में इस बूटी का उल्लेख नहीं मिलता । मगर मध्यकालीन भावप्रकाश, शार्ङ्गधर आदि ग्रन्थों में इसका उल्लेख पाया जाता है । इससे ऐसा अनुमान होता है कि भारतवर्ष में इस औषधि का ज्ञान यूनानी हकीमों के द्वारा ही प्रचारित हुआ । यूनानी हकीम "डीओस कुरीदस" (Dioscorides) ने पाइरीथ्रोन के नाम से इस औषधि का वर्णन किया है । इसी शब्द से लेटिन के पाइरीथ्रूम शब्द की व्युत्पत्ति हुई है ।

यूनानी ग्रन्थों में अकलकरे का वर्णन बाबूना वर्ग की चार औषधियों के साथ मिलता है। बाबूना यह सब औषधियाँ एक दूसरी के साथ बहुत मिलती हुई हैं। बाबूना ज़रूमी, बाबूना बदबू, बाबूना गावचश्म और बाबूना स्पेनिश इन चारों औषधियों को यूनानी में बाबूना और लेटिन में पाइरीथ्रम कहते हैं। इन चारों में स्पेनी बाबूना जिसको लेटिन में एनासायक्लस पाइरीथ्रम कहते हैं। वही वास्तविक अकलकरा साबित हुआ है। यह औषधि अफ्रीका के उत्तरीय अलजीरिया प्रान्त में तथा भारतवर्ष के भी कुछ हिस्सों में पैदा होती है।

भारतवर्ष में पैदा होनेवाला अकलकरा दो प्रकार का होता है। पहिले को लेटिन में "Spilinthes Oleracea" और दूसरे को "Spilanthes Acmella" कहते हैं।

स्वरूप—

यह औषधि क्षुप जाति की है, वर्षाऋतु की पहिली वर्षा होते ही इसके छोटे-छोटे पौधे निकलना प्रारम्भ होते हैं। इसकी डाली रूएंदार होती है, डाली के ऊपर गोल गुच्छेदार छत्री के आकार वाला पीले रंग का फूल आता है। इसकी जड़ २ से ४ इंच तक लंबी और आधे से पौन इंच तक मोटी होती है। छाल मोटी, भूरी और झुर्रीदार होती है। यह औषधि ७ सात वर्ष तक खराब नहीं होती।

रासायनिक विश्लेषण—

इस औषधि का रासायनिक विश्लेषण करने से पता चला है कि इसमें "अल्कलाइड अकरकर्मीन" नामक क्षार तत्व, रेजिन और दो स्थायी उड़नशील तेलों का अस्तित्व पाया जाता है। यह वस्तु प्रदाहजनक, लार निस्सारक, कामोत्तेजक, वातनाशक, और मज्जातंतुओं को बल देनेवाली है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से अकरकरा उष्णवीर्य्य, बलकारक, चरपरा तथा सूजन, वात और जुकाम को नष्ट करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी ग्रन्थकार इसे दूसरे दर्जे में रूक्ष और गर्म मानते हैं, कोई-कोई इसे तीसरे दर्जे के अन्त में और चौथे दर्जे तक खुश्क मानते हैं। किसी-किसी के मत से यह तीसरे और चौथे दर्जे में शीतल है। फेंफड़ों के ऊपर इस औषधि का प्रभाव हानिकारक होता है।

उपयोग—

स्नायु रोग—ज्ञानतंतुओं के ऊपर इस औषधि का अच्छा असर होता है। जिसके फलस्वरूप यह औषधि पक्षाघात, अर्दित (मुँह का लकवा) इत्यादि स्नायुजाल से संम्बन्ध रखनेवाली व्याधियों पर अच्छा लाभ पहुँचाती है। रूमी मस्तगी के साथ इस औषधि को चबाने से दूषित दोषों से पैदा हुई मिर्गी मिटती है। इस औषधि में वातनाशक गुण भी काफी मात्रा में मौजूद है। जिसके परिणाम स्वरूप गृध्रसी, संधिवात, शून्यवात, वातजनित मस्तक रोग, पुट्ठे का दर्द, कुबड़ापन, गर्दन की अकड़न, जोड़ों के दर्द इत्यादि वातव्याधियों पर जैतून के तेल के साथ पीसकर मालिश करने से अच्छा लाभ पहुँचाती है।

ज्वर और जुकाम—इस औषधि में पसीना लाने का गुण भी है। जैतून के तेल के साथ इसको पकाकर मालिश करने से पसीना देकर ज्वर उतर जाता है। इसके गरम काढ़े को सिर पर लेप करने से और उसे तालू पर मलने से सरदी और नजला दूर होता है।

दंत रोग—दाँतों की व्याधियों पर भी अकलकरा बहुत लाभ पहुँचाता है। इसके क्वाथ (काढ़े) को मुँह में रखने से हिलते हुए दाँत मज़बूत होते हैं। इसी प्रकार इसकी जड़ को सिरके में भिगोकर दाँत के नीचे दबाने से दंतशूल नष्ट होता है। इसके चूर्ण को जीभ पर मलने से जीभ की जड़ता दूर होती है और तोतलापन मिटता है।

खाँसी—खांसी के ऊपर भी यह औषधि अच्छा फायदा करती है। इसका क्वाथ बनाकर पिलाने से पुरानी सूखी खांसी मिटती है। इसी प्रकार इसके बारीक चूर्ण को सुंघाने से नाक बँधजाने से पैदा हुआ श्वासावरोध दूर होता है।

अतिसार और पेट की व्याधि—आमाशय को रोगों पर भी यह औषधि अपना असर दिखलाती है। इस औषधि के प्रयोग से बालकों के अतिसार, दाँत निकलने के समय उपद्रव, उदरशूल इत्यादि रोगों में फायदा होता है। सोंठ के साथ इसके चूर्ण की फंकी लेने से मंदाग्नि और अफारा मिटता है। जलोदर में भी इसका प्रयोग गुण दिखाता है। इसकी चौदह रत्ती की खुराक घोटकर देने से यह बल पूर्वक कफ को जुलाब के द्वारा निकाल देता है। किसी वामक और विरेचक औषधि को पीने से पहले यदि अकरकरा चबा लिया जाय तो उससे दवा पीने की घृणा दूर हो जाती है। इस औषधि के लेने से बच्चों का और गायकों का कंठस्वर सुरीला हो जाता है।

वीर्य सम्बन्धी रोग—अकलकरे के अंदर उत्तेजक गुण बहुत काफी प्रमाण में विद्यमान हैं। इसलिए आयुर्वेद के अंदर कामोत्तेजक औषधियों में यह बहुत प्रधान माना जाता है। यह औषधि भिन्न-भिन्न औषधियों के साथ देने से वीर्यवर्धन, कामोत्तेजन व स्तंभन में अद्भुत फायदा दिखलाती है। मगर इस औषधि का लाभ ठंडी प्रकृति वालों को ही अधिक मिलता है। इसी प्रकार इसके तेल को वाह्योपचार की तरह पुरुषेंद्रिय पर मालिश करने से यह कामशक्ति को प्रबल करता है।

कर्नल चोपरा का कथन है—इस पौधे की जड़ पौष्टिक मानी जाती है। इसको पक्षाघात की बीमारी में देते हैं, अर्द्धांग मे भी यह दी जाती है। अपस्मार और मिरगी पर भी इसका उपयोग होता है, कंपवात में भी यह दिया जाता है। यह बच्चों की वाचा शक्ति को तेज करने वाला माना जाता है। मगर इन सब धारणाओं को कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। इसकी जड़ का काढ़ा सड़े हुए दाँतों को ठीक करने के लिए कुल्ले करने के रूप में लिया जाय तो उपयोगी सिद्ध होता है। गले की बीमारी में और तालु मूलग्रंथि के प्रदाह और गलग्रंथि का प्रदाह दूर करने के लिये यह उपयोगी है।

प्रयोग और बनावटें—

मृगी नाशक सूँघनी—अकलकरा १ तोला, इंद्रायण की जड़ ६ माशे, नौसादर ६ माशे स्याह ज़ीरा ६ माशे, कुटकी १ तोला, काली मिरच १ तोला, इन सब औषधियों का चूर्ण प्रतिदिन सवेरे-शाम सुंघाने से संचित दोषों को दूर कर मृगी को नष्ट करता है।

अकरकरादि वटी—अकरकरा चार भाग, जायफल तीन भाग, लौंग दो भाग, दालचीनी तीन भाग, पीपलामूल दो भाग, केशर दो भाग, अफीम एक भाग, भंग चार भाग, मुलेठी चार भाग, आँकड़े की छाल पाँच भाग, बायबिडंग तीन भाग—इन सबका चूर्ण करके उसमें पाँच भाग शहद और शेष पानी मिलाकर घोंट कर आधी रत्ती से लेकर ढाई रत्ती तक की गोलियाँ बनाई जायँ, ये गोलियाँ बच्चों के दाँत निकलते समय के उपद्रव, अतिसार, उदरशूल और वमन के लिये हितकारी हैं।

रति-वर्धक लेप—जायफल, तज, मालकांगनी, (जायफ) अकलकरा, भीमसेनी कपूर, जायपत्री लवंग, ये सब एक एक भाग और रेंगमाही पाँच भाग लेकर बारीक चूर्ण कर कपड़े में छान लिया जाय, फिर उसमें बढ़िया गुलाब का इत्र एक भाग डालकर शीशी में भर लिया जाय। कामोद्दीपन के लिये इस औषधि का शहद के साथ पुरुषेन्द्रिय पर लेप किया जाता है।

सन्तान-निग्रह लेप—पारा, गंधक, अकलकरा, लोंग, कपूर, टंकनखार—इन सब वस्तुओं का अंजन के समान बारीक चूर्ण कर समागम के पूर्व शहद के साथ लेप करने से गर्भ स्थित नहीं होता। दोनों लेपों का प्रयोग पुरुषेंद्रिय के अगले भाग को छोड़कर करना चाहिये।

टिंचर आॅफ पाइरीथ्रम—एलोपैथिक ढंग से अकलकरे के द्वारा टिंचर आॅफ पाइरीथ्रम बनाया जाता है। जो दाँत के दर्द, गँठिया, अपस्मार, पक्षाघात, कफवात, तोतलापन, इत्यादि अनेक रोगों में लाभ पहुँचाता है।

उपदंश नाशक गोली—भावप्रकाश के मतानुसार शुद्ध पारा आधा तोला, खेर का चूर्ण आधा तोला, अकरकरा का चूर्ण आधा तोला, इन सबको कूट छान कर बनाई गोलियाँ जल के साथ लेने से फिरंग रोग (उपदंश) नष्ट होता है।

अकलकरे का तैल—एक छटांक भर अकलकरे का चूर्ण कर उसे दो सेर पानी के साथ औटाना चाहिए। जब चौथाई पानी शेष रह जाय, तब उसे मल व छानकर दस रुपये भर शुद्ध काली तिल्ली के तैल में डालकर मन्दाग्नि से औटाना चाहिए, जब पानी का भाग जलकर तैल मात्र शेष रहजाय, तब ठण्डा कर शीशी में भर देना चाहिये। इस तैल के उपयोग से सभी प्रकार की सर्दी की खाँसियाँ दूर होती हैं।

अकलकरादि चूर्ण—अकलकरा, सेंधानमक, चित्रक, आँवला, अजवायन और हरड़—ये सब एक-एक तोला और सोंठ दो तोला, इन सबों का कपड़छान चूर्ण करके उसमें बिजोरा या नीबू के रस की भावना देना चाहिये। यह चूर्ण सुबह-शाम तीन-तीन माशे लेने से पीनस, मृगी, उन्माद, खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि, अरुचि इत्यादि व्याधियों में लाभ पहुँचता है।

जादू का योग—अकरकरे को नौसादर के साथ पीस कर तालू और मुँह में खूब रगड़ने से मुँह में ऐसी शून्यता उत्पन्न हो जाती है कि यदि मुँह में अङ्गारे भी भर लिये जायँ तो नहीं जलता। कई बाजीगर लोग इसीके प्रयोग से मुँह में अङ्गारे भरने के अद्भुत खेल दिखलाते हैं।

प्रतिनिधि—जिगर के रोगों की चिकित्सा के लिए अकरकरे के अभाव में उसके प्रतिनिधि

पीपर और शहद हैं और अमाशय के रोगों में इसके प्रतिनिधि रास्ना और अगर हैं। अकलकरे के दर्प को नष्ट करने वाली औषधियों में मुनक्का और कतीरा गोंद प्रधान हैं।

योग्य मात्रा में देने से जहाँ यह औषधि अनेक प्रकार के दिव्य लाभ पहुँचाती है, वहाँ अधिक मात्रा में देने से आँतों के श्लेष्मावरण में दाह उत्पन्न करके खूनी दस्तें (कन्हुलशन) इत्यादि उपद्रवों को पैदा करती है। इसलिये इसका उचित प्रमाण में ही समझ-बूझकर प्रयोग करना चाहिये।

अकल-बेर

नाम—

संस्कृत—हिन्दी—अकलबीर व भंगजल, **पंजाबी**—अकिलविर, भंगजल, द्रिनखारी, सिदासु, **काश्मीरी**—कालबीर, बन्न जल, लेटिन– Datisca Cannalina.

वानस्पतिक वर्णन—

यह हिमालय तथा सिन्ध प्रदेश में उत्पन्न होनेवाली एक वनस्पति है। इसका झाड़ सीधा व कठोर होता है। इसकी शाखाएँ फूलमय व लम्बी होती हैं। इसके पत्तों के किनारे कुछ कटे हुए रहते हैं। इसके फूलों का रंग पीला होता है। यह फूल करीब ३ इंच लम्बा व १$\frac{1}{4}$ इंच चौड़ा होता है। इस वृक्ष के बीज बहुत बारीक होते हैं।

गुण दोष—

आयुर्वैदिक निघण्टों के अन्दर इस औषधि का कोई भी उल्लेख नहीं पाया जाता और न यूनानी ग्रन्थों में ही इसका कोई उल्लेख मिलता है। मगर वनस्पतियों की आधुनिक खोज करने वाले वैज्ञानिकों के ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है।

इंडियन मेडिकल प्लान्टस् (Indian Medical Plants) नामक अंग्रेजी ग्रन्थ के रचयिताओं के मतानुसार यह एक प्रकार की मूत्र निस्सारक औषधि है। पर्य्यायिक बुखारों में इसका उपयोग होता है। जुकाम और खाँसी में इसको कफ निस्सारक औषधि की तरह देते हैं। यह कड़वी व विरेचक है। गंडमाला रोग के अन्दर भी इसका उपयोग किया जाता है। खंभात में इसकी जड़ को कूटकर सिर दर्द के ऊपर काम में लेते हैं। गठिया के रोग में भी इसकी जड़ उपशामक मानी गई है। दाँतो के ऊपर लगाने से यह दाँतों की तकलीफ को मिटाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह कड़वी, विरेचक और ज्वर को नष्ट करने वाली है।

इसके रासायनिक विश्लेषण से इसमें ग्लूकोसाईड नामक एक प्रकार का कड़वा सत्व पाया गया है।

डाईमॉक के मतानुसार २$\frac{1}{2}$ रत्ती से लेकर ७$\frac{1}{2}$ रत्ती तक की मात्रा में यह औषधि विषम ज्वरों के अन्दर उपयोग की जाती है।

मि० वेट के मतानुसार गठिया रोग में भी यह औषधि लाभ दिखलाती है ।

इंडियन मेटेरिया मेडिका के मतानुसार इस पौधे का ठंडा काढ़ा (हिम) कंठमाला, मूर्छा तथा विषम ज्वर में लाभदायक होता है ।

अखरोट

नाम—

संस्कृत—अक्षोटः, फलस्नेहः, रेखाफलः, वृत्तफलः, **गुजराती**—अखोड़, **मराठी**—अक्रोड़, **बंगाली**—आक्रोट, **तेलंगी**—अक्षोलमु, **द्राविड़ी**—अक्रोटू, **कर्नाटकी**—वेद्दगोनूमर, **अरबी**—ज़ोजे **हिन्दी**, **फ़ारसी**—गिर्दगाँ, लेटिन (Juglans Regia.) जुगलांस रेजिया ।

वर्णन—

इसके वृक्ष काबुल में और हिमालय में, काश्मीर से मनीपुर तक अधिकता से होते हैं । इसके वृक्ष की ऊँचाई ४० से ६० फीट तक की होती है । पत्ते ४ से ८ इंच तक लंबे अण्डाकार नुकीले और तीन-तीन कंगूरेवाले होते हैं । फूल सफेद रंग के छोटे-छोटे गुच्छे के रूप में लगते हैं । एक ही गुच्छे में नर और मादा दोनों तरह के फूल होते हैं । इसके फल गोल और मैनफल के समान होते हैं । फल के भीतर बादाम की तरह मींगी निकलती है । अखरोट दो प्रकार का होता है,एक को अखरोट और दूसरे को रेखाफल कहते हैं । इस पौधे की लकड़ी बहुत ही मजबूत अच्छी और भूरे रंग की होती है ।

गुण दोष—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अखरोट मधुर, किंचित खट्टा, स्निग्ध, शीतल, वीर्यवर्धक, गरम, रुचिदायक, कफ-पित्त-कारक, भारी, प्रिय, बलवर्धक, मलवर्धक तथा वातपित्त, क्षय, वात, हृदयरोग, रुधिरदोष, रक्तवात, और दाह को दूर कर करने वाला है ।

इसका छिलटा कृमिनाशक और विरेचक है । इसके पत्ते संकोचक व पौष्टिक हैं । इसका काढ़ा गलग्रन्थियों के लिये उपयोगी माना जाता है और कृमिनाशक है । गठिया की बीमारी में इसका फल धातु परिवर्त्तक होता है । यूरोप के अन्दर इस के छिलटे और पत्ते रेचक, धातु परिवर्तक और शरीर की क्रियाओं को दुरुस्त करने वाले माने जाते हैं । इसके अतिरिक्त उपदंश, विसर्पिका, खुजली, कंठमाल इत्यादि रोगों में भी यह मुफीद माना जाता है ।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में रूक्ष, प्रकृति को मृदु करने वाला, ओजकारक, अजीर्ण को नष्ट करने वाला तथा मस्तिष्क, हृदय, यकृत और आन्तरिक इन्द्रियों को बल देने वाला है । इसकी भुनी हुई मींगी सर्दी से होने वाली खाँसी में लाभदायक है । यह गरम प्रकृति वालों को हानिकारक है ।

प्रतिनिधि—अखरोट के प्रतिनिधि चिरौंजी और चिलगोजा हैं तथा इसका दर्पनाशक अनार का रस है ।

उपयोग—

अर्दित (मुँह का लकवा)—अर्दित में इसके तेल का मर्दन करके बादी मिटाने वाली औषधियों के क्वाथ का वफारा लेने से बड़ा लाभ होता है।

नारू—नारू में इसकी खली को पानी के साथ पीस कर गरम कर सूजन पर लेप कर पट्टी बाँध कर तपाने से सूजन उतर जाती है। ऐसे १५-२० दिन तक नित्य प्रयोग करने से नारू गल कर नष्ट हो जाता है।

कंठमाला—इसके पत्तों का क्वाथ पीने और उसीसे गाँठ को धोने से कंठमाला मिटती है।

दाद—प्रातः काल हाथ-मुँह धोने से पहिले इसकी गिरी को दाँतों से महीन चाबकर लेप करने से दाद मिटता है।

शोथ (सूजन)—पाव भर गोमूत्र में १ से ४ तोले तक अखरोट का तेल मिलाकर पीने से शरीर की सूजन उतरती है।

नासूर—इसकी पीसी हुई गिरी को मोम व मीठे तेल के साथ गलाकर लेप करने से नासूर मिटता है।

अफीम का विष—इसकी गिरी को खिलाने से अफीम और भिलाये के विष के उपद्रव में फायदा होता है।

कृमि रोग—इसकी छाल का क्वाथ पिलाने से आँतों के कीड़े मरते हैं।

विरेचन—इसकी गिरी से जो तेल खींचा जाता है वह १ औंस से लगाकर २ औंस तक देने से मृदु विरेचन होता है।

तेल निकालने की रीतियाँ—(१) इसकी गिरी को महीन कूट गाढ़े कपड़े की थैली में भर यंत्र में दबाने से तेल निकलता है। यह तेल सफेद, पतला और स्वादिष्ट होता है। इसमें जलाने व फफोला उठाने की शक्ति होती है। यह तेल ज्यों-ज्यों पुराना होता है त्यों-त्यों फफोला उठाने की शक्ति बढ़ती जाती है।

(२) जितनी गिरी में से तेल निकालना हो उसेमें से $\frac{3}{4}$ को पहिले कोल्हू में डालकर पैरना चाहिये। जब वह महीन हो जाती है, तब शेष गिरी भी उसमें डाल दें और उसके बाद एक सेर भर मिसरी के टुकड़े डाल दें जिससे खली तेल को छोड़ देगी। इस तेल को छानकर काँच या चीनी के बर्तन में भर देना चाहिये।

अगस्तिया

नाम—

संस्कृत—अगस्त्य, हिन्दी—अगस्तिया, गुजराती—अगस्थियो, बंगला—बक, मराठी—अगस्ता, कनाड़ी—अगसेयमरन्, चोगची, तामील—अक्कम, अगंती, तेलंगी—अविसी, लेटिन—Agati Grandi-flora (अगटी ग्रांडी फ्लोरा)

वर्णन—

इस वृक्ष की उँचाई २० से ३० फीट तक होती है। इसकी छाल चिकनी और हलके भूरे रंग की होती है। लकड़ी सफेद और कोमल होती है। पत्ते इमली के पत्तों के समान पर, आकार में उनसे कुछ बड़े इंच डेढ़ इंच लंबे किंचित अंडाकार होते हैं। फूल तिरछे, लाल या सफेद होते हैं। फलियाँ १०-१२ इंच लम्बी, तिहाई इंच चौड़ी, और चपटी होती है। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक का फूल सफेद होता है और दूसरी का लाल। इसकी फलियों, फूल और पत्तों का शाक बनाया जाता है।

गुण दोष—

आयुर्वैदिक मत—भावप्रकाश के मतानुसार अगस्तिया शीतल, रूखा, बात-कारक, कडुआ तथा शीतवीर्य है और पित्त, कफ, और चौथे दिन आने वाले बुखार तथा जुकाम को नष्ट करने वाला है।

इसके फूल शीतल, चातुर्थिक ज्वर और रतोंधे को दूर करने वाले, कड़वे, कसैले, पचने में चरपरे तथा पीनसरोग, कफ, पित्त और वात को नाश करनेवाले हैं। (निघंटु-रत्नाकर)

इसके पत्ते चरपरे, कड़वे, भारी, मधुर, किंचित गरम, स्वच्छ तथा कृमि, कफ, विष और रक्तपित्त को हरने वाले हैं। इसकी फली हलकी, दस्तावर, बुद्धिदायक रुचिकारक, पचने में मधुर, कड़वी स्मरण-शक्ति-वर्द्धक, तथा त्रिदोष, शूल, कफ, पांडुरोग, और विष, शोष और गुल्मनाशक है।

यूनानी मत—यूनानी ग्रन्थकार इसको दूसरे दर्जे में ठण्डा और रुक्ष मानते हैं। मीर महमद हुसैन के कथनानुसार इसके पत्तों का रस निकालकर २-३ बूँद नाक में टपकाने से छींक आकर तथा नाक बहकर सिर दर्द व सिर का भारीपन दूर होता है।

उपयोग—

अपस्मार, (मृगी)—अगस्तिया के पत्तों को काली मिरच के साथ गोमूत्र में बारीक पीसकर मृगी के रोगी को सुँघाने से लाभ होता है।

वातरक्त—अगस्तिया के फूल को चूर्णकर उसको भैंस के दूध में मिलाकर दही जमाना चाहिये। इस दही से निकाले हुए मक्खन से वात-रक्त आराम होता है।

चेचक—चेचक की प्रथमावस्था में इसकी छाल का हिम बनाकर देने से लाभ होता है।

चोट—कहीं पर भी चोट लगने से या कुचल जाने से इसके पत्ते की पुल्टिस बनाकर बाँधने से लाभ होता है।

नेत्र की कमजोरी—इसके फूलों का रस निचोड़ कर आँखों में डालने से दृष्टि की कमजोरी और धुंधलेपन में फायदा होता है।

श्वेतप्रदर—अगस्त की ताज़ी छाल को कूटकर उसका रस निकाल कर उसमें कपड़े को तर कर बत्ती बनाकर योनि-मार्ग में रखने से श्वेत प्रदर में लाभ होता है।

आधा शीशी पर—जिस तरफ के कपाल में दर्द होता हो उसकी दूसरी ओर की नाक में अगस्त के फूलों या पत्तों का रस निकाल कर टपकाना चाहिये।

चित्त विभ्रम—अगस्त के पत्तों के रस में सोंठ, पीपर और गुड़ को मिलाकर सूँघने से चित्त विभ्रम में फायदा होता है।

सूजन—लाल अगस्त्य और धतूरे की जड़ को साथ-साथ गरम पानी में पीसकर लेप करना चाहिये।

चातुर्थिक ज्वर—इसके पत्तों का या फूलों का रस सुँघाने से चातुर्थिक ज्वर और बँधे हुए जुकाम में लाभ पहुँचता है।

गठिया—लाल फूल के अगस्तिया की जड़ को पानी में पीस कर गरम करके लेप करने से गठिया की सूजन उतरती है।

रतौंधी—इसके फूलों का साग खाने से रतौंधी मिटती है।

अगमकी

नाम

संस्कृत—अहिलेयखान, हिन्दी—अगमकी, बिलारी, बम्बई—चिराती, वर्मा—सतखोवा, कुमाऊँ—बिलारी, गुवाल ककड़ी; मुण्डारि-जयपुटुस, सिन्ध—बेलारी, चिराती; तामील—मुसिमुसि केई, तैलगू—गोती बुरामू, लैटिन- Mukia Scabrella, Melothria Maderaspatana.

विवरण—

यह एक प्रकार की वर्षोपजीवी वनस्पति है। इसकी शाखाएं बाँकी टेढ़ी फैली हुई रहती हैं।। शुरू २ में इसके ऊपर सफ़ेद रुआँ रहता है। इसके आधारभूत तंतु बहुत नाजुक और सीधे रहते हैं। इसके पत्ते भिन्न २ आकार के रहते हैं। ये खण्डयुक्त और कोषयुक्त रहते हैं। इनकी नोक तीखी होती है। इनके ऊपर का डंठल लम्बा और रूएंदार होता है। इसके पुष्प गुच्छेदार होते हैं, जिनमें नर और मादा-दोनों जातियाँ होती हैं। पुष्पों के ऊपर का आवरण रुएंदार होता है। इसका फल मटर के आकार का होता है। यह शुरू २ में कुछ पीलापन लिये हुए हरे रंग का और पकने पर गहरे लाल रंग का होता है। यह गोल और चपटा और चिकना होता है।

इण्डियन मेडिकल प्लाण्टस के रचयिताओं के मतानुसार—इसके बीजों का काढ़ा एक प्रकार की पसीना लाने वाली औषधि है । इसकी जड़ का काढ़ा बादी या कोष्टवायु में बहुत ही मुफीद है । यह दाँतों की पीड़ा में भी उपयोगी है । दंत-पीड़ा दूर करने के लिये इसकी जड़ का चर्वण करना चाहिये । इसके नरम पत्ते व नरम-नरम डालियाँ मृदु विरेचक माने जाते हैं । ये सिर के चक्कर, घूमरि और पित्त में बड़े मुफीद हैं । छोटा नागपुर में मुंडा जाति के लोग इसके बीजों को कुचल करके दर्द के स्थान पर लगाते हैं । इनका खास उपयोग कमर की लचक पर किया जाता है ।

कोमान का मत—यह वनस्पति, अपने कफ-निसारक गुण के कारण उन जीर्ण रोगों की औषधियों का मुख्य अंग रहती है जिनमें कि कफ का मुख्य लक्षण होता है । इसे वायु नलियों के प्रदाह, खाँस व श्वास की बीमारी में कुछ बीमारों पर अजमाया, किन्तु इसका असर बहुत धीमा व असंतोषजनक पाया ।

डाक्टर चोपरा—उनके मतानुसार यह मूत्र निसारक व अग्निप्रवर्धक है ।

अगर

नाम—

संस्कृत—अगुरु, वंशिकं, राजार्हं, कृमिजम्, **हिन्दी**—अगर, **द्राविड़ी**—अहिलकट्टे, **अरबी**—ऊद-हिन्दी, **फ़ारसी**—ऊदखाम, **लैटिन**—(Aquilaria Agallocha) एक्वीलेरिया एजेलोका ।

वर्णन—

अगर के वृक्ष सिलहट, मलाबार, मलयाचल, मनीपूर इत्यादि स्थानों पर होते हैं । इस झाड़ की ऊँचाई साठ से सौ फ़ीट तक और गोलाई ५ से ८ फीट तक होती है । जब यह वृक्ष बीस वर्ष से अधिक आयु का होता है तब इसकी लकड़ी पकने लगती है और उपयोग में लेने योग्य होती है । यह वृक्ष बहुत बड़ा और सर्वदा हरा रहने वाला होता है । इसकी लकड़ी नरम होती है । इसके छिद्रों में राल की तरह कोमल और सुगन्धित पदार्थ रहता है । जो अगर बत्ती बनाने और शरीर पर मलने के काम में भी लिया जाता है ।

प्राचीनकाल के अन्दर भारतवर्ष में अगर द्रव्य की बड़ी महत्ता थी । कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस द्रव्य के व्यापार का बड़ा व्यापक वर्णन किया गया है । सुश्रुत, चरक, इत्यादि ग्रन्थों में भी इसका बहुत वर्णन किया गया है । प्राचीनकाल में यहूदी लोग अगर को अलहोट, ग्रीक और रोमन लोग अगेलोकन और अरब निवासी अवलुखी कहते थे । परन्तु बाद में वे इसका नाम बदल कर ऊद-हिंदी कहने लगे ।

अगर की कई जातियाँ होती हैं। आर्य्य वैद्यक ग्रन्थों में इसकी पाँच जातियों का वर्णन मिलता है। जिनके नाम क्रमशः कृष्णागुरु, काष्ठागुरु, दाहागुरु, स्वाद्वगुरु और मंगलागुरु है। यूनानी हकीम इसकी चार जातियाँ बतलाते हैं। हिन्दी, समन्दरी, कमरी और समण्डली।

इख़तियारत—इ-बादियाई नामक ग्रन्थ के कर्त्ता ने उपर्य्युक्त सभी जातियों से भिन्न एक और जाति का वर्णन किया है। उसकी कीमत सोने के बराबर होती है। अगर की दूसरी जातियों को आग पर रखे बिना सुगन्ध नहीं आती। परंतु उसे थोड़ी देर तक हाथ पर रखने से ही सुगन्ध आने लगती है।

उपरोक्त सब जातियों में कृष्णागुरु जिसे 'ऊदेगरकी' कहते हैं और जो सिलहट से प्राप्त होता है, सर्वोत्तम होता है और वही औषधि के काम में आता है। यह पानी में डालने से डूब जाता है। स्वाद में कड़वा होता है। चबाने में मुलायम होता है और जलाने से सुगन्ध देता है।

गुण दोष—

आयुर्वैदिक मत—चरक के मतानुसार अगर शीत, प्रशमक और खाँसी को नष्ट करने वाला है।

सुश्रुत के मतानुसार यह कांतिवर्द्धक, कफनाशक, कुष्ठ व खुजली को नष्ट करने वाला है। अगर की लकड़ी को जल में औटाकर उस पानी को पीने से ज्वर में लगने वाली प्यास बुझ जाती है। इसके अतिरिक्त मृगी, उन्माद इत्यादि रोगों में भी यह लाभ पहुँचाता है।

राज-निघंटुकार के मतानुसार काला अगर कड़वा, उष्ण, लेप में शीतल, पीने में पित्तनाशक और किसी-किसी के मत से त्रिदोष नाशक है। काष्ठागुरु चरपरी, गरम, लेप में रूखी और कफनाशक है दाहागुरु चरपरी, गरम, केशवर्द्धक, वर्ण को उज्ज्वल करने वाली, केशों के दोष को हरने वाली और निरंतर सुगंधिदायक है। और मंगलागुरु शीतल, गंधवाही और योगवाही है।

निघंटु-रत्नाकर के मतानुसार अगर सुगंधित, गरम, तिक्त, कटु, स्निग्ध, मंगलदायक, रुचिकारी, धूप के योग्य, पित्तजनक, तीक्ष्ण, तथा वात, कफ, कर्णरोग, और कोढ़ का नाश करने वाली है।

भावप्रकाश के मतानुसार अगर गरम, चरपरी, त्वचा को हितकारक, कड़वी, तीक्ष्ण, पित्तजनक हलकी तथा कर्णरोग, नेत्ररोग, शीत, वात और कफनाशक है।

इसकी लकड़ी तीक्ष्ण, सुगंधित, तेलयुक्त, गरम, धातु परिवर्तक, पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, कफ, वात, कर्णरोग और चर्मरोग, कुक्कुर खाँसी (Whooping Cough) और नेत्र की पीड़ा में लाभ कारक है।

यूनानी मत—इसकी प्रकृति दूसरी कक्षा में गरम और तीसरी कक्षा में रुक्ष है। किसी-किसीके मतानुसार दूसरी कक्षा में गरम और रुक्ष है। इसकी लकड़ी सुगंधित और स्वाद में खराब है। यह विरेचक पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, अग्निप्रवर्द्धक, मूत्र निस्सारक, व कामोद्दीपक है। जीर्ण रक्तातिसार में भी यह चीज उपयोगी है। यकृत और आंतों के रोगों को दूर कर मुँह की बदबू को हटाने वाली है। यह वायु-नलियों के प्रदाह, श्वास और वमन में उपयोगी है तथा मस्तिष्क को शक्ति देने वाली है।

अपने हलके सुगंधदायक और अपने स्वाभाविक गरम स्वभाव से यह प्राणवायु, आमाशय, यकृत, हृदय, मस्तिष्क तथा इंद्रियों को बल देता है। इसका चबाना मुँह को सुगंधिदायक है और वायु को नष्ट करता है।

रासायनिक विश्लेषण—

रासायनिक विश्लेषण से मालूम हुआ है कि इसमें एक उड़नशील तेल रहता है जो ईथर में विलय होता है, दूसरी राल रहती है जो अलकोहल में घुलनशील और ईथर में अनघुलनशील होता है।

उपयोग—

त्वचारोग और कांतिवर्द्धन के लिये—अगर का लेप करना चाहिये।

कामोद्दीपन—अगर का चोया पान में लगाकर खाने से अत्यंत कामोत्तेजना होती है। बाजीकरण औषधि में भी यह मिलाकर दिया जाता है।

मन्दाग्नि—मन्दाग्नि और हृदयरोग में इसके चूर्ण को शहद के साथ चटाने से लाभ होता है। इसके प्रतिनिधि दाल चीनी, बालछड़ तथा देवदारु और इसके दर्प-नाशक गुलाब और कपूर है।

———*———

अङ्कोल

नाम—

संस्कृत—अंकोलः, निकोचकः, रेवी, गुप्तस्नेह, हिन्दी—अंकोल, ढेरा, मारवाड़ी—अङ्कोल, गुजराती—अङ्कोल, बंगाली—आंकोड़, तेलंगी—बुडुगू, द्राविड़ी—अङ्कोलम, लेटिन—Alangium Lamarckii, एलेंजियम लमारकि।

वर्णन—

अङ्कोल के झाड़ सारे भारतवर्ष के जंगलों में पैदा होते हैं, जिनकी ऊँचाई २५ से ४० फीट तक की होती है। इसके पेड़ की गोलाई ढ़ाई फीट तक होती है। इसकी शाखाओं का रंग विशेषकर सफेद होता है। इसके पत्ते ३ से ६ इंच तक लम्बे और एक से दो अंगुल तक चौड़े कनेर के पत्तों की तरह होते हैं। वे पतझड़ में गिर जाते हैं और चैत्र, वैसाख में नये आते हैं। पत्तों की गंध उग्र और स्वाद खट्टा और कड़वा होता है। इसके फल कच्ची हालत में नीले, पकते हुए लाल और पक जाने पर जामुन के समान बैंगनी रंग के हो जाते हैं। इन फलों के अन्दर गुठली होती है जिनको मोड़ने से बीज निकलता है। ये बीज नख से कुरेचने पर रस भरे हुए मालूम होते हैं। देशी वैद्य लोग अंकोल के काले और सफेद दो प्रकार के भेद बतलाते हैं। पर डाक्टर मुडिन शरीफ के मतानुसार काली जाति अंकोल की नहीं, प्रत्युत उसीके समान जिसको लेटिन में Alangium Hexa-petalum. एलंजियम हेक्सापेटेलम कहते हैं, उसकी है।

गुण दोष—

आयुर्वैदिक मत—निघण्टुरत्नाकर के मतानुसार अङ्कोल कड़वा, कसेला, पारे को शुद्ध करने वाला, हलका, किंचित चरपरा, दस्तावर, चिकना, तीखा, रूखा, गरम है। इसका रस, वांतिजनक, तथा विषविकार, कफ, वात, शूल,कृमि, सूजन, गृहपीड़ा, आमपित्त, रुधिर विकार, विसर्प, कुत्ते, मूसे और विलाव का विष, कटिशूल, अतिसार और पिशाचपीड़ा को नष्ट करने वाला है। इसके बीज शीतल, धातुवर्द्धक, स्वादिष्ट, भारी, मंदाग्नि करने वाले, रस और पाक में मधुर, बलकारक, सारक, स्निग्ध, वीर्य्यबर्द्धक तथा दाह, वात और पित्त, क्षय, रक्तविकार, कफ, पित्त, और विसर्प को दूर करने वाले हैं।

यूनानी मत—कुछ यूनानी ग्रंथकार इसे पहले दर्जे में और कुछ दूसरे दर्जे में गरम और तर मानते हैं। उनके मतानुसार यह औषधि जिगर को ताकत पहुँचाने वाली,जहर को नाश करनेवाली, वायु के विकार, पेट के दर्द और कृमि को नष्ट करने वाली है। इसके ज्यादा उपयोग से आमाशय निर्बल होकर मंदाग्नि पैदा होती है और सिर में झंझनाहट के साथ दर्द शुरू हो जाना है। इसकी जड़ गरम और चरपरी होती है फल ठंडा, पौष्टिक और शरीर को मोटा करने वाला होता है।

डाक्टर मुडीन शरीफ (Modeen Sheriff) के मतानुसार यह औषधि पचास ग्रेन (२५ रत्ती) की मात्रा में सुरक्षित वमन-कारक सिद्ध हो चुकी है। हलकी मात्रा में यह ज्वर को नाश करने वाली है। इसकी छाल बहुत कड़वी चर्मरोगों में बहुत लाभ पहुँचाने वाली तथा ज्वर निवारक है विशेष करके प्रदाहिक ज्वर को नष्ट करती है। धातु परिवर्तन के लिये इसकी मात्रा २ से ५ ग्रेन तक तथा ज्वर नाश, मूत्रवर्द्धन और उल्टी लाने के लिये इसकी मात्रा ६ से १० ग्रेन तक उपयोग में ली जाती है। उपदंश और कोढ़ की बीमारी में भी यह उपयोग में ली जाती है। भारतवर्ष के वैद्य इसको विष निवारक समझते हैं और जहरीले जंतुओं के काटने पर काम में लेते हैं। चरक, भावप्रकाश के लेखक भावमिश्र और शार्ङ्गधर भी इसको सर्प-विषनाशक मानते हैं। मगर केस और मस्कर के मतानुसार इस औषधि में सर्प-विष को नष्ट करने की शक्ति नहीं है।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इस औषधि में निम्न लिखित द्रव्य पाये जाते हैं।

Alkaloid ·82

Petroleum Ether (B· P· 35· to 70· Perecnt) ·40

Absolute Ether ·66

Absolute Alcohol 4· 0 1

Alcohol (70 Percent) 3·5

इसके पूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण से यह पता लगा है कि इसमें Alkaloid (अलकालाइड) अच्छी तादाद में पाया जाता है। पोटेसियम क्लोरिड (Potesium Chlorid) भी इसमें पाया जाता है। इसमें किसी प्रकार का टेनिन व ग्लूकोसाइड्स (Glucosides) नहीं पाया जाता, इसके

उपचार की उपयोगिता का विश्लेषण करने पर मालूम हुआ कि इसके रस को इन्जेक्शन द्वारा खून में पहुँचाने से यह खून की गति (Blood Pressure) को कम कर देता है, लेकिन वह असर बिल्कुल अस्थायी रहता है। कलकत्ते के स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडिसिन में इसके सम्बन्ध में प्रयोग जारी है।

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि अङ्कोल की जड़ की छाल का आमाशय की पाचन-नलियों पर तथा शरीर की त्वचा (चमड़ी) के ऊपर प्रत्यक्ष असर होता है। दो-तीन रत्ती की मात्रा में इसके चूर्ण को देने से आँतों की ताकत बढ़ती है, दस्त साफ होता है, पित्त का श्राव भली प्रकार होता है, कफ ढीला होता है तथा चमड़ी पर स्निग्धता पैदा होती है। अधिक मात्रा में इसको देने से उल्टी होती है, पेशाब की मात्रा बढ़ती है, फिर भी इस औषधि की गणना आयुर्वेद में वामक औषधियों में नहीं की गई है। इसका कारण यह है कि इसके द्वारा कराई हुई उल्टी से शरीर की रक्त-वाहिनी नलियों में बहुत थकावट और शिथिलता उत्पन्न हो जाती है। आमाशय में दाह भी उत्पन्न हो जाता है और कभी-कभी तो सूजन भी पैदा हो जाती है। इसलिये वामक औषधियों की तरह इसको व्यवहार में नहीं लाना चाहिये। इस औषधि का दूसरा महत्त्वपूर्ण गुण विष को नष्ट करने का है। यद्यपि कैस और मस्कर ने इस औषधि को सर्प-दंशन में निरुपयोगी माना है, पर प्राचीन और नवीन अनुभवों से मालूम होता है कि वैद्य लोग विषनाशक औषधियों में इसका प्रयोग करके सफलता पाते रहे हैं।

दिसम्बर सन् १९२२ के वैद्य-कल्पतरु में अङ्कोल के सम्बन्ध में एक नोट प्रकाशित हुआ था, उसका अनुवाद हम ज्यों-का-त्यों यहाँ उद्धृत करते हैं।

करांची से सेठ एदलजी कावसजी बहेराना एक वनस्पति के सम्बन्ध में निम्नाङ्कित प्रश्न करते हैं।

"इस पत्र के साथ आपके पास एक लकड़ी का टुकड़ा भेजते हैं, जिसे मेरे मित्र एक डाक्टर को किसी पारसी गृहस्थ ने आधा सेर दिया है। उसका नाम या तो वे स्वयं जानते नहीं या बतलाना नहीं चाहते। इस टुकड़े को नींबू के रस में घिसकर गाढ़ा प्रवाही बनाकर आधी छोटी चमच सबेरे और शाम को भोजन के दो घण्टे पूर्व लेने से चाहे जैसे भयङ्कर दमे में लाभ पहुँचाता है, और पाँच सात दिन में आराम जैसा हो जाता है। यह लकड़ी किस वनस्पति की है और उसके क्या गुण-दोष हैं, इसकी गुजराती के प्रसिद्ध ग्रन्थ " वनस्पति-शास्त्र " के लेखक रा० जयकृष्ण भाई से पहचान कराकर अगर आप अपने पत्र में प्रकाशित करेंगे तो बड़ा लाभ होगा।"

"इस वनस्पति का टुकडा जांच के लिए जयकृष्ण भाई के पास भेजा गया और उन्होंने उसकी जाँच कर लिखा की इस टुकड़े की जाँच करने पर यह अङ्कोल का मालूम पड़ा है।" इससे पता चलता है कि इस औषधि में दमे का नाश करने का चमत्कारिक गुण है।

प्रयोग—

दमा—अङ्कोल की जड़ को नीबू के रस में गाढ़ा २ घोटकर आधा २ छोटा चमच सबेरे-शाम भोजन से दो घन्टे पूर्व लेने से भयंकर दमे की बीमारी में भी लाभ पहुँचाता है।

सर्पदंश पर—अंकोल की जड़ को दस तोला लेकर उसे कूटकर दो सेर पानी में उबालना चाहिये। जब डेढ़ पाव पानी शेष रह जाय, तब उतार कर छानकर प्रति पंन्द्रह मिनट में पाँच तोला क्वाथ गाय के गर्म किये हुए पांच तोला घी के साथ मिलाकर पीने से वमन के द्वारा सर्प का जहर निकल जाता है। जहर उतरने के पश्चात भी आठ दिन तक नीम की अंतर छाल का काढ़ा बनाकर उसमें अङ्कोल की जड़ की छाल का १॥ माशा चूर्ण मिलाकर सवेरे-शाम पीने से जहर का सूक्ष्म असर भी नष्ट हो जाता है।

पागल कुत्ते का विष—सुदर्शन चूर्ण डेढ़ माशा, अङ्कोल की जड़की छाल का चूर्ण डेढ़ माशा दोनों को मिलाकर सवेरे-शाम डेढ़ माशे की खुराक में देने से पागल कुत्ते का विष नष्ट होता है। लगातार तीन महीने तक इस औषधि का सेवन करना चाहिये।

चूहे के विष पर—इसकी जड़ की छाल को घिस कर पीने से तथा उसीको घिस कर डङ्क पर लगाने से चूहे का विष और उससे पैदा हुई शरीर की दाह दूर होती है।

ज्वर पर—इसकी जड़ के चूर्ण की ढाई रत्ती से पाँच रत्ती तक की मात्रा देने से पसीना आकर मौसमी ज्वर उतर जाता है।

जलोदर पर—इसी चूर्ण की डेढ़ माशे से तीन माशे तक की मात्रा देने से दस्त आकर अजीर्ण रोग और जलोदर में फायदा होता है।

कुष्ट रोग पर—इसकी जड़ की छाल, जायफल, जावित्री और लौंग प्रत्येक पाँच-पाँच रत्ती लेकर चूर्ण करके देने से कोढ़ का बढ़ना बंद हो जाता है। इसी प्रकार बढ़िया हड़ताल को अंकोल के तेल में घोट कर टिकड़ी बनाकर एक हाँडी में पीपल के झाड़ की राख भर कर उस पर वह टिकड़ी रख कर ऊपर से फिर राख भर कर बारह प्रहर की आँच देने से जो भस्म होती है; वह भस्म कोढ़ के असाध्य दर्दों में भी लाभ पहुँचाती है।

गठिया—इसकी जड़ की छाल का तेल बनाकर मालिश करने से गठिया वात की तीव्र पीड़ा मिटती है।

नासूर पर—इसकी लकड़ी की राख नासूर के अन्दर भरने से नासूर नष्ट हो जाता है।

बवासीर पर—इसकी जड़ की छाल का चूर्ण एक माशा लेकर काली मिर्च के साथ फंकी देने से बवासीर में बहुत लाभ होता है।

फोड़े फुन्सी पर—वर्षाऋतु में बगल के नीचे तथा गलेपर जो प्राणनाशक फोड़े हो जाते हैं। उनमें आरंभ से ही सवेरे के समय यदि इसका एक फल खिला दिया जाय और एक फल का रस निकाल कर फोड़ों पर मल दिया जाय तो तुरंत लाभ पहुँचता है।

चेचक के दाग पर—गेहूँ के आटे में हलदी, अंकोल का तेल और पानी मिलाकर चेहरे पर मालिश करने से चेचक के दाग मिटते हैं तथा चेहरा साफ होता है।

सुजाक—इसके फलों के गूदे और तिल के क्षार को शहद में मिलाकर देने से सुजाक में लाभ होता है।

घाव पर—धार वाले हथियार से अगर चोट लग जाय तो इसके तेल में रूई को भिगोकर उसकी घाव पर पट्टी चढ़ाने से खून आना बंद होता है और घाव जल्दी भर जाता है। जंगल की जड़ी बूटी नामक ग्रंथ के लेखक लिखते हैं कि दूसरे उपचारों से दो-तीन महीने में भी जो घाव आराम नहीं हुए वही इसके उपचार से केवल दस बारह दिन में आराम हुए हैं। ऐसे कई उदाहरण मौजूद हैं।

बनावटें—

प्रमेह नाशक चूर्ण—अंकोल के फूल की सुखाई हुई कलियाँ दो तोला, आँवले दो तोला, हलदी दो तोला, इन तीनों का चूर्ण करके तीन माशे की खुराक में शहद के साथ दोनों टाइम लेने से प्रमेह रोग में लाभ पहुँचता है और मूत्र नाली साफ होती है।

अतिसार नाशक वटी—अंकोल की जड़ की छाल, देवदारु, कालीपाड़ की जड़, कूड़े की छाल धावड़ी के फूल, लोध, अनार के वृक्ष की छाल और राल इन सब चीजों को समान भाग लेकर चूर्ण कर चावलों के धोवन के पानी में खरल करना चाहिये। उसके बाद झड़बेर के समान गोली बनाकर चावलों के धोवन के साथ खिलाने से अतिसार, और खून की दस्तें आराम होती हैं।

अंकोल का तेल निकालने की विधि—तंत्र-ग्रंथों के मतानुसार अंकोल के बीजों का चूर्ण करके उस चूर्ण को तिल के तेल में भिगोकर धूप में रखना चाहिये। जब वह तेल सूख जाय तब उस चूर्ण को दूसरी दफे तेल में तर करके फिर उसको धूप में सुखाना चाहिये! इस प्रकार सात दिन तक वह चूर्ण जितना तेल पिए उतना पिलाकर उस चूर्ण को एक काँसी की थाली पर लपेट कर उस थाली को एक दूसरी काँसी की थाली के उपर औंधी ढाँक कर कड़ाके की धूप में रखने से ऊपर की थाली में से तेल टपक कर नीचे की थाली में इकट्ठा होगा। इस तेल को एक शीशी में भर कर रख लेना चाहिये। इस तेल में अद्भुत रोपणशक्ति रहती है। नहीं भरने वाले गहरे घावों में इस तेल को लगाने से थोड़े समय में घाव भर जाते हैं। अगर सिर की चाँद के बाल उड़ गये हों तो इस तेल का मालिश करने से नये बाल ऊग जाते हैं।

दूसरी विधि—एक चीनी के प्याले के मुँह के उपर कपड़ा कस कर बाँध दें। इस कपड़े के ऊपर अंकोल के बीज की गिरी को कूट कर बिछा दें और उस प्याले पर अङ्कोल का टुकड़ा रखकर कोयले की आँच के ऊपर रखें। इसकी गर्मी से तेल टपक कर प्याले में इकट्ठा होगा जिसे लेकर एक शीशी में भर लें।

अंकोल के तेल का मलहम—उपरोक्त दूसरी विधि से निकाला हुआ अंकोल का तेल ५ तोला और मोम सवा तोला लेकर इन दोनों को हलकी आँच पर गरम करके जब दोनों चीजें एक रस हो जायँ तब उनमें फुलाया हुआ नीला थूथा चार रत्ती डाल कर उतार लेना चाहिये। ठंडा होने पर अच्छी तरह से मिलाकर चौड़े मुँह की शीशी में भर लेना चाहिये। इस मलहम से खुजली, भगंदर, नासूर, इत्यादि कठिन बीमारियाँ आराम होती हैं।

इस तेल की पाँच बूँदें शक्कर डाले हुए गरम दूध में मिलाकर पीने से शरीर बलवान होता है। तथा प्रमेह, निर्बलता, चक्कर आना, वगैरह दर्द दूर होते हैं।

शिवोक्त इन्द्रजाल नामक ग्रन्थ में इस तेल की प्रशंसा करते हुए लिखा हुआ है—

" शव वक्त्रे बिन्दु मात्रं, तत्तैलं निक्षिपेद्यदि ।
एक यामं सजीवः स्यान्नान्यथा शंकरोदितम् " ॥

अर्थात् मुर्दे के मुख में भी अगर एक बूँद अंकोल का तेल डाल दिया जाय तो एक प्रहर के लिये वह संजीवन हो जाता है।

हो सकता है कि उपरोक्त बात में अतिशयोक्ति हो पर यह बात तो इस समय की नवीन शोधों से मालूम हुई है कि अङ्कोल के तेल में विद्युत्शक्ति काफी होती है। संभव है मरणासन्न अवस्था में जब कि प्राणी की ज्ञानशक्ति बिल्कुल लुप्त हो जाती है इस तेल को देने से हेमगर्भ की तरह यह भी क्षणिक चेतनता पैदा करने के लिये शक्ति रखता हो।

———:०:———

अंगूर

नाम—

संस्कृत—द्राक्षा, मधुरसा, स्वादुफला, फलोत्तमा, हिन्दी—अंगूर, गुजराती—द्राख, मराठी—द्राक्ष, तैलंगी—द्राक्षापेडी, गोस्तनीपेड्डु, लेटिन—Vinifera. अंग्रेजी—Grapes.

परिचय—

अंगूर की लता लकड़ियों की टट्टियों पर चलती है। इसके पत्ते गोलाकार पाँच दल वाले हाथ के पंजे की आकृति के होते हैं। इसके फूल सुगन्धित व हरे रंग के होते हैं, बालों के ऊपर फूलों की सींकें लगती हैं और फूल तथा फल गुच्छों में लगते हैं। मचानों के ऊपर इसकी बेलें खूब छा जाती हैं। हिन्दुस्तान से अफगानिस्तान व फारस देश के अंगूर ज्यादा अच्छे होते हैं।

काश्मीर, औरंगाबाद, दौलताबाद, नासिक इत्यादि स्थानों में भी अंगूर पैदा होते हैं, मगर वे सीमाप्रांत के अंगूरों के बराबर मीठे व गुणकारी नहीं होते।

अंगूर की जातियाँ कई प्रकार की होती हैं। उनमें पाँच जातियाँ विशेष कर प्रसिद्ध हैं। इनमें से दो काले रंग की और तीन हरे रंग की होती हैं। काले रंग की एक जाति को हब्शी अंगूर कहते हैं। यह

जामुन के समान गहरे बैगनी रंग का व ज्यादे चमकदार होता है। खाने में बहुत मीठा होता है। दूसरी प्रकार का काला अंगूर साधारण बैगनी रंग का होता है तथा हब्शी अंगूर से कम मीटा व कम गुणकारी होता है। हरे अंगूरों में पिटारी का अंगूर सबसे अधिक बड़ा, लम्बा और अधिक मीठा होता है और हरे अंगूरों में सबसे अच्छा माना जाता है हरे रंग के अंगूर में बेदाना अंगूर बहुत प्रसिद्ध जाति का है जो आकार में सबसे छोटा मगर खाने में सबसे अधिक स्वादिष्ट और सबसे अधिक कोमल होता है। बीज न होने की वजह से यह बेदाना कहलाता है।

पक्के अंगूरों को उनकी लताओं पर ही सुखा कर दाख या मुनक्का बना लेते हैं। काले अंगूर का काला मुनक्का, पिटारी के अंगूर का लाल मुनक्का और बेदाना अंगूर का किसमिस बनता है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार कच्ची दाख स्वल्पगुण वाली, भारी खट्टी और कफ पित्त हारी है। पक्की दाख कुछ दस्तावर, शीतल, नेत्रों को लाभकारी, भारी, पुष्टिकारक, सुस्वादु, स्वर को शुद्ध करने वाली, कसैली, मूत्र व मल को निकालने वाली, वीर्यवर्द्धक, कफकारक, पौष्टिक तथा तृषा, ज्वर, श्वास, वात-रक्त कामला, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, मेद, दाह और शोथ को दूर करने वाली है। काली दाख अथवा गोस्तनी, वीर्यवर्द्धक भारी और कफपित्त को नाश करनेवाली है। छोटी दाख अर्थात् किसमिस, मधुर, शीतल, वीर्य वर्द्धक रुचिप्रद, खट्टी तथा श्वास, खाँसी, ज्वर, हृदय की पीड़ा, रक्त-पित्त, क्षत, क्षय, स्वरभेद, तृषा, वातपित्त और मुख के कड़वेपन को दूर करती है।

अंगूर के ताजे फल रुधिर को पतला करने वाले छाती के रोगों में लाभ पहुँचाने वाले बहुत जल्दी पचने वाले रक्तशोधक तथा खून बढ़ाने वाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी हकीम इसको दूसरे दर्जे में गर्म व तर मानते हैं। कच्चे अंगूर को पहले दर्जे में ठण्डा और दूसरे दर्जे में रुक्ष मानते हैं। यह स्निग्ध आमाशय व प्लीहा को नुकसान पहुँचाने वाला तथा वायुजनक है। इसके पत्ते बवासीर में उपयोगी हैं। इनके रस से सिर दर्द, उपदंश, बवासीर और तिल्ली का दर्द दूर होता है। ये मूत्र निस्सारक, वमन को दबाने वाले, मुँह से गिरने वाले खून को बन्द करने वाले और खुजली को लाभ पहुँचाने वाले हैं। इसकी लकड़ी की राख जोड़ों के दर्द में फायदेमन्द है। इसकी डाली मूत्राशय, अण्डकोष के सूजन व बवासीर के अन्दर लाभ पहुँचाने वाली है। इसका फल कफ को ढीला कर निकालने वाला, स्त्रियों के मासिकधर्म को नियमित करने वाला, खून बढ़ाने वाला, पौष्टिक, वायु नलियों के प्रदाह में लाभ पहुँचाने वाला और कब्जियत दूर करने वाला है। यह खट्टा, मीठा, पाचक, अग्निदीपक तथा फेफड़े, यकृत, मूत्राशय, व जीर्णज्वर की बीमारी में उत्तम है। इसके बीज ठण्डे, कामोद्दीपक और अँतड़ियों को संकोचन करने वाले हैं। इन बीजों की राख सूजन कम करने के लिये लगाई जाती है। इसकी लकड़ी की राख बस्ति की पथरी में गुणकारी और बवासीर की सूजन को दूर करने वाली होती है।

इसके सूखे फल, अर्थात् मुनक्का शान्तिदायक, रेचक, मृदु तथा प्यास, शरीर की गर्मी, कफ और क्षय की बीमारी में लाभकारी है। इसकी छोटी-छोटी शाखाओं का रस चर्मरोग की उत्तम दवा है। यूरोप के अन्दर आँख के दर्द में भी यह काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह शान्तिदायक, रेचक और अग्निदीपक है। यह कमजोरी को दूर करने वाला और क्षयरोग में लाभकारी है। बिच्छू के डंक में भी यह लाभ पहुँचाता है। इसके कच्चे फल में आक्सेलिक एसिड नामक एक पदार्थ पाया जाता है।

फलों के अन्दर अंगूर सबसे उत्तम व निर्दोष फल है। औषधि की अपेक्षा भी पथ्य के अन्दर यह बहुत अधिक काम में आता है। यह सभी प्रकृतियों के मनुष्यों के अनुकूल होता है। क्या निरोग, क्या रोगी, क्या निर्बल, क्या बलवान, क्या बालक, क्या वृद्ध—सबके लिये यह उपयोगी है। निरोग मनुष्यों के लिये यह उत्तम-पौष्टिक खाद्य है और रोगी के लिये अत्यन्त बलवर्द्धक पथ्य है। जिन बड़े-बड़े भयङ्कर व जटिल रोगों में किसी प्रकार का कोई खाने-पीने का पदार्थ नहीं दिया जाता, उनमें भी अङ्गूर या दाख दी जा सकती है।

हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से इस फल का उपयोग होता आ रहा है। चरक, सुश्रुत, वागभट्ट, चक्रदत्त, भावप्रकाश इत्यादि प्रामाणिक ग्रन्थों में इस फल की काफी प्रशंसा की गई है।

उपयोग—

चर्म रोग—वसन्तऋतु के अन्दर अंगूर की डालों को काटने से एक प्रकार का मद निकलता है। उसको त्वचा के रोगों पर लगाने से बहुत लाभ होता है।

कुत्ते का जहर—इसकी लकड़ी की भस्म को सिरके में मिलाकर लगाने से कुत्ते के ज़हर में लाभ होता है।

पथरी—इसकी लकड़ी की भस्म ६ माशे गोखरू के रस में कुछ दिन पिलाने से पथरी में लाभ होता है। इसके पंचांग से निकाला हुआ क्षार भी दो से चार रत्ती तक की मात्रा में देने से पथरी को भेदन करता है।

अण्ड वृद्धि—इसके पत्ते पर घी चुपड़ करके आग पर खूब गरम करके पोतों पर बाँधने से सूजन कम होती है।

तृषा—पित्तज्वर और उसकी तृषा को मिटाने के लिये अंगूर का शर्बत पिलाना चाहिये।

उदावृत व मूत्रावरोध—द्राक्ष का काढ़ा पिलाने से रुका हुआ पेशाब खुल कर आता है व उदावृत में लाभ पहुँचता है।

मूत्र-कृच्छ्र—मुनक्का को बासी जल में चटनी की तरह पीसकर जल के साथ लेने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ पहुँचता है।

बनावटें—

अंगूर का शर्बत—ताजे पके अंगूर का स्वरस १ सेर, जल १॥ सेर, शुद्ध चीनी २ सेर। सबसे पहले जल में चीनी को डालकर आग पर चढ़ावें। जब उबाल आने लगे तब अंगूर का रस उसमें डाल दें। उसके पश्चात एक तार व डेढ़ तार की चासनी आने पर उसको उतार लें। यह शर्बत तृषा, शरीर की गर्मी, खाँसी, स्वरभंग, राजयक्ष्मा, रक्तविकार, पित्त सम्बन्धी मंदाग्नि, मूत्रावरोध इत्यादि अनेक रोगों में लाभ पहुँचाता है।

द्राक्षासव—मुनक्का १०० पल, मिश्री ४०० पल, बेर की जड़ ५० पल, धाय के फूल २५ पल, सुपारी १० पल, लौंग १० पल, जावित्री १० पल, जायफल १० पल, तज, इलायची, तेज पान ४० पल, सोंठ, मिरच, पीपल ३० पल, नागकेशर १० पल, मस्तगी १० पल, केसर १० पल, अकरकरा १० पल, कूट १० पल इन सब औषधियों को अधकचरी करके कुल वजन से चौगुने पानी में मिट्टी के बर्तन के अन्दर डालकर जमीन में गाड़ दें। १४ दिन बाद वहाँ से निकाल कर इन सबका भभके से अर्क खींच ले, उस अर्क में केशर, कस्तूरी मिलाकर बोतलों में भर कर रख देवे। यह आसव बलानुसार एक से चार पल तक दिन में तीन बार पीने से बल, कान्ति, कामशक्ति और जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। (योग चिन्तामणि)

द्राक्षारिष्ट—मुनक्का ५० पल लेकर उसको दो द्रोण जल में औटा ले, जब चौथाई जल रह जाय तब उसमें दो सौ पल गुड़ तथा तज, तेजपात, इलायची, नागकेशर, प्रियंगु, मिरच, पीपर, वायविडंग, इन सबका एक-एक पल चूर्ण डालकर पकावे, पकाते समय बार-बार हिलाते रहना चाहिये। पकने पर उतार कर छानकर बोतलों में भर लें। यह द्राक्षारिष्ट क्षय, खाँसी, उरःक्षत, मन्दाग्नि में अत्यन्त लाभदायक और बल-वर्द्धक है।



अंगूर-शेफ़ा

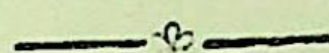
नाम—

हिन्दी—अङ्गूर शेफा, लुकमना, साग अङ्गूर, पंजाबी—सूचि, अरबी—उस्तरंग, इनहातथौलीह, बङ्गाली—येब्रुज, बम्बई—गिरबूटी, लैटिन-Atropa Belladonna.

वर्णन—

यह एक सीधा, नरम पत्ती वाला वृक्ष है, जो खास करके पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से शिमला तक ६००० से लेकर ११००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसके फूल हलके बैंगनी रंग के होते हैं, फूलों की किनारें पीली और हरी होती हैं। इसके फल गोल और जहरीले होते हैं।

इसकी जड़ और पत्ते नींद लाने वाले, मूत्र निस्सारक, शान्तिदायक और आँख की पुतली को बढ़ाने वाले होते हैं। ज्वर के साथ शूल होने की बीमारी में यह एक उत्तम औषधि है। खाँसी, कुक्कुर खाँसी और रात में पसीना आने की बिमारी में भी यह लाभदायक है। इसका लेप करने से ग्रन्थि (गठान) में लाभ पहुँचाता है और वह बिखर जाती है। इसका फल बहुत जहरीला होता है और उदर सम्बन्धी रोगों में वह दूध, पानी और शहद के साथ वमन कराने के लिए दिया जाता है।



अञ्जन

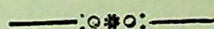
नाम —

हिन्दी—अञ्जन, नैपाली—कङ्गु, तुहसी, अफगानिस्तान—वनरिंश, सीमान्त—अङ्गन, अङ्गु, दखुरी, पंजाब—अङ्गु, देमर, हम, शुन, सूम, लैटिन—Freximus Feloribunda.

वर्णन—

यह एक बड़ा वृक्ष होता है। इसके पत्ते कँगूरेदार और तीखे रहते हैं। इसके फूल छोटे और सफेद होते हैं, इसके फल में एक बीज रहता है और उसके आस-पास गिरी रहती है यह हिमालय में काश्मीर से भूटान तक और खासिया पहाड़ियों पर होता है।

इसके वृक्ष के तने में से एक प्रकार का मधुर और ठोस रस निकाला जाता है। इस रस को इसके मधुर और हलके विरेचक गुणों के कारण उपयोग में लिया जाता है।



अञ्जनी

नाम—

संस्कृत—अञ्जनवृक्ष, गुजराती—अञ्जन, मराठी—अञ्जनी, बम्बई—अञ्जन, करपा, कुरपा, कनाड़ी—अलामारु, अल्ली, अरचेटि, तैलगू—अल्लि, मिदाल्लि, पेदाल्ली, तामील—अल्लि, अञ्जनी, कासा, अंग्रेजी—Iron Wood Tree (आयर्न उड ट्री) लैटिन-(Memecylon Edule)

पहिचान—

इसके पत्ते गोलाकार होते हैं। उनके आगे कुछ नोक निकली हुई होती है। इसके पत्तों का रङ्ग ऊपर से गहरा हरा और नीचे से फीका होता है। इसके फूल छत्री की तरह होते हैं। इसका फल गोल

होता है। फूल का रंग बैंगनी होता है। इसमें एक और कभी-कभी दो बीज निकलते हैं। यह भारत के पश्चिमी समुद्र के किनारों पर तथा, उड़ीसा, आसाम, सिलहट, सिलोन और मलायाद्वीप समूह में पैदा होता है। भारतवर्ष और लङ्का में इसके पत्ते रङ्ग के लिए काम में आते हैं। मद्रास में चटाई बनाने वाले हड़, पतङ्ग और मजीठ के साथ इसे विशेष रूप से रंगने के उपयोग में लेते हैं। लाल रङ्ग पैदा करने में वे इसे फिटकिरी से उत्तम मानते हैं।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत के अनुसार इसके पत्ते ठण्डे और सङ्कोचक हैं। इनका ठण्डा क्वाथ लोशन के रूप में नेत्रों की बीमारी में काम में लिया जाता है। श्वेत प्रदर और सुजाक में भीतरी उपचार के लिए ये काम में लिए जाते हैं। इनको खरल में कूट कर पानी में उबाल कर इनका सत निकाला जाता है। यह सत्व दक्षिण में सुजाक के लिए मुफीद माना जाता है।

कोंकण में इसकी छाल, नारियल का गूदा, अजवायन और कालीमिर्च, बराबर २ मात्रा में लेकर पीसते हैं, फिर कपड़े में पोटली बनाकर उससे चोट आई हुई जगह पर सेंक करते हैं।

इसकी जड़ का काढ़ा अत्यधिक रक्तस्राव पर मुफीद माना जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते नेत्रशूल रोग में लाभकारी है व इसकी जड़ सुजाक तथा अत्यधिक रक्तस्राव में लाभदायक है।

सन्याल और घोष के मतानुसार इसके पत्तों का शीत कषाय नेत्रशूल रोग में आँजने से लाभ होता है। इसके पत्ते भारत और सिलोन में रंगने के काम में लिये जाते हैं। सुजाक रोग के अन्दर इसके पत्ते भीतरी उपचार के काम में आते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

प्रोफ़ेसर, ड्रेजन डार्फ़ के मतानुसार इस औषधि में पीत ग्लुकोसाइड, राल, गोंद, क्लोरोफ़ाइल और रङ्गीन पदार्थ कहते हैं।

उपयोग—

श्वेत प्रदर—इसके पत्तों को पीसकर पानी में छान कर पिलाने से श्वेत प्रदर में लाभ होता है।

नेत्ररोग—इस की फ़ांट से आंखें धोने से नेत्ररोग में लाभ पहुँचता है।

सूजन—इसकी छाल, नारियल की गिरी, अजवायन, जङ्गली हलदी और काली मिरच बराबर ले पीस, गर्म कर लेप करने से तथा इनको औटाकर बफ़ारा देने से सूजन और पीड़ा मिटती है।

सुजाक—इसके पत्रों का फ़ांट पिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

———

अगिनघास

नाम—

संस्कृत—भूतृण, रोहिष, हिन्दी—गंधतृण, अगिन घास, अगिया घास, बंगाली—गंध-बेन, गुजराती—लिलीचा, तेलगू—छिपगादि, फ़ारसी—छेइकाश्मीरी, लेटिन—Andropogan Citratus.

वर्णन—

यह एक प्रकार का बहु वर्ष जीवी वृक्ष है जिसकी शाखाएँ कई पत्ते वाली होती हैं। जब पत्ते झड़ जाते हैं, तब शाखाएँ बिना पत्ते की रहती हैं। इसके पत्ते नुकीले, हरे और खुरदरे होते हैं। यह वृक्ष भारतवर्ष में सब दूर पैदा होता है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह औषधि तिक्त, कटु, गरम, विरेचक, भूख बढ़ाने वाली बाधा निवारक, कृमिनाशक, और कामेच्छा को नष्ट करने वाली है। यह बच्चों की खाँसी में लाभदायक है। कोढ़ और अपस्मार की व्याधि में लाभ पहुँचाती है। वात, कुष्ट और आँतों सम्बधी बीमारियों में भी यह लाभदायक है।

हैजे की बीमारी में भी यह लाभदायक सिद्ध हो चुकी है। यह सिर्फ हैजे की वमन को ही नहीं रोकती, प्रत्युत उसके सब उपद्रवों में फायदा पहुँचाती है। गठिया की बीमारी में इसका लेप बहुत फायदेमंद है। स्नायुशूल, मोच और अन्य कष्टप्रद तकलीफों मे भी यह लाभदायक है। इसका बफारा ज्वर को दूर करने के लिये उत्तम है। (इंडियन मेडिकल प्लांट्स)

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में रुक्ष है। यह त्वचा (चमडी) को हानि पहुँचाने वाली और खुजली उत्पन्न करने वाली है। इसके स्वरस में ४० दिनों तक गंधक को भिगोकर धूप में सुखाकर उस गंधक को २ रत्ती की मात्रा में पान में रख कर खाने से बहुत भूख लगती है। इसके स्वरस में फूँकी हुई बंग की भस्म श्वास और खाँसी में बहुत लाभ पहुँचाती है।

अग्नि-यून

नाम—

हिन्दी—अग्नियून, बकार, बकर्च, बसोता, जैटेला, कुमायू—अग्निऊ, नैपाल—गिनेरी, पंजाब—गनहिला, गियान, बंकार, तैलगू—नेली, लैटिन—Premna latifolia (प्रेम्ना लैटिफ़ोलिया)

वर्णन—

यह एक प्रकार का झाड़ीनुमा पौधा है। इसके पत्ते गोलाकार होते हैं। यह बंगाल, खासिया पर्वत, भूटान, कर्नाटक, त्रिनावेली इत्यादि स्थानों पर पाया जाता है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक और यूनानी ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। इण्डियन मेडिकल प्लॉण्ट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसके पत्ते मूत्र निस्सारक हैं। जलोदर रोग में ये भीतरी और बाहरी दोनों उपचारों में उपयोगी हैं। इसके पत्ते १० ड्राम और धनिया २ ड्राम, दस औंस उबलते हुए पानी में डालकर १० मिनिट तक रखे जायँ, बाद में इसे छानकर तीव्र जलोदर रोग में देने से लाभ पहुँचता है।

इसके बक्कल का दूध अर्बुद और सूजन पर लगाने से लाभ होता है। पशुओं के उदरशूल में भी इसका रस काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके पत्ते मूत्र निस्सारक हैं और ये जलोदर रोग में बाह्य उपचार की तरह प्रयोग में आते हैं।

अजमोद

नाम

संस्कृत—अजमोदा, बस्तमोदा, मर्कटी, कारवी, **हिन्दी**—अजमोद, **बंगाली**—रान्धुनी, **फारसी**—करफ्स, **अरबी**—बज्रुलकरफ्स, **लैटिन**—Apium Graveolens (एपियम ग्रेवियोलेन्स) Carum Roxburghianum (केरम राक्स बर्गिनम्)

वर्णन—

अजमोद के पौधे एक से तीन फुट तक लम्बे होते हैं। इसके पत्ते अनेक भागों में विभक्त रहते हैं। प्रत्येक भाग अनीदार, कंगूरेदार और कटे हुए किनारे वाले होते हैं। यह जाति अजवायन का ही एक भेद है। इसके झाड़ भी अजवायन के झाड़ की ही तरह होते हैं। इसके बीज शीतकाल के प्रारम्भ में बोये जाते हैं। इसकी शाखाओं पर बड़े-बड़े छत्ते लगते हैं। उन छत्तों में सफेद रंग के छोटे-छोटे फूल निकलते हैं। फूल खिलने पर उनमें दाने पैदा हो जाते हैं। उन्हींको अजमोद कहते हैं।

कई वैद्य और अत्तार जङ्गली अजवायन को ही अजमोद मान कर भ्रम में पड़ जाते हैं, एक दो निघण्टुकारों ने भी इसी भ्रम में पड़कर अजमोद का लैटिन नाम (Sesili Indicum) लिखमारा है, मगर यह नाम असल में जङ्गली अजवायन का है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अजमोद कड़वी, चरपरी, अग्निदीपक, गरम, उष्णवीर्य्य, दाहकारी, हृदय को हितकारी, वीर्यवर्द्धक, हलकी, कफ-वात के रोगों को दूर करने वाली, आँतों को सिकोड़ने

वाली तथा वायु नलियों के प्रदाह, वमन, कुक्कुर खाँसी, जलोदर, गुदाशय की पीड़ा, कृमि, वमन, हिचकी, इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचाने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी चिकित्सा के मतानुसार यह पहले दर्जे में गर्म और दूसरे दर्जे में रुक्ष है। यह गर्भवती तथा दूध पिलाने वाली स्त्रियों और मृगी के रोगियों के लिये बहुत हानिकारक है।

इसके बीज गरम और तेज होते हैं। यह रेचक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, क्षुधा को तेज करने वाली, कृमिनाशक और कामोद्दीपक है। यह एक प्रकार की गर्भ स्रावक औषधि है, इसलिए गर्भवती स्त्रियों के लिए हानिकर है। यह आमाशय में गरमी पैदा करती है और उसमें एक प्रकार की भाफ़ पैदा करती है। यह भाफ़ जब मस्तक में पहुँचता है तब घनीभूत होकर वायु बन जाता है। इसी से मृगी रोग को उत्तेजना मिलती है, इसलिए मृगी रोग वालों के लिए यह हानिकारक कहा गया है। यकृत, प्लीहा और हृदय को यह बहुत लाभ पहुँचाती है। रजः रोध, (नष्टार्तव) मूत्र सम्बन्धी बीमारियाँ, ज्वर, गठिया और सीने के दर्द में भी यह लाभकारी है। पथरी के रोग में भी यह बड़ा लाभ पहुँचाती है। यह पथरी के टुकड़े २ कर मूत्रावरोध के कष्ट को मिटा देती है।

इसकी जड़, इसके बीज की अपेक्षा बलवान, सब प्रकार के कफ सम्बन्धी रोगों तथा जलोदर में लाभ पहुँचाने वाली तथा फेफड़े के लिए हानिकर है। इसके सिवाय यह (जड़) रसादिक विकारों को दूर करने वाली, मूत्र निस्सारक और सर्वाङ्गीण सूजन में लाभ पहुँचाने वाली है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, मूत्र निस्सारक और ऋतुस्राव नियामक है। इसके तैल और अर्क में ग्लुकोसाइड नामक पदार्थ पाया जाता है।

डाक्टर वीडो के मतानुसार यह औषधी बदहजमी और दस्त की बीमारी में अत्यन्त उपयोगी है। खराब स्वाद वाली दवा को अजमोद के पानी के साथ देने से उलटी आने की शङ्का नहीं रहती। यह अत्यधिक लार पैदा करने वाली है। इससे पाचक रस अधिक उत्पन्न होते हैं। उपरोक्त विवेचन से पता चलता है कि यह औषधि पाचक-नालियों और शरीर की रस क्रिया पर अपना सीधा असर दिखाती है और इसीलिए पेट से सम्बन्ध रखने वाली बीमारियों को दूर करने वाली औषधियों में यह अपना प्रधान स्थान रखती है।

उपयोग—

पेट का दर्द—काले नमक के साथ अजमोद की फंकी देने से पेट का दर्द दूर होता है तथा इसके चूर्ण की गुड़ के साथ गोली बनाकर देने से पेट का आफ़रा मिटता है।

पसली का दर्द—पसली के दर्द और हरएक अङ्ग में बादी की पीड़ा मिटाने के लिए अजमोद को गर्म कर बिस्तरे पर बिछा देना चाहिए और उसपर रोगी को सुलाकर हलका कपड़ा ओढ़ा देना चाहिए।

सूखी खाँसी—अजमोद को पान में रखकर उसका रस चूसने से सूखी खाँसी में लाभ पहुँचता है।

हिचकी—जिनको भोजन करने के पश्चात् हिचकी चलती हो, उनको चाहिये कि भोजन के पश्चात् अजमोद के दाने मुँह में डाल कर उनका रस उतारें।

मूत्राशय की बादी—अजमोद और नमक को एक पोटली में बाँध कर गरम कर नलों पर सेक करने से मूत्राशय की बादी मिटती है।

दन्त पीड़ा—अजमोद को जलाकर उसकी धूनी देने से दाँतों की पीड़ा मिटती है।

वात पीड़ा—अजमोद को तेल में औटाकर उसकी मालिश करने से बादी के दर्द मिटते हैं।

वमन—अजमोद और लौंग के सिरे (टोपी) को पीसकर शहद के साथ चटाने से वमन बन्द होती है।

कृमिरोग—बच्चों के गुदा में पड़ने वाले सफेद कृमि (चुन्ने) अजमोद की धूनी देने से मर जाते हैं।

पथरी—तीन माशे अजमोद का चूर्ण एक तोले मूली के पत्तों के रस के साथ पिलाते रहने से पथरी गल जाती है।

बनावटें—

अतिसार नाशक चूर्ण—अजमोद, मोचरस, धाय के फूल और अदरख इन चारों वस्तुओं को कूट कर इनका चूर्ण बनाकर बोतल में भर लेना चाहिये। इस चूर्ण को ३ माशे से ६ माशे तक गाय के दही के साथ देने से प्रवाही अतिसार बन्द होता है।

वात नाशक चूर्ण—अजमोद, पींपर, रासना, गिलोय, सूँठ, असगन्ध, शतावरी, और सौंफ इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण को गाय के घी के साथ देने से सब स्थानों के वात विकार नष्ट होते हैं।

अजमोदादि वटी—अजमोद, पींपर, बायविडंग, बड़ी सौंफ, नागर मोथा, काली मिरच, सेंधा नमक एक-एक तोला, हरड़ ५ तोला, सूंठ १६ तोला वृद्धदारु (विधायरा) १० तोला भारंगी की जड़ ६ तोला इन सब औषधियों को लेकर चूर्ण करके सब वजन से दुगना गुड़ लेकर झड़बेर के समान गोली बनाले। इन गोलियों को गरम पानी के साथ लेने से सब प्रकार की वात व्याधि दूर होती है।

दूसरी अजमोदादि वटी—अजमोद १ सेर, हड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ मुल्तानी, विदारीकन्द, धनियाँ, मोथा, मोचरस, गजपीपल, लौंग, जायफल, पीपर, चित्रक, अनारदाना, भारंगी, कमलगट्टा, कालीमिरच, सफेद जीरा, स्याह जीरा, कुटकी, अजवायन, पीपलामूल, रेणुका, वायविडंग, वच, कायफल, पित्तपापड़ा, विधारा, दन्ती की जड़, कुरदानासार इन सब वस्तुओं को एक-एक तोला लेकर एक सेर पुराने गुड़ के साथ मिलाकर एक-एक तोले के लड्डू बना लें। इनको गर्म पानी के साथ लेने से सब प्रकार के उदर-विकार दूर होते हैं।

अजमोदादि चूर्ण—अजमोद, बायबिडंग, सेंधानिमक, देवदारु, चित्रक, पिपलामूल, सौंफ, पिपर, मिर्च, एक-एक तोला, हरड़ ५ तोला, बिधारा १० तोला, सोंठ १० तोला, इन सबको कूट पीस चूर्ण कर ६ माशे की खुराक में एक तोला पुराने गुड़ के साथ खाकर ऊपर से गरम जल पीने से सूजन, आमवात, संधियों का दर्द, गठिया, कमर का दर्द, पीठ व जाँघ का दर्द तथा सब प्रकार के वायुरोग दूर होते हैं।

अजमोदादि मोदक—अजमोद १२ तोला, चित्रक ११ तोला, हरड़ १० तोला, कूट ६ तोला, पींपर ८ तोला, कालीमिर्च ७ तोला, सोंठ ६ तोला, जीरा ५ तोला, सेंधा नमक ४ तोला, बायबिडंग ३ तोला, बच २ तोला, हींग १ तोला, पुराना गुड़ २ सेर। इन सब औषधियों को कूट,छान, मिलाकर आधी २ छटाँक के लड्डू बना लें, इन लड्डुओं में से सवेरे-शाम एक-एक लड्डू गरम पानी के साथ लेने से सब प्रकार के वातरोग, १८ प्रकार के गोले के रोग, २० प्रकार के प्रमेह तथा हृदयरोग, शूल कुष्ट, गलग्रह, श्वास, संग्रहणी, पाण्डुरोग, अग्नि- मान्द्य, अरुचि इत्यादि नष्ट होते हैं।

अजवायन

नाम—

संस्कृत—यवानी, दीप्यक, हिन्दी—अजवायन, मराठी—ओंवा, गुजराती—अजमो, बंगला—यमानी, लैटिन—Carum Copticum. (केरम कोप्टिकम)

वर्णन—

अजवायन की खेती सारे भारतवर्ष में सब दूर की जाती है। इस वस्तु से सब लोग भली प्रकार परिचित हैं। इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार, अजवायन पाचक, रुचिकारक, तीक्ष्ण, गरम, चरपरी, हलकी, दीपन, कड़वी, पित्तवर्द्धक तथा शूल, वात, कफ, आध्मान, बवासीर, कृमि, वमन, गुल्म और प्लीहा का नाश करने वाली है।

पाचक औषधियों की दृष्टि से इस औषधि ने इतनी प्रसिद्धि पा रक्खी है कि संस्कृत के अन्दर तो इसके लिये यहाँ तक कहा गया है—

"एका यवानी शतमन्न पाचिका"

अर्थात् अकेली अजवायन ही सैकड़ों प्रकार के अन्न को पचाने वाली है। यह कहावत बहुत प्राचीन-

काल से प्रचलित है। कई अंशों में यह कहावत सची भी है। क्योंकि इस एकही वस्तु में चिरायते का कटु पौष्टिक हींग का वायु-नाशक और काली मिर्च का अग्नि दीपन-यह सब गुण समाये हुए हैं। इन्हीं गुणों की वजह से यह औषधि वायु, कफ, पेट का दर्द, वायगोला, अाफरा तथा कृमिरोग को नष्ट करने के लिये बहुत काम में लायी जाती है। हैजे की बीमारी में भी देशी तथा एलोपैथिक चिकित्सकों की तरफ से इस औषधि को प्रधान स्थान दिया गया है। विशेष कर हैजे की प्राथमिक स्थिति में इससे बहुत लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह तीसरे दर्जे में गरम और रुक्ष, तथा गरम प्रकृति वालों को हानिकर है। मखजनूल अदविया के लेखक हकीम मीर महम्मद हुसेन के मतानुसार अजवायन शरीर की वेदना को मिटाने वाला, कामोद्दीपक, कोठे को नरम करने वाला और वायु को नष्ट करने वाला है। इसका शर्बत लकवा और कंपनवायु में लाभ पहुँचाने वाला है। इसके काढ़े से आँख धोने से आँखें साफ होती हैं तथा कानों में डालने से बहरापन मिटता है। छाती के दर्द में भी यह लाभकारी है। यकृत तथा प्लीहा की कठोरता को मिटाकर यह हिचकी, वमन, मिचलाहट, दुर्गंधि, डकार, बदहजमी, मूत्र का रुकना, पथरी इत्यादि बीमारियों में भी लाभ पहुँचाता है।

नींबू के रस में यदि इसे सात बार डुबोकर सुखा लिया जाय तो नपुंसकता के अन्दर लाभ पहुँचता है। इसका शर्बत चौथे दिन आने वाले बुखार में लाभदायक है।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके अन्दर एक प्रकार का सुगन्धियुक्त उड़नशील द्रव्य रहता है, जिसको अजवायन का फूल, अजवायन का सत तथा अंग्रेजी में थायमल (Thymol) कहते हैं। इस द्रव्य की खोज सबके पहिले मिस्टर स्टॉक ने की। उसके पश्चात मि० स्टेन हाउस और मि० हेन्सने परीक्षा करके जंगली पुदीनेके सत (Thymus-Vulgaris) के साथ इसकी समानता दिखलाई है। अजवायन के सत निकालने के अब तो बड़े-बड़े कारखाने खुल गये हैं। जहाँ पर बहुत बड़े परिमाण में यह वस्तु तैयार होती है। एक कारखाना इन्दौर के पास राऊ नामक गांव में भी इसका बना हुआ है।

अजवायन का तेल—अजवायन को पानी में भिगोकर भपके के द्वारा अर्क खींचा जाता है। इस अर्क के ऊपर अजवायन का तेल तिरकर आ जाता है। अजवायन के अर्क को अंग्रेजी में ओमम वाटर (Omum Water) कहते हैं।

उपयोग—

जुकाम व प्रतिश्याय—अजवायन को गरम करके मलमल के कपड़े में पोटली बाँधकर, सुँघाने से छींकें आकर जुकाम व प्रतिश्याय का वेग कम होता है। अजवायन के कपड़छन चूर्ण को सूँघने से भी सिरदर्द नजला और मस्तक के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

अफारा—६ माशे अजवायन में १॥ माशा कालानिमक मिलाकर फंकी देकर गरम पानी पिलाने से अफारा मिटता है। इसी चूर्ण की दोनों टाइम तीन २ माशे की फंकी देने से वायुगोला का नाश होता है और पेट का फूलना बन्द हो जाता है।

मंदाग्नि—अजवायन, कालीमिर्च और सेंधानिमक तीनों चीजों को पीसकर गरम जल के साथ प्रातःकाल फंकी लेने से उदरशूल, पेट का दर्द और मन्दाग्नि मिटती है।

आंतों की वेदना—अजवायन, सेंधानिमक, संचरनिमक, यवक्षार और हड़ इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण करके ५ से १० रत्ती तक की मात्रा में मद्य के साथ देने से अँतड़ियों की वेदना और उदरशूल दूर होता है।

सूखी खाँसी—अजवायन को पान में रखकर चबा-चबा कर पीक उतारने से सूखी खाँसी में लाभ पहुँचता है।

जोड़ों का दर्द—इसके तेल का मर्दन करने से जोड़ों के दर्द में लाभ होता है।

बच्चों की उल्टी—बच्चों की उल्टी और दस्तें मिटाने के लिये इसके चूर्ण को माँ के दूध के साथ देने से लाभ होता है।

चर्म रोग—अजवायन को पानी में गाढ़ा पीसकर दिन में दो बार लेप करने से दाद, खाज, कृमि पड़े हुए घाव तथा अग्नि में जले हुए स्थान में लाभ होता है।

रजो दोष—अजवायन के चूर्ण को तीन माशे की मात्रा में दिन में दो बार गरम दूध में देने से स्त्रियों का रुका हुआ रज खुलकर आने लगता है।

कृमि रोग—इसके चूर्ण की चार माशे की मात्रा छाछ के साथ देने से पेट के कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

नैत्र रोग—अजवायन को जला कर उसका कपड़छन चूर्ण करके जस्त की सलाई से सुर्मे की तरह सात दिन तक आँखों में आँजने से आँखों की फूली कट जाती है। इसी चूर्ण को दाँतों पर मलने से दाँत साफ होते हैं तथा दाँत और मसूड़ों के रोग भी मिट जाते हैं।

बनावटें—

अग्निवर्द्धक चूर्ण—बढ़िया अजवायन ६ तोला, यवक्षार ४ तोला, सेंधानिमक ४ तोला, कालीमिर्च ४ तोला, कालानमक ४ तोला, संचरनमक ४ तोला, पेपीन (अरंड ककड़ी का सत) १ तोला, इन सब औषधियों को कूट, पीसकर एक चीनी की बरनी में डालकर उसमें १ सेर नीबू का रस मिलाकर १ महीने तक दिन में सूर्य्य की धूप में और रात्रि में मकान के अन्दर पड़ा रहने देना चाहिये। इस चूर्ण को ३ माशे से छः माशे तक की खुराक में जल के साथ लेने से पाचन शक्ति तीव्र होती है। कब्जियत मिटकर दस्त साफ होता है तथा अजीर्ण, अम्लपित्त, संग्रहणी इत्यादि रोगों में भी फायदा पहुँचता है।

जीवन-रक्षक-सुधा—पिपरमेंट का सत (पोदीने के फूल) १ तोला, अजवायन का सत १ तोला, देशी कपूर २ तोला, इन तीनों चीजों को लेकर मजबूत बूच वाली शीशी में डालकर बूच लगा देने से थोड़ी देर में सब दवाइयें गलकर पानी हो जाती हैं। मनुष्य शरीर के अन्दर जितनी व्याधियाँ होती हैं उन सब में यह औषधि अस्थायी रूप से अपना प्रभाव अवश्य दिखाती है। सिर का दर्द, डाढ़ का दर्द, पसलियों का दर्द, छाती और कमर का दर्द, संधिवात इत्यादि रोगों में इस दवा की मालिश करने से तुरन्त फायदा मालूम होता है। हैजे के अन्दर तो यह दवा अपना बहुत ही प्रभावशाली असर दिखाती है।

हैजे की बीमारी के प्रारम्भ में इस औषधि की पांच २ बूंदे १-१ बताशे के ऊपर डालकर देने से सैकड़ों हैजे के बीमार बच गये हैं। इसी प्रकार अतिसार (दस्ते लगना) मरोड़ी चलना, पेट दर्द, श्वास, गोला, उल्टी वगैरह बीमारियों में भी इस औषधि को शक्कर के साथ देने से बहुत लाभ पहुँचता है। इसी प्रकार बिच्छू, ततैया, भँवरी, मधुमक्खी इत्यादि जहरी जानवरों के डंक पर भी इस दवा का मालिश करने से बहुत फायदा होता है।

नामर्दी के मरीज़ जिनकी जननेन्द्रिय खराब आदतों से शिथिल और निर्बल हो गई है। वे अगर इस औषधि की दो तीन बूंदे जननेन्द्रिय पर मसल कर ऊपर से नागरवेल का पत्ता बाँध दें तो नामर्दी दूर होकर जननेन्द्रिय बलवान व सतेज हो जाती है। इसी प्रकार दिन में तीनबार इसकी पाँच २ बूंदे शहद के साथ लेने से स्त्रियों के ऋतु सम्बन्धी सब रोग नष्ट हो जाते हैं। गत आठ-दस वर्षों से यह दवा प्रायः सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो चुकी है। इसके विषय में विशेष विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है।

—:०*०:—

अजवायन खुरासानी

नाम—

संस्कृत—पारसीक यमानी, तुरुष्का, मदकारिणी। **हिन्दी**—खुरासानी अजवायन। **गुजराती**—खुरासानी अजमों। **मराठी**—खुरासानी ओंवा। **बंगाली**—खोरासानी यमानी। **तैलंगी**—खुरासानी वामभु। **द्राविड़ी**—कुरोशानी वामम। **अरबी**—तेरालबंज। **फ़ारसी**—तुख्मेबंग। **लैटिन**—Hyoscyamus Niger.

वर्णन—

खुरासानी अजवायन के वृक्ष हिमालय में काश्मीर से गढ़वाल तक ८००० से ११००० फीट की ऊँचाई तक पैदा होते हैं। यह एक क्षुप जाति का वृक्ष होता है। इसका प्रकांड सीधा और पुष्ट रहता

है। इसमें एक प्रकार की तेज सुगन्ध आती है, जो कुछ-कुछ अप्रियसी होती है। इसके पत्ते कटे हुए और कंगूरेदार होते हैं। इसके फूल पीलापन लिये हुए हरे रंग के होते हैं। इनमें कहीं-कहीं बैंगनी रंग की धारियाँ होती हैं।

भारतीय चिकित्सकों ने इस औषधि को अजवायन के समान समझ कर इसका नाम खुरासानी अजवायन या पारसीकयमानी रख दिया, मगर वास्तव में यह औषधि अजवायन के वर्ग की नहीं है, बल्कि उससे बिल्कुल भिन्न बादञ्जान या सोलेनेसीई (Solanaceoe) वर्ग की औषधि है, जिसमें बेलेडोना, धतुरा आदि विषैली दवाएँ सम्मिलित हैं।

यूनानी चिकित्सक मीरमहम्मद हुसेन ने बंज के नाम से इस औषधि का वर्णन किया है। वे इसको सफेद, काली और लाल के भेद से तीन प्रकार की मानते हैं। इनमें सफेद जाति ही सबसे उत्तम मानी जाती है। इसके अतिरिक्त इसका एक भेद और होता है, जिसे कोही-भंग कहते हैं। यह बहुत ज़हरीला होता है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मतानुसार खुरासानी अजवायन अर्थात् पारसीक यमानी के बीज तीखे, कड़वे, गरम, अग्नि को दीप्त करने वाले, आँतों को सिकोड़ने वाले, मादक, भारी, अग्निवर्द्धक तथा अजीर्ण, पेट के कीड़े, आमशूल और कफरोग को नष्ट करने वाले हैं।

यूनानी मत—यूनानी मतानुसार खुरासानी अजवायन (सफेद) दूसरे दर्जे में ठंडी और रुक्ष तथा काली खुरासानी अजवायन, तीसरे दर्जे में ठंडी और रुक्ष है। यह नशा लाने वाली और कंठमाला रोग में नुकसान करने वाली है।

इसके पत्ते कफ निस्सारक हैं। दाँतों के दर्द में ये कुल्ले करने के काम में लिये जाते हैं। इनसे मसूड़ों में खून जाना भी बंद होता है। यकृत की पीड़ा में यह एक उत्तम बाह्य उपचार है। संधिवात की सूजन और छाती की जलन में भी यह लाभ पहुँचाते हैं।

इसके बीज स्वाद में कुछ कड़वे और कामोद्दीपक होते हैं। ये नशीले और नींद लाने वाले होते हैं। आँखों से पानी जाने में, कान के रोगों में, नाक की तकलीफों में, सिरदर्द में व जोड़ों के दर्द में भी ये मुफीद हैं। इनका धुआँ खाज और खुजली में, दाँतों की सड़ान में, खाँसी में, वायु नलियों के प्रदाह में उपयोगी है। यह पेट के शूल को भी नष्ट करता है।

श्वास, कुक्कुर खाँसी इत्यादि रोगों में ये उपशामक औषधि की तरह से काम में लिये जाते हैं। बच्चों की शिकायतों में जहाँ पर अफीम काम में नहीं ली जा सकती, उसके बदले ये काम में लिये जा सकते हैं।

यह औषधि सब प्रकार के नजले में लाभ पहुँचाने वाली, कान की पीड़ा को शान्त करने वाली, कफ खाँसी को मिटाने वाली, कफ के अन्दर खून का आना बन्द करनेवाली तथा रुक्षता पैदा करने वाली है। तिल के तेल में इसको सिद्ध करके मालिश करने से संधिवात, गृध्रसि, कमर के दर्द इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचता है। इस तेल को थोड़ा-सा गरम करके कान में टपकाने से कान की पीड़ा नष्ट होती

है। इसका लेप करने से पुरानी यकृत की पीड़ा और छाती के दर्द में बहुत लाभ पहुँचता है।

इसके बीजों को ब्रांडी में पीस कर इनकी पुल्टीस बाँधने से छातियों की सूजन और अंडवृद्धि में लाभ पहुँचता है, इसके बीजों को घोड़ी के दूध में पीसकर उसकी लुगदी जंगली साँड के चमड़े में बाँध कर पहिनने से स्त्रियों के गर्भ नहीं रहता ऐसा कहा जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि विरेचक, उपशामक, पेट के आफरे को दूर करने वाली तथा निद्राकारक है। यह श्वास की बीमारी में भी लाभ पहुँचाती है।

खुरासानी अजवायन के बीज मुसलमान वैद्यों के द्वारा कई वर्षों से उपयोग में लिये जा रहे हैं। यद्यपि यह वनस्पति हिमालय में पैदा होती है फिर भी प्राचीन हिन्दू आयुर्वेद ग्रन्थों में इसका कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता।

रासायनिक विश्लेषण—

ब्रिटिश फरमाकोपिया में इस औषधि के रासायनिक विश्लेषण में पाये जानेवाले उपक्षार का जो अंक दिया हुआ है, उसकी अपेक्षा कलकत्ते के ट्रॉपिकल मेडिसिन और हायजन्स स्कूल में इस औषधि का विश्लेषण करने पर यह उपक्षारीय तत्व कम पाया गया। ब्रिटिश फरमाकोपिया में जहाँ इस औषधि में .०६५ उपक्षारीय तत्व बतलाये गये हैं, वहाँ यहाँ पर इसमें केवल .०३ उपक्षारीय तत्व पाया गया, इससे मालूम होता है कि यूरोप में पायी जाने वाली खुरासानी अजवायन से देशी खुरासानी अजवायन में उपक्षारीय तत्व कम है।

एलोपैथिक चिकित्सा के अंतर्गत इस औषधि की समानता ऐट्रोपीन और बेलेडोना के साथ की जाती है, पर इसके और उनके प्रभाव में कई महत्व के भेद हैं। जैसेः—

(१) बेलेडोना की अपेक्षा हायोसायमस (खुरासानी अजवायन) से उन्मत्तता तो कम पैदा होती है, पर मस्तिष्क के अन्दर शून्यता लाने का प्रभाव उससे अधिक शीघ्र और अधिक बलवान होता है।

(२) बेलेडोना के सदृश हृदय के ऊपर इसका सबल और उत्तेजक प्रभाव नहीं होता, प्रत्युत अत्यंत निर्बल प्रभाव पड़ता है।

(३) मूत्रेन्द्रिय पर बेलेडोना की अपेक्षा इसका प्रभाव अधिक अवसादक होता है।

इसका उपयोग भिन्न-भिन्न रोगों की कठिन पीड़ा में, मस्तिष्क की उत्तेजना को कम करके नींद लाने के लिये किया जा सकता है। स्त्रियों के हिस्टीरिया रोग तथा प्रसूतिका के पागलपन में तथा वात-वेदनाओं में भी इसको दिया जा सकता है। इसके लिये इसके अर्क की ३० तीस बूंदें, एक-एक घंटे के अन्तर से ढाई-ढाई तोले पानी में मिलाकर देना चाहिये। इसी प्रकार मूत्रेंद्रिय सम्बन्धी चीस, चबक, पथरी इत्यादि रोगों में भी इसका सत्व देने से मूत्रविरेचन होकर शांति मिलती है।

ब्रोंकाइटीज़ की खाँसी को कम करने के लिये भी इसका उपयोग किया जा सकता है। छोटी मात्रा में यह हृदय को बल देने वाला और अवसादक है, मगर अधिक मात्रा में यह उत्तेजक और निर्बलता-जनक है।

इस औषधि के सत्व से एलोपेथिक के अन्दर और भी कई औषधियाँ तैय्यार की जाती हैं जो अर्द्धाङ्ग कंपन, वृद्धावस्था और निर्बलता जन्य कंपन, अनिद्रा, पागलपन, भ्रम, दमा, वात-वेदना, आक्षेप, मृगी इत्यादि रोगों में अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं।

उपयोग—

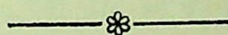
वात व्याधि—गठिया, संधिवात, जोड़ों की सूजन, रक्त पित्त इत्यादि रोगों पर इसका लेप करने से लाभ पहुँचता हैं।

दंत पीड़ा—खुरासानी अजवायन को राल के साथ पीसकर दाँतों की खोखल में रखने से दंतपीड़ा दूर होती है।

पेट का दर्द—इसकी गुड़ में गोली बनाकर देने से पेट की वायु-पीड़ा मिटती है।

पेट के कीड़े—प्रातःकाल के समय थोड़ा गुड़ खिलाकर बासी पीने के साथ इसकी फंकी देने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं।

सत्व निकालने की विधि—खुरासानी अजवायन का पौधा जब फूलने-फलने लगे तब उसका पचांग लेकर पानी से भलीभांति धोकर उसका स्वरस निकाल लें, इस स्वरस को छानकर अग्नि पर औटावें, १०-१५ मिनट औटने के बाद जब उसपर झाग आने लगे तब उसे उतारकर छान लें, उसके पश्चात् चीनी के प्यालों मे उसे १२ घंटे तक पड़ा रहने दें, उसके बाद उसे सावधानी से नितारकर ब्लाटिंग में छान लें और फिर आग पर पकावें, जब गाढ़ा अवलेह की तरह हो जाय तब उतारलें, इस सत्व की (हायोसायमीन) मात्रा ३ से ४ रत्ती तक की है, इसका उपयोग ऊपर लिखा जा चुका है।



अजवायन जंगली

नाम—

संस्कृत—वनयवानी, वनेमनि। **हिन्दी**—अजवायनजंगली, अजगंधिका, वन अजवायन। **बंगाली**—वन जोआन। **मराठी**—किरमानिअजवा। **लैटिन**—Seseli Indicum. (सेसेली इन्डिकम)।

वर्णन—

यह औषधि देहरादून से गोरखपुर तक हिमालय की तराई में तथा आसाम से कारोमण्डल तक और विहार तथा मध्य बंगाल में पाई जाती है। यह एक प्रकार का सीधा और झाड़ीनुमा वर्षजीवी पौधा होता है। इसकी शाखाएँ ४ से १२ इञ्च तक लम्बी, सघन, सीधी और फैली हुई रहती है। पत्ते

प्रायः तीन भागों में विभक्त होते हैं। प्रत्येक भाग कटा हुआ और नोकदार होता है। इसके फूल छत्तेदार, सफेद, अथवा हलके गुलाबी रंग के होते हैं। फल गोल और बारीक, हलके पीले रंग का होता है।

कुछ वैद्य इसीको अजमोद समझकर अजमोद के स्थान पर इसे काम में लेते हैं।

गुण दोष—

जंगली अजवायन के बीज विशेषकर मवेशियों के उपचार में काम आते हैं। यह पेट के आफरे को दूर करने वाला होता है तथा उत्तेजक, शूलनाशक, आँतों को बल देने वाला और पेट के गोल कृमियों को नष्ट करने वाला है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पेट के आफरे को दूर करती है।

डाक्टर मुडीन शरीफ के मतानुसार ये बीज उत्तेजक, कृमिनाशक, पेट के आफरे को दूर करने वाले और अग्निवर्द्धक हैं! इनकी मात्रा १० रत्ती से लेकर ३॥। माशे तक की है। इतनी मात्रा में लेने से यह औषधि आँतों के कीड़ों को मारने में सफल होती है।

एक और दूसरी तरह का बन अजवायन भी होता है, जिसको लैटिन में (Thymus Serpyllum) तथा पंजाबी में 'माशो' या "रांगस्बुर" कहते हैं। यह औषधि भी काश्मीर से कुमाऊँ तक हिमालय के गरम प्रान्तों में पैदा होती है। पंजाब में इसका बीज पेट के कीड़ों को नष्ट करने के लिये उपयोग में लिया जाता है। हकीम लोग आँतों की पीड़ा, दाद, मूत्र की रुकावट, दृष्टि की कमजोरी आदि पर इसका प्रयोग करते हैं, फ्राँस में इसके पचांग का काढ़ा, खुजली और अन्य चर्मरोगों के लिये उपयोग में लिया जाता है।

———:०:———

अजगरी

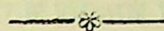
परिचय—

आयुर्वेद में पारे की गोली बाँधने के विषय में जिन ६४ बेलों का वर्णन आया है, उनमें से यह एक है—यह बेल दीखने में अजगर सी नजर आती है व इसके ऊपर अजगर के शरीर के समान चकते होते हैं, इसीसे इसे अजगरी कहते हैं। यह बेल पाँच-छः हाथ लंबी व रसयुक्त होती है। इसके पत्ते कम होते हैं।

उपयोग—

इस बेल को कार्तिक मास की पौर्णिमा के दिन लाकर उसके टुकड़े कर डालना चाहिये, फिर

उन्हें दूध में डालकर उस दूध को औटा कर पीना चाहिये। इसके ऊपर कुछ पथ्य रखना चाहिये। इसके सेवन से शरीर बलवान होता है और कांति बुद्धि तथा आयुष्य बढ़ती है। ऐसा सुश्रुत का मत है। (वनौषधि गुणादर्श)



अंजीर

नाम—

संस्कृत—काकोदुम्बरिका, मंजुल। **हिन्दी**—अंजीर। **गुजराती**—अंजीर, **पंजाबी**—किमरी फ़गवारा। **लेटिन**—Ficus Carica.

वर्णन—

अञ्जीर के झाड़ अरब स्थान, ईरान, टर्की, अफ्रिका तथा भारतवर्ष के बगीचों में होते हैं। यह दो प्रकार का होता है। (१) एक बोया हुआ जिसके फल और पत्ते बड़े होते हैं। (२) दूसरा जंगली जिसके फल और पत्ते इससे छोटे होते हैं। अञ्जीर का वृक्ष ६ से ८ फीट तक ऊँचा होता है। तोड़ने या चीरा देने से इसके हर एक अङ्ग में से दूध निकलता है। इसके पत्ते ऊपर की ओर से अधिक खुरदरे होते हैं। इसके फल का आकार प्रायः गूलर के फल के आकार के समान होता है। कच्चे फल का रंग हरा और पके हुए का रंग पीला या बैंगनी और अन्दर से बहुत लाल होता है। यह फल बड़ा मीठा और स्वादिष्ट होता है। भारत में पूने के पास खेड़शिव नामक गाँव के अञ्जीर सबसे अच्छे होते हैं, मगर अफगानिस्तान तथा फारस के अञ्जीर भारतवर्ष के अञ्जीर से अधिक अच्छे होते हैं। जिस जमीन में चूने का अंश अधिक होता है उस जमीन में अञ्जीर बहुत फलते-फूलते हैं।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अञ्जीर अत्यन्त शीतल, तत्काल रक्त-पित्त-नाशक, सिर व खून की बीमारी में तथा कोढ़ व नकसीर में लाभकारी है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पहिली कक्षा में गर्म और दूसरी कक्षा में तर है। इसकी जड़ पौष्टिक तथा धवल रोग (कुष्ट) और दाद पर उपयोगी है। इसका फल मीठा, ज्वर नाशक, पौष्टिक, रेचक, कामोद्दीपक, विष-नाशक, सूजन में लाभदायक, अश्मरी (पथरी) को दूर करने वाला और कमजोरी, लकवा, प्यास, यकृत तथा तिल्ली की बीमारी व सीने के दर्द को दूर करता है।

कच्चा अञ्जीर कान्तिकारी और सूखा अञ्जीर शीतोत्पादक है। जल के अंश की कमी के कारण यह पहले दर्जे में गर्म है। इससे पतला खून उत्पन्न होता है, जो बाहर की ओर गति करता

है। इसीसे यह कान्तिवर्द्धक भी माना जाता है। यह फल सभी मेवों से अधिक पोषण करता है। इसमें अन्तिम दर्जे की कुव्वते तलय्यन (दोषों को मुलायम करने की शक्ति) है। यह पसीना लाने वाला और गर्मी को शान्त करने वाला है।

अपनी तीक्ष्णता और मधुरता के द्वारा आमाशय में गर्मी उत्पन्न करने के कारण यह गर्म प्रकृति वालों में प्यास पैदा करता है और उस प्यास को जो कफ के कारण पैदा होती है, शमन करता है। क्योंकि यह कफ को पतला करता है और उसे काटता और छाँटता है।

यह अंजीर पुरानी खाँसी को लाभ पहुँचाता है। क्योंकि यह खाँसी केवल बलगम से ही पैदा होती है। इसका दूध अपनी तीक्ष्णता के कारण रेचक है।

पथ्यरूप में अंजीर बहुत सहज में पच जाने वाला और औषधि रूप से उपयोग करने पर किडनी एवं बस्ती संबन्धी पथरियों का तथा यकृत और प्लीहा के रोगों को दूर करने वाला है। गठिया और बवासीर में भी यह लाभ पहुँचाता है।

यूरोप के अन्दर भूजे हुए अंजीर का पुल्टिस साँघातिक फोड़े, बालतोड़ (बरटुट) तथा मसूड़े के ऊपर के फोड़े पर बाँधा जाता है। सूखे हुए अंजीर का पुल्टिस दूध के साथ में पीबदार जख्म और नासूर की दुर्गन्धि को दूर करने के काम में लिया जाता है। बड़े सवेरे खाली पेट इस को खाने से अन्न प्रणाली को खोलने में यह आश्चर्य्यजनक लाभ दिखाता है। अंजीर बादाम और पिस्ते के साथ खाने से बुद्धिवर्द्धक, अखरोट के साथ खाने से कामोद्दीपक तथा बादाम के साथ खाने से विष को दूर करने का काम करता है।

इसके अतिरिक्त स्त्री-समाज के अन्दर भयङ्कर रूप से प्रचलित, प्रदररोग के अन्दर भी यह औषधि बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके फल के रासायनिक विश्लेषण से पता चलता है कि इसके अन्दर ६२ं अंगूरी शक्कर (Grapesugar) तथा निर्यास, वसा और लवण का भाग होता है। सूखे अंजीर में शक्कर, वसा, अलब्यूमिन (अंडे की सफेदी) और लवण का भाग होता है। इसके दूध में (Peptonioing Ferment) होता है।

उपयोग—

बवासीर—दो सूखे अंजीर को शाम को पानी में भिगो देना चाहिये। सवेरे उनको खा लेना चाहिए। इसी प्रकार सवेरे के भिगोये हुए अंजीर संध्या को खा लेना चाहिये। इस प्रकार ८--१० रोज तक खाने से खूनी बवासीर के अन्दर बहुत लाभ पहुँचता है।

श्वेत कुष्ट—सफेद कोढ़ के आरम्भ में ही अंजीर के पत्तों का रस लगाने से उसका बढ़ना बन्द होकर आराम होने लगता है।

रुधिर का जमाव—अंजीर की लकड़ी की राख को पानी के अन्दर घोल कर गाद के नीचे बैठ जाने के बाद उसका निथरा हुआ पानी निकाल कर उसमें फिर वही राख घोल देना चाहिये, ऐसा सात बेर राख घोल-घोल कर नितरा हुआ पानी पिलाने से रुधिर का जमाव बिखर जाता है ।

गाँठ व फोड़े—सूखे या हरे अंजीर पीस कर जल में औटाकर गुन-गुना २ लेप करने से गाँठों व फोड़ों की सूजन बिखर जाती है ।

श्वास—अंजीर और गोरख इमली का चूर्ण समान भाग लेकर प्रातःकाल छः माशे की खुराक में खाने से दमे के अन्दर लाभ होता है ।

बनावटें—

प्रदर नाशक चूर्ण—करंज के बीज की मगज ५ तोले, राल २॥ तोला, दाड़िम के फूल की सूखी कलियाँ २ तोला, कड़ा की छाल २॥ तोला, बढ़िया चंदन का बुरादा २ तोला, नागकेसर २॥ तोला, शीतल चीनी २ तोला, सूखे आँवले २ तोला, हरड़ का चूर्ण २॥ तोला, लोध २॥ तोला, इन सब औषधियों को कूट पीस कर कपड़े में छान लेना चाहिये। इस चूर्ण को अंजीर के हरे फल के रस की सात भावना देना चाहिये अर्थात् उस चूर्ण को उस रस में तर करके सुखाना चाहिये; इस प्रकार सात बार करना चाहिये। अगर हरे अञ्जीर न मिले तो सूखे अञ्जीर को संध्या को भिगोकर सबेरे उनको मसल कर उस पानी को छानकर उसकी भावना देना चाहिये। उसके पश्चात काली दाख का काढ़ा बनाकर उसकी भी इस चूर्ण को सात भावना देना चाहिये। जब चूर्ण सूख जाय तब उसमें वंशलोचन २ तोला, कपूर ६ माशे, सोना गेरु २ तोला, शंखजीरा (शंखजरात) २ तोला और मिश्री १४ तोला, इन सब चीजों का चूर्ण मिलाकर बोतल में भरकर रख देना चाहिये। इस चूर्ण को प्रतिदिन दोनों टाइम ६ माशे से १ तोला तक लेने से सब जाति के सफेद,लाल,काले,नीले, प्रदर रोगों में चमत्कारिक फायदा होता है और २१ दिन में तो प्रदर जड़-मूल से नष्ट हो जाता है।

अंजीर का अँचार—दो सेर सूखे अञ्जीर लेकर गरम पानी से दो-तीन बार धो कर उनके छोटे-छोटे टुकड़े कर लेना चाहिये, फिर बादाम की मगज़ १ सेर लेकर ऊपर का छिलका उतार कर उसके भी बारीक टुकड़े कर लेना चाहिये, फिर उसके बाद एक कलईदार कढ़ाई में अञ्जीर और बादाम की मगज़ के टुकड़े डालकर उसमें चार सेर घी, चार सेर शक्कर तथा इलायची २॥ तोला, केसर १ तोला, चिरौंजी १० तोला, पिस्ते १० तोला, सफेद मुसली ४ तोला, अभ्रक भस्म डेढ़ तोला, प्रवालभस्म २॥ तोला, मुगलाई बेदाना २॥तोला, शीतलचीनी १॥ तोला, इन सब चीजों को कूट करके थोड़ी देर तक उसे अग्नि पर चढ़ा देना चाहिये, जब घी अच्छी तरह से पिघल जायँ और वे सब चीजें मिल जाय तब उसे उतार कर चीनी की बर्नियों में भर देना चाहिये।

इस अँचार की खूराक आधी छटाँक की है। इस औषधि को दोनों टाइम खाने से खून व त्वचा की तमाम गर्मी, पित्त-विकार,रक्त-विकार, कब्जियत, बवासीर और तमाम प्रकार के वीर्यदोष को नष्ट करता है। यह औषधि जीवनीशक्ति वर्द्धक, कामोद्दीपक और अत्यन्त पौष्टिक है।

बवासीर नाशक गोलियाँ—सूखे अञ्जीर २ तोला, काली दाख २ तोला, हरड़ का चूर्ण २ तोला, मिश्री २ तोला, इन चारों औषधियों को कूट कर सुपारी के बराबर गोलियाँ बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से सबेरे शाम एक-एक गोली खाने से बवासीर में लाभ होता है। (जंगलनी जड़ी-बुँटी-भाग १-२)

अंजीरी

नाम—

हिन्दी—अंजीरी, बेदू, बेरू, खबारा, खेमरी। **गुजराती**—पेपरी। **मध्यप्रदेश**—धौरा। **मारवाड़**—केमरी। **राजपुताना**—केमरी। **उत्तरभारत**—फगवारा। **लैटिन**—Ficus Palmata. (फायकस पेलमेटा)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का झाड़ीनुमा छोटे क़द का वृक्ष है, जो विशेष कर पंजाब, आबूपर्वत, उत्तरी हिमालय और बिलोचिस्तान में पैदा होता है। इसके पत्ते कटी हुई किनारी के रहते हैं। इसका फल पकने पर बैंगनी रंग का होता है।

गुण दोष—

इसके फल में विशेषकर शक्कर और लुआब का भाग रहता है, इस कारण यह फल कोठे को मुलायम करने वाला, शान्तिदायक, और मृदु विरेचक है। कब्जियत तथा फेफड़े और मूत्राशय की बीमारियों में यह लाभदायक है। इसका उपयोग बाह्य उपचार के लिये पुल्टिस के रूप में भी होता है। कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका फल शान्तिदायक और विरेचक है तथा फेफड़े और मूत्राशय की बीमारी में लाभदायक है।

अंजुबार

नाम—

संस्कृत—मिरोमती, **हिन्दी**—मचूटी, निसोमली, इन्द्राणी, बीज बन्द; **पंजाबी**—केसरू, मसलून, बिल्लौरी, अञ्जबार, **फ़ारसी**—अञ्जुबार, हुजार, बन्दक, **अरबी**—बतबत, असराराई। **लैटिन**—Polygonum Aviculare Viveparum.

वर्णन—

यह हिमालय पहाड़ की चोटियों पर काश्मीर से कुमाऊँ तक छः हजार से बारह हजार फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसका पौधा छोटा क्षुप जाति का होता है। इसकी शाखाएँ चारों ओर

फैली हुई रहती हैं। पौधा नरम पत्ते वाला, फैला हुआ और फूलदार होता है। इसके पत्ते बरछी के आकार से मिलते हुए होते हैं। इसके फूल लाल रंग के, धब्बेदार और छोटे तथा किंचित तिकौने होते हैं।

गुण दोष—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक ग्रन्थों में इस औषधि का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु यूनानी ग्रन्थों में इस औषधि का वर्णन बहुत प्राचीन समय से अर्थात् हकीम डिसकोरिडस (Dioscorides) और प्लाइनी (Pliny) के जमाने से चला आता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में शीतल और रुक्ष है, इस पौधे की जड़ रक्तस्राव को रोकने वाली, संकोचक, ज्वर को नष्ट करने वाली, विरेचक और मूत्रल है। पेट की जलन और मूत्राशय की तकलीफ़ में यह लाभ पहुँचाती है। हाथी पाँव (श्लीपद) और विसर्प रोगमें भी लाभदायक है। फेफड़े और वक्षस्थल के रक्तस्राव में यह औषधि खास तौर से उपयोगी है।

प्रतिनिधि—इसके प्रतिनिधि जरिश्क और गिले अरमानी हैं और इसकी दर्पनाशक सोंठ है।

मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसकी जड़ सूजन में लाभ पहुँचाने वाली और सङ्कोचक है। इसका क्वाथ सोमरोग और प्रदररोग में लाभ पहुँचाता है। इसके कुल्ले करने से मसूड़े की सूजन में और गले की बीमारी में लाभ पहुँचता है। इस वनस्पति का ठंडा काढ़ा रक्तातिसार में लाभ पहुँचाता है। मलाया के अन्दर यह सुजाक की बीमारी में काम में लिया जाता है।

इसकी जड़ का क्वाथ ढाई तोले से पाँच तोले तक की मात्रा में मलेरिया बुखार, पुराना अतिसार पथरी, हुपिंग कंफ़ (कुक्कुर खाँसी) इत्यादि रोगों में लाभदायक होता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह एक प्रकार की संकोचक औषधि है, जो रोग के कीटाणुओं को नष्ट करती है।

रासायनिक विश्लेषण—

इस औषधि के अन्दर पॉलीगॉनिक एसिड (अञ्जुबार का सत्व) टेनिन एसिड, गैलिक एसिड, केलसियम ऑक्फेलेट और इसेंशियल ऑइल पाया जाता है।

इस औषधि का एक भेद और होता है, जिसे लेटिन में (Viviparum) और अरबी में अञ्जबार पोल कहते हैं। यह औषधि भी पौष्टिक, रक्तस्रावरोधक, संकोचक तथा गले के रोगों में मुफ़ीद है।



अञ्जरूत

नाम—

हिन्दी—लाई, लाही। फ़ारसी—गूजद, अञ्जदक। अरबी—कुहल फ़ारसी, कुहल किरमानी, लैटिन—Astragalus Sarcocolla.

वर्णन—

यह एक वृक्ष का गोंद है, जिस वृक्ष से यह निकलता है, उसका नाम मख्जनूल अदविया के लेखक मीर महम्मद हुसैन के मतानुसार शाइकह है, यह वृक्ष शीराज़ के नज़दीक शबानकारह की पहाड़ियों में पाया जाता है। यह वृक्ष छः फीट ऊँचा और काँटेदार होता है, इसके पत्ते लोबान के पत्तों की तरह होते हैं। इसका गोंद निकलते समय सफेद और हवा लगने पर लाल हो जाता है। इसका स्वाद कडुआ और मधुर होता है, आग पर जलाने से यह फूलता है और उस समय शक्कर जलने की सी बास आती है।

गुण दोष—

आयुर्वैदिक ग्रन्थों में इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

यूनानी मत—मख्जनूल अदविया के लेखक मीरमहम्मद हुसैन के मतानुसार यह रेचक और कफ के दोषों को मिटाने वाला है, निसोत और हरड़ के साथ मिलाकर उपयोग में लेने से यह बहुत लाभदायक होता है। इसका प्लास्टर सब प्रकार की सूजन को नष्ट करता है। प्याज के अन्दर इसे रख अग्नि पर भून कर इसका रस कानों में टपकाने से कान का दर्द दूर होता है।

अञ्जरूत की प्रधान उपयोगिता लेपन के द्रव्यों में होती है। पारसी लोग इसे रूई के साथ मिलाकर टूटी हुई अथवा मोच आई हुई हड्डियों पर इसका लेप करते हैं।

डाय मॉक के मतानुसार अञ्जरूत ६ भाग, जदवार १ भाग, एलुवा सकोतरी १६ भाग, फिटकरी ८ भाग, मैदालकड़ी ४ भाग, गूगल ४ भाग, लोबान ७ भाग और उसारह रेवन्द १२ भाग, इन सब औषधियों का बारीक चूर्ण कर जल में मिलाकर, सिल पर पीसकर लुगदी बनाकर लेप के उपयोग में लेना चाहिये।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार अञ्जरूत का गोंद या रस एक प्रकार का मृदु विरेचक माना गया है।

अड़ूसा

नाम—

संस्कृत—वासक, आटरूष। **मराठी**—अड्डलसा। **बंगाली**—वसाका। **गुजराती**—अरड्डसो। लेटिन-Adhatoda, Vasika (अधाटोड़ा वासिका)

वर्णन—

आयुर्वेद के अन्दर, वर्णित की हुई औषधियों में अड़ूसा भी एक दिव्य औषध है। इसके अन्दर ऐसे अनेकों दिव्यगुण छिपे हुए हैं, जो समय पर मनुष्य को भयंकर कष्ट और मौत के मुँह में से बचा सकते हैं। इसके पौधे ४ से लेकर ८ फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते लंबे और अमरूद की तरह होते हैं। अड़ूसे के वृक्ष दो तरह के होते हैं। काले और सफेद। काले अड़ूसे के पत्ते कुटकी के पत्ते की तरह मृदु होते हैं। सफेद अड़ूसे के पत्तों का रंग हरा होता है और उनपर सफेद धब्बे होते हैं। अड़ूसे के फूल सफेद होते हैं। इसकी लकड़ी कोमल और हलकी होती है। इसीलिये इसके कोयले का चूर्ण बारूद बनाने के उपयोग में लिया जाता है।

प्रभाव और गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—अड़ूसा अत्यन्त प्राचीनकाल से भारतवर्ष में औषधिरूप में व्यवहार होता हुआ चला आया है। इसी कारण जिस प्रकार आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रंथों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है, उसी प्रकार अशिक्षित और ग्रामीण लोग खाँसी, अतिसार, वमन, बुखार, सूजन, इत्यादि रोगों में इसका उपयोग करते हैं। परन्तु आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थकार इसको खाँसी, श्वास, कफ और क्षयरोग की अनुभूत औषधि मानते हैं।

भावप्रकाश के कर्त्ता भावमिश्र के अनुसार अड़ूसा वातकारक, स्वर को उत्तम करने वाला, कफघ्न, रक्त-पित्त-नाशक, कड़ुआ, कसैला, हृदय को हितकारी, हलका, शीतल तथा तृषा, श्वास, खाँसी ज्वर, वमन, मोह, कोढ़, क्षय आदि रोगों को नष्ट करने वाला है।

राज-निघण्टु के मतानुसार अड़ूसा तिक्त, कटु, शीतल तथा खाँसी, रक्त-पित्त, कामला, कफ निकालने वाला और ज्वर, श्वास, और क्षय रोग को नष्ट करने वाला है।

इसकी प्रशंसा करते हुए एक स्थान पर कहा है—

श्लोक—वासायां विद्यमानाया, माशायां जीवितस्य च।
रक्त-पित्ती, क्षयी, कासी, किमर्थ मवसीदति॥

अर्थात् जीवन अवशेष और अड़ूसे के विद्यमान रहते हुए रक्त-पित्त, क्षय और खाँसी के रोगी किस लिये दुःख पारहे हैं ? इससे मालूम होता है कि प्राचीन ग्रन्थकार रक्त-पित्त, खाँसी, श्वास और क्षय की बीमारियों में निःशंक होकर इसका उपयोग करते थे।

इसी प्रकार यूनानी ग्रन्थकार भी अड़ूसे के फूल को क्षय, रक्त-पित्त, खाँसी और श्वास में लाभदायक मानते हैं।

आधुनिक शोध-खोज—भारत सरकार के द्वारा निर्मित की हुई "इंडाईजेनस ड्रग कमेटी आफ इंडिया" अपनी रिपोर्ट में इस औषधि के लिये लिखती है—"यह बात यहाँ पर बतलाना आवश्यक है कि भारतवर्ष के अस्पतालों में किये हुए परीक्षणों के परिणाम स्वरूप अड़ूसे का पौधा, ब्रोङ्काइटीज (श्वास नली की खाँसी) और दमे के रोगियों के लिये लाभदायक सिद्ध हुआ है। परन्तु क्षय के रोग को नष्ट करने की जो प्रशंसा इस पौधे के सम्बन्ध में की गई है, वह बहुत संदेहास्पद है।"

फरमाकोपिया ऑफ इंडिया नामक पुस्तक के लेखक खाँसी और दमे के रोग को नष्ट करने के लिये अड़ूसे की जोरदार सिफारिश करते हैं। परन्तु जिस खाँसी और दमे के साथ बुखार होता है, उसमें उनके मतानुसार इस औषधि से लाभ नहीं होता।

रासायनिक विश्लेषण—

इस औषधि का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें तीन मुख्य तत्व पाये गये हैं। (Alkloid) नामक उपक्षार (Vasicine) नामक तिक्तक्षारी सत्व और (Oil) तेल, इसमें पाये जाने वाला उपक्षार खून की गति को ढीला करता है और हार्ट (हृदय) की गति को मामूली दर्जे पर ले आता है। यह उपक्षार और भी हृदय-रोगों को नाश करता है और वायु-नलियों को साधारणतौर से फैला देता है। इसके पत्तों का रस कफ की बीमारी पर फायदेमंद है। यह कफ को ढीला कर देता है, जिससे कि बिना किसी कष्ट के वह बाहर फेंका जा सकता है। (Indian Journal Medical Research. Oct. 1925)

कर्नल चोपड़ा और घोष के सिद्धान्त के अनुसार यह औषधि फेफड़ों के क्षय में बिल्कुल लाभदायक नहीं है।

मेजर वसु और डाक्टर कीर्तिकर के मतानुसार यह वनस्पति नलियों के प्रदाह में, कोढ़ में, रक्त विकार में, हृदय रोग में, प्यास में, श्वास में, ज्वर में, वमन में, स्मरणशक्ति के नाश, क्षय, पीलिया, व मुँह के रोगों में लाभकारी है। इसकी जड़ गर्भस्थ संतान को निकालने में मुफीद मानी जाती है। मूत्र, कृच्छ्र, श्वेत प्रदर व नलियों के प्रदाह में भी यह लाभकारी और मूत्रवर्द्धक है। इसके पत्ते ऋतुस्राव को नियमित करने वाले हैं। इसके फूल रक्त की गति (Circulation of Blood) को नियमित करने वाले हैं। इसके फल वायु-नलियों के प्रदाह में उपयोगी हैं।

इस वृक्ष की जड़ और पत्ते सब प्रकार की खाँसियों पर उत्तम औषधि मानी गई है। इसके पत्ते गठिया रोग के उपयोग में आते हैं। इसके पत्तों को सुखाकर उनकी सिगरेट बनाकर पीने से दमे के रोग में लाभ होता है।

उपयोग—

सर्जन जे० एफ० डब्ल्यू मिडोज का कथन है कि इसके ताजे पत्तों को पानी में औटा कर पिलाने से कफ वाली खाँसी का नाश होता है।

पबना के सर्जन आर० एल० दत्त के मतानुसार लाल फूल वाला अड़ूसा क्षय तथा खाँसी के के लिये बहुत लाभदायक है।

सर्जन पी० कीसली मेकाकोल के मतानुसार अड़ूसे के पत्तों को बाफ कर उनका सेक करने से चीभें चलना और संधिवात की पीड़ा में फायदा होता है। सूजन को कम करने में भी यह औषधि फायदेमंद है।

सर्जन मेजर फिट्स पेट्रिक के कथनानुसार देशी वैद्य पाण्डुरोग के साथ वाली जलोदर की व्याधि में मूत्रल औषधि की तरह इसका व्यवहार करते हैं।

सर्जन मेजर रोब के मतानुसार आम्लातिसार, रक्तातिसार और मरोड़ी के दस्तों में इसके पत्तों का रस बहुत उपयोगी है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक मि० नाडकरनी का कथन है कि अड़ूसे के पत्ते का ताजा रस साढ़े सात माशा लेकर शहद या अदरख के रस के साथ देने से अथवा इसके पत्तों को उबालकर उसमें कालीमिर्च और छोटी पीपल का चूर्ण डाल कर पिलाने से पुरानी खाँसी, श्वास और क्षय के रोग में बहुत फायदा होता है। इसके पत्तों का रस खून और मरोड़ी की दस्तों में बहुत उपयोगी है और इसके पके हुए पत्तों के द्वारा किया हुआ सेंक संधिवात, लकवा और वेदनायुक्त सूजन में लाभ पहुँचाता है।

अड़ूसे के पत्तों को और नीम के पत्तों को बाफ कर पेडू के ऊपर उनसे सेक करने से तथा अड़ूसे के पत्तों के आधे तोले रस में उतनी ही शहद मिलाकर पिलाने से गुर्दे का भयंकर दर्द जिसे अंग्रेजी में (Brights Disease) कहते हैं, चमत्कारिक लाभ पहुँचाता है।

उपरोक्त सब अवतरणों से यह पता चलता है कि यह औषधि पुरानी खाँसी, श्वास इत्यादि रोगों में प्रथम श्रेणी का तथा अतिसार, रक्तातिसार, आमातिसार, संधिवात, सूजन इत्यादि रोगों में द्वितीय श्रेणी का असर बतलाती है।

बनावटें—

वासावलेह—अड़ूसा का रस ६४ तोला, शक्कर ३२ तोला और घी ८ तोला, लेकर धीमी आँच से पकाते २ जब गाढ़ा हो जाय, तब उसे नीचे उतार कर आठ तोला पीपल का चूर्ण डालना चाहिये। जब वह अवलेह ठंडा हो जाय तब उसमें ३२ तोला शहद डालकर चीनी के पात्र में भर के रखना चाहिये। इसकी मात्रा आधे से एक तोले तक है। यह अवलेह खाँसी, श्वास, हृदयरोग और रक्त-पित्त पर बहुत लाभदायक है।

वासासव—अड़ूसे के पत्ते १० सेर लेकर उनको १०२४ तोला पानी में उबालना चाहिये। जब २५६ तोला पानी बाकी रह जाय, तब उसे उतार कर छान कर उसमें २०० तोला गुड़, १६ तोला धावड़ी का चूर्ण तथा तज, इलायची, तमालपत्र, नागकेशर, कंकोल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, नागर मोथा, ये सब वस्तुएँ दो-दो तोला लेकर उनका चूर्ण करके उसमें डाल देना चाहिये। उसके बाद बोतलों में भरकर १५ दिनों तक पड़ा रहने देना चाहिये। उसके पश्चात् उसको छान कर काम में लेना चाहिये। यह आसव आधे से लेकर एक तोला तक पानी के साथ मिलाकर लेने से जलोदर, पांडु और सूजन के दर्द पर फायदा करता है।

अड़ूसे की सिगरेट—इसके ताजा पत्तों को सुखा कर उनमें थोड़े से काले धतूरे के सूखे हुए पत्ते मिलाकर उनका चूर्ण करके उसकी बीड़ी बनाकर पीने से दमे की बीमारी में आश्चर्यजनक लाभ होता है।

अड़ूसे का माजून—अड़ूसे के हरे पत्तों को पीसकर उनका गोला बना लें। उस गोले पर एरंड के हरे पत्ते लपेट कर ऊपर से उड़द का आटा लगाकर गरम राख में दबा दें। जब आटा पक जाय तब उसे और एरंड के पत्तों को हटा कर अड़ूसे के गोले का रस निकाल लें। जितना रस निकले उससे आधी शक्कर, दशमांश पीपल का चूर्ण और दशमांश गाय का घी डालकर पकावें। जब चासनी गाढ़ी हो जाय तब उतारकर उसमें शक्कर के वजन के बराबर शुद्ध शहद मिलाकर बरनी में भर लें। इस माजून की चार-चार माशे की मात्रा सुबह-शाम देने से खाँसी, दमा, जुकाम, छाती का दर्द, क्षय इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचता है।

अड़ूसे का क्षार—अड़ूसे के पञ्चाग को जला कर उसकी राख से क्षार निकालकर उस क्षार की चार-चार रत्ती की मात्रा देने से खाँसी और दमें में आश्चर्य्यजनक लाभ होता है।

अड़ूसे का अर्क—अड़ूसे के पत्ते एक सेर और अड़ूसे के फूल दस तोला इनको चार सेर जल में शाम को भिगो देना चाहिये। सबेरे आग के नीचे एक जोश देकर चार सेर गाय का दूध मिला देना चाहिये। उसके पश्चात् भपके के द्वारा उसका अर्क खींच लेना चाहिये। अड़ूसे का यह अर्क दस तोला लेकर पाँच तोला शर्बत एजाज़ के साथ सबेरे और शाम पिलाने से प्रथम और द्वितीय श्रेणी के क्षयरोग में लाभ पहुँचाता है। दो सप्ताह के पश्चात् रोगी के वजन में आश्चर्य्यजनक वृद्धि दीख पड़ती है। शरीर लाल और ओजपूर्ण हो जाता है। मूत्र की ललाई, जलन और गर्मी को दूर करने के लिये यह अर्क अनुपम है। (आयुर्वेदीय कोष)

अड़ूसे का क्वाथ—अड़ूसे के पत्ते दो सेर, अड़ूसे के जड़ की छाल दो सेर, अड़ूसे के फूल दो सेर, इन तीनों वस्तुओं को थोड़ी कूटकर बीस सेर पानी में उबालें, आधा रह जाने पर छानकर फिर तीनों चीजें एक-एक सेर डालकर उबालें। जब आधा अर्थात् पाँच सेर पानी रह जाय तब उसको मल-छान कर फिर उपरोक्त तीनों वस्तुएँ आधा २ सेर डालकर फिर उबालें। उसमें जब ढाई सेर पानी रह जाय तब मल-छान कर बोतलों में भरकर रख लें। इसमें से ढाई तोला क्वाथ, एक

तोला शहद मिलाकर दिन में तीनवार पिलाने से खाँसी, ज्वर, मुँह से खून का गिरना, खून की उल्टी, खूनी बवासीर इत्यादि में लाभ पहुँचाता है । (आयुर्वेदीय कोष) ।

वासकारिष्ट—अड़ूसे के पत्तों का रस १०० तोला लेकर रेक्टी फाइड स्पीरिट ऑफ वाइन (Rectified Spirit of Wine) एक सौ तोला में मिलाकर चीनी की बरनी में डालकर उसमें मुलेटी का सत दो तोला, कपूर एक तोला, अफीम एक तोला, बहेड़े का चूर्ण दो तोला, लौंग दो तोला, इलायची दो तोला, कालीमिर्च एक तोला, तालीस पत्र दो तोला, काकड़ा सिंगी एक तोला, धतुरे के शुद्ध बीज एक तोला, कठ दो तोला और शक्कर ४० तोला डालकर उस बरनी का मुँह बंद करके एक महीने तक पड़ी रहने देना चाहिये । इस औषधि में से तीन माशे से छः माशे तक दो तोला पानी के साथ मिलाकर दिन में तीन बार पिलाने से खाँसी और श्वास में अद्भुत गुण करती है । औषधि पीने के साथ ही श्वास का वेग दूर हो जाता है । रेक्टिफाइड स्पिरीट के बदले यदि मृतसंजीवनीसुरा लेली जाय तो अजीब गुण करती है । (जंगलनी जड़ी-बुँटी)

गोदन्ती भस्म—अड़ूसे के फूलों के रस में गोदन्ती हड़ताल को खरल करके गजफुट में फूँक दे, इस प्रकार सात बार घोटकर फूँकने से गोदन्ती हड़ताल की बढ़िया भस्म तय्यार हो जायगी। इस भस्म की मात्रा एक रत्ती की है । जीर्णज्वर में यह भस्म अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुई है । जिसको खून की उल्टी होती हो, उसे पाँच माशा कहरुआ में एक रत्ती भस्म रखकर शर्बत अंजबार के साथ खिलाने से थोड़ी खुराकों में लाभ होता है । पुरानी खाँसी में यह भस्म शर्बत एजाज़ के साथ खिलाने से आश्चर्य्यजनक काम करती है ।(आयुर्वेदीय कोष)

ताम्र भस्म—ताम्बे के शुद्ध पतरों को अड़ूसे के पत्तों के रस में गरम करके सौ बार बुझायें। उसके पश्चात राई की गाँदलों की लुग्दी बनाकर उसमें उनको रख एक मन आरने कंडों की आँच में रख दें । इस प्रकार तीन बार करने से भस्म तय्यार होगी । इस भस्म को एक रत्ती की खुराक में उपयोग करने से समस्त वात-व्याधि, कफ, खाँसी, दमा और बुढ़ापा नष्ट होता है ।

अटवी–जम्भीरी

नाम—

संस्कृत—अटवी जम्भी । **हिन्दी**—जङ्गली नींबू । **मराठी**—रण नींबू, मकदनींबू । **कनाड़ी**—अदवीनीम्बू । **तामील**—कटनरङ्गम्, कट्टेलुमिचय । **तेलगू**—अदवीनिम्बा, करुनिम्बा, **उड़िया**—कट-नरङ्ग, नरङ्गुनि । **लैटिन**—Atalantia-Monophilla.

वर्णन—

अटवी-जम्भीरी, यह एक काँटेदार और फैलने वाली झाड़ी है । इसकी शाखाएँ छोटी होती हैं । इसके पत्ते बल्लम के आकार के कुछ गोलाई लिए हुये होते हैं । इनमें नारङ्गी के पत्तों की

तरह खुशबू आती है। इसके फूल सफ़ेद रंग के होते हैं। फल गोलाकार पीले तथा नीम्बू की तरह होते हैं। इसका ताजा बीज बहुत खुशबूदार होता है। इसके बीज का चूर्ण कर मीठे तैल में डालने से तैल खुशबूदार और गहरे पीले रंग का हो जाता है। इस तैल की मालिश करने से त्वचा में गर्मी पैदा होती है। यह औषधि कोंकण, उत्तरी कनाडा, मद्रास, पश्चिमी समुद्रतट, कर्नाटक, दक्षिणी सीलोन, सिलहट इत्यादि स्थानों पर पैदा होती है।

प्रभाव और गुण दोष--

प्राचीन निघण्टों और यूनानी ग्रन्थों में इस औषधि का वर्णन देखने में नहीं आया। आधुनिक बूटी-विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों में इसका उल्लेख पाया जाता है—

डा० राबर्टस के मतानुसार सीलोन में इसके ताजे पत्ते कुचल कर नमक के साथ मिलाये जाते हैं। फिर उन्हें गरम करके साँप के काटे हुए स्थान पर लगाते हैं। इसका खास उपयोग ट्री स्नेक्स (वृक्ष पर रहने वाले साँप) के दंश पर किया जाता है। मगर कैस और मस्कर का मत है कि सर्पदंश के उपचार में इसके पत्ते बिल्कुल निरुपयोगी हैं। ट्री स्नेक्स तो वैसेही जहरी और प्राणघातक नहीं होते हैं।

डा० एन्सली का मत है कि इसके फूलों से एक प्रकार का उष्ण तैल बनाया जाता है। यह तैल दक्षिणी भारत में गठिया रोग के वाह्य उपचार में बहुत मूल्यवान् माना जाता है। पक्षाघात में भी यह लाभ पहुँचाता है।

कोंकण में इसके पत्तों के रस का लेप अर्द्धाङ्ग (लकवा) में उपयोगी माना जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसकी जड़ आक्षेप निवारक और उत्तेजक है। यह औषधि सर्पदंश में भी काम आती है।

——:०※०:——

अत्यम्लपर्णी (खट्टुआ)

नाम—

संस्कृत—अत्यम्लपर्णी, कण्डूला। हिन्दी—रामचना। गुजराती—खाटखट्टुम्बा। मराठी—आम्बटवेल। बंगला—कड़वड़वेनि। तेलगू—मण्डलमारी। लैटिन—Witis Carnosa. (विटिस करनोसा)।

वर्णन--

यह एक प्रकार की बेल होती है, जो बहुधा थूहर पर फैला करती है। इसके तीन २ पत्ते लगते हैं। वे फटे हुए कंगूरेदार किनारे के होते हैं, इसकी जड़ में करीब नौ इञ्च लम्बा एक कन्द निकलता है। इस कन्द पर से तन्तु निकलकर जमीन के भीतर ही भीतर फैलते हैं और स्थान २ पर उनके वैसेही

कन्द लगते हैं । इसके फ़ल कुछ हरापन लिए हुए सफेद होते हैं, जो गुच्छों के रूप में लगते हैं। इसके फल कच्ची हालत में हरे और पकने पर बैंगनी हो जाते हैं । फलों में से बीज निकलते हैं। इस वनस्पति का एक २ अणु अत्यन्त खट्टे रस से भरा हुआ रहता है। अगर इसको खाया जाय तो गले में जलन पैदा करता है। हिंदुस्तान के प्रायः सभी भागों में यह वनस्पति मिलती है। इसलिये सब लोग इसको जानते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—राजनिघण्टु के मतानुसार यह वनौषधि तीक्ष्ण, खट्टी, अग्नि को दीपन करने वाली, रुचिकारक तथा प्लीहा, शूल, वात, बायगोला और कफ, इन रोगों को दूर करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह औषधि रक्तशोधक, पित्तशामक और यकृत तथा हृदय की पीड़ाओं को दूर करने वाली है। तिल्ली के प्रदाह में भी यह गुणकारी है तथा पौष्टिक, अग्निवर्द्धक और कफ को पैदा करने वाली है।

इस औषधि के सम्बंध में आयुर्वेद तथा यूनानी में अधिक वर्णन नहीं मिलता, लेकिन 'धन्वंतरि' नामक वैद्यक-पत्र के अन्दर सन् १९१६ के फरवरी मास के अङ्क में इस औषधि के सम्बंध में कुछ चमत्कारिक बातें निकली थीं, जिसका कुछ अंश यहाँ पर दिया जाता है।—

"मेरे पड़ोस में हरजी भगत नामक एक वृद्ध भाटिया गृहस्थ रहते थे। वे दाद के रोगियों को चित्रक की जड़ घिसकर लगाने के लिये कहते थे, जिससे लगाये हुए स्थान पर फोड़ा होकर वहाँ की दाद जल जाती थी। मैंने उनको बतलाया कि यह औषधि अत्यन्त दाहक और उग्र है। इसलिये कभी-कभी यह आपको बहुत कष्टप्रद होगी। पर उन्होंने इस बात को नहीं माना। कुछ दिनों के बाद ऐसा प्रसंग आया कि उनके खुद के गले में दाद हुई। हमेशा की आदत के मुताबिक उन्होंने तत्काल चित्रक की जड़ को घिसकर गले के ऊपर लगादी। बदकिस्मती से वे बरसात के दिन थे, जिससे वह जगह सूज गई और सूखने के बदले उसमें पीब पैदा हो गयी और उसमें कीड़े पड़ गये। पर शरम के मारे उन्होंने मुझ से वह बात न कही। पर जब तकलीफ बहुत बढ़ गई, तब मुझे उसकी मालूम पड़ी तब मैंने उन जन्तुओं का नाश करने के लिये कारबोलिक तेल की तलाश की। मगर वह उस छोटे से गाँव में न मिल सका। तब मैंने धोया हुआ घी और शक्कर मिलाकर पके हुए हिस्से पर लगाना प्रारम्भ किया, जिससे कुछ कीड़े ऊपर आने लगे और हम उनको चिमटे से पकड़-पकड़ कर बाहर निकालते थे। यह मगज़ पच्ची चल ही रही थी कि एक दिन एक ठाकुर सिर पर लकड़ी की भारी लेकर आया और उसने यह हालत देख कर मुझे कहा कि तुम इतनी मगज पच्ची क्यों करते हो, बिना परिश्रम के ही अगर ये सब कीड़े जिंदा स्थिति में बाहर निकल जायँ तो कैसा हो। मैंने कहा कि यदि ऐसा हो तो फिर क्या कहना है। तब वह अपनी मजदूरी के चार आने के पैसे ठहरा कर गाँव के बाहर गया और एक वनस्पति की गाँठ लेकर आ गया। उसने उस गाँठ को चन्दन की तरह घिसकर रुई के फेल के ऊपर लगाया और उसको उस नासूर के ऊपर चिपका कर लगा दिया। दस-बारह मिनट के बाद उसने उस रुई

के फुए को हटाया तो जिन्दे कीड़ों का एक गुच्छे का गुच्छा उस रुई के फेल के साथ चिपका हुआ चला आया।

मुझे संदेह हुआ कि कहीं इसने हाथ चालाकी तो नहीं की है। इस सन्देह को दूर करने के लिये मैंने स्वयं दूसरी बार अपने हाथ से उस गाँठ को घिसकर लगाया और दूसरी बार भी बहुत से कीड़े उसके साथ चले आये। इस प्रकार तीन बार करने से उस नासूर के सब कीड़े बाहर निकल आये और रोगी को बड़ा आराम मालूम हुआ। अन्त में मुझे उस गाँठ का परिचय जानने की इच्छा हुई और बहुत कुछ खुशामद-बरामद के बाद उसने बतलाया कि यह गाँठ खाट-खटूमड़ा की है। उसके पश्चात् और भी कई स्थानों पर मनुष्यों एवं ढोरों पर इसका उपयोग किया गया और सब स्थानों के कृमियों को बाहर निकाल देने में यह गाँठ कामयाब हुई"।

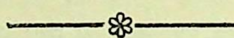
उपयोग—

बैलों के कन्धों पर जुड़ा रखने से जो घाव हो जाते हैं, उसपर इसके पत्तों का पुल्टीस बाँधने से बहुत लाभ होता है।

बिच्छू का जहर—बिच्छू के काटे हुए स्थान पर इसका कंद घिसकर लगाने से लाभ होता है।

फोड़े फुन्सी—सूजन और फोड़े फुन्सियों पर कंद घिसकर लगाने से लाभ होता है।

अतिसार—इसके फलों का शाक बनाकर खाने से लाभ होता है।



अतिबला (कंघी)

नाम—

संस्कृत—अतिबला, बालिका, बाल्य, शीतपुष्पा, वृषगंधिका। **हिन्दी**—कंघी, कंघनी, झम्पी, **गुजराती**—कंसकी। **मराठी**—मुद्रिका, करंडि, चिकणा थोरला। **सिन्धी**—खपटो। **तामील**—पेरंदुति **तेलगू**—तूति। **अरबी**—मस्तुल धौल। **उर्दू**—कंघी। **अंग्रेजी**—Indian Malow (इंडियन मेलो) **लैटिन**—Abutilon Indicum. (एब्यूटिलन इंडिकम)

वर्णन—

यह वनस्पति गरम आबहवा वाले प्रायः सभी प्रान्तों में होती है। इसका वृक्ष कुछ फिसलना और रुएँदार होता है। यह औषधि संस्कृत के प्रसिद्ध बलाचतुष्टय (बला, अतिबला, नागबला और महाबला) में से एक है और प्रायः सब दूर सुपरिचित है। इसके बीज छोटे-छोटे लुआबदार, चिकने और कुछ काले होते हैं।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार कंघी कड़वी, चरपरी और वात, कृमि, दाह, तृषा, विष, वमन, और क्लेद को शान्त करने वाली है। यह वीर्यवर्द्धक, बलकारक, अवस्था स्थापक, वात-पित्त नाशक और मूत्र-रोग को दूर करने वाली है।

इसकी छाल कड़वी, ज्वर निवारक, कृमिनाशक और जहर के दोष को उपशमन करने वाली है। इसके अतिरिक्त प्यास, त्रिदोष और वात-पीड़ा को भी यह नष्ट करती है। इसकी जड़ गर्भाशय से होने वाले रक्तस्राव में लाभदायक है। इस वृक्ष का दूध पेशाब सम्बंधी बीमारियों में लाभ पहुँचाता है। आयुर्वेद के अन्दर बल बढ़ाने वाली और धातु पौष्टिक जितनी औषधियाँ मानी गई हैं, उनमें यह औषधि अपना प्रधान स्थान रखती है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसके लुआबदार बीज पौष्टिक होते हैं और सीने की तकलीफों में लाभ पहुँचाते हैं। ये बच्चों की खाँसी, वायु नलियों की जलन, बवासीर, और सुजाक के अन्दर बहुत मुफीद हैं। इसके पत्ते दाँतों की पीड़ा, कमर की बादी और बवासीर में उत्तम है। इसकी छाल पथरी और पेशाब सम्बन्धी बीमारियों में अपना असर दिखलाती है। इसकी जड़ का ठण्डा काढ़ा ज्वर के अन्दर ठण्डी औषधि के रूप में दिया जाता है। यह पथरी और मूत्र के अन्दर रक्त के कण आने की बीमारी में लाभदायक है।

खूनी बवासीर के अन्दर इसके पत्तों का काढ़ा दिया जाता है, इसके अतिरिक्त वायुनलियों के प्रदाह, सुजाक, मूत्राशय की जलन, पैत्तिक आमातिसार और ज्वर में भी इसका काढ़ा लाभदायक है।

इसके बीज अत्यन्त पौष्टिक और कामोद्दीपक हैं। बवासीर के अन्दर ये विरेचक औषधि के बतौर काम में लिये जाते हैं। खाँसी के अन्दर भी ये लाभदायक है। बच्चों के गुदाद्वार में जब कृमि पड़ जाते हैं, तब लकड़ी के अङ्गारे पर इसके बीजों को डालकर उनका धुआँ देने से ये कृमि नष्ट हो जाते हैं।

चीन और हाँग-काँग के लोग मूत्रल औषधि की तरह इसकी जड़ का उपयोग करते हैं, वे इसे दमे की बीमारी में भी लाभकारी मानते हैं।

पोर्टर स्मिथ के मतानुसार इसके बीज और यह सारा वृक्ष मूत्रल, शान्तिदायक और मृदु-विरेचक है। यह मूत्र सम्बन्धी बीमारियों में, पुराने अतिसार में, जीर्णज्वर में, तथा सूतिकारोग में उपयोगी है। औषधि प्रयोग में विशेषकर इसके बीज ही काम में लिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका छिलटा, जड़, पत्ते और बीज सभी का उपयोग औषधि के रूप में किया जा चुका है। इसके पत्तों को पानी में गलाने से एक प्रकार का चिकना लुआब निकलता है। यह लुआब ज्वर में शान्तिदायक, मूत्रनिस्सारक, सीने के दर्द में मुफीद तथा सुजाक और मूत्रनली की सूजन में लाभदायक माना गया है। इसके बीजों को अच्छी तरह से पीसकर विरेचक और कफ

निस्सारक औषधि की तौर पर दिये जाते हैं। इनकी खुराक एक से लगाकर दो ड्राम तक की है। इसकी छाल संकोचक और मूत्रल है। इसकी जड़ ज्वर में फायदेमंद है।

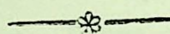
उपयोग—

विद्रधी व्रण—अतिबला की कोमल पत्तियों को बारीक पीसकर लुगदी बनाकर फोड़े पर रखना चाहिये और उसपर कपड़े की तह रखकर उसपर ठण्डा पानी डालते रहना चाहिये, इस प्रयोग से गाँठ में होने वाली जलन और झपका बंद होता है और गाँठ जल्दी पक कर फूट जाती है। (बनौषधि गुणादर्श)

गरमी के चट्टे—अतिबला की छाल और पुराने पत्तों को पीस कर उनको पानी में औटाना चाहिये और जब अष्टमांश पानी शेष रह जाय तब उस काढ़े से गर्मी के चट्टों को धोने से लाभ होता है।

ज्वर—अतिबला की जड़ और सूंठ का काढ़ा पिलाने से शीत, कंप और दाहयुक्त ज्वर दो-तीन दिन में नष्ट हो जाता है।

बिच्छू का जहर—अतिबला की जड़ को घिस कर लगाने से लाभ होता है।



अतीस

नाम—

संस्कृत—भंगुरा, विषा, अतिविषा। मारवाड़ी—अतीस। गुजराती—अतवस। मराठी—अतिविष। बंगाली—आतइच। पंजाबी—अतीस। तेलंगी—अतिवस। द्राविड़ी—अतिविषं। लेटिन—Aconitum Haterophylum (एकोनिटम हेट्रोफिलम)।

वर्णन—

अतीस के पौधे हिमालय में कुमायूँ से हसोरा तक, शिमला और उसके आस-पास तथा चुम्बा में बहुत होते हैं। इसका पौधा एक से तीन फुट तक ऊँचा होता है। उसकी डंडी सीधी और पत्तेदार होती है, इसके पत्ते दो से चार इंच तकचौड़े और नोकदार होते हैं। डंडी की जड़ से शाखाएँ निकलती हैं। इसके पुष्प बहुत लगते हैं। वे एक या डेढ़ इंच लम्बे, चमकदार, नीले या पीले, कुछ हरे रंग के बैंगनी धारी वाले होते हैं। इसके बीज चिकने, छाल वाले और नोकदार होते हैं। इसके नीचे डेढ़-दो इंच लम्बा और प्रायः आध इंच मोटा कंद निकलता है। इसीको अतीस कहते हैं। इसका आकार हाथी की सूंड के सदृश होता है। जो ऊपर से मोटा और नीचे की ओर पतला होता चला आता है।

यह बाहर से खाकी और भीतर से सफेद रंग का होता है। इसका स्वाद कसैला होता है। अतीस सफेद, काला और लाल ऐसे तीन प्रकार का होता है। इसमें से सफेद सबसे अधिक गुणकारी होता है।

प्रभाव और गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—भावप्रकाश के मतानुसार अतीस गरम, चरपरा, कड़वा, पाचक, जठराग्नि को दीपन करने वाल तथा कफ, पित्त, अतिसार, आम, विष, खाँसी और कृमिरोग को नष्ट करने वाला है।

निघण्टु-रत्नाकर के मतानुसार अतीस किंचित उष्ण, कड़वा, अग्नि-प्रदीपक, ग्राही, त्रिदोष-पाचक तथा कफ, पित्त, ज्वर, आमातिसार, खाँसी, विष, यकृत, वमन, तृषा, कृमि, बवासीर, पीनस, पित्तोदर और सर्व प्रकार की व्याधि को नष्ट करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरी कक्षा में गर्म और पहली कक्षा में रुक्ष है। यह काबिज और आमाशय के लिये हानिकारक है। इसके अतिरिक्त यह कामोद्दीपक, क्षुधावर्द्धक, ज्वर-प्रतिरोधक, कफ तथा पित्त जन्य विकारों को नाश करने वाला तथा बवासीर, जलोदर, वमन और अतिसार में लाभ करने वाला है।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके अन्दर अतीसीन (Atisine) और एकोनाइटिक एसीड (Aconitic Acid) तथा टेनिन एसिड नामक क्षार और आलीइक, पामीटिक, स्टीयरिक, ग्लिसराइट्स, सुगर, और वानस्पतिक लुआब इत्यादि द्रव्य होते हैं। (Materia Medica of India.)

आधुनिक अन्वेषण—

डाक्टर कोमान के मत से अतीस की जड़ ने भयंकर पेचिश के रोगियों को तन्दुरुस्त किया और आँतों की सूजन के पुराने रोगियों को भी ठीक किया।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसकी जड़ सामायिक ज्वर निवारक, संकोचक, कामोत्तेजक और और पौष्टिक होती है। इसमें क्षार की मात्रा भी अधिक होती है। इसकी मात्रा एक से दो ड्राम तक अर्थात् तीन से छः माशे तक है। ढाई ड्राम तक यह सर्वथा निरापद है।

सुश्रुत, वाग्भट इत्यादि आचार्य्यों ने इसकी जड़ को सर्प और बिच्छू के विष को नष्ट करने वाली माना है। मगर आधुनिक खोजों के अनुसार इस सम्बंध में यह निरुपयोगी सिद्ध हुई है।

उपरोक्त अवतरणों से यह बात मालूम होती है कि यह औषधि अग्नि को दीप्त करने वाली तथा ज्वर, खून की दस्तें और पेट के कृमियों को नष्ट करने में अद्भुत शक्ति रखती है। इसके अतिरिक्त बालकों के तमाम रोगों पर यह औषधि अमृतोपम अक्सीर साबित हुई है। बालकों की बुखार, खाँसी, दस्तें, सर्दी, अजीर्ण, उल्टी, कृमि, कफ, यकृत की वृद्धि इत्यादि तमाम रोगों को यह औषधि नष्ट करती है।

उपयोग—

ज्वर—ज्वर आने के पहले इसके दो माशे चूर्ण की फंकी चार २ घंटे के अन्तर से देने से ज्वर उतर जाता है।

विषमज्वर—विषमज्वर, जूड़ीबुखार और पाली के बुखार में इसके चूर्ण को छोटी इलायची और और वंशलोचन के चूर्ण में मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।

अतिसार—अतिसार और आमातिसार में दो माशे चूर्ण की फंकी देकर आठ पहर की भिंगी हुई दो माशे सोंठ को पीसकर पिलाना चाहिये।

कृमिरोग—इसके चूर्ण में वायविडङ्ग का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से कृमिरोग दूर होता है।

बालरोग—(१) अकेली अतीस को पीसकर चूर्ण कर शीशी में भर कर रखना चाहिये। बालकों के तमाम रोगों के ऊपर आँख मीचकर इसका व्यवहार करना चाहिये। इससे बहुत लाभ होता है। बालक की उम्र को देखकर इसे एक से चार रत्ती तक शहद के साथ चटाना चाहिये।

(२) अतीस, काकड़ासिंघी, नागरमोथा और बच्च चारों औषधियों का चूर्ण बनाकर ढाई रत्ती से १० रत्ती तक की खुराक में शहद के साथ चटाने से बालकों की खाँसी, बुखार, उल्टी, अतिसार वगैरह दूर होता है।

(३) अतीस, नागरमोथा, पीपर, काकड़ासिंगी और मुलेठी, इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके ४ रत्ती से ६ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ चटाने से बच्चों की खाँसी, बुखार व अतिसार बंद होता है।

(४) अतीस और बायविडंग का समान भाग चूर्ण शहद के साथ चटाने से बच्चों के पेट के कृमि नष्ट होते हैं।

बनावटें—

अतिविषादि अर्क—अतीस, नागरमोथा मुलेठी, काकड़ासिंगी, पीपर, बच, बायविडंग, जायपत्री, जायफल, केशर ये सब वस्तुएँ एक-एक रुपये भर लेकर चूर्ण कर उसमें ३ माशे कस्तूरी मिलाकर उस चूर्ण को काँच के काग वाली स्टॉपर्ड बाटली में भरकर उसमें ४० रुपये भर रेक्टीफाइड स्पिरिट डालकर कॉग लगाकर ७ दिन तक धूप में रखना चाहिये। आठवें दिन दवा को मसलकर ब्लाटिंग पेपर में छान लेना चाहिये, इस दवा में से १ बूंद से लेकर १० बूंद तक अवस्थानुसार पानी या माँ के दूध में मिलाकर देने से बच्चों को होने वाली सर्दी, बुखार, खाँसी, कफ, निमोनिया, कमजोरी बेहोशी, तथा शीतकाल में बालकों के ऊपर होने वाले अनेक भयंकर रोग आराम होते हैं।

———:o:———

अदरख

नाम—

संस्कृत—आर्द्रक, शृङ्गवेरं, कटुभद्र, आर्द्रशाक, आर्द्रिका। हिन्दी—आदा, अदरख। गुजराती—आदु। मराठी—आले। बंगाली—आदा। पंजाबी—अदरक, तैलंगी—अल्लम, द्राविड़ी—हमि शोठ। फारसी—जंजबील रतब। लैटिन—Zingiber Officinale, Amomum Zingiber.

परिचय—

अदरक हिन्दुस्तान में सब स्थानों में बोया जाता है। इसका झाड़ प्रायः १ हाथ ऊँचा होता है। इसके पत्ते बाँस के पत्ते जैसे होते हैं। इसकी जड़ में एक प्रकार का कन्द होता है। उसको अदरख कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है एक चूँसेदार और दूसरा बिना चूँसेदार। यह चैत्र, वैशाख में बोया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अदरख भेदक, भारी, तीक्ष्ण, उष्ण, दीपन, चरपरा, पाक में मधुर रुक्ष तथा वात व कफ नाशक है।

लवण-मिश्रित अदरख अग्नि को दीपन करने वाला रुचि को उत्पन्न करने वाला, प्रिय, सारक तथा सूजन वात व कफ का नाशक है। एक स्थान पर लिखा है—

वात-पित्त-कफेभानां, शरीर वन चारिणां।
एक एव निहंत्यत्र, लवणार्द्रक केसरी॥

अर्थात् वात, पित्त और कफरूपी हाथी जो शरीर रूपी वन में विचरण करते-फिरते हैं। उनको मारने के लिये एक ही महापराक्रमी लक्षणयुक्त अदरखरूपी सिंह है।

अदरख कुष्ठ, पाण्डुरोग, मूत्रकृच्छ्र, रक्त-पित्त, व्रणरोग, ज्वर, दाह, ग्रीष्मऋतु और शरदऋतु में अपथ्य है, ऐसा भाव मिश्र का क़थन है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार अदरख तीसरे दर्जे में गरम, पहिले दर्जे में रुक्ष, पाचक, आध्मान व वायु को नाश करने वाला, क्षुधावर्द्धक, पक्वाशय की स्निग्धता व कफ को नाश करने वाला तथा पाचन-शक्ति को बढ़ाने वाला है। यह शीत प्रकृति वाले के लिए गुणकारी और उष्ण प्रकृति वाले के लिए हानिकारक है, इसकी जड़ें चरपरी, अग्निवर्द्धक, कामोद्दीपक, पौष्टिक, कफ निस्सारक व पेट के आफरे को दूर करने वाली होती है। यह नेत्र की ज्योति को बढ़ाने वाला, मस्तक के कृमियों को नष्ट करने वाला, गठिया, सिरदर्द, कमर के दर्द तथा दूसरी तकलीफों में फायदा पहुँचाने वाला है।

छोटे नागपुर में इसकी ताजी जड़ को पीसकर शहद के साथ मिलाकर आग पर गरम करके खाँसी के रोगियों को दी जाती है।

कम्बोडिया में इसकी जड़ें सुगन्धित व पौष्टिक द्रव्यों के रूप में काम में ली जाती हैं। फोड़े व ग्रन्थियों के ऊपर लगाने पर भी यह काम में लिया जाता है।

पेरक में इसकी जड़ की पतली २ फाँके कृमिनाशक औषधि के रूप में प्रसिद्ध हैं।

मलाबार में पयानूर नाम के स्थान में अदरख का ताजा रस जलोदर रोग में लाभ पहुँचाने वाला और मूत्र निस्सारक माना जाता है। ऐसे करीब तीन केस देखे गये हैं, जिनमें कि इसे जलोदर में औषधि के रूप में देने से लाभ हुआ है। इसके देने से पेट की सूजन में भी फायदा हुआ है। इस वनस्पति का ताजा रस तेज मूत्र निस्सारक औषधि मानी गई है। इसके देने से बीमार लोगों के दिन पर दिन मूत्र की मात्रा बढ़ती गई है। लेकिन यह औषधि पुराने हृदयरोग और ब्राइट्स डिसीज (गुर्दे की खास बीमारी जिसका सबसे प्रथम डाक्टर ब्राइट ने वर्णन किया था) में उपयोगी सिद्ध नहीं हुई बल्कि इसके उपयोग से रोगी की हालत दिन प्रतिदिन खराब होती गई है। (इंडियन मेडिकल प्लान्ट्स)

कर्नल चोपरा के मतानुसार अदरख पेट के आफरे को दूर करने वाला और पाकस्थली की अँतड़ियों को उत्तेजित करने वाला है। यही कारण है कि भारतीय चिकित्सा-शास्त्रों के अन्दर इसको इतना अधिक महत्व दिया गया है। यह कोष्ठवायु के लिये एक प्रकार का भेदक इलाज है। इसके मिश्रण से भारतीय व ब्रिटिश औषधि-विज्ञान में कई औषधियाँ बनाई जाती हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

अदरख में १ प्रतिशत से लगाकर ३ प्रतिशत तक एक प्रकार का पीले रंग का तेल रहता है। जोकिउड़नशील होता है। जेमिका के अदरख में यह १ प्रतिशत रहता है, अफ्रिका के अदरख में (दाहक तत्व) तीक्ष्ण तत्व रहते हैं, वे उड़नशील नहीं होते। इसके वैज्ञानिक तत्व क्या हैं? इसका पता अभी नहीं लगा है।

सोंठ व अदरख ये दोनों एक ही वस्तु हैं। गीली हालत में जब सोंठ रहती है तब उसे अदरक कहते हैं जब सूख जाती है तब सोंठ कहते हैं। भारतीय वैद्यक-शास्त्र में प्राचीनकाल से ही सोंठ का उपयोग इतना अधिक किया गया है कि जिसका विवेचन नहीं किया जा सकता। इस औषधि पर आर्षग्रन्थकारों कि इतनी श्रद्धा रही है कि प्रत्येक औषधि, चूर्ण, काढ़ा, गोली, पाक, अवलेह इत्यादि सब में इसका उपयोग उन लोगों ने किया है। इसका वर्णन हम आगे जाकर सोंठ के प्रकरण में करेंगे। अदरक के रस का उपयोग भी स्थान-स्थान पर किया गया है। मगर औषधि की बनिस्बत अनुपान के अन्दर अदरक का रस ज्यादा पसन्द किया गया है।

उपयोग—

***जलोदर*—पाँच तोले ताजे अदरक को कूट कर उसका रस निकाल लेना चाहिये। उस रस**

के बराबर की मिश्री उसमें मिलाकर जलोदर के रोगी को पहले दिन प्रातःकाल देना चाहिये। दूसरे दिन ७॥ तोले अदरक का रस निकाल कर समान भाग मिश्री के साथ देना चाहिये! इस प्रकार प्रतिदिन २॥ तोले अदरक का रस बढ़ाते हुए चले जाना चाहिये। जब यह मात्रा २५ तोले तक पहुँच जाय तब फिर उसको २॥ तोले प्रतिदिन के हिसाब से घटाना चाहिये। जब वह पूर्व की अर्थात् ५ तोले की मात्रा पर आ जाय, तब औषधि को बन्द करना चाहिये। अगर इतने पर भी सूजन का कुछ अंश बाकी रह जाय तो फिर उसे घटती-बढ़ती मात्रा में अदरक के स्वरस का सेवन करना चाहिये। जब तक औषधि चालू रहे तब तक रोगी को केवल दूध का आहार देना चाहिये।

बहुमूत्र—अदरक के रस में मिश्री मिलाकर दिन में दो बार देने से बहुमूत्र रोग में लाभ होता है।

वमन—एक तोले अदरक के रस को १ तोला प्याज के रस के साथ देने से उल्टी व जी की मिचलाहट बन्द होती है।

हैजा—अदरक का रस १ तोला, आक की जड़ १ तोला, इन दोनों को यहाँ तक खरल करे कि गोली बनाने योग्य हो जावे, फिर इसकी कालीमिर्च के बराबर गोली बना लेना चाहिये। इन गोलियों को कुन-कुने पानी के साथ देने से हैजे में लाभ पहुँचता है। इसी प्रकार अदरक का रस व तुलसी का रस समान भाग लेकर उसमें थोड़ी सी शहद अथवा उसमें थोड़ी-सी मोर के पंख की भस्म मिलाने से भी हैजे में लाभ पहुँचता है।

खाँसी व श्वास—अदरक के रस में शहद मिलाकर चटाने से श्वास, खाँसी, जुकाम व कफ मिटता है।

सूजन—अदरक के स्वरस में पुराना गुड़ मिलाकर पिलाने से सारे शरीर की सूजन उतरती है। परन्तु इस प्रयोग का सेवन करते समय केवल बकरी का दूध पिलाना चाहिये।

कान का दर्द—अदरक के रस को कुन-कुना करके कान में डालने से कान का दर्द मिटता है।

जोड़ों का दर्द—अदरक के एक सेर रस में तिल्ली का आधा सेर तेल डालकर आग पर चढ़ाना चाहिये। जब रस जलकर तेलमात्र शेष रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिये। इस तेल की शरीर पर मालिश करने से जोड़ों की वात-पीड़ा मिटती है।

कामला—अदरक, त्रिफला और गुड़ तीनों को मिलाकर पीने से कामला रोग मिटता है।

मन्दाग्नि—इसके रस में निम्बू का रस मिलाकर पिलाने से मन्दाग्नि दूर होती है।

दन्त पीड़ा—सर्दी की दन्तपीड़ा में इसके टुकड़े को दाँतों के बीच में दबाने से लाभ होता है।

बनावटें—

आर्द्रक अवलेह—पुराना गुड़ १ पाव, १ सेर अदरक के रस में मिलाकर उसकी पतली चासनी करें, फिर उसमें तज, पत्रज, नागकेसर, छोटी इलायची, लवंग, सोंठ, कालीमिर्च और पीपर आधी-आधी

छटाँक लेकर महीन चूर्ण कर उस चासनी में मिला दें। इस अवलेह को ३ माशे से १ तोले सबेरे-शाम चाटने से श्वास, खाँसी, मन्दाग्नि, कब्जियत तथा अरुचिरोग दूर होते हैं।



अन्तमूल

नाम—

संस्कृत—मलाण्ड, अण्डमल, पूति, अम्भपर्णा। हिन्दी—खड़की रास्ना, जङ्गली पिकवन। बंगाली—अन्तोमूल। उड़िया—मेण्डी। मराठी—पितकारी। तैलगू—कुक्कपाल। लैटिन—Tylophora Asthmatica.

वर्णन—

यह एक प्रकार की बहु-वर्ष जीवी लता है। इसकी जड़ें घनी और रसपूर्ण होती हैं। इसकी लकड़ी नरम होती है। इसकी शाखाएँ अधिक नहीं होतीं। इसके फूल बड़े और छत्र के आकार के होते हैं। इसके पुष्प-कोष बाहर से रूएँदार होते हैं। इसके बीज पीलापन लिये हुए हरे रंग के होते हैं। ये बीज चौकोर आकार के लम्बाई लिये हुए होते हैं। यह औषधि भारत के मैदानों, सिलोन, श्याम और मलाया द्वीप-समूह में पायी जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक और यूनानी निघण्टों में इस औषधि का कहीं भी वर्णन नहीं पाया जाता। सिर्फ भावप्रकाश के अन्दर मलाण्ड नाम से एक औषधि का वर्णन पाया जाता है और उसके सम्पूर्ण गुण और स्वभाव इस औषधि से मिलते हैं। इससे कई लोगों का अनुमान है कि मलाण्ड और अन्तमूल एक ही वस्तु है।

लेकिन आधुनिक औषधि-विज्ञान के अन्वेषणों में यह औषधि बहुत नामाङ्कित साबित हुई है। यह औषधि ऐलोपैथिक की प्रसिद्ध औषधि इपिकोना की उत्तम प्रतिनिधी सिद्ध हुई है। आयुर्वेद के अन्दर वमनकारक द्रव्यों में जिन प्रसिद्ध औषधियों के नाम आते हैं, यह औषधि भी अपने में उनसे कम प्रभाव नहीं रखती है। इसके सूखे पत्ते वमनकारक, ज्वरनिवारक और कफ निस्सारक होते हैं। यह पेट के ज्यादा भर जाने पर या उन बीमारियों में जिनमें वमनकारक औषधियों की आवश्यकता होती है बहुत ही उपयोगी है। पेचिश, जुकाम और उन बिमारियों में जिनमें अंग्रेजी दवा इपिकोना व्यवहृत होती है, यह बहुत अच्छा प्रभाव दिखलाती है।

कोकण में इस औषधि के रस को सुखाकर गोलियाँ बनाई जाती हैं, जो पेचिश की बीमारी के काम में आती है। इसके पत्तों का काढ़ा व इसकी जड़ की छाल का काढ़ा पेचिश, श्वास और वायु-नलियों के प्रदाह को दूर करने के उपयोग में लिया गया है और इसका बड़ा संतोषजनक परिणाम हुआ है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके सूखे पत्तों का चूर्ण पाँच से लेकर सात रत्ती की मात्रा में, या इसकी जड़ की छाल का चूर्ण भी इसी मात्रा में दिन में दो-तीन बार देने से प्रवाहिका और पेचिश में लाभ पहुँचता है। वायुनलियों के प्राचीन प्रदाह में और खाँसी में भी यह एक उत्तम कफ निस्सारक औषधि मानी गई है। यह औषधि इपिकोना की प्रतिनिधि है, इसमें टाइलो-फोराइन नामक एक क्षारीय सत्व रहता है।

डाक्टर मोहीदीन शरीफ़ का कथन है कि "इस देश के सँपेरों में सर्पविष को दूर करने के लिए यह औषधि प्रसिद्ध है। ऐसा कहा जाता है कि जब नेवले को साँप काट लेता है तब वह इसी पौधे से अपना विष नष्ट करता है।"

"वमन कराने वाली औषधियों में तथा प्रवाहिका (पतले दस्त) की चिकित्सामें यह औषधि देशी औषधियों में इपिकोना की सर्वोत्तम प्रतिनिधि है। दस से बीस रत्ती तक इसका चूर्ण लेकर उसमें दस बूँद टिंचर ओपियाई मिलाकर दिन में तीन-चार बार देने से यह सफलतापूर्वक उपरोक्त रोगों को दूर करता है।"

"सर्प-दंश को दूर करने में एमोनिया के पश्चात् दूसरी औषधियों की अपेक्षा अन्तमूल पर मेरा अधिक विश्वास है, सर्पदंशित मनुष्य को जब तक स्वतंत्ररूप से वमन न आने लगे तब तक अन्तमूल का ताजा रस थोड़ी २ देर पर देते रहने से अच्छा प्रभाव होता है। देशी औषधियों के व्यापक अनुभव के पश्चात् मुझे विश्वास हो गया कि इस देश की चार-पाँच सर्वोत्तम वामक (उल्टी लाने वाली) औषधियों में अन्तमूल भी एक प्रधान औषधि है। निर्मली तथा मैनफल के पश्चात् वामक औषधियों में इसका नम्बर है, वैसे तो इसका पञ्चाङ्ग ही वामक है, पर प्रवाहिका रोग में इसकी जड़ ही प्रधान रोग निवारक है।"

उपयोग—

प्रवाहिका—प्रवाहिका रोग में इसके पत्तों का चूर्ण साढ़े सात रत्ती, अफीम आधी रत्ती और थोड़ा-सा बबूल का गोंद मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है।

शिर दर्द और वातवेदना—इसकी जड़ को घिसकर सिर पर लेप करने से वातजनित शिर-पीड़ा दूर होती है।

हूपिंग कफ़—(कुक्कुर खाँसी) हूपिंग कफ़ की प्रथम अवस्था में इसका ढ़ाई रत्ती चूर्ण, २ माशे मुलेठी के शर्बत और सवा तोला पानी के साथ दिन में दो बार देने से लाभ होता है।

अतिसार—अतिसार की प्रथमावस्था में अगर ज्वर भी हो तो इसका पाँच रत्ती चूर्ण, ढ़ाई तोला जल, तीन माशे कीकर का लुआब और २ चाँवल भर अफीम के साथ देने से लाभ होता है।

अंधाहूली

नाम—

संस्कृत—अन्धः पुष्पी, रोमालु, दारपिका। हिन्दी—अन्धाहूली,। मराठी—जिन्धी, गावोजा। गुजराती—ऊँधाहुली,। बंगाली—चेतरहूली। लेटिन—Trichodesma Indicum (ट्राईकोडेस्मा इंडिकम)

विवरण—

अंधाहूली के झाड़ बरसात के दिनों में बहुत पैदा होते हैं। ये १ से लेकर २॥ फीट तक ऊँचे होते हैं। इनकी शाखाएँ जमीन के ऊपर फैली हुई रहती हैं। इन शाखाओं का रंग हलका हरा तथा लाल होता है। इसके पत्ते रुएँवाले चार इंच लम्बे तथा १ से १॥ इंच तक चौड़े होते हैं, इसके फूल कुछ हलके हरे रंग के तथा नीले होते हैं ये उल्टे लटके हुए रहते हैं। इसका फल जब पूरा पक जाता है, तब कुछ हरा रंग लिये हुए या पूरा सफेद हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

प्राचीन आयुर्वेदिक निघंटों में इस वनस्पति का कुछ भी वर्णन नहीं पाया जाता। केवल शालिग्राम-निघंटु के अन्दर इसके विषय में इतना ही लिखा हुआ है कि अंधाहूली नेत्रों को हितकारी, और गूढ़गर्भ को अपकर्षण करने वाली है।

गूढ़गर्भ के संबन्ध में आधुनिक खोजों के अनुसार भी यह औषधि बहुत उपयोगी साबित हुई है। वात-दोष से अथवा और दूसरे कारणों से कुछ स्त्रियों के पेट में रहा हुआ गर्भ सूख जाता है। यह गर्भ ज्यों-ज्यों सूखता जाता है त्यों त्यों पेट की वृद्धि इत्यादिक गर्भ-चिन्ह मिटते चले जाते हैं। इस प्रकार कुछ दिन महीने या वर्षों तक चलता रहता है, फिर जब अनुकूल संयोग मिलते हैं, तब यह गर्भ फिर पीछे बढ़ने लगता है और पीछे सब गर्भ के चिन्ह नजर आने लगते हैं। मगर थोड़े ही समय के बाद वह गर्भ फिर सूखने लगता है और इस प्रकार वर्षों गुजर जाते हैं। मगर न तो वह गर्भ नष्ट होता है और न प्रसव होता है। इसीको गूढ़गर्भ कहते हैं।

इस रोग के लिये अभी तक कोई भी सफल चिकित्सा नहीं पाई गई है। परन्तु इस औषधि के उपयोग लेने वालों का कथन है कि इस वनस्पति के झाड़ का स्वरस प्रति दिन सवेरे-शाम चार २ तोले की खुराक में गूढ़गर्भा स्त्री को पिलाया जाय तो कुछ ही समय में गूढ़गर्भ निकल जाता है। इस प्रकार जो कार्य्य दूसरी किसी भी औषधि और अन्य क्रिया से नहीं हो सकता, वह इस दवा के द्वारा चमत्कारिक ढंग से हो जाता है।

उपयोग—

जोड़ों की सूजन—इसकी जड़ को पीस कर लेप करने से जोड़ों की सूजन में लाभ पहुँचता है।

बच्चों की पेचिश—इसको पानी के साथ मिलाकर देने से बच्चों की पेचिश में लाभ पहुँचता है।

ज्वर—हक्स गूलर का कथन है कि लासबेला में इस औषधि को ज्वर दूर करने के उपयोग में लेते हैं।

सर्प-दंश—मेडिकल प्लांट्स के लेखक मेजर बसु और डा० कीर्तिकर इसे सर्प-दंश में भी उपयोगी मानते हैं। गारूड़ी ग्रन्थों में भी इसको सर्प-दंश के लिये उपयोगी माना है। एक स्थान पर कहा है—

ऊँधा फूली जड़ को आन, दो पैसा भर जल सँग पान।
सर्प-विष कोई ना रहै, सिद्धनाथ योगी यूँ कहै॥

मगर केस और महेस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्प-दंश में बिलकुल निरुपयोगी सिद्ध हुई है।

——:o*o:——

अनन्नास

नाम—

संस्कृत—अंनंनास, कौतुजसंज्ञक। **हिन्दी**—अनन्नास। **मराठी**—अननस। **गुजराती**—अनंनास। **लैटिन**—Annassa Sativa. (अननास सेटिवा)।

वर्णन—

यह वृक्ष आजकल हिन्दुस्तान के दक्षिणी और पूर्वी प्रान्तों में बहुत पैदा होता है। पहिले यह हिन्दुस्तान में पैदा नहीं होता था। इसके पत्ते केवड़े के पत्तों के समान होते हैं। पौधे के बीज में से बालियाँ निकलती हैं, जिसपर फल उत्पन्न होते हैं। फल के ऊपर कटे हुए आकार के छिलके होते हैं। फल का रंग पीला या कुछ ललाई लिये होता है। इसकी जड़ गुँवार पाठे की जड़ के समान होती है। इसके कच्चे फल का स्वाद खट्टा और पके हुए का खट-मीठा होता है।

प्रभाव और गुण दोष—

आयुर्वैदिक मत—निघंटु-रत्नाकर मतानुसार कच्चा अनन्नास रुचिकारक, हृदय को हितकारी, भारी, कफ-पित्तकारक, रुचिवर्द्धक तथा श्रमनाशक है। इसका पका फल स्वादिष्ट, पित्तकारक तथा रस विकार और आतप-विकार को दूर करता है।

इसके सिवाय आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसका कोई और उल्लेख नहीं मिलता। क्योंकि उस समय में यह फल यहाँ पैदा नहीं होता था।

यूनानी मत—मखजनूल अद्विया के लेखक मीर महम्मद हुसेन के मतानुसार अनन्नास दो प्रकार का होता है। पहिला साधारण, दूसरा क्षुद्र जो अत्यन्त मधुर और स्वादिष्ट होता है। इसकी प्रकृति दूसरे दर्जे में सर्द और तर तथा किसी-किसी के मत से पहिले दर्जे में गर्म और दूसरे दर्जे

में तर है। यह स्वरयन्त्र और श्वासोच्छ्वास सम्बन्धि अंगो को नुकसान पहुँचा है। अनानास का प्रतिनिधि सेव है।

अनन्नास पित्त की तेजी तथा यकृत और आमाशय की तेजी को नष्ट करने वाला, हृदय को बल देने वाला, प्रसन्नता पैदा करने वाला और मूर्च्छा को दूर करने वाला है। यह मस्तिष्क और आमाशय को ताकत देने वाला और निर्बल तथा शीत प्रकृति को बल देने वाला है।

मेजर वसु और डा० कीर्तिकर के मतानुसार इसके पत्तों का ताजा रस एक उत्तम कृमिनाशक औषधि मानी गई है और इसके फलों का रस शीतादि रोगों को नष्ट करने वाला माना गया है। कम्बोडिया में इसके फल और इस वृक्ष की जड़ें मूत्र निस्सारक समझी जाती हैं। इसका इस्तेमाल सुजाक और मूत्रकृच्छ्र की बीमारी में भी किया जाता है। गुरदे की पथरी में भी यह उपयोगी माना गया है। कहीं-कहीं पर इसके कच्चे फल को काट कर उबालते हैं, और मूत्रेंद्रिय सम्बंधी बिमारी के अन्दर पीने में काम में लेते हैं।

डा० चोपड़ा के मतानुसार इसके ताजे फलों का रस शक्कर के साथ मिलाकर कृमि-नाशक और दस्तावर औषधि के रूप में दिया जाता है। इसके पत्ते कृमि-नाशक हैं और फल एक प्रकार की गर्भस्रावक औषधि है।

प्रयोग—

आँतों के रोग—इसके पत्तों का रस पिलाने से आँतों के कीड़े मरते हैं।

हिचकी—इसके पत्तों के रस को शक्कर के साथ पिलाने से हिचकी बन्द होती है।

पेट की जलन—इसके पके फल का रस पिलाने से ज्वर से उत्पन्न हुई पेट की जलन शान्त होती है।

मूत्र-वृद्धि—इसके फल के रस में मिश्री मिलाकर पीने से मूत्र-वृद्धि होती है और चित्त प्रसन्न हो जाता है।

मासिकधर्म—इसके पत्तों का रस पिलाने से असमय में रुका हुआ मासिकधर्म फिर से शुरू होता है।

पित्तोन्माद—इसके एक भाग रस में दो भाग बूरा मिलाकर पिलाने से पित्तोन्माद मिटता है।

कृमिरोग—इसके पत्तों के सफेद भाग को मिश्री के ताजे रस के साथ पिलाने से कृमि-रोग मिटता है और साफ दस्त आता है।

बनावटें—

इसके फल के रस से शर्बत बनता है, जो पित्त को शमन करने वाला और प्रसन्नता को पैदा करने वाला होता है। इसी प्रकार इसके फल को काट करके उसका मुरब्बा भी बनाते हैं। जो भी यही गुण रखता है।

———

अनार

नाम—

संस्कृत—दाड़िम । **हिन्दी**—अनार । **मराठी**—डालिंब । **गुजराती**—दाड़म । **बंगला**—दाड़िम । **करनाटकी**—दारलिब । **तेलंगी**—डानिवंचेट्टु । **तामील**—मादलई चेदेड्डिं । **फारसी**—अनार । **अरबी**—रूमान हामिज । **लेटिन**—Punica Granatum. (प्यूनिका ग्रेनेटम)

वर्णन—

अनार का वृक्ष प्रायः सर्वत्र बगीचों में होता है । इसे प्रायः सभी लोग जानते हैं, इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यक्ता नहीं है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—भावप्रकाश के मतानुसार अनार तीन प्रकार का होता है । एक मीठा, दूसरा खट-मीठा, तीसरा केवल खट्टा । मीठा अनार—त्रिदोषनाशक, तृषा, दाह, ज्वर हृदयरोग, कंठरोग, और मुखरोग को दूर करने वाला, तृप्तिकारक, वीर्यवर्द्धक, हलका, किंचित कसेला, मलरोधक, स्निग्ध, मेधाजनक और बलवर्द्धक है । खट-मीठा अनार—दीपन, रुचिकारक, किंचित पित्तकारक, और हल्का है । खट्टा अनार—पित्तकारक, खट्टा तथा वात और कफ-नाशक है ।

आयुर्वेद के मतानुसार इसकी छाल और जड़ वायु नलियों के प्रदाह में उपयोगी तथा अतिसार को रोकने वाली और कृमिनाशक है । इसके फूल नाक से बहने वाले खून में बहुत लाभकारक हैं । इसका कच्चा फल पौष्टिक, पाचक, क्षुधावर्द्धक, पित्तकारक और वमन को रोकने वाला है । इसका पका फल पौष्टिक, आँतों को सिकोड़ने वाला, कामोद्दीपक, पित्तनाशक और त्रिदोष को नाश करने वाला है । प्यास, शरीर की जलन, बुखार, हृदयरोग, गले की बीमारियाँ और मुख की सूजन में भी इसका पका फल उपयोगी है । इसके फल का छिलका कृमिनाशक, रक्तातिसार और खाँसी में लाभ दायक है ।

यूनानी मत—यूनानी चिकित्सा के मतानुसार मीठा अनार पहले दर्जे में सर्द और तर है । खट्टा अनार दूसरे दर्जे में सर्द और रुक्ष है । खट-मीठा अनार, पहिले दर्जे में सर्द और तर है । अनार के बीज पहले दर्जे में सर्द और तर हैं ।

मीठा अनार—खून को पैदा करने वाला, रस क्रिया को दुरुस्त करने वाला, मूत्र निस्सारक, पेट को मुलायम करने वाला, यकृत को शांति देने वाला, कामोद्दीपक तथा कामेंद्रियों को बल प्रदान करने वाला है ।

खट्टा अनार—छाती की जलन तथा आमाशय और यकृत की गर्मी को शांत करने वाला तथा खून के प्रकोप, ज्वर-जन्य अतिसार और वमन में लाभदायक है ।

खट-मीठा अनार—पैत्तिक वमन, अतिसार और खुजली में लाभ पहुँचाने वाला, आमाशय को बल प्रदान करने वाला व हिचकी को नष्ट करने वाला है ।

सब तरह के अनार—मूर्च्छा में लाभ पहुँचाने वाले, हृदय को बल देने वाले और खाँसी को नष्ट करने वाले होते हैं। बेदाना अनार सब अनारों में उत्तम होता है।

उपरोक्त वर्णन से मालूम होता है कि अनार के अन्दर हृदय को बल देने की और कृमियों को नष्ट करने की अच्छी शक्ति है। विशेष कर पेट के अन्दर चपटी जाति (Tape Worm) के कीड़े पड़ते हैं, उनको नष्ट करने में अनार बहुत अक्सीर वस्तु है। बिग्रेड सरजयन्-जॉइंट एम० डी० का कथन है कि अनार की जड़ की छाल के समान चपटे कृमियों को नष्ट करने वाली दूसरी कोई दवा नहीं है। इसका उपयोग करने की तरकीब यह है—

अनार की जड़ की छाल ५ तोला लेकर २॥ सेर पानी में २४ घंटे तक भिगोना चाहिये। उसके बाद मल-छानकर उबालना चाहिये, जब सवा सेर पानी बाकी रह जाय तब उसके तीन भाग करके दो-दो घंटे में एक-एक भाग रोगी को भूखे पेट पिलाना चाहिये, उस रोज रोगी को कुछ भी खाने के लिये नहीं देना चाहिये। दूसरे दिन प्रातःकाल एरंडी के तेल का जुलाब देना चाहिये। जिससे तमाम टेप वर्म्स मरी हुई हालत में सही सलामत ढंग से निकल जाते हैं। इन कृमियों को नष्ट करने में जहाँ अन्य औषधियाँ निष्फल हो जाती हैं,वहाँ यह औषधि कभी निष्फल नहीं जाती।

कर्नल चोपड़ा का कथन है कि यह फल बहुत उपयोगी है। कृमि उपचार के लिये इसकी उपयोगिता अमूल्य मानी गई है। टेप वर्म्स के नाश के लिये इसकी बहुत तारीफ की गई है। इसके देने की तरकीब यह है कि इसकी जड़ का ताजा छिलका १ छटाँक लेकर १। सेर पानी में औटाया जाय, जब आधा सेर पानी रह जाय तब ठंडा करके छान लिया जाय। इसमें से एक छटाँक भर पानी प्रातःकाल ही खाली पेट दिया जाय। शेष पानी की चार खुराकें करके हरएक खुराक आधे २ घंटे के अन्दर देदी जाय। उसके पश्चात् अरंडी के तेल का जुलाब दे दिया जाय। इससे आँतें साफ होकर पेट के सब कीड़े बाहर निकल पड़ते हैं।

इंडियन मटेरिया मेडिका के लेखक डॉ० नाड़करनी, डाक्टर वामन गणेश देसाई M. B. इत्यादि महानुभाव भी उपरोक्त विधि का जोरों के साथ समर्थन करते हैं।

कृमियों के अतिरिक्त नकसीर के अन्दर भी इसके फूलों का रस बहुत फायदेमंद साबित हुआ है।

डाक्टर नॉडकरनी का कथन है कि दाड़िम के फूल का रस और दुर्वा का रस समान भाग लेकर सूंघाने से नाक के अन्दर से गिरने वाला खून बंद हो जाता है।

बंगाल के सिविल सर्जन डाक्टर बसु लिखते हैं कि नकसीर के कई एक केसों में अनार के फूलों का रस सुँघाने से बहुत लाभ होता हुआ दिखलाई दिया है।

उपयोग—

सूखा रोग—यह रोग प्रायः बच्चों को होता है। रोग होने पर बच्चा दिन-ब-दिन सूखता हुआ चला जाता है,उसका पेट कठिन हो जाता है। इस रोग में अनार की जड़ की छाल का क्वाथ (काढ़ा)

बनाकर देने से बहुत लाभ होता हुआ दिखाई दिया, यह काढ़ा बड़े मनुष्यों की कमजोरी, यकृत की वृद्धि जीर्णज्वर इत्यदि रोगों में भी लाभ पहुँचाता है।

कामला—अनार का रस ६-७ तोले और ज़रिश्क ६ माशे मिलाकर दोनों टाइम पिलाने से कामला रोगी को लाभ पहुँचता है।

खाँसी—अनार के फल के छिलके को मुँह में रख कर उसका रस चूसने से खाँसी में लाभ होता है।

खूनी अतिसार--कुटज और अनार के वृक्ष की छाल इन दोनों का काढ़ा बनाकर शहद के साथ देने से दुर्दमनीय रक्तातिसार में भी फौरन लाभ पहुँचता है।

बवासीर—अनार के वृक्ष की छाल के काढ़े में सोंठ का चूर्ण मिलाकर पिलाने से बवासीर से बहता हुआ खून बंद होता है।

उन्माद और हिस्टिरिया—अनार के पत्ते १ तोला, गुलाब के ताजे फूल १ तोला, दोनों को आधा सेर पानी में औटाकर आधपाव पानी शेष रहने पर उसको छानकर १ तोला गरम-गरम गाय का घी मिलाकर सुबह-शाम पिलाने से हिस्टिरिया और उन्माद में लाभ होता है।

कुच-कठोर—स्त्रियों के यौवन की शोभा उनके कुचों की कठोरता में समाई हुई है। यदि उसमें किसी प्रकार की खामी होती है तो दम्पति के बीच में जैसी चाहिये वैसी प्रीति नहीं रह सकती। अनार के वृक्ष के अंदर यह गुण बहुत बड़ी मात्रा में है। इसका प्रयोग इस प्रकार होता है।

अनार के झाड़ का पचांग अर्थात् फल, फूल, पत्ते, छाल और जड़ें सब मिलाकर, २ सेर वजन लेकर उसको कूटकर ६ सेर पानी और २ सेर सिरके में ३ दिन तक भिंगो देना चाहिये। उसके पश्चात् उसको औटाकर जब २ सेर पानी शेष रह जाय, तब छानकर लोहे की कढ़ाई में डालकर १ सेर बादाम का तेल तथा १० तोला थूहर का हरा गर्भ डालकर मंदाग्नि से पकाना चाहिये। जब पानी और थूहर का गर्भ जल जाय तब उसको उतार कर छानना चाहिये। उसके पश्चात् उसे फिर हल्की आँच पर चढ़ाकर उसमें १। रुपये भर हीराबोल (बीजा बोल) का चूर्ण डालकर खूब हिलाना चाहिये। जब अच्छी तरह से मिल जाय तब उतारकर बोतल में भर कर ७ दिन तक पड़ा रहने देना चाहिये। इसके पश्चात् उपयोग में लेना चाहिये।

इस तेल को प्रतिदिन सबेरे-शाम कुचों पर मालिश करना चाहिये। फिर ढ़ीले पड़े हुए कुचों को उठाकर कपड़े का पट्टा बाँधना चाहिये। कुछ समय तक इस तेल का प्रयोग करने से कुच अनार की तरह कठोर हो जाते हैं। (जंगलनी जड़ी-बूटी)

स्त्री-प्रदर—अनार की जड़ की छाल ५ रुपये भर लेकर एक सेर पानी में उबालना चाहिये। जब आधा सेर पानी शेष रह जाय तब उसमें ३ तीन माशे फिटकरी डालकर उस पानी की पिचकारी लेने से स्त्रियों के श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, गर्भाशय के व्रण इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचता है।

कंठमाला, भंगदर इत्यादि—अनार के पत्तों का रस १ सेर, सत्यानाशी का रस १ सेर, गोमूत्र १ सेर, काले तिलों का तेल २ सेर, अनार के पत्तों की लुग्दी आधा सेर, सबको मिला कर आग पर चढ़ाना चाहिये। जब सब द्रव्य जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उतार कर ठंडा करलें, इस तेल के लगाने से कंठमाला, भगंदर, कोढ़ के जख़्म, दाद, चेहरे के काले धब्बे, कील, झाँई इत्यादि रोग दूर होते हैं। इसको दिन में तीन बार लगाने से हाथी पाँव (श्लीपद) में भी लाभ पहुँचाता है।

सिर की गंज—अनार के पत्तों को पानी में पीसकर दिन में दो बार मालिश करने से गंज दूर होती है।

बहिरापन—अनार के पत्तों का रस १ सेर, बिल्व पत्रों का रस १ सेर गाय का घी १ सेर तीनों वस्तुओं को मिलाकर हलकी आँच पर पकाना चाहिये। जब घी मात्र शेष रह जाय तब उतार कर ठंडा कर लेना चाहिये। इसमें से २ तोला घी, पावभर गाय के दूध के साथ मिश्री मिलाकर पीने से कानों का बहिरापन दूर होता है।

जहरी जानवरों का डंक—अनार के हरे पत्तों को पीसकर भिड़, वर्र, ततैया, मधुमक्खी, बिच्छू इत्यादि जहरी जानवरों के डंक पर मसलने से लाभ होता है।

वृहत्-दाड़िमाष्टक चूर्ण—अनार दाना ३२ तोले, मिश्री ३२ तोले, पीपर ४ तोले, पीपलामूल ४ तोले, अजमोद ४ तोले, कालीमिर्च ४ तोले, धनियाँ ४ तोले, जीरा ४ तोले, सोंठ ४ तोले, बंशलोचन १ तोला, दालचीनी ८ माशा, तेजपात ८ माशा, इलायची के बीज ८ माशे, नागकेसर ८ माशे, इन सब वस्तुओं को कूट पीसकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण की ३ माशे की खुराक दिन में दो-तीनबार लेने से अतिसार, क्षय, गोला, संग्रहणी, मंदाग्नि,खाँसी, गले के रोग इत्यादि में लाभ पहुँचता है।

दाड़िम पुटपाक—एक अनार को साबित लेकर उस पर बड़ के पत्ते लपेट कर डोरे से बाँध दो, फिर उसपर कपड़ मिट्टी कर सुखालो,जब सूख जाय तब उसे जंगली कंडों की आग में पकालो। पकने पर ठंडा कर उसकी मिट्टी दूर करलो। फिर इस अनार को कपड़े में रखकर जोर से दबाकर रस निकाल लो। इस रस में शहद मिलाकर तीन तोले तक की खुराक में लेने से अतिसार, आम के दस्त, खूनी दस्त इत्यादि रोग आराम होते हैं।

शर्बत अनार—पानी के अंदर एक सेर चीनी डालकर उसकी चाशनी करलो, उसके बाद उसमें आधा सेर अनार का रस डालकर उसकी एक तार की चाशनी करके बोतलों में भर दो। इस शर्बत को २ तोले से ढाई तोले तक की मात्रा में लेने से दिल की जलन, आमाशय की जलन, घबराहट, मूर्छा, प्यास, इत्यादि शिकायतें दूर होती हैं। यह शर्बत हृदय को बलकारी है।

———:०:———

अनास-फल

नाम—

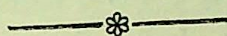
हिन्दी—अनास फल। बंगाली—बादियान। मराठी—अनसफ़ल। फ़ारसी—बादियाने खताई, राजियानदे खताई। तैलगू—अनासा पुब्बू। लैटिन—Illicium Religisum.

पहिचान—

यह एक प्रकार का झाड़ीदार वृक्ष होता है। इसकी शाखाएँ नीचे से ही फूटतीं हैं। इसके पत्ते नरम और दोनों तरफ से नोकदार होते हैं। इसके फूल में अठारह के करीब पंखड़ियाँ होतीं हैं। यह हिमालय में चार हजार से पाँच हजार फीट तक की ऊँचाई पर होता है।

गुण—

इसके बीज सुगन्धित, उत्तेजक और पेट के अाफ़रे को दूर करने वाले होते हैं। इनको परिश्रुत करने से इनमें से सौंफ़ की तरह एक प्रकार का तैल प्राप्त होता है। इसीसे यह औषधि सौंफ के स्थान में व्यवहृत होती है।



अनोना मुरीकेटा

नाम—

तामील—पूलिफल, मुलुचिता। कनाड़ी—मुलुरामफल। लैटिन—Annona Muricata.

वर्णन—

यह वनस्पति अमेरिका में विशेषरूप से पैदा होती है, मगर कुछ समय से पूर्वीभारत में भी लगाई जाने लगी है। यह एक छोटे कद का हमेशा हरा रहने वाला वृक्ष होता है। इसके पत्तों में गंध आती है। इनकी नोक तीखी होती है। ये ऊपर से चमकीले और नीचे से मटमैले होते हैं। इसके फूल बड़े होते हैं। इनकी बाहरी पँखड़ियाँ मोटी और दलदार रहती हैं तथा भीतरी पँखड़ियाँ छोटी और पतली रहती हैं। इसका फल गोल, बड़ा, दलदार और मनुष्य के दिल की शकल का होता है। इसका रंग गहरा हरा रहता है। इसका छिलटा फिसलना और गंधयुक्त होता है। इसका गूदा सफेद और रसदार रहता है। यह स्वाद में कुछ खट्टा होता है और इसमें आम से मिलती हुई गंध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद और यूनानी ग्रंथों में न तो इस औषधि का नाम ही मिलता है और न वर्णन ही। आधुनिक वानस्पतिक अन्वेषणों में इस औषधि का उल्लेख हुआ है।

इंडियन मेडिकल प्लांट्स के मतानुसार इसके बीज वमनकारक और संकोचक होते हैं, इसकी जड़ आक्षेपनिवारक मानी जाती है। इसके पत्ते ज्वर में उपयोगी हैं और पीब निकालने के लिये ये घाव पर लगाये जाते हैं। इसके फूल और इनकी कलियाँ खाँसी की बीमारी में उत्तम होती हैं। इसके सुखाये हुए कच्चे फल जीर्ण आमातिसार में उपयोगी समझे जाते हैं। इनका प्रयोग काढ़े के रूप में किया जाता है।

ब्राफोल के अन्दर इसके पत्तों को गरम पानी में उबाल कर या तेल के साथ पीसकर अर्बुद (गठान) को पकाने के लिये बाँधे जाते हैं। इसकी जड़ कृमिनाशक होती है।

——ॐ——

अनंतमूल

नाम—

संस्कृत—उत्पल सारिवा। **हिन्दी**—गौरीसर, अनंतमूल। **बंगाली**—अनंतमूल। **मराठी**—ऊपरसाल। **गुजराती**—उपलसरी, कावरबेल, धूपीबेल, कालीबेल। **लेटिन**—(Hemi Desmus Indicus) हेमी डेसमस इन्डिकस। **अंग्रेजी**—Indian Sarsaparilla (इन्डियन सार्सापरीला)

वर्णन—

यह औषधि उत्तर हिन्दुस्तान में बाँदा से अवध और सिक्किम तक और दक्षिण में ट्रावनकोर और सिलोन तक पहाड़ी प्रदेशों में पैदा होती है। इसकी लताएँ गहरे लाल रंग की होती हैं। पत्ते तीन-चार अंगुल लम्बे जामुन के पत्तों के समान होते हैं। इन पत्तों पर सफेद रंग की लकीरें होती हैं। इन पत्तों को तोड़ने से उनमें दूध निकलता है। इसके फूल छोटे और सफेद रंग के होते हैं। उनके ऊपर फलियाँ लगती हैं और फलियाँ कटने पर उसमें से रूई निकलती है। इसकी जड़ लम्बी, गोल और टेढ़ी-मेढ़ी रहती हैं। जड़ के ऊपर की छाल का रंग लाल होता है। जड़ के अन्दर कपूर कचरी के समान मनोहर सुगंध आती है। जिन जड़ों के अन्दर सुगंध आती हो, वही जड़ें औषधि के काम में लेने योग्य होती हैं। इसकी जड़ में एक उड़ने वाला और सुगंधित द्रव्य रहता है। उसी द्रव्य के ऊपर इसके सारे गुण अवलम्बित हैं। अनंतमूल दो प्रकार की होती है, एक सफेद और एक काली, गोरी को गौरीसर और काली को कालीसर कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघण्टु-रत्नाकर के मतानुसार अनंतमूल शीतल, मधुर, शुक्रजनक, भारी, स्निग्ध, कड़वी, सुगन्धित, तथा कोढ़, कंडू, ज्वर, देह की दुर्गंध, मन्दाग्नि, श्वास, खाँसी, अरुचि, आम, त्रिदोष, बिष, रुधिर विकार, प्रदररोग, कफ, अतिसार, तृषा, दाह, रक्तपित्त और वात को हरने वाली है।

भाव प्रकाश के मतानुसार दोनों प्रकार की अनंतमूल स्वादिष्ट, स्निग्ध, शुक्रजनक, भारी तथा मंदाग्नि, अरुचि, श्वास, खाँसी, आम, विष, त्रिदोष, रक्तप्रदर, और ज्वरातिसार को हरने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसकी जड़ विरेचक, ज्वर-नाशक, मूत्रवर्द्धक तथा आधा शीशी, जोड़ों के दर्द, उपदंश, एवं धवलरोग को नष्ट करने वाली है। इसके पत्ते वमन, सर्दी, घाव और धवलरोग में लाभकारी है। इसकी लकड़ी का स्वाद कड़वा होता है। यह ज्वरनिवारक, मूत्रवर्द्धक, मृदुविरेचक, सूजन को कम करनेवाली, मस्तिष्क और यकृत के रोगों में लाभदायक, किडनी, मूत्राशय, उपदंश पुरातन प्रमेह व अन्य मूत्ररोगों में उपयोगी, गर्भाशय सम्बंधी शिकायतों को दूर करनेवाली, पक्षाघात, (लकवा) खाँसी, और श्वास में फायदा पहुँचाने वाली है। दाँत के दर्द पर इसकी डाली के कुल्ले उपयोगी होते हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह पोषणशक्ति के क्षय में उपयोगी, रक्तशोधक, उपदंश व गठिया में हितकारक, सर्पदंश व वृश्चिकदंश में उपयोगी है।

आधुनिक खोजों से यह पता चला है कि यह औषधि रक्त के ऊपर अपना सीधा असर दिखलाती है और इसीलिये अंग्रेजी में इसे (Indian Sarsaparrilla) इन्डियन सार्सापरिला के नाम से सम्बोधित किया गया है। डाक्टर नॉडकरनी (इन्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक) का कथन है कि—

" Indian Sarsaparrilla is said to be more useful than the American. Sarsa-root as an alterative tonic. "

अर्थात् रक्त की शुद्धि और धातु परिवर्तन के लिये अनंतमूल अमेरिकन सार्सापरिला की अपेक्षा विशेष उपयोगी कहा जाता है। रक्त के अतिरिक्त, मूत्राशय, आमाशय और स्नायुमण्डल पर भी इस औषधि का अच्छा असर होता है। इसके बनाये हुए शीतल क्वाथ से मूत्राशय पर किसी प्रकार का खराब असर नहीं होते हुए मूत्र विरेचन (पेशाब का जुलाब) होकर साधारण तौर से तिगुना-चौगुना पेशाब उतरता है, पसीना होता है, भूख लगती है और रक्त की शुद्धि होती है।

कर्नल चोपड़ा का कहना है कि सार्सापरिला के अन्दर दो मुख्य अंग हैं। पहला 'Enzyme' जो कि एक प्रकार का तेल है और दूसरा 'Saponin' मगर इन दोनों तत्वों में उपदंश के विष को नाश करने का गुण नहीं पाया जाता।

बालकों के रोगों पर भी यह औषधि बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। वायविडंग के साथ इस औषधि का सेवन करने से भयंकर "सूखा" (Rickcts) रोग में भी लाभ पहुँचाता है।

प्रतिनिधि—इस औषधि की प्रतिनिधि उसबा है।

उपयोग—

आँख की फूली—अनन्तमूल के पत्तों की राख करके उसको शहद के साथ आँजने से, या इस की जड़ को बासी पानी में घिसकर आँजने से आँख की फूली नष्ट हो जाती है।

सर्प-दंश—अनन्तमूल की जड़ को घिसकर चाँवल के धोवन के साथ पिलाने से तथा उसको आँख में आँजने से सर्प-दंश में लाभ होता है।

बवासीर—दूधेली के पत्ते के रस में अनन्तमूल की जड़ का चूर्ण एक चाँवल बराबर देने से सात दिन में बवासीर में लाभ होता है।

मूत्रावरोध—खाँखरे के फूल का पानी बनाकर उस पानी में अनन्तमूल की जड़ घिसकर देने से रुका हुआ पेशाब होने लगता है।

पथरी रोग—इसकी जड़ के चूर्ण को गाय के दूध के साथ देने से पथरी और मूत्र की पीड़ा बंद हो जाती है।

कंठमाल—अनन्तमूल का शीतल क्वाथ दिन में तीन बार ढाई-ढाई तोला पिलाने से कंठमाल, फोड़े, फुन्सी और उपदंश सम्बन्धी बीमारियों में लाभ पहुँचता है।

मूत्र रोग—इसकी छोटी जड़ को केले के पत्ते में लपेट कर आग में भून कर जीरे और शक्कर के साथ पीस कर घी में मिलाकर चटाने से वीर्य और मूत्र सम्बन्धी कई रोग मिटते हैं। इसी वस्तु को लेप के रूप में मूत्रेंद्रिय पर लगाने से मूत्रेंद्रिय की सूजन भी मिटती है।

जिन स्त्रियों के गर्मी की वजह से या और किसी कारण से गर्भपात होता हो या बालक जन्मतेही मर जाता हो, उस स्थिति में स्त्री के गर्भवती होते ही अनन्तमूल का शीतल कषाय देते रहने से गर्भपात होना बंद हो जाता है तथा अत्यंत निरोग हृष्ट-पुष्ट और गौरवर्ण का बालक पैदा होता है।

दंत रोग—इसके पत्तों को पीसकर दाँतों के नीचे दबाने से दंतरोग दूर होता है।

बनावटें—

बालोपयोगी शर्बत—अनन्तमूल १० तोला, बायविडंग १० तोला, दोनों औषधियों को पीसकर १ सेर पानी में जोश देकर जब डेढ़पाव पानी शेष रहे, तब छान कर उस पानी में १ सेर शक्कर का बूरा डालकर फिर आग पर चढ़ा देना चाहिये। जब एक तार की चाशनी हो जाय, तब उसमें "केलशियम हायपो फासफेट" और "हायपो फासफेट ऑफ सोडा" नामक दोनों अंग्रेजी दवाएँ छः २ माशे डालकर अच्छी तरह से मिलाकर बोतल में भर देना चाहिये। यह दवा बालकों की उम्र के अनुसार २ माशे से ६ माशे तक दिन में ३-४ बार देने से बालकों का सूखा रोग नष्ट होता है। तथा उनकी पाचनशक्ति बढ़कर उनका रक्त साफ होता है।

अनन्त मूलादिक चूर्ण—अनंतमूल १० तोला, शतावरी ५ तोला, चोर-चीनी ५ तोला, रासना ५ तोला, मुलेठी २॥ तोला, हरडे का चूर्ण २॥ तोला, बायविडंग २ तोला, उपलेट १॥ तोला, लवंग ६ माशा, नागर मोथा ६ माशा, गिलोय का सत २॥ तोला, इन सब चीजों को मिलाकर कूट पीसकर छानकर बोतल भर कर रख देना चाहिये। इस चूर्ण में से ३ माशा सुबह-शाम लेकर ऊपर से दूध पीने से प्रमेह, जीर्णज्वर, कमजोरी, कब्जियत, मंदाग्नि और रक्तविकार दूर होते हैं।

सार्सापरिला—अनंतमूल २० तोला और मंजिष्ठादिक्वाथ का चूर्ण २० तोला लेकर ४ सेर पानी के अन्दर जोश देकर जब एक सेर पानी बाकी रहे, तब उतार कर छान लेना चाहिये। उसके बाद

उसको फिर से उबालकर जब आधा सेर पानी बाकी रहे तब उस में "एक्स्ट्रेक्ट सार्सापरिला लिक्विड" ५ तोला, रेक्टीफाइड स्पिरिट ५ तोला और पोटास आयोडाइड ५॥ माशा, मिलाकर बोतलें भर लेना चाहिये। इस सार्सापरिला में से ३ माशे से ६ माशे तक की खुराक दिन में तीन बार पानी के साथ लेने से रक्तविकार, खाज, खुजली तथा गर्मी के उपद्रव मिटते हैं।

रक्तशोधक अरिष्ट—अनन्तमूल, उसबे की जड़, खैर की छाल, गोरखमुण्डी, इन्द्रायण की जड़—ये सब वस्तुएँ आधा २ पाव, मजीठ, नीम-गिलोय, उन्नाव, सरपंखे की जड़, चिरायता, सिरस की अन्तर्छाल, चोबचीनी, गुलाब के फूल, बाबची के बीज, ये सब चीजें छटाँक २ भर, लेकर सबको कूटकर सोलह सेर पानी में औटा लें, जब औटते २ चार सेर पानी शेष रह जाय, तब उतारकर छान लें, पश्चात् इन्द्रायण की जड़ सवा तोला, तथा नीम के फूल, वरियारी, खैरसार, मेंहदी, कूट, कासनी की जड़, गुल-बनफ़शा, ये सब औषधियाँ साढ़ेसात २ माशे, धावड़ी के फूल आठ तोला और काली दाख पाँच तोला, इन सब का चूर्ण करके उपरोक्त क्वाथ में अच्छी तरह मिलावें। उसके बाद उसमें पचास तोला शहद और सवा सेर गुड़ डालकर खूब मिलाया जाय, जब सब चीजें एक जीव हो जाय, तब उसको चीनी की बरनियों में भरकर मुँह बन्द करके एक मास तक पड़ी रहने दें। उसके बाद छानकर बोतलों में भरलें।

इस औषधि को एक तोले से अढ़ाई तोले तक भोजन के पश्चात् दोनों टाइम पानी के साथ लेने से हर तरह का रक्तविकार, कोढ़, खुजली, उपदंश के विकार, फोड़े फुन्सी आदि रोग नष्ट होते हैं।

अपराजिता

नाम—

संस्कृत—विष्णुकांता, अपराजिता, गोकर्णिका, गिरि कर्णिका। **हिन्दी**—कोयल, कालीजीर। **बंगाली**—अपराजिता। **मराठी**—काजली, गोकर्णी। **गुजराती**—गरणी। **मारवाड़ी**—कोयली का बीज। **लैटिन**—Clitoria Ternatea. (क्लिटोरिआ, टरनेटिआ) **फारसी**—अशखीस। **अरबी**—माजरीयून।

वर्णन—

यह बहुवर्ष जीवी एक वानस्पतिक लता है। यह दो प्रकार की होती है। एक सफेद, दूसरी नीली। नीले फूलों की बेल भी दो प्रकार की होती है, एक के इकहरे और दूसरी के दोहरे फूल लगते हैं। इसके पत्ते बनमूंग के पत्तों के समान, पर उनसे कुछ बड़े और एक २ सींक पर सात २ लगते हैं। इसके फूल का आकार गाय के कानों के समान होता है। इसीसे इसको गोकर्णी भी कहते हैं। इसकी

कुछ बेलों पर नीले रंग के सुंदर फूल आते हैं, जिससे इसको विष्णुकांता भी कहते हैं। इसके फूल दो इंच लम्बे और डेढ़ इंच चौड़े होते हैं। इसके फूल बहुत सुन्दर और आकर्षक होते हैं और इसीसे अनेक धनी और शौकीन लोग अपनी पुष्प-वाटिकाओं में वितान बनाकर उस पर इस बेल को छाते हैं। इसके ऊपर मटर की फलियों के समान चपटी फलियाँ लगती हैं, जिसमें से उड़द के समान काले बीज निकलते हैं।

आजकल के कुछ वैद्य कालादाना और अपराजिता के बीजों को एक ही वस्तु मानते हैं। तामील भाषा के अन्दर अपराजिता और कालादाना दोनों औषधियों के लिये एक ही नाम का प्रयोग हुआ है। मगर आयुर्वेदीय कोष के रचयिताओं के मतानुसार ये दोनों अलग २ वस्तुएँ हैं। उनके मतानुसार कालेदाने का गात्र एवं वर्ण रुक्ष और कृष्ण होता है। इसके विपरीत अपराजिता के बीजों का रंग कृष्ण और गात्र चिकना होता है।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत के अनुसार सफेद कोयल, चरपरी, शीतल, कड़वी, बुद्धिदायक, नेत्रों को हितकारी, कसैली, दस्तावर, विषनाशक तथा त्रिदोष, मस्तक-शूल, दाह, कोढ़, शूल, आम, पित्तरोग, सूजन, कृमि, व्रण, कफ, ग्रहपीड़ा, मस्तकरोग और सर्प के विष को नष्ट करती है।

नीली कोयल कड़वी, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, शीतवीर्य तथा वातपित्त, ज्वर, दाह, भ्रम और पिशाच-बाधा, रक्तातिसार, उन्माद, मद, अत्यंत खाँसी, श्वास, कफ, कोढ़, जंतु और क्षयरोग को दूर करती है।

सफेद फूल वाली की जड़ स्वाद में कड़वी, ठंडी, विरेचक, मूत्रनिस्सारक, कृमिनाशक और विषनिवारक होती है। यह दिमाग़ को पुष्ट करती है, नेत्ररोग में लाभ पहुँचाती है। आँखों की पलकों के फोड़ों को नष्ट करती है तथा क्षयरोगजन्य ग्रंथियाँ, श्लीपद, सिरदर्द, त्रिदोष, धवलरोग, जलन, पित्त, सूजन, फोड़ा, कफ तथा सर्पदंश में उपयोगी है।

नीले फूल वाली, इसमें भी सफेद फूल वाली जाति के सभी गुण मौजूद हैं। इसके अलावा यह कामोद्दीपक और पेचिश को ठीक करने वाली है। भयंकर वायु-नलियों के प्रदाह में, श्वास में, जलोदर में तथा पेट के बढ़ जाने में भी यह लाभ पहुँचाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसकी जड़ मूत्रनिस्सारक और विरेचक है। यह उदर शोथ (पेट की सूजन) में भी उपयोगी है तथा ज्वर में भी लाभ पहुँचाती है।

इंडियन मटेरिया मेडिका के लेखक डॉक्टर नॉडकरनी के मतानुसार यह औषधि दृष्टि नैर्बल्य, कंठक्षत, श्लेष्मविकार, अर्बुद तथा शोथ इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचाती है। उनका कथन है कि अपराजिता के बीज को भूनकर १० से लेकर ३० रत्ती की मात्रा तक देने से जलोदर, प्लीहा व यकृत की वृद्धि में बहुत लाभ पहुँचता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार अपराजिता की जड़ मलशोधक तथा मूत्रल है और सर्पविष में प्रयोग की जाती है।

मटेरिया मेडिका ऑफ इंडिया के लेखक डॉक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार अपराजिता की जड़ स्निग्ध, मूत्रकारक एवं मृदु रेचक है और पुरानी खाँसी, जलोदर, सूजन, प्लीहा, यकृत की वृद्धि, और क्रूप (Croup.) खाँसी में व्यवहृत होती है।

डॉक्टर ए० सी० मुकर्जी के मतानुसार कर्णशूल (कानों की पीड़ा) में विशेषतया उस अवस्था में जब कि कान के आसपास की ग्रंथियाँ सूज गई हों,कान के चारों ओर अपराजिता के पत्ते के रस में सेंधा निमक मिलाकर गरमा-गरम लेप करने से लाभ होता है।

'हिन्दी-आयुर्वेदीय कोष, के लेखकों के मतानुसार अपराजिता के पत्तों की लुगदी नरकहिया (Whitlow) फोड़े पर बाँधने और निरतर जल में तर रखने से बहुत लाभ होता है।

सर्प-विष—'जंगलनी जड़ी-बुटी' नामक गुजराती ग्रंन्थ के लेखक के मतानुसार इस औषधि में सबसे अधिक चमत्कारिक गुण यह है कि सर्प-विष को उतारने के लिये यह एक उत्तम दवा है। इसकी जड़ का चूर्ण एक तोला लेकर घी के साथ मिलाकर पिलाने से चमड़ी के अन्दर पहुँचा हुआ साँप का जहर दूर होता है। दूध के साथ खिलाने से खून तक पहुँचा हुआ सर्प-विष नष्ट होता है। कठ के चूर्ण के साथ खिलाने से मांस में व्यापक हुआ सर्प-विष, हल्दी के चूर्ण के साथ खिलाने से हड्डी में पहुँचा हुआ सर्प-विष, असगंध के चूर्ण के साथ खिलाने से चर्बी में फैला हुआ सर्प-विष और चंडाल-कंद या नोरबेल कंद के चूर्ण के साथ देने से ठेठ वीर्य तक पहुँचा हुआ सर्प-विष नष्ट होता है, मगर यह गुण सफेद फूल की अपराजिता में ही विशेषरूप से रहता है, ऐसा वृद्ध वैद्यों का कथन है।

उपरोक्त कथन की मान्यता हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी पाई जाती है। सुश्रुत-संहिता के अन्दर दर्वीकर सर्प की चिकित्सा में और द्रव्यों के साथ २ अपराजिता का प्रयोग भी दिया हुआ है। चरक-संहिता में भी दर्वीकार सर्प के काटने पर निर्गुंडी की जड़ की छाल और अपराजिता की जड़ की छाल को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर पिलाने का आदेश किया गया है। अथर्ववेद में भी इस औषधि को चितकबरे, कौड़िये और बजनामक साँप और बिच्छू के विष को नाश करने वाली माना है। लेकिन केस और मस्कर इस औषधि के सम्बंध में भी निराश हैं और वे इस औषधि को भी सर्प तथा बिच्छू के विष में निरुपयोगी मानते हैं।

उपरोक्त अवतरणों से मालूम होता है कि यह औषधि आमाशय पर असर पहुँचाकर विरेचन करने में सहायता देती है तथा मूत्रनिस्सारक भी है, यकृत के ऊपर भी यह अपना प्रभाव डालती है और साँप तथा बिच्छू के जहर को दूर करने में भी यह प्रभावशाली मानी जाती है।

उपयोग—

जलोदर—अपराजिता की जड़, शंखपुष्पी की जड़, दंतीमूल और नील की जड़, इन चारों औषधियों को ६ माशे लेकर पानी के साथ पीसकर इनका रस निचोड़कर चार तोला गौ-मूत्र के साथ पिलाने से जलरेचक असर होकर जलोदर आराम होता है।

इसी प्रकार इसके बीजों को भूनकर उनका चूर्ण १।। माशे से ३ माशे तक देने से प्लीहा, यकृत की वृद्धि तथा जलोदर में चमत्कारपूर्ण लाभ होता है।

भूतोन्माद—श्वेत अपराजिता की जड़ की छाल के स्वरस को चाँवलों की धोवन और गौ के घृत के साथ पिलाने से भूतोन्माद का नाश होता है।

सूजन—अपराजिता की जड़ की छाल को जल में घोटकर पिलाने से सूजन में लाभ होता है।

परिणाम शूल—नीली अपराजिता की जड़ की छाल को १।। से ३ माशे तक शहद और गौ के घृत के साथ एक सप्ताह तक सेवन कराने से परिणाम-शूल नष्ट होता है।

नोट—शहद और घी समान भाग लेने से जहरीले हो जाते हैं, इसलिये इन दोनों वस्तुओं को मिलाते समय इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि दोनों चीज़ें समान भाग न हों।

पुरानी खाँसी—अपराजिता की जड़ का स्वरस २ तोला टंडे दूध के साथ पिलाने से पुरानी खाँसी में लाभ होता है।

आधा शीशी—इसके बीजों का रस नाक में टपकाने से आधा शीशी में फायदा होता है।

गर्भपात—सफेद अपराजिता की छाल को दूध में पीसकर शहद मिलाकर पीने से गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है।

कामला रोग—इसकी जड़ के चूर्ण को छाछ के साथ पीने से कामला रोग में लाभ होता है।

हिचकी—इसके बीजों को पीसकर चिलम में रखकर धूम्रपान करने से हिचकी मिटती है।

अंडवृद्धि—इसके बीजों को पीसकर गरम कर लेप करने से अंडकोष की सूजन बिखर जाती है।

गलगंड—सफेद अपराजिता की जड़ को पीसकर घी के साथ सेवन करने से गलगंड में फायदा होता है।



अपामार्ग

नाम—

संस्कृत—अपामार्ग। **हिन्दी**—चिरचिरा, लटजीरा, ओंगा। **गुजराती**—अघेड़ो। **मराठी**—अघाड़ा। **बंगाली**—आपांग। **मारवाड़ी**—आँधीझाड़ो। **सिंधी**—मर्जिका। **कर्नाटकी**—उत्तरेणी। **तेलंगी**—दुच्चेणीके। **लेटिन**—Achyranthus Aspera. (एचीरेन्थस एस्पेरा)। **फ़ारसी**—खारेवाजूं। **अरबी**—अत्कूमह।

वर्णन—

अपामार्ग का छोटा झाड़ (क्षुप) होता है, जो विशेष कर बरसात में स्थान २ पर पैदा होते हुए देखा जाता है। कहीं २ पर यह बारह मास भी होता है। इसकी ऊँचाई एक से तीन हाथ तक

होती है, पत्ते लंबाई लिये हुए कुछ गोल और नोकदार होते हैं। पत्तों के बीच में से एक मंजरी निकलती है। उसमें सूक्ष्म और काँटेयुक्त बीज होते हैं।

अपामार्ग दो प्रकार का होता है। एक लाल और दूसरा सफेद! लाल अपामार्ग के डंठल का रंग लाल होता है और उसके ऊपर जो बीज लगते हैं, उनके ऊपर काँटे के समान वस्तु होती है। (दूसरी जात के) सफेद अपामार्ग के डंठल और पत्तों का रंग हरा कुछ सफेदी लिये हुए होता है और उसके ऊपर जौ के समान लंबे बीज आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वेद के अंदर अपामार्ग की गणना अत्यंत प्रभावशाली दिव्य औषधियों में की गई है। वैदिकयुग से ही इस औषधि की जानकारी यहाँ के लोगों को थी। शुक्ल यजुर्वेद में नमूचि के कथानक में लिखा है कि नमूचि को वरदान था कि उसे किसी ठोस या द्रव पदार्थ से दिन और रात में कोई न मार सकेगा, तब इंद्र ने कुछ ऐसे फेन एकत्रित किये कि जो न तो द्रव थे न ठोस और उसे दिन और रात्रि के मध्यकाल में मार डाला, उस दैत्य के सिर से अपामार्ग के पौधा पैदा हुआ, जिसकी सहायता से इन्द्र संपूर्ण दैत्यों को मार डालने में समर्थ हुआ। अथर्ववेद के ७० सूक्त के चौथे कांड में अपामार्ग की स्तुति की गई है।

श्लोक—क्षुधामारं तृषामारं, मगोतामनपत्यताम्।
अपामार्गत्वयावयं, सर्वं तदपमृज्महे॥ १॥
तृषामारं क्षुधामारं, मारमथो अक्षपराजयं।
अपामार्ग त्वयावयं, सर्वंतदपमृज्महे॥ २॥

अर्थात्—हे! अपामार्ग तू हमारे अत्यन्त भूख लगने के रोग को, प्यास लगने के रोग को,इंद्रिय शक्ति की कमजोरियों को और संतान न होने के रोग को दूर कर!

हे! अपामार्ग तू हमारी तृषा और भूख को नष्ट कर और कामशक्ति की हीनता और आँख की शक्ति की हीनता को दूर कर!

राज-निघण्टु के मतानुसार अपामार्ग कडुआ, गरम, चरपरा, कफनाशक तथा कंडु, उदररोग आँव और रुधिरविकार को दूर करता है। इसके अतिरिक्त यह वमनकारक व मलरोधक है।

भावप्रकाश के मतानुसार यह दस्तावर, तीक्ष्ण, दीपन, कडुआ, चरपरा, पाचक, रुचिकारक तथा वमन, कफ, मेदरोग, वात, हृदयरोग, आध्मान, बवासीर, कंडु, शूल, उदररोग, और पाचनशक्ति की हीनता को दूर करता है।

शोढल के मतानुसार अपामार्ग अग्निकारक, तीक्ष्ण नास लेने (सूंघने) से सिर के कीड़ों को नष्ट करने वाला, वमनकारक, रक्त-विकारनाशक, और रक्तातिसार-निवारक है। यह औषधि नास व वमन कार्य में अत्यंत प्रभावशाली है। तथा दाद, खुजली, और कफ को नाश करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पौधा पहिले दर्जे में शीतल और रूक्ष है तथा कामोद्दीपक, हर्षोत्पादक, वीर्यवर्द्धक, संकोचक, मूत्रल, और धातुपरिवर्तक है।

रासायनिक विश्लेषण—

आर० एन० खोरी लिखित मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसके बीज में क्षारीय भस्म होती है जिसमें पोटाश की मात्रा रहती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इस पौधे के फूल के डंठल और पौधे के बीजों का चूर्ण साँप व अन्य जहरीले जीवों के डंक पर लगाने के काम में आता है। सारे पौधे का काढ़ा एक अच्छी औषधि है, जो गुर्दे की पथरी के उपयोग में आता है। सारे शरीर पर सूजन आ जाने के समय भी इसका काढ़ा दिया जाता है। डायरिया व डिसेंट्री की प्रारंभिक अवस्था में इसके ताजे पत्ते का काढ़ा शहद के साथ देने से बहुत लाभ होता है। काढ़ा बनाने की तरकीब लिखते हुए कर्नल चोपरा लिखते हैं कि इसके २ औंस पौधे को लेकर डेढ़ पिंट पानी में करीब आधे घंटे तक औटाना चाहिये। उसके बाद उस पौधे को दबाना चाहिये। उसके दबाने से जो रस निकलेगा वही काढ़ा कहलाता है।

इंडियन मटेरिया मेडिका के लेखक डा० नॉडकरनी के मतानुसार अपामार्ग का उत्तम काढ़ा मूत्रल है। वृक्कीय जलोदर में यह लाभदायक पाया गया है। उदरशूल तथा आँतों के विकारो में इसके पत्तों का रस उपयोगी है। अधिक मात्रा में देने से यह गर्भपात और प्रसव-वेदना को उत्पन्न करता है। इसके ताजे पत्तों को पीसकर कालीमिर्च, लहसन, और गुड़ के साथ मिलाकर गोलियाँ बनाकर देने से काले बुखार में लाभ होता है।

इसके पत्तों के ताज़े रस को सूर्य की धूप में गाढ़ा करके इनमें थोड़ीसी अफीम मिलाकर उसका लेप करने से उपदंश के प्रारंभिक घावों में बहुत फायदा करता है। इसके बीजों को दूध में डालकर बनाई हुई खीर मस्तक के रोगों के लिये उत्तम औषधि है।

उपरोक्त अवतरणों से मालूम होता है कि क्या प्राचीन और क्या अर्वाचीन सभी लोगों ने इस औषधि के दिव्यप्रभाव को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है, दिल, दिमाग, आमाशय इत्यादि मनुष्य के सभी अङ्गों पर इसका प्रभाव पहुँचता है। खास करके इस औषधि में वामक (उल्टी लाने वाला) कृमिघ्न, (पेट के कीड़ों को नष्ट करने वाला) शिरोविरेचनकारी, कामोद्दीपक, व्रणपूरक, क्षुधानाशक, आदि गुण विशेष तौर से रहते हैं।

उपयोग—

शिरोविरेचन—मस्तिष्क की पुरानी बीमारियाँ, पीनस के भयङ्कर रोग, आधाशीशी, मस्तक की जड़ता, इत्यादि रोगों में जिसमें मस्तक के अन्दर कफ इकट्ठा हो जाता है, कीड़े पड़ जाते हैं, और कोई दूसरी औषधियाँ काम नहीं करतीं, अपामार्ग के बीजों का चूर्ण करके सुँघाने से चमत्कारिक

लाभ होता है। इस चूर्ण को सुँघाने से मस्तक के अन्दर जमा हुआ कफ पतला होकर नाक के जरिये निकल जाता है और वहाँ पर पैदा हुए कीड़े भी झड़ जाते हैं। अकेले अपामार्ग के अतिरिक्त इसके चूर्ण में अगर वायविडंग, सूंठ, मिर्च, पीपर, इलायची, मुलेठी, तुलसी के बीज इत्यादि कृमिनाशक तथा कफ निस्सारक औषधियों का चूर्ण भी मिला दिया जाय तो वह और भी अधिक लाभ पहुँचाता है। अगर इन्हीं औषधियों को पानी के साथ पीसकर लुग्दी बनाकर उसमें चौगुना गौ-मूत्र और चौगुना काली तिल्ली का तेल डालकर मंदाग्नि पर पकाकर गौ-मूत्र जलजाने पर तैल को छानकर रख लिया जाय तो यह तैल सुंघाने से भी मस्तक के कृमियों को नष्ट करता है।

प्रसव विलंब चिकित्सा—जिस स्त्री को प्रसव के समय भयङ्कर कष्ट हो रहा हो और प्रसव में विलंब हो रहा हो, उसकी कमर में अगर रविवार और पुष्य-नक्षत्र के दिन लकड़ी के औजार से खोदकर (कुदाली इत्यादि लोहे के औजार से खोदना हानिकारक है) लाई हुई अपामार्ग की जड़ को बाँध दिया जाय तो तुरन्त प्रसव हो जाता है। लेकिन प्रसव होते ही उस जड़ को फौरन खोल लेना चाहिये, अन्यथा गर्भाशय के बाहर आने का डर रहता है, जङ्गलनी जड़ी-बुटी नामक ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि गूढ़गर्भ के कई विकट केसों में जिनमें डाक्टरों ने ऑपरेशन की सलाह दी थी, इस जड़ी ने विचित्र प्रभाव बतलाया है। अगर जड़ी बाँधने के बजाय उसे पीसकर स्त्री के पेडू पर लेप कर दिया जाय तो भी वही लाभ होता है।

पथरी—अपामार्ग की ६ माशा ताजी जड़ को पानी में घोटकर पिलाने से पथरी रोग में बड़ा लाभ पहुँचता है। यह औषधि वस्ती से पथरी को टुकड़े २ करके निकाल देती है। दुखशूल के लिये भी यह महौषधि है।

खूनी बवासीर—इसके बीजों को पीसकर उनका चूर्ण तीन माशे की मात्रा में सवेरे-शाम चाँवल के धोवन के साथ देने से बवासीर से पड़ने वाला खून बन्द हो जाता है। अथवा इसकी जड़, बीज और पत्तों को कूटकर उनके चूर्ण में समान भाग मिश्री मिलाकर ६ माशा की मात्रा में जल के साथ देने से भी खूनी बवासीर मिटता है।

नेत्र रोग—इसकी जड़ को पानी के साथ महीन पीसकर आँख में आँजने से आँख की फूली तथा दूसरे नेत्ररोग में लाभ पहुँचता है। अगर रतौंधी आती हो तो इसकी जड़ का ६ माशा चूर्ण शाम को भोजन के पश्चात् खाकर ऊपर से पानी पीकर सो जाने से तीन दिन में अच्छा लाभ पहुँचता है।

मलेरिया ज्वर—इसके पत्ते और कालीमिर्चों को समान भाग लेकर गुड़ के साथ दो २ रत्ती की गोलियाँ बनाकर बुखार आने के पहले देने से मलेरिया बुखार रुक जाता है।

जलोदर—डाक्टर कार्निश ने जलोदर रोग में इस औषधि का उपयोग किया और इसे काफी लाभदायक पाया।

दन्तशूल—इसकी ताजी जड़ से प्रतिदिन दतून करने से दाँत मोती की तरह चमकने लगते हैं। यह दतून, दन्तशूल, दाँतो का हिलना, मसूड़ों की कमजोरी तथा मुँह की दुर्गन्ध को दूर करता है।

कंठमाला—इसकी जड़ की राख को खाने और उसको गाँठों पर लगाने से कंठमाला में लाभ पहुँचता है।

रति-शक्ति की कमज़ोरी—इसकी जड़ का चूर्ण छः माशे लेकर उसमें दो रत्ती बंगभस्म मिला कर खाने से प्रबल कामोद्दीपन होता है।

बिच्छू का जहर—इस औषधि में विषनाशक प्रभाव भी बहुत है। मेजर मोहीउद्दीन का कथन है कि इसकी फूल वाली डालियों पर अगर बिच्छू को रख दिया जाय तो उसे पक्षाघात हो जाता है। राजवैद्य संतशरण के मतानुसार इसके पत्तों के रस को हाथ में चुपड़ कर चाहे जैसे जहरीले बिच्छू को हाथ में ले लिया जाय और वह चाहे जितने डङ्क मारे तो भी उनका कुछ असर नहीं होता। जिसको बिच्छू ने काटा हो और वह चढ़ गया हो, उसके यदि चढ़े हुए स्थान पर इसके पतों के रस की लकीर खींच दी जाय तो बिच्छू का जहर नीचे उतरने लगता है। ज्यों-ज्यों जहर नीचे उतरे त्यों-त्यों वह लकीर भी नीचे २ करते जाना चाहिये। जब जहर डङ्क पर आ जाय तब इसके पत्तों को पीसकर उनकी लुग्दी डङ्क पर बाँध देना चाहिए। इसके साथ ही भीतरी उपचार की तरह अगर इसकी जड़ को महीन पीसकर दस-बारह गुने पानी में घोल कर उसका पानी थोड़ा २ जब तक कड़ुवा न लगने लगे तब तक पिलाया जाय तो जहर उतर जाता है। पानी ज्योंही कड़ुवा लगने लगे त्योंही पिलाना बन्द कर देना चाहिये, क्योंकि यही जहर उतरने का सबूत है।

रक्त-प्रदर—सफेद अपामार्ग का पचांग २ तोला, भेड़ के बालों की भस्म २ तोला, सुनहला गेरू २ तोला, इन तीनों चीजों को कूट पीसकर चूर्ण करें। इसमें से छः माशा चूर्ण गाय के कच्चे दूध में पिलाने से रक्त-प्रदर शीघ्र आराम होता है।

श्वास और खाँसी—इसके सूखे पत्तों को हुक्के में रख कर पीने से श्वासरोग में लाभ पहुँचता है। तिब्बे नादरी के लेखक का कथन है कि अपामार्ग की जड़ में कफ़ की खाँसी और दमे को नष्ट करने का चमत्कारिक गुण विद्यमान है। इसके सारे झाड़ को जड़ समेत उखाड़ कर उसे जलाना चाहिये। फिर इसकी राख दस रुपये भर लेकर उसमें दो तोला सेंधा नमक, दो तोला सज्जीखार, दो तोला यवक्षार, दो तोला नौसादर, तीन तोला हलदी और दस तोला अजवायन डालकर उसका चूर्ण कर प्रतिदिन डेढ़ माशे के करीब सवेरे-शाम लेने से कफ की खाँसी में बहुत लाभ होता है। इसी प्रकार इसकी जड़ का चूर्ण आधा तोला लेकर उसमें सात कालीमिर्च का चूर्ण डालकर दोनों टाइम ठण्डे जल के साथ फंकी लेने से दो वर्ष का पुराना दमे का रोग दूर होता है। यह दवा सात दिन तक पथ्यपूर्वक लेने से नब्बे प्रतिशत लाभ होता है। जब तक दवा चालू रहे तब तक गेहूँ की रोटी, भात इत्यादि ही खाना चाहिये। तथा छाती और कंठ पर घी की मालिश करते रहना चाहिये। इस प्रयोग से यदि कभी उल्टी हो तो उससे नहीं डरना चाहिये।

नासूर—इसके पत्तों का रस नासूर के ऊपर लगाने से नासूर भर जाता है।

भस्माग्नि—भस्माग्नि का रोग जिसमें बहुत भूख लगती है और खाया हुआ अन्न भस्म हो जाता है, उसमें अपामार्ग के बीजों का चूर्ण एक तोला देने से रोग मिट जाता है।

उदर-शूल—भयंकर उदर-शूल में अपामार्ग की जड़ छः माशे, कुंकरौंधा के पत्ते छः माशे, सफेद जीरा तीन माशा, काला नमक एक माशा, इन सबको पीसकर इसमें से छः माशे की खुराक देने से आराम होता है।

कान का बहरापन—अपामार्ग की जड़ को धोकर उसका रस निकाल लें। जितना यह रस हो, उससे आधा तिल्ली का तेल मिलाकर आग पर चढ़ा दें। जब रस जल कर तेल मात्र शेष रह जाय तब छानकर शीशी में रख लें। इस तेल की २-३ बूंद गरम करके कान में हर रोज डालने से कान का बहरापन दूर हो जाता है।

बनावटें—

अपामार्ग क्षार—अपामार्ग के झाड़ के पंचांग को (अर्थात् फूल,फल,डंठल जड़ और पत्तों को) जलाकर उसकी राख को आठ गुने पानी में खूब अच्छी तरह से मिलाकर रात भर पड़ा रहने देना चाहिये। जब राख का सब हिस्सा पानी में नीचे बैठ जाय तब ऊपर के स्वच्छ पानी को नितार कर हलकी आँच से उसे उबालना चाहिये। जब उसकी हालत रबड़ी सरीखी हो जाय तब उसको उतार कर ठंडा कर उसकी टिकिया बनाकर धूप में सुखा लेना चाहिये। सूखने पर खरल में पीसकर बोतल में भर देना चाहिये। यह क्षार अपामार्ग क्षार कहलाता है। इस क्षार को शहद के साथ चटाने से कफ वाली खाँसी आराम हो जाती है। इसके अतिरिक्त बस्ति (आमाशय) के विकार से होने वाला सूजन, जलोदर, यकृत की वृद्धि और वायुगोला इत्यादि रोगों में बहुत लाभ पहुँचता है।

अपामार्ग-क्षार-तेल—अपामार्ग का बनाया हुआ क्षार २० तोला, तिल का तेल ४० तोला, जल १६० तोला लिया जावे। जल के अन्दर क्षार को २१ बार अच्छी तरह मिला कर उसमें तेल डाल दिया जाय, उसके पश्चात् अपामार्ग के पंचांग को पानी के साथ पीसकर बनाई हुई लुग्दी १० तोला लेकर उस पानी के बीच में रखकर मंदाग्नि से जल को उबालना चाहिये। जब इसमें से सारे जल का भाग जल जाय और केवल तेल का भाग मात्र शेष रहे, तब उतार कर छान लेना चाहिये। यह तेल कानों के प्रत्येक दर्द के लिये लाभकारी है। इसको कान में टपकाने से कान का सूजन, बहरापन, पीप वगैरह रोग नष्ट होते हैं।

अपामार्ग आसव—अपामार्ग २ सेर, अड़ूसे के पत्ते २ सेर, केले के नये नरम पत्ते २ सेर, जंगली बेर की जड़ की छाल २ सेर, देशी गुड़ ४ सेर। गुड़ को ६ सेर पानी में भिगो कर इन औषधियों को जौ कुट करके एक मिट्टी के बर्तन में अच्छी तरह मिला कर डाल दें। दूसरे दिन इसी बर्तन में यवक्षार एक छटाँक, सज्जीखार २ छटाँक और पपड़िया नोसादर आधी छटाँक मिला दें।

उसके पश्चात् उस वर्तन का मुँह १५ दिनों तक बंद कर पड़ा रहने दें। फिर कपड़े से छान कर बोतलों में बंद करके रख दें। यह आसव तेज शराब की तरह बरता जाता है। श्वास के रोग में बहुत अक्सीर साबित हुआ है। पहली मात्रा में अपना असर दिखाता है।

अपामार्ग अवलेह—'जौहरे हिकमत' नामक पुस्तक में लिखा है कि अपामार्ग का क्षार, यवक्षार, सज्जीक्षार, केले का क्षार, आँकड़े का क्षार, ताड़ का क्षार, खाँखरे का क्षार, इमली का क्षार, मूली का क्षार और कली चूना ये सब वस्तुएँ एक-एक रुपए भर, फूला हुआ टंकनक्षार २ रुपये भर, कलमीशोरा ३ माशा, कालीमिर्च २॥ तोला, सेंका हुआ जीरा २ तोला, लींडीपीपल ३ तोला, इन सबको लेकर बारीक चूर्ण कर उसको एक बरनी में भरकर उसमें अदरख का रस ४० तोला, गँवारपाठे का रस ४० तोला तथा नींबू का रस ४० तोला, अच्छी तरह से मिलाकर सात दिन तक धूप में पड़ा रहने देना चाहिये। इसके पश्चात् इसमें से ६ माशा अवलेह सुबह शाम चाटने से उदरशूल, यकृत की वृद्धि, वायुगोला, हैजा, जलोदर इत्यादि रोग आराम होते हैं।

अपामार्ग द्वारा दूसरी बनने वाली भस्में—

सिगरफ़ भस्म-बढ़िया सिंगरफ २ तोला खरल में डालकर २० तोला आँकड़े के दूधमें खरल करें। जब सारा दूध खतम हो जाय तब उसकी टिकिया बनाकर छाया में सुखालें। फिर एक मिट्टी की छोटी हंडी में १० तोला अपामार्ग की राख बिछाकर उसपर सिंगरफ की टिकिया रख ऊपर से और १० तोला अपामार्ग की राख डालकर हाथ से अच्छी तरह से दबा दें। फिर हंडी पर ढक्कन लगाकर अच्छी तरह से कपड़ मिट्टी करके सुखालें। उसके पश्चात् १० सेर कंडों की आँच मेंउस हंडी को रखकर फूंक दें। जब ठंडी हो जाय तब निकाल लें। सिंगरफ की इस भस्म को एक रत्ती प्रमाण में शरदऋतुमें देने से कामशक्ति बढ़ती है।

सोमल भस्म—दो तोला संखिया को लेकर एक शीशी में डालकर उसमें इतना आक का दूध डालें कि वह डूब जाय। फिर २१ रोज तक उसे भूमि के अन्दर गाड़ रक्खें। फिर एक मिट्टी की हंडी में अपामार्ग की राख को हाँडी के आधे हिस्से तक भरकर उसपर संखिया की टिकड़ी रख और उसके ऊपर फिर मुँह तक अपामार्ग की राख भर दें। उसके पश्चात् उसे तीन प्रहर तक हलकी आँच और तीन प्रहर तक मध्यम आँच और तीन प्रहर तक तीव्र आँच देने से संखिया की श्वेत रंग की भस्म तय्यार होती है। इस भस्म को परीक्षा के लिये थोड़ी-सी आग के ऊपर डालना चाहिये। अगर उसमें से धुआँ न निकले तो समझना चाहिये कि भस्म शुद्ध हो गई है। इस भस्म की चौथाई चाँवल के बराबर देने से श्वास रोग में बहुत फायदा होता है।

हड़ताल भस्म—शुद्ध हड़ताल एक तोला भर और एक तोला अभ्रक दोनों को खरल में डालकर अपामार्ग के पानी में चार प्रहर तक खरल करके उसकी टिकड़ी बाँधकर छाया में सुखाना चाहिये। फिर उस टिकड़ी को मिट्टी की एक छोटी हाँडी में अपामार्ग की राख को आधे हिस्से तक

दबाकर भरकर उस पर रख देना चाहिये। उसके पश्चात् शेष हिस्से में भी अपामार्ग की राख को दबाकर भरकर ढक्कन लगाकर कपड़मिट्टी कर एक गज लम्बे, एक गज चौड़े और एक गज गहरे गड्ढे में ऊपले (आरने) कंडे भरकर बीच में उस हाँडी को रख कर फूंक दें। इस प्रकार गजपुट में तीन बार फूंकने से अत्यन्त उत्तम भस्म तय्यार हो जायगी। इस भस्म की खुराक आधी रत्ती से लेकर २ रत्ती तक की है। यह भस्म प्राचीन से प्राचीन ज्वर के लिये रामबाण औषधि है। इससे ज्वर, एकांतरा, पाली, आदि सभी विषमज्वर नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त खाँसी व श्वास के अन्दर भी यह अच्छा लाभ पहुँचाती है।

अमृताख्य तैल—अपामार्ग के बीज, सिरस के बीज, दोनों प्रकार की श्वेता (कटभी और महाकटभी) और मकोय, इन सबको समान भाग लेकर गौ-मूत्र में पीसकर लुग्दी करलें, फिर बीस तोला लुग्दी २ सेर तिल का तैल और दो सेर गौ-मूत्र डालकर हलकी आँच पर चढ़ावे, जब तैल मात्र शेष रह जाय तब उतार कर छान लें। सुश्रुत ने इस तैल को महा-विषनाशक बतलाया है।

अफसन्तीन

नाम—

फारसी—अफसन्तीन। **अरबी**—अफसन्तीन। **हिन्दी**—विलायती अफसन्तीन। **संस्कृत**—दमर। **लेटिन**—Artemisia Absinthium.

वर्णन—

यह औषधि और इसकी कुछ जातियाँ भारतवर्ष में उत्पन्न होती हैं, पर आयुर्वेदीय ग्रन्थों में इसका कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता। विशेष कर यह औषधि उत्तरी आफ्रिका, सायबेरिया, मंगोलिया तथा भारतवर्ष में हिमालय पहाड़ के ऊपर १०००० से १२००० फीट तक की ऊँचाई पर काश्मीर, तिब्बत, कुमाऊँ, नेपाल इत्यादि प्रान्तों में पैदा होती है। यह एक प्रकार का झाड़ीदार पौधा है। इसकी शाखाएँ सीधी और सरल होती हैं। पत्ते रेशम की तरह मुलायम रूएंदार और हरे रंग के होते हैं। इसके फूल पीले रहते हैं। इसके बीज बारीक २ और गोलदाने की तरह होते हैं। इसकी छाल कुछ ललाई लिये हुए बादामी रंग की रहती है। इसकी गंध अत्यन्त तीव्र, उग्र, अप्रिय और स्वाद अत्यन्त कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह औषधि पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में रूक्ष

है। यह मस्तिष्क और स्नायु-मंडल को अव्यवस्थित करने वाला और सिरदर्द को पैदा करने वाला है। इसके अन्दर संकोचक गुण भी है। यह यकृत को बल पहुँचाने वाला और कामला रोग में लाभदायक है। इसका शर्बत आमाशय और यकृत को बल देता है। बवासीर के अन्दर भी यह औषधि लाभदायक है। इसके क्वाथ का बफारा देने से कान का दर्द आराम होता है। पेट के कीड़ों को मारने की शक्ति भी इस औषधि में है।

इंडियन मेडिकल प्लांट्स के रचयिता इस औषधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि यह सारी वनस्पति एक प्रकार का सुगन्धित पदार्थ है। कुछ समय पहले पाचन-क्रिया की कमजोरी के उपचार में इस औषधि की बहुत तारीफ थी और यह कृमि-नाशक समझी जाती थी। सिंकोना के प्रचार के पहिले पार्यायिक ज्वरों में इसका काफी उपयोग होता था। स्नायु-मंडल के ऊपर इस औषधि का बड़ा तीव्र असर होता है। स्नायु-मंडल की क्रियाओं में दुर्व्यवस्था पैदा कर यह सिरदर्द उत्पन्न करती है।जो लोग काश्मीर और लोदक के मार्ग में इसके खेतों के बीज में से होकर निकलते हैं,वे इसके उपरोक्त गुण से भली प्रकार परिचित हो जाते हैं, क्योंकि जब मार्ग में इसके विस्तृत खेतों के अन्दर वे यात्रा करते हैं तब उनको यह महान कष्ट सहन करना पड़ता है।

बाह्योपचार में इस औषधि की पुल्टिस बनाकर उपयोग करने से यह अपना कृमि-नाशक गुण बतलाती है, मगर केस और मस्कर के मतानुसार इसमें या इसके तेल में कृमि-नाशक गुण नहीं है।

इस औषधि में से एक प्रकार का गहरा हरा या पीले रंग का तेल निकाला जाता है, जोकि स्वाद में कड़वा होता है और अधिक मात्रा में मादक और उत्तेजक होता है।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल जिसको एब्सिंथोल (Absinthol.) कहते हैं, रहता है। इसके अतिरिक्त ग्लुकोसाइड तथा एक प्रकार का रवादार सत्व जिसको एब्सिंथीन (Abisinthin) कहते हैं, वह भी रहता है। यह औषधि पार्यायिक ज्वरों में एक प्रकार का पौष्टिक पदार्थ है।

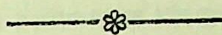
एलोपैथिक मतानुसार अफ्सन्तीन का पौधा कडुआ, बलप्रद, सुगन्धित, आमाशय को बल देनेवाला, अग्निदीपक, ज्वर और कृमियों को नष्ट करने वाला, रजःप्रवर्तक, दिमाग को उत्तेजना देने वाला, और निद्राजनक है।

डाक्टर नॉडकरनी अपनी इण्डियन मटेरिया मेडिका में लिखते हैं कि इस पौधे को अजीर्ण, केंचुए (Round worms) और सूती कीड़े (Tread worms.) को नष्ट करने के लिये उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त विषमज्वर, रजःकष्ट, मृगी, मस्तक की कमजोरी इत्यादि रोगों में भी इसके क्वाथ का उपयोग किया जाता है।

बनावटें—

अर्क अफसन्तीन—अफसन्तीनरूमी आधा सेर को अर्कगुलाब ३ सेर में रात भर भिगो दें। सवेरे २ सेर पानी और डालकर अर्क खींच लें, फिर उस अर्क में आधा सेर अफसन्तीनरूमी, ३ सेर गुलाबजल और २ सेर पानी डालकर दुबारा अर्क खींच लें।

१॥ तोला की मात्रा में इस अर्क को ६ तोला अर्क-सौंफ और २ तोला शर्बत कसूस के साथ पीने से यह यकृत की बिमारियों को दूरकर सूजन, और सूजन से होनेवाले बुखार को मिटाता है यह अत्यन्त प्रभावशाली है।



अफीम

नाम—

संस्कृत—अहिफेन। हिन्दी—अफीम। बङ्गाली—आफिङ्ग। मराठी—अफू, कड़वी। गुजराती—अफेण। तैलङ्गी—नाल्लामन्दु। फ़ारसी—अफ्यूनतिर्याक। अरबी—लबनुल खसखस। लैटिन—Opium. (ओपियम)

वर्णन—

अफीम की खेती भारतवर्ष में विशेष कर मालवा, मेवाड़ इत्यादि प्रान्तों में की जाती है। आज से करीब ३५ वर्ष पहिले इसकी खेती बहुत बड़े परिमाण में होती थी और इसके व्यापार से लोग करोड़ों रुपया पैदा करते थे, मगर अब गवर्नमेण्ट ने इसकी खेती बहुत ही कम कर दी है।

अफीम पोस्तदाने के वृक्ष से पैदा होती है, पौष मास में इस वृक्ष पर अनेक रङ्गों के रङ्ग विरङ्गे बड़े सुन्दर फूल खिलते हैं और उनपर डोड़ियाँ लगती हैं, दो-तीन सप्ताह में ये डौड़े अफीम निकालने लायक हो जाते हैं। तब उनको लोहे के एक तेज औजार से तीन २ चार २ चीरें लगा देते हैं। उन चीरों में से दूध के रूप में अफीम निकलती है और डौड़ों पर जम जाती है। दूसरे दिन सवेरे वह दूध अफीम की शक्ल में जम जाता है और लोग खुरच लेते हैं। इकट्ठी होने पर इसे तैल के हाथ दे देकर साफ करते हैं जिससे जल का अंश निकल जाता है।

अफीम के व्यवसाय पर गवर्नमेण्ट के एक्साइज डिपार्टमेंट का एकाधिपत्य है। जितनी अफीम पैदा होती है, सब सरकारी गोदामों में पहुँचाई जाती है। जिसकी बट्टियाँ बाँध कर उस पर गवर्नमेण्ट की सील-मुहर लगाई जाती है।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघण्टु-रत्नाकर के मतानुसार अफीम वीर्य्यवर्द्धक, बलकारक, ग्राही, सस-

धातु शोधक, वात-पित्तकारक, आनन्ददायक, नशीली, वीर्य्य को स्तम्भन करने वाली, कड़वी, मधुर तथा सन्निपात, कृमि, कफ, पाण्डुरोग, क्षय, प्रमेह, श्वास, खाँसी, प्लीहा, और धातुक्षय को मिटाने वाली है।

चरक के मतानुसार अफीम दूसरी वस्तुओं के साथ साँप और बिच्छू के जहर के इलाज में दी जाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह चौथे दर्जे में ठंडी, रुक्ष, कब्जियत करने वाली, शिथिलताकारक, नींद लाने वाली, सूजन मिटाने वाली तथा नजला, कफ, खाँसी, कानों की पीड़ा और नेत्ररोग में हितकारी है। भीतरी-बाहरी स्नायु-मण्डल को यह नुकसान पहुँचाने वाली है। अफीम यह एक तीव्र-विष है। इसलिये इसका प्रयोग बहुत सोच-समझ कर करना चाहिये। कम-से-कम तीन रत्ती की मात्रा में यह प्राणनाशक हो जाती है। एक घंटे के अंदर इसका प्रभाव मालूम पड़ने लगता है, २४ घंटे में यह मार डालती है। औषधि के उपयोग में इसको शुद्ध करके लेना चाहिये।

कर्नल चोपड़ा अफीम का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"ऐसा कहा जाता है कि यह रक्तादि विकारों को दूर करती है व शरीर की शक्तियों को कुछ समय के लिये बढ़ाती है। वीर्य संम्बधी शक्तियों व मांस-पेशियों पर विशेष असर दिखलाती है तथा मस्तिष्क में मादकता का संचार कर उसे ढीला बनाती है।

"मुसलमान चिकित्सकों के मतानुसार यह शारीरिक अंगों की पीड़ा को दूर करने में मुफीद है। आधाशीशी, कटिवात (कमर की बादी) और जोड़ों के दर्द में भी इसका उपयोग किया जाता है। बाह्य उपचार में भी लेप के रूप में इसका उपयोग किया जाता है, रक्तातिसार व अतिसार में भी यह लाभ पहुँचाती है।

"सबसे पहिले यह मस्तिष्क की शक्ति को उत्तेजन देती है। फिर शरीर की शक्ति और शरीर की गर्मी को बढ़ाती हुई दिखलाई देती है, जिससे कुछ आनंद व संतोष मालूम पड़ता है। किन्तु कुछ ही काल के पश्चात् इसको लेने की आदत पड़ जाती है। यह मादकोत्तेजक है। श्वास की क्रिया पर यह अपना उपशामक असर दिखलाती है। यही कारण है कि कफ, श्वास, व कुक्कुर खाँसी में इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

"मुसलमानी हकीम इसे कामोद्दीपक बतलाते हैं। उनके मतानुसार यह मैथुन में स्तम्भन का काम करती है। वर्तमान काल में बहुमूत्र और मधुमेह रोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है।

"अधिकांश लोगों का विश्वास है कि पेशाब में शक्कर जाने की हालत में यह अपना अच्छा असर दिखलाती है। लेकिन सन् १६२१ में जब इस बात की जाँच की गई, तो मालूम हुआ की थोड़ी और साधारण मात्रा में दी जाने पर यह शर्करारोग में निष्फल सिद्ध हुई।

"चिकित्सकों का एक यह भी विश्वास है कि यह मूत्राशय की बीमारियों पर खराब असर दिखलाती है, मगर इस विषय में भी जब जाँच की गई व मूत्ररोग से पीड़ित लोगों को १ ग्रेन से ६ ग्रेन

तक की खुराक में दी गई तो भी इसने चर्बी पर कोई बुरा असर नहीं बतलाया, बल्कि बहुत से मामलों में इसने चर्बी को घटाने का काम किया।

रासायनिक विश्लेषण—

"अफीम का रासायनिक विश्लेषण करने पर उसके अन्दर प्रधान रूप से "मारफाइन" नामक उपक्षार और "नॉरकोटाइन" नामक एक प्रकार का सत्व, ये दो तत्व पाये गये।

पटने की अफीम में "मॉरफाइन" ३.६८ परसेंट और "नॉरकोटाइन" ६.६६ परसेंट पाया गया।

मालवे की अफीम में "मॉरफाइन" ४.६१ परसेंट व "नॉरकोटाइन" ५.१४ परसेंट पाया गया।

स्मरना की अफीम में "मॉरफाइन" ८.२७ व "नॉरकोटाइन,, १.२४ परसेंट पाया गया।

"नॉरकोटाइन अफीम में से प्राप्त होने वाला एक प्रकार का सत्व है। जिसमें कि निद्रा लाने का खास गुण होता है। यह अफीम में काफी मात्रा में रहता है। अगर जानवरों की शिराओं में इसका इंजेक्शन दिया जाय, तो उनका ब्लडप्रेशर गिर जाता है। रक्तवाहिनी नलियाँ ढीली हो जाती हैं। ब्लडप्रेशर गिरने से हृदय की गति पर भी प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्क की गति पर भी असर दिखाकर यह उसे ढीला करता है।

"दूसरा तत्व "मॉरफाइन" नॉरकोटाइन से अधिक जोरदार व अधिक महत्वपूर्ण है। यह भी अफीम का एक उपक्षार है। प्रारंभ में लोगों का ध्यान इसकी ओर कम गया, लेकिन बाद में इसके ऊपर कई प्रकार के अनुसंधान हुए, और कई बीमारियों के उपचार में इसकी उपयोगिता पाई गई।

"ओपियम कमिशन ने भी वैज्ञानिक ढंग से इसका मनन किया। वे भी इसी नतीजे पर आये कि इसमें मॉरफाइन व नॉरकोटाइन ये दो मुख्य पदार्थ रहते हैं। मॉरफाइन में उपशामक और निद्रा लाने वाला गुण विशेष है। और नॉरकोटाइन एक प्रकार का पुष्टिकारक और सामयिक ज्वरों को नष्ट करने वाला पदार्थ है। यही गुण क्विनाइन में भी पाये जाते हैं। क्विनाइन और अफीम में इन गुणों की समानता होने से ही यह (अफीम) भी मलेरिया में उपयोगी मानी जाती है। लेकिन प्रयोगों से मालूम हुआ कि, उपशामक पदार्थ होने की वजह से अफीम मलेरिया के बाह्यचिन्हों को दबा देती है पर इस बीमारी के मूल-भूत कारण पर कोई असर नहीं पहुँचाती।

"डाक्टर रॉबर्टस ने नॉरकोटाइन को मलेरिया में मुफीद बतलाया है। किन्तु इस विषय में में मतभेद है और इसके पश्चात् के अनुसंधानों से भी यह मालूम हुआ है कि, नॉरकोटाइन में रक्तोपजीवी मलेरिया के कीटाणुओं को मारने की शक्ति नहीं है।"

"कर्नल चोपरा ने मलेरिया, मधुमेह, और निमोनिया में ५ ग्रेन से लगाकर २० ग्रेन तक की मात्रा में रोगियों को दिया, किन्तु कोई उल्लेखनीय असर नहीं दिखलाई दिया। हृदय पर और श्वास

क्रिया पर इसका किसी भी प्रकार का उत्तेजक प्रभाव दिखलाई नहीं दिया। इतना ही मालूम हुआ कि बीमार के ऊपरी कष्ट,नष्ट होगये, उसकी थकान मिट गई और उसे शीघ्र ही नींद आ गई।"

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि अफीम का असर सीधा स्नायु-मंडल के ऊपर होता है। यह स्नायु-जाल को एक दम स्तब्ध या मदहोश कर देती है, जिससे सारे शरीर में एक प्रकार की निस्तब्धता हो जाती है और रोगी की चाहे वह किसी भी रोग से ग्रसित हो, यंत्रणा दब जाती है, जिससे उसे आराम मालूम होता है। इसका दूसरा विशेष गुण स्तंभन का है। इसलिये अतिसार इत्यादि रोगों में भी यह फायदा पहुँचाती है तथा वीर्य-स्तम्भन के लिये तो यह एक मशहूर औषधि मानी गई है। वीर्य-स्तम्भन संम्बधी शायद ही कोई नुस्खा होगा, जिसमें अफीम का उपयोग न हो।

प्रयोग—

अतिसार—अतिसार के अन्दर अफीम और केशर को समान भाग लेकर पीसकर एक रत्ती प्रमाण की गोली बनाकर शहद के साथ देने से लाभ होता है।

अजीर्ण—भयंकर अजीर्ण में नारियल में छेद कर २ रत्ती अफीम उसमें रखकर आग पर पकाकर खिलाने से लाभ होता है।

आमातिसार और विशूचिका—आमातिसार और विशूचिका में अफीम, जायफल, केशर और कपूर समान भाग खरल करके २ रत्ती की गोलियाँ बनाकर जल के साथ देने से लाभ होता है।

संग्रहणी—अफीम और बच्छनाग तीन २ माशे, लोहे की भस्म १० रत्ती और अभ्रक भस्म १२ रत्ती इन चारों वस्तुओं को दूध में घोटकर एक २ रत्ती की गोलियाँ बनाकर दूध के साथ सेवन करना चाहिये, किंतु इसको सेवन करने तक जल का त्याग करके खाने-पीने में दूध ही का व्यहार करना चाहिये।

नारू—अफीम और साँप की कैंचुली की टिकिया बनाकर नारू पर लगाने से फायदा होता है।

नासूर—मनुष्य के नाखून की राख में दो या ढाई रत्ती अफीम मिलाकर गोलियाँ बनाकर सेवन करने से लाभ होता है।

गठिया और आक्षेप वायु—गठिया, आक्षेपक वायु, हनुस्तम्भ, प्रलाप आदि रोगों में उचित मात्रा में अफीम देने से बहुत लाभ होता है।

स्नायु पीड़ा—स्नायु सम्बन्धी वात पीड़ा पर अफीम का लेप करने से बहुत लाभ होता है।

दंत पीड़ा—अफीम और नौसादार को पीस कर दाँत के छिद्र में रखने से दंत पीड़ा मिटती है।

मस्तक रोग—चार रत्ती अफीम और दो लौंग पीसकर गरम करके लेप करने से सर्दी और बादी का सिर दर्द मिटता है।

नासूर—अफीम और हुक्के के कीट की बत्ती बनाकर भरने से नासूर में लाभ होता है।

पक्वातिसार—अफीम को सेंक कर उचित मात्रा में खिलाने से पक्वातिसार मिटता है।

कर्ण पीड़ा—अफीम की आधी रत्ती भस्म गुलाब के तेल में मिलाकर कान में टपकाने से कान का दर्द मिटता है।

कंठ रोग—अफीम के डोड़े और अजवायन को पानी में औटा कर उस पानी से कुल्ले करने से बैठा हुआ गला दुरुस्त हो जाता है।

गर्भाशय की पीड़ा—अफीम के डोड़ों का क्वाथ पिलाने से बच्चा होने के बाद की गर्भाशय की पीड़ा मिटती है।

खाँसी और जुकाम—अफीम के बीज सहित ६ तोले डोड़ों का काढ़ा बनाकर उस काढ़े में ढाई छटाँक मिश्री डालकर शर्बत बना लेना चाहिये। इसमें से तीन तोला शर्बत दिन में दो बार देने से खाँसी और जुकाम मिटते हैं।

कमर की पीड़ा—एक तोले पोस्ते दाने में एक तोला मिश्री मिलाकर फंकी देने से कमर की पीड़ा मिटती है।

केश रोग—इसके बीजों को दूध के साथ पीसकर लेप करने से केशों का दारुण रोग मिटता है।

आमाशय की सूजन—आमाशय की झिल्ली की सूजन में इसका लेप करने से बड़ा लाभ होता है।

बनावटें—

अफीम पाक—अकरकरा, केशर, लवंग, जायफल, भंग, सिंगरफ, सब चार ४ तोला, दूध में डोला * यंत्र द्वारा शुद्ध की हुई अफीम २ तोला लेकर पीसकर छः गुनी मिश्री की चासनी में अच्छी तरह से मिलाकर चार २ माशे की गोलियाँ बनावें। स्त्री-प्रसंग में दो घंटे पूर्व इस गोली को खाकर ऊपर से दूध पी लेना चाहिये, इससे बहुत स्तम्भन होता है।

अफीम का प्लास्टर—अफीम का बारीक चूर्ण २॥ तोला, रेजिन प्लास्टर २२॥ तोला। रेजिन प्लास्टर को गरम पानी के अन्दर पिघला कर उसमें धीरे २ अफीम को मिलाना चाहिये, किसी भी स्थान की वेदना को मिटाने के लिये इस प्लास्टर का उपयोग किया जाता है।

---

* *डोलायंत्र*—एक कढ़ाई में दूध भरके उसके ऊपर दोनों कड़ों में एक लकड़ी फँसाकर उस लकड़ी में कपड़े में बंधी हुई अफीम की पोटली को बांधकर नीचे आँच लगाना चाहिये। प्रत्येक वस्तु डोलायंत्र से इसप्रकार आँच लगाई जाती है।

स्तम्भन बटी—एक जायफल के अंदर बड़ा छेद करके उसमें अफीम भर कर उसका मुँह बंद करके उसको किसी बड़ के वृक्ष में छेद करके २१ दिन तक पड़ा रहने देना चाहिये। उसके बाद उसको निकाल कर उसमें से अफीम निकाल कर आधी २ रत्ती की गोलियाँ बनाकर दूध के साथ सेवन करने से स्तम्भन होता है।

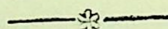
अफीम विष-नाशक प्रयोग—

(१) अगर किसी ने अफीम खा ली हो और उसके उपद्रव शुरू होगये हों तो उसी समय उसे हींग पानी में मिलाकर पिलाना चाहिये। उसी समय जहर उतर जायगा।

(२) मेनफल, नीमका क्वाथ या तम्बाखू के क्वाथ इनमें से किसी भी एक औषधि के द्वारा वमन कराने से भी अफीम का विष उतर जाता है।

(३) अरीठा भी अफीम का प्रबल शत्रु है, अरीठा के जल को पिलाने से भी अफीम का विष उतर जाता है।

(४) करेमूँ के शाक का रस निचोड़ कर पिलाने से अफीम द्वारा प्राणत्याग करता हुआ बीमार भी बच जाता है।



अभ्रक

नाम—

संस्कृत—अभ्रक। हिन्दी—अभ्रक। बंगाली—अभ्र। फारसी—सितारा ज़मीन। अरबी—तलूक़। लैटिन—Mica

विवरण—

अभ्रक का वर्णन करते हुए आयुर्वेद के अन्दर लिखा है कि प्राचीनकाल में भगवान् इन्द्र ने वृत्रासुर को मारने के लिये वज्र उठाया, उस समय उस वज्र में से चिनगारियाँ निकल कर आकाश-मंडल में फैल गईं। फिर वे ही चिनगारियाँ गरजते हुए बादलों में से निकल कर जिन २ पर्वतों की चोटियों पर गिरीं, उन्हीं २ पर्वतों में अभ्रक उत्पन्न हुआ। वज्र से उत्पन्न होने के कारण संस्कृत में इसका नाम वज्र है। बादलों के शब्द से होने के कारण इसको अभ्रक कहते हैं और आकाश से गिरने के कारण इसको गगन कहते हैं।

अभ्रक एक प्रकार का खनिज द्रव्य है। इसकी रचना पतले २ परतों की तह से होती है। पर्वत के अन्दर खदानों में यह बड़े २ ढोकों के अन्दर तह-पर-तह जमा हुआ मिलता है। साफ करके

निकालने पर इसकी काँच की तरह तह निकलती है। यह आग में नहीं जलता है। इसके पत्र पारदर्शक व मुलायम होते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक युग के अन्दर इस पदार्थ की महत्ता बहुत अधिक बढ़ गई है। इस युग की वैज्ञानिक खोज जनित समुन्नत कला-कौशल में विद्युत्-शक्ति का कितना व्यापक हाथ है, यह किसी जानकार से छिपा नहीं है। इस विद्युत्-शक्ति के आश्चर्य-जनक चमत्कारों को यशस्वी बनाने में यदि कोई पदार्थ सहयोग देता है तो वह एक मात्र अभ्रक है। अभ्रक के प्राकृतिक गुणों ने उसकी अतुलनीय उपयोगिता को पूरी तरह से प्रमाणित कर दी है। यह पदार्थ विद्युत्-शक्ति को जिस प्रकार प्रभावशून्य कर देता है। उसी प्रकार अग्नि के प्रचंड प्रकोप को भी तृणवत् समझता है। इन्हीं गुणों के कारण आधुनिक युग के विज्ञान-विशारद इसके गुणों पर रीझे हुए हैं।

लेकिन हमारे भारतवर्ष के अन्दर अत्यंत प्राचीन काल से इस पदार्थ के गुण-धर्म और इसकी उपयोगिता के विषय में जानकारी चली आ रही है। जिस अभ्रक को आजकल के वैज्ञानिक अग्नि के प्रभाव से शून्य मानते हैं, उसी अभ्रक को भारत के पुराने रसायन-शास्त्रियों ने भस्मीभूत करडाला है, और उसकी ऐसी भस्म बना डाली है कि उसका पुनरुत्थान भी न हो सके। इससे मालूम होता है कि यहाँ के लोगों को हज़ारों वर्षों से इस पदार्थ की पूर्ण जानकारी रही है।

अभ्रक के भेद—आयुर्वेद के अंतर्गत अभ्रक की ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ऐसी चार जातियाँ मानी गई हैं। इनमें से ब्राह्मण अभ्रक सफेद रंग का, क्षत्रिय अभ्रक लाल रंग का, वैश्य अभ्रक पीले रंग का और शूद्र अभ्रक काले रंग का होता है। इनमें से चाँदी बनाने के लिये सफेद, रसायन कार्य के लिये लाल, सोना बनाने के लिये पीला और औषधि कार्य के लिये काला अभ्रक लेनेकी सूचना की गई है।

औषधि के कार्य में आने वाला कृष्णाभ्रक भी पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्र, ऐसे चार प्रकार का बतलाया गया है। इनमें से पिनाक नाम का अभ्रक अग्नि में डालने से परत २ बिखर जाता है, इसके खाने से महाकुष्ठ रोग उत्पन्न होता है। दर्दुर नाम का अभ्रक आग में पड़ने से मेंडक के समान शब्द करता है और गोलाकार हो जाता है, इसके खाने से मृत्यु होती है। नाग नाम का अभ्रक अग्नि में पड़ने से फूँकार करता है। इसके खाने से भगंदर रोग पैदा होता है। वज्र नाम का अभ्रक अग्नि में डालने से ज्यों का त्यों रहता है, यह अभ्रक सब जातियों में उत्तम होने के कारण औषधि के उपयोग में लिया जाता है। यह सब प्रकार के रोगों तथा वृद्धावस्था और मृत्यु को हरने वाला है।

आधुनिक वैज्ञानिक लोग अभ्रक को दो प्रकार का मानते हैं। जिसमें से एक का नाम "मिस्कोवाइट मायका" (Miscovite Mica) और दूसरे को "फ्लोगोपी मायका" (Phlogopi Mica) कहते हैं। यह दोनों ही प्रकार की बहुमूल्य जातियाँ भारतवर्ष के अन्दर काफी तादाद में पाई जाती हैं और यहाँ का अभ्रक संसार भर में सर्वोच्च श्रेणी का माना जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—

रसायन-शास्त्र के अनुसार अभ्रक "अल्मूमिना" और अन्य खारदार पदार्थों का सम्मिश्रण है। इसमें " मेगनेशिया " और " आयर्न आक्साइड " नामक पदार्थ भी कभी-कभी सम्मिलित पाये जाते हैं। अभ्रक की एक जाति को अंग्रेजी में " बियोटाइट " कहते हैं। इसमें " मेगनेशिया " का अंश १० से ३० प्रतिशत तक पाया जाता है। "मिस्कोवाइट" की अपेक्षा इसमें लोहे का अंश ज्यादा होता है। मिस्कोवाइट में अल्मूमिना और सीलिसिक एसिड का भाग अधिक पाया जाता है। इसमें जल का भाग १५ प्रतिशत रहता है, परन्तु बियोटाइट में जल का भाग ७ प्रतिशत ही रहता है। अभ्रक के अन्दर सोडियम और पोटेशियम का भाग भी पाया जाता है। जिस अभ्रक में मेगनेशिया का अंश अधिक होता है, वह यदि जोरदार गंधक के तेजाब में डालकर गरम किया जाय तो गलकर विलीन हो जाता है और प्याली में सफेद सिलीका रह जाती है। अभ्रक और तेल का संयोग भी चमत्कारिक होता है। अभ्रक का संपर्क तेल से होते ही तेल उसकी तहों में प्रवेश करने लगता है और उसके परमाणुओं को बिखेर कर चूर-चूर कर डालता है।

अभ्रक के गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत के अनुसार अभ्रक मधुर, कसैला, शीतल, धातुवर्द्धक, आयु को बढ़ाने वाला तथा त्रिदोष, घाव, प्रमेह, कोढ़, उदररोग, प्लीहा, विषविकार और कृमिरोग को नष्ट करने वाला है।

यथा विधि पूर्णरूप से मरा हुआ अभ्रक सकल रोग नाशक, देह को दृढ़ करने वाला, वीर्य-वर्द्धक, तरुणअवस्था युक्त सौ स्त्रियों से नित्य प्रति रमण करने की सामर्थ्य पैदा करने वाला तथा सिंह के समान पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करने वाला और मृत्यु के भय को दूर करने वाला है।

इसके विपरीत अशुद्ध अभ्रक अनेक प्रकार के रोग कुष्ट, क्षय, पांडुरोग, सूजन, हृदय की पीड़ा भारीपन और ज्वर को उत्पन्न करने वाला है।

अभ्रक भस्म कसैली, मीठी, सुशीतल, उम्र बढ़ाने वाली, धातु बढ़ाने वाली, त्रिदोष, फोड़े, प्रमेह तिल्ली, माँस की गाँठ, विष और कीड़े-इनको नाश करने वाली, शरीर को पुष्ट करने वाली इसके सेवन से सिंह के समान प्रभावशाली और दीर्घायु पुत्र होते हैं एवं मृत्यु का भय नहीं रहता।

इस अमृत रूपी अभ्रक के लगातार कितने ही बरसों तक, सेवन करने से ये फल हो सकते होंगे। हाँ, अभ्रक भस्म अनेक रोग नाश करती है, इसमें जरा भी शक नहीं।

अभ्रक, आयु को स्तम्भन करने वाला, मृत्यु तथा बुढ़ापे को भगाने वाला, बल तथा आरोग्य को प्रदान करने वाला और महाकुष्ट को नष्ट करने वाला है। यह रुचिकर्ता, कफनाशक, दीपन और शीतवीर्य है। भिन्न २ अनुपानों के साथ यह संसार के तमाम रोगों को दूर करता है।

बुढ़ापा और मृत्यु को हरने वाली इसके समान दूसरी दवा नहीं है। मृतअभ्रक को सब रोगों में बरतना चाहिये, क्योंकि इसमें पारे के समान, प्रभावशाली गुण विद्यमान हैं। देह की दृढ़ता के लिये इसको तीन रत्ती की मात्रा में उचित अनुपान के साथ खाने से चिरस्थायी यौवन प्राप्त हो सकता है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार अभ्रक दूसरे दर्जे में ठंडा और तीसरे दर्जे में रुक्ष है। इसकी भस्म शीतजन्य मस्तिष्करोग, बाई की कमजोरी, कामेंद्रिय की निर्बलता, श्वासकष्ट, खाँसी, प्रमेह, रक्तपित्त, क्षय और उरक्षत के रोगों में लाभदायक है। यह पदार्थ तिल्ली और गुर्दे को हानिकारक है, इस के दर्प को नष्ट करने वाले पदार्थ कतीरा, शहद और घृत हैं।

अभ्रक शुद्ध करने की विधि—बढ़िया वज्राभ्रक को तेज आग में तपा २ कर सात बार त्रिफले के काढ़े में बुझाओ। इसके बाद तपा २ कर सात बार गौमूत्र में बुझाओ। उसके बाद फिर तपा २ कर सात बार काँजी में बुझाओ। अभ्रक शुद्ध हो जायगी।

धान्याभ्रक की विधि—ऊपर की तरकीब द्वारा शुद्ध किये हुए अभ्रक को धूप में फैला कर सुखा लो। सूखने पर उसे खरल में डालकर खूब कूटो, ताकि महीन हो जाय। कुटी हुई अभ्रक को तोल लो। जितनी अभ्रक हो, उसका चौथाई भाग "समूचे धान" ले लो। अभ्रक और धान दोनों को एक कम्बल के टुकड़े में बाँध कर तीन दिन-रात अर्थात् ७२ घंटो तक एक पानी के टब या बाल्टी या अन्य वर्त्तन में भींगने दो। चौथे दिन उस पोटली को पानी में * ही खूब मलो अथवा मोगरी से कूटो, जिससे सारी अभ्रक महीन होकर कम्बल के छेदों में छन-छन कर पानी में गिर जाय। इस तरह मसलने से अभ्रक के कंकर, पत्थर वगैरह खराब पदार्थ धानों के साथ कम्बल में रह जाँयगे और अभ्रक पानी में चली जायगी। उस पानी को होशियारी से नितार कर बहा दो, पर अभ्रक न जाने पावे। जो अभ्रक मिले, उसे धूप में सुखा लो। यही "धान्याभ्रक" है। अब यह अभ्रक मारने या फूँकने के काम की हुई।

अभ्रक का सत्व बनाने की विधि—

काले अभ्रक को शास्त्रीय रीति से शुद्ध करके उसका धान्याभ्रक बनाना चाहिये। यह धान्याभ्रक ४० तोला, टंकण क्षार (सुहागी) १० तोला, सादा गूगल १० तोला, घी १० तोला, शहद १० तोला, चिरमी (गुंजा) १० तोला, इन सब वस्तुओं को कूट कर उनमें १० तोला इमली का पानी डालकर उनके छोटे २ गोले बना लेना चाहिये। इन गोलों को सुखाकर कोष्ठी-यंत्र में रखकर कोयले की अग्नि पर चढ़ाकर धमना चाहियें, जिससे अभ्रक का सत्व गलने लगेगा। सत्व गलते समय पीले रंग की ज्वाला निकलेगी और जब सत्व गल चुकेगा तब विद्युत् के समान सफेद रंग की ज्वाला निकलने लगेगी। ४० तोले अभ्रक का सत्व निकलने में करीब ढाई तीन घंटे का समय लगेगा। यह सत्व पहिले रवे के आकार में पड़ता है, इसलिये उसे लोह चुम्बक से पकड़ कर इकट्ठा करना पड़ता है। इन

* अभ्रक पानी के बजाय "काँजी" में भी भिगोई जाती है।

इकट्ठे किये रवों को फिर से कोष्टीयंत्र में रख कर आधे घंटे की सख्त आँच देने से रवे गलकर एक ढाली पड़ जाती है। यह सत्व ४० तोले अभ्रक में से कम से कम ३ और अधिक से अधिक ५ तोले तक निकलता है। इस सत्व को निकालने के लिये काला अभ्रक ही सबसे उत्तम माना जाता है, क्योंकि उसमें लोहे का अंश विशेष भाग में रहता है। इसलिये सत्व निकालने के पहिले कृष्णाभ्रक की प्रारंभ में वर्णन किये हुए ढंग से अग्नि में तपाकर अच्छी तरह जाँच कर लेनी चाहिये।

अभ्रक सत्व की भस्म—ऊपर बतलाये अनुसार अभ्रक का सत्व निकाल कर, उसको कूटकर, बारीक चूर्ण कर लेना चाहिये। उसके पश्चात् इस चूर्ण से १० वाँ भाग सिंगरफ डालकर उसे गवाँर-पाठा और त्रिफला के रस या क्वाथ में एक-एक प्रहर घोटना चाहिये। उसके पश्चात् उसकी टिकड़ियाँ बनाकर उसे सराव संपुट में (मिट्टी के कुल्लड़ में) रखकर, उसका मुँह बंद कर गजपुट (एक गज लंबा, एक गज चौड़ा और एक गज गहरा गड्ढा खोदकर उसमें जंगली कंडे भरकर आँच लगाने को गजपुट कहते हैं) में रखकर फूँक देना चाहिये। इस प्रकार बीस, साठ या एक सौ गजपुट देना चाहिये। इस प्रकार गजपुट देने से इस सत्व में पारे का कुछ अंश मिलता जाता है, जिससे २० गजपुट में करीब एक तोले भर वजन पारे का बढ़ जाता है। इस सत्व की भस्म का गुण साधारण अभ्रक भस्म से अधिक प्रभावशाली होता है। जिन २ रोगों में अभ्रक भस्म काम करती है, उन सब में यह सत्व भस्म साधारण भस्म से कम मात्रा में अधिक प्रभावशाली कार्य करती है।

अभ्रकसत्व का रसायन—अभ्रक के सत्व को कूटकर उसको कपड़े से छानकर थोड़ा घी का हाथ देकर लोहे के तवे पर गरम करना चाहिये। जब वह लाल सुर्ख हो जाय तब उसे लोहे की खरल में डालकर घोटना चाहिये, इस प्रकार तीनबार करने पर उसमें आठवाँ भाग शुद्ध गंधक का डालकर बड़ की जटा के काढ़े में घोटकर उसकी टिकड़ियें बनाकर सुखा लेना चाहिये। उसके पश्चात् उन टिकड़ियों को सरावसंपुट में रखकर कपड़ मिट्टी कर गजपुट में फूँक देना चाहिये। इस प्रकार ५० गजपुट बड़ की जटा के क्वाथ में और ५० गजपुट त्रिफला के क्वाथ में घोटकर देनेसे अभ्रक सत्व का रसायन तयार होता है। इसको एक चाँवल की मात्रा में १॥ माशा सोंठ, मिर्च, पीपर और वायबिडंग के सम्मिलित चूर्ण के साथ देने से जठराग्नि प्रदीप्त होकर संग्रहणी के समान भयंकर रोग नष्ट होते हैं तथा क्षय, प्रदर, प्रमेह इत्यादि रोगों में भी बहुत लाभ पहुँचता है।

अभ्रक भस्म की विधि—

दसपुटी अभ्रक भस्म—धान्याभ्रक की हुई अभ्रक को साफ खरल में डालकर आँकड़े के दूध में डालकर ४ पहर तक घोटो, फिर उसकी गोल टिकिया बनाकर सुखा लो। उस टिकिया को आक के पत्तों में लपेट कर ऊपर से डोरा बाँध दो, फिर उस टिकिया को मिट्टी की एक मजबूत सराइ में रखकर ऊपर से दूसरी सराइ ढँककर दोनों की संधियाँ कपड़-मिट्टी से मिला दो। उसके बाद सारी सराइयों पर कपड़-मिट्टी कर सुखा लो और गजपुट में रखकर फूँक दो। इस प्रकार सात बार उसको फूँको।

जब ऊपर की तरकीब से अभ्रक सातबार फुँक चुके, तब उसे निकाल कर, खरल में डालकर, उसमें "बड़ की जटाओं का काढ़ा" डाल-डालकर चार पहर घोटो और टिकिया बनाकर सुखा लो। सूखने पर टिकिया को सराई में रख, ऊपर से दूसरी सराई रख, कपड़-मिट्टी कर सुखा लो और उसी खड्डे में फूँक दो। यह आठ आँच हो गई। शीतल होने पर, फिर बड़ की जटा के काढ़े में घोट, टिकिया बना सुखा लो और सराइ में रख कपड़-मिट्टी कर, उसी तरह फूँक दो। यह नौ आँच हुई। शीतल होने पर, मसाले को निकाल, फिर बड़ की जटाओं के काढ़े में घोट, टिकिया बना, सुखा सराई में रख, कपड़-मिट्टी कर, उसी तरह उसी खड्डे में फूँक दो। तीन पुट बड़ की जटा के साथ देकर फूँकने से अभ्रक की "निश्चंद्रभस्म" हो जायगी।

शतपुटी अभ्रक भस्म—अगर १०० आँच की या शतपुटी अभ्रक-भस्म बनानी हो तो अभ्रक को पहिले आक के दूध में ७ बार खरल करके, सात बार गजपुट में फूँक दो। फिर तीन बार बड़ की जटा के काढ़े में खरल कर-करके तीन बार गजपुट में फूँक दो। इस तरह जब दस आँच लग जायँ, ११ वीं बार घीग्वार के रस में खरल करके, टिकिया बनाकर सुखा लो। फिर सराई में रखकर, ऊपर से दूसरी सराई धरकर, कपड़-मिट्टी करके, उसी खड्डे या गजपुट में फूँक दो, फिर निकाल कर घीग्वार के रस में खरल करके टिकिया बनाकर सुखा लो और सराव-सम्पुट यानी सराई में रख ऊपर से दूसरी सराई रख, कपड़ मिट्टी कर गजपुट या उसी खड्डे में फूँक दो। इस तरह सात बार आक के दूध में, तीन बार बड़ की जटा के काढ़े में और नब्बे बार घीग्वार के रस में खरल कर करके, यानी कुल १०० बार खरल कर-करके, प्रत्येक बार गजपुट में फूँको, तब १०० आँच की अभ्रक भस्म तैय्यार हो जायगी।

सहस्रपुटी अभ्रक भस्म—शुद्ध धान्याभ्रक लेकर उसे नीचे लिखी हुई ६३ मारक दवाओं के रसों या काढ़ों में अलग २ बारह २ घंटे तक खरल करके टिकिया बनाकर धूप में सुखाओ और सराइयों में बंद करके गजपुट की आँच दो। इस प्रकार प्रत्येक औषधि में सोलह बार घोटकर आँच देने से कुल ६३ × १६=१००८ आँच हो जायगी, इसी को सहस्रपुटी अभ्रक भस्म कहते हैं। यह भिन्न २ अनुपानों के साथ तमाम रोगों का नाश करती और अतुलनीय बल, वीर्य पैदा करती है।

६३ औषधियों के नाम—१ आक का दूध २ बड़ का दूध ३ थूहर का दूध ४ घीग्वार का रस ५ अरंडी के पत्तों का रस ६ नागर मोथे का काढ़ा ७ गिलोय का काढ़ा ८ भाँग का काढ़ा ९ छोटी कटेरी का काढ़ा १० गोखरू का काढ़ा ११ बड़ी कटेरी का काढ़ा १२ शालपर्णि का काढ़ा १३ पृष्ठपर्णि का काढ़ा १४ सफेद सरसों का काढ़ा १५ चिरचिरे के पत्तों का रस १६ बड़ की जटा का काढ़ा १७ बेल के पत्तों का रस या काढ़ा १८ अरनी की छाल का काढ़ा १९ चीते की जड़ का काढ़ा २० तिंन्दू की छाल का काढ़ा २१ हरड़ का काढ़ा २२ पाटल का काढ़ा २३ गौमूत्र २४ आँमलों का रस या काढ़ा २५ बहेड़ों का काढ़ा २६ पीपरों का काढ़ा २७ तालीस-पत्र का काढ़ा २८ मूसली का काढ़ा या रस २९ अडूसे का काढ़ा या रस ३० असगंध का काढ़ा ३१ मौलसरी के पत्तों का काढ़ा ३२ भाँगरे का रस

३३ केले के थंभ का रस ३४ सतवन की छाल का काढ़ा ३५ धतूरे के पत्तों का रस ३६ लोध का काढ़ा ३७ देवदारु का काढ़ा ३८ हरी और सफेद दूब का रस ३६ कसौंदी के पत्तों का रस ४० कालीमिर्चों का का काढ़ा ४१ अनार का रस ४२ मकोय का रस ४३ शंखपुष्पी का रस या काढ़ा ४४ अनार का काढ़ा ४५ पानों का रस ४६ पुनर्नवा का रस ४७ गोरखमुंडी का काढ़ा ४८ इन्द्रायण की जड़ का काढ़ा ४६ भारंगी का काढ़ा ५० बड़ी तरोइ का रस ५१ शिवलिंगी का काढ़ा २५ कुटकी का काढ़ा ५३ ढाक के बीजों का काढ़ा ५४ बंदाल के पत्तों का रस या काढ़ा ५५ मूषाकानी के पत्तों का रस ५६ जवासे का काढ़ा ५७ ब्राह्मी का रस या काढ़ा ५८ काले जीरे का काढ़ा ५६ अगस्त्य का रस ६० शतावर का काढ़ा या रस ६१ मछेछी का काढ़ा ६२ घी और ६३ दूध ।

उत्तम अभ्रक भस्म की पहचान—

जो अभ्रक भस्म काजल जैसी चिकनी और महीन तथा निश्चंद्र हो, यानी जिसमें चमक न हो, वह अमृत के समान है । अगर सचंद्र हो, यानी उसमें चमक होतो वह विष की तरह प्राण नाशक और रोग पैदा करने वाली है ।

उपयोग—

वाजीकरण-(१) सेमल की मूसली के चूर्ण के साथ, भाँग के चूर्ण के साथ या चीनी और शहद के साथ अभ्रक भस्म एक से दो रत्ती तक सेवन करना चाहिये ।

(२) असगंध, शतावर, सेमल की मूसली, चीते की जड़, सफेद मूसली, तालमखाने के बीज, बिदारी कंद, कौंच के बीज और कमलकंद, इन सबको समान भाग लेकर पीस, छान लेना चाहिये । जितना चूर्ण हो उतनी ही निश्चंद्र अभ्रक भस्म मिला देना चाहिये । इस मिली हुई दवा को उचित मात्रा में मिश्री और दूध के साथ सेवन करने से बेहद बलवीर्य और रतिशक्ति बढ़वी है ।

क्षय—(१) सुवर्ण भस्म के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से क्षय के रोग में लाभ होता है ।

(२) त्रिकुटा, त्रिफला, दालचीनी, तेजपात, बड़ी इलायची, नागकेशर, मिश्री और मधु के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से क्षय के रोग में बहुत लाभ पहुँचता है ।

(३) वंशलोचन, इलायची, सत्तगिलोय के साथ अभ्रक भस्म सेवन करना चाहिये । बवासीर, पित्त और खून विकार के रोगों में भी यह अनुपान ठीक है ।

प्रमेह—(१) हल्दी के चूर्ण और शहद के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से प्रमेह का रोग आराम होता है ।

(२) गिलोय सत्त और मिश्री के साथ अभ्रक भस्म का सेवन करना चाहिये ।

(३) शुद्ध शिलाजीत, पीपल के चूर्ण और सोनामक्खी की भस्म के साथ अभ्रक भस्म सेवन करना चाहिये ।

(४) हल्दी और त्रिफले के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म का सेवन करने से प्रमेह आराम होता है।

(५) इलायची, गोखरू, भुईं आँवले, मिश्री और शहद के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र दोनों आराम होते हैं।

बवासीर—(१) शुद्ध भिलावों के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से बवासीर के रोग में बहुत फायदा होता है।

(२) त्रिफला, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात, नागकेशर, चीनी और शहद के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से बवासीर रोग का नाश होता है।

मूत्रा घात, मूत्रकृच्छ्र और पथरी—इन रोगों में जवाखार आदि क्षारों के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से बहुत लाभ होता है।

विविध रोग—संग्रहणी, आमाशय, पेट के रोग, पाण्डुरोग, खाँसी, पेट के कीड़े, अरुचि और मन्दाग्नि इन तमाम रोगों में अभ्रक भस्म को त्रिकुटा, बायविडंग, गाय का घी और शहद के साथ देने से बेहद फायदा पहुँचता है।

हृदय रोग—अर्जुन वृक्ष की छाल के चूर्ण के साथ, हजार पुटी अभ्रक भस्म को अर्जन की छाल के काढ़े में सात बार भावना देकर फिर हृदय रोगियों को देने से यह बीमारी दूर होती है।

जीर्ण ज्वर—अभ्रक भस्म को शहद और पीपर के साथ लेने से जीर्ण ज्वर नष्ट होता है।

नेत्र रोग—अभ्रक भस्म को त्रिफला के डेढ़ माशा चूर्ण में मिलाकर शहद के साथ चटाने से नेत्र रोग में लाभ होता है।

बुद्धि वर्द्धक—अभ्रक भस्म को बायविडंग और त्रिकुटा के चूर्ण के साथ देने से मस्तिष्क शक्ति बढ़ती है।

कुष्ट रोग—शहद और पीपर के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म देने से श्वास, विष, कोढ़, वायुरोग पित्त, कफ, क्षय, भ्रम इत्यादि रोगों में लाभ होता है।

सन्निपात—अदरख के रस और पीपर के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म देने से सब प्रकार के सन्निपात में लाभ होता है।

ज्वर—तुलसी के पत्तों के रस और पीपर के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म देने से सब प्रकार के ज्वर उतरते हैं।

उन्माद—बच के चूर्ण में अभ्रक भस्म मिलाकर ऊपर से गाय का दूध पीने से उन्माद मृगी, और अतिसार में लाभ होता है।

फिरङ्ग रोग—कंटकारी की जड़ तथा गोलमिर्च के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म लेने से फिरङ्ग रोग (उपदंश) में लाभ होता है। इस औषधि को लेते समय नमक नहीं खाना चाहिये।

रक्तार्तव—चौलाई की जड़ और पीपर वृक्ष की छाल को चाँवल के धोवन में पीस कर छान लेना चाहिए। इसके पश्चात् शहद के साथ अभ्रक चाट कर ऊपर से यह पानी पीने से मासिक धर्म में नदी की तरह बहता हुआ खून भी रुक जाता है। (चिकित्सा-चन्द्रोदय)

बनावटें—

अभ्रक का कल्प—अभ्रक की निश्चन्द्र भस्म, आमला, त्रिकुटा, बायबिडंग इन सब औषधियों को समान भाग लेकर भांगरे के रस में दो प्रहर तक खूब घोटें। उसके बाद एक-एक माशे की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लें। इन गोलियों में से पहिले वर्ष में एक-एक गोली, प्रतिदिन दूसरे वर्ष में दो-दो गोली प्रतिदिन और तीसरे वर्ष में तीन-तीन गोलियाँ प्रतिदिन सेवन करें। इस योग से तीन वर्ष में जो मनुष्य ४०० तोला अभ्रक का सेवन कर लेता है वह वज्र के समान शरीर वाला हो जाता है। इसके तीन ही महीने के सेवन से रक्तविकार, क्षय, असाध्य दमा, सब प्रकार की खाँसी, हृदयशूल, संग्रहणी, बवासीर आमवात, शोथ, भयानक पाण्डु और अठारह प्रकार के कोढ़ दूर होते हैं। (रसयोग-सागर)

अभ्रक हरीतिकी—अभ्रक भस्म ८ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, स्वर्ण माक्षिक भस्म २४ तोला, हरड़ ४० तोला, आमला ८० तोला इन सबों का चूर्ण कर एक दिन जंबीरी नीम्बू के रस की भावना देवें। उसके पश्चात् भांगरा, सोंठ, छिरहटा, भिलामा, चित्रक, कुरंटक, हाथी शुंडी, कलिहारी, दूधी, और जलकुंभी इन प्रत्येक के रस में एक २ दिन खरल करें, उसके पश्चात् चीनी के पात्र में भरकर रख लेवें।

इस औषधि को बलानुसार डेढ़ माशे से ढाई माशे तक की खुराक में लेने से सब प्रकार की बवासीर दूर होती हैं। बवासीर रोग की यह एक महौषधि है। (आयुर्वेदीय कोष)

अभ्रक गुटिका—शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शुद्ध वच्छनाग, सोंठ, मिर्च, पीपर, भुना सुहागा, कांतिसार, अजमोद, अफीम सब एक २ तोला और अभ्रक भस्म १० तोला इन सबको लेकर चित्रक के काढ़े में एक दिन तक खरल करके कालीमिर्च के बराबर २ गोलियाँ बना लें। इन गोलियों को एक मास तक सेवन करने से संग्रहणी दूर होती है।

विशेष—इनके अतिरिक्त अभ्रक भस्म से अग्निकुमार रस, कन्दर्पकुमारअभ्र, हरिशंकर रस, अर्जुनाभ्रक, शृंगाराभ्रक, वृहत्चन्द्रामृत रस इत्यादि मूल्यवान औषधियाँ बनती हैं।

———:o:———

अमरबेल

नाम—

संस्कृत—आकाशवल्ली, दुस्पर्शा, व्योमवल्लिका, अमरवल्लरी । हिन्दी—अमरबेल । गुजराती—अमरबेल । मराठी—अमरबेल । बंगाली—आलोक-लता । अरबी—अफ़तीमून । फारसी—कसूसे हिन्द । लैटिन—Cuscutareflexa (कुसकुटारिफ्लेक्सा.)

वर्णन—

यह पीले रंग की, पराश्रयी लता है, जो बबूल, बेर, पीपल, थूअर, इत्यादि वृक्षों के ऊपर जाले की तरह छा जाती है । इस बेल में से चूसने वाले सूत्र (Suckers) निकल कर जिस वृक्ष पर यह बेल फैली हुई रहती है, उस झाड़ की डालियों का रस ये चूसते रहते हैं । यह बेल बड़ी और छोटी के हिसाब से दो प्रकार की होती है । यूनानी चिकित्सा के अन्दर जो गुण अफ़तीमून के माने गये हैं । वही गुण वैद्यकग्रन्थों में भी प्रायः आकाशबेल के माने जाते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मतानुसार अमरबेल तीखी, मधुर, पित्तनाशक, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, रसायन और दिव्यौषधि है ।

यूनानी मत से इसके बीज कड़वे, उपशामक, ऋतुस्राव को नियमन करने वाले, पेशाब को साफ लाने वाले, धातुपरिवर्तक, यकृत और तिल्ली की बीमारी में फायदा पहुँचाने वाले हैं। यह बेल चौथिया पाली (जूड़ी) एकाँतरा और बुखार को दूर करती है तथा जीर्णज्वर, आँतों के दर्द और कुक्कुर खाँसी में लाभ पहुँचाती है, यह बेल खून और आँतों को साफ करती है । इसका सत आँखों की बीमारियों में दिया जाता है ।

सिन्ध और पंजाब के स्थानीय डाक्टर इसको शरीर के रसों को शुद्ध करने वाला समझते हैं। रक्तशुद्धि के लिये सार्सापरिला के साथ यह इस्तेमाल की जाती है । इसके बीजों को उबालकर पेट पर बाँधने से पेट का आफरा दूर होता है ।

इंडियन मटेरिया मेडिका के लेखक डा० नॉडकर्नीके मतानुसार अमरबेल का काढ़ा कब्जियत, लिवर की बीमारियों तथा पित्तविकार में उपयोगी मानते हैं और खून शुद्ध करने के लिये इसका सार्सापरिला के साथ प्रयोग करते हैं ।

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि इस औषधि का यकृत और तिल्ली के ऊपर सीधा प्रभाव होता है । और इन दोनों के दोष से जितनी बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, उन सब में यह फायदा पहुँचाती है ।

प्रयोग—

यकृत की वृद्धि—यकृत की वृद्धि और उसकी कठोरता को मिटाने के लिये अमरबेल का काढ़ा पिलाना चाहिये तथा पेट पर इसका लेप करना चाहिये ।

रक्त विकार—उसबे के साथ इसका क्वाथ, शहद मिलाकर पीने से रुधिर शुद्ध होता है ।

अफरा—इसके बीजों को उबाल कर पेट पर बाँधने से डकारें, अपशब्द आदि दूर होकर पेट की पीड़ा मिट जाती है ।

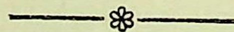
पुराना घाव—इसके चूर्ण में सोंठ और घी मिलाकर लेप करने से पुराना घाव भरता है ।

खुजली—इसको पीसकर लेप करने से खुजली में फायदा होता है ।

बनावटें—

शर्बत दीनार—अमरबेल के बीज १॥ तोला,कासनी के बीज २ तोला,गुलाब के फूल २ तोला, कासनी की जड़ की छाल ४ तोला, नीलोफर के फूल १ तोला, गावजवान के पत्ते १ तोला, इन सब वस्तुओं में से अमरबेल को छोड़कर बाकी सब वस्तुओं को कूट लेना चाहिये । और अमरबेल को कपड़े की एक थैली में डालकर तीन सेर पानी में चूर्ण के साथ आग पर चढ़ा देना चाहिये । जलते २ जब जल १ सेर रह जाय तब उसमें १॥ सेर शक्कर डालकर एक तार की चासनी बनाकर शर्बत बना लेना चाहिये । इस शर्बत को सब से पहिले हकीम नहसू ने बनाया था और उस समय यह दीनार के बराबर (मुगलकाल का एक सिक्का) तोल कर बिकता था, इसीसे इसका नाम शर्बतेदीनार पड़ा ।

यह शर्बत धातु-परिवर्तक है । इसको १ से २ रुपये भर के प्रमाण में पानी के साथ पीने से यह बुखार और शरीर के दूसरे दोषों को सुधारता है । जलोदर, हाथ पैरों की सूजन,फसली का दर्द तथा लीवर, पेट, गुर्दा तथा योनि के तमाम विकारों में यह लाभ पहुँचाता है ।



अमरबेल विलायती

नाम—

फ़ारसी—अफ़तीमून । हिन्दी—अमरबेल विलायती । लेटिन—Cuscuta Epythymum. (कसक्यूटा एपीथीमम)

वर्णन—

इसका रूप-रंग, वगैरः सब देशी अमरबेल से मिलता-जुलता है, जिसका वर्णन ऊपर कर दिया गया है ।

गुण दोष और उपयोग—

आयुर्वेद के अन्दर इस औषधि का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता।

यूनानी मत—यूनानी के प्रसिद्ध ग्रन्थ मख़जनुल अदविया और तर्जुमा नफ़ीसी में इसका वर्णन मिलता है। उसके अनुसार यह औषधि तीसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में रुक्ष है। यह गरम प्रकृति वालों को तथा नौजवान मनुष्यों को हानि पहुँचाने वाली है, यह मूर्च्छा को पैदा करने वाली और तृषाजनक है। इसके प्रतिनिधि निसोथ, पित्त-पापड़ा, उस्तखद्दूस इत्यादि चीज़ें हैं तथा इसके दर्प को नष्ट करने के लिये शर्बत अनार, शर्बत सन्दल और केशर इत्यादि चीज़ें हैं।

यह औषधि अपने गरम और रुक्ष स्वभाव की वजह से वात-व्याधियों को दूर करती है और अधेड़ और वृद्ध मनुष्यों की प्रकृति को साम्य अवस्था पर लाती है। नवयुवकों के अन्दर यह प्यास और मुख शोष पैदा करती है। यह सूजन के अन्दर तथा मस्तिष्क के रोगों में लाभ पहुँचाती है। खून और चर्मरोगों में भी यह हितकारी है।

इसके बीज जिन्हें कशूस कहते हैं, वे भी गरम और रूखे होते हैं। ये पेशाब और पसीना लाने वाले, रजःप्रवर्तक, दुग्धवर्द्धक तथा प्रकृति को मुलायम करने वाले होते हैं।

यूनानी के अन्दर इस औषधि के मेल से कई प्रकार की वटिकाएँ, चूर्ण, माजून और क्वाथ बनाये जाते हैं।

अमरूद

नाम—

संस्कृत—पेरूकम, दृढ़बीजम, मोसलम्। हिन्दी—जामफल, अमरूद। गुजराती—जामफड़। मराठी—पेरू। बंगाली—पियारा। तैलंगी—गोइया। द्राविड़ी—कोइया। कर्नाटकी—शिवे। अरबी—कमुसरा। लैटिन—Psidium Guyava.

विवरण—

अमरूद या जामफल सारे भारतवर्ष में सब दूर बगीचों में होता है। इसे सब लोग जानते हैं। इसके विशेष विवरण की आवश्यकता नहीं है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—अमरूद कसैला, मधुर, ग्राही, किंचित खट्टा तथा पकने पर स्वादिष्ट, शीतल, तीक्ष्ण, भारी, कफकारक, वातवर्द्धक, उन्मादनाशक, वीर्यवर्द्धक, त्रिदोषनाशक, तथा भ्रम, दाह और मूर्च्छा को नष्ट करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहिले दर्जे में ठंडा और तर तथा दूसरे दर्जे में उष्ण प्रकृति-युक्त है। शीत-प्रकृति वाले को तथा जिसका आमाशय निर्बल है, उसके लिये यह हानिकारक है।

यह बलकारी, मृदु, मन को प्रसन्न करने वाला, क्षुधा को बढ़ाने वाला तथा हृदय और पाचन-शक्ति व मस्तिष्क को बल देने वाला है। इसके पत्ते अतिसार और व्रण को नाश करने वाले हैं। इसके फूल हृदय को बल देने वाले,खून को बन्द करने वाले तथा अतिसार को नष्ट करने वाले होते हैं। इसका लेप आँखों की सूजन को मिटाता है। मीठा अमरूद पेचिश में लाभदायक है। भोजन के बाद लेनेसे यह मृदुविरेचन का काम करता है। इसके काढ़े का बच्चोंके अतिसार में सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है।

बच्चों के गुदाभ्रंश रोग में भी इसका काढ़ा फायदेमन्द साबित हुआ है। इसके छोटे पत्ते पाचन-क्रिया सम्बन्धी विकारों को नष्ट करते हैं। हैजे के रोग में भी इसका काढ़ा उपयोग में लिया गया है और उसमें कुछ दर्जे तक सफलता भी प्राप्त हुई है। दाँतों के दर्द में इसके पत्तों को चबाने से लाभदायक मालूम हुआ है।

वेस्ट इंडीज़ में इसके काढ़े का स्नान ज्वरनाशक और आक्षेप-निवारक माना गया है। गठिया की बीमारी में इसका लेप किया जाता है। इसके पत्तों का अर्क मूर्छा व कम्पवात में दिया जाता है। इसका मुरब्बा अतिसार व रक्तातिसार वालों के लिये लाभदायक है।

रासायनिक विश्लेषण

डा० चोपड़ा के मतानुसार इसकी जड़ व छाल में टेनिन एसिड काफ़ी मात्रा में रहता है। इसके अतिरिक्त केल्सियम और ऑक्जेलेट के रवे भी इसमें पाये जाते हैं। इसके पत्तों का काढ़ा मसूड़ों की सूजन और मुँह के फोड़ों में कुल्ले करने के काम में लिया जाता है। इसकी जड़ का छिलका उत्तम, संकोचक, ज्वरनिवारक और आक्षेपनिवारक औषधि है। इसके फल दस्तावर और इसके पत्ते रोचक हैं।

उपयोग—

भंग का नशा—जामफल के पत्तों का रस पिलाने से या जामफल खाने से भङ्ग का नशा उतरता है।

बच्चों का पुराना अतिसार—इसकी सवा तोले जड़ को पन्द्रह तोले पानी में औटाकर, जब साढ़े सात तोला पानी रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिये। इस काढ़े में से छः माशे पानी दिन में तीन बार पिलाने से बच्चों का पुराना अतिसार बन्द होता है।

हैजा—इसके पत्तों का काढ़ा बनाकर पिलाने से हैजे की दस्त, उल्टी बन्द हो जाती है।

पुराना अतिसार—इसके कोमल पत्तों की जड़ की छाल का काढ़ा बनाकर पीने से पुराने अतिसार में लाभ पहुँचता है।

दंत पीड़ा—इसके पत्तों को चबाने से दन्त की पीड़ा दूर होती है।

अमरूल

नाम—

संस्कृत—अम्लिका । बंबई—अम्बुटि । तामील—पलियाकिरी । हिन्दी—अमरूल । लेटिन—Rumexadentatus. (रूमेक्सडेन्टेटस)।

वर्णन—

यह औषधि भी अमलवेत का ही एक दूसरा प्रकार है। यह विशेष कर खानदेश, दक्षिणी भारत और कुमायूँ में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ संकोचक है और विशेष कर चर्मरोगों में लाभ पहुँचाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके पत्ते बुखार, अतिसार और बच्चों के स्कर्व्ही (Scurvy) रोग में काम में लिये जाते हैं। अतिसार के अंदर इसके पत्तों का ताज़ा रस शक्कर या शहद मिलाकर लेने से फायदा पहुँचाता है। पंजाब और सीमाप्रान्त में इस सारे झाड़ का रस फोड़ों को दूर करने के लिये काम में लिया जाता है।

अमलतास

नाम—

संस्कृत—नृपद्रुम, आरगवधः, हेमपुष्पः,दीर्घफलः, व्याधिघातः । हिन्दी—अमलतास, धनबहेड़ा । मारवाड़ी—करमाष्ठो । गुजराती—गरमाष्ठो । मराठी—वाहवाह । बंगाली—सोनालू । तेलंगी—रेल-चट्टू । कर्नाटकी—कक्केमर । लेटिन—Cassia Fistula (केसिया फिस्चूला)

परिचय—

अमलतास के पौधे हिन्दुस्तान में सब दूर होते हैं। इसके वृक्ष बहुत ऊँचे नहीं होते। इसके पेड़ की गोलाई ३ से ५ फीट तक होती है। इस झाड़ में दो-डेढ़ फुट लम्बी काले रंग की फलियाँ लगती हैं, जो शीतकाल में पकती हैं। फली के भीतर छोटे २ खाने बने हुए होते हैं और उसमें काले रंग का गोंद के समान एक लसदार पदार्थ भरा रहता है जोकि उसका गिर कहलाता है। इस झाड़ की शाखाओं में से एक प्रकार का लाल रस निकलता है, जो जम कर गोंद सरीखा हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मतानुसार अमलतास भारी, स्वादिष्ट, शीतल, मृदुरेचक (हलका जुलाब) तथा ज्वर, हृदयरोग, रक्तपित्त, वात उदावर्त और शूल को नष्ट करने वाला है। इसकी फली रुचिकारक, कुष्टनाशक, पित्तनिवारक, कफ नष्ट करने वाली, कोठे को शुद्ध करने वाली, तथा ज्वर में पथ्य है। इसके पत्ते कफ और मेदा को शोषण करने वाले और मल को ढीला करने वाले हैं। इसके फूल स्वादिष्ट, शीतल, कड़वे, कसैले, वातवर्द्धक तथा कफ और पित्त को दूर करने वाले हैं। इसकी मज्जा जठराग्नि को बढ़ाने वाली, स्निग्ध, पाक में मधुर, रेचक तथा वात पित्त को नष्ट करने वाली है। इसकी जड़ दूध में औटाकर देने से वात-रक्तनाशक, दाह और दाद को नष्ट करने वाली है। इसकी जड़ चर्मरोग, कोढ़, क्षयरोग व उपदंश में उपयोगी है। इसके पत्ते मृदु-विरेचक, सामयिकज्वर को दूर करने वाले, घाव को जल्दी पूरने वाले तथा गठियावाय में अधिक लाभ पहुँचाने वाले होते हैं। अग्नि विसर्परोग में इनका रस दिया जाता है। इसकी फलियाँ मृदुविरेचक, ज्वरविनाशक और स्वाद को दुरुस्त करने वाली होती हैं। ये कफ, पित्त, चर्मरोग और कुष्ट को आराम करती हैं। इसके फूलों में सुगंध आती है। फूलों का स्वाद कटु और तिक्त रहता है। ये ठंडे और संकोचक होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम, तर और किसी २ के मत से मउतदिल अर्थात् (समशीतोष्ण) है। इसके पत्ते प्रदाह को नाश करने वाले और इसके फूल विरेचक हैं। इसके फल मीठे, स्वाद में खराब और एक प्रकार की हीक लिये हुए रहते हैं। यह ज्वर को नाश करने वाला, गर्भस्रावक और शांतिदायक होता है, छाती की तकलीफ, गले की तकलीफ, नेत्ररोग, गठियारोग और आँतो के दर्द को दूर करता है। इसकी जड़ प्रायः पौष्टिक और ज्वर-नाशक औषधि के रूप में दी जाती है। यह एक तेज विरेचक का भी काम करती है। कोकन में इसके पत्तों का रस, दाद की दवा के रूप में लगाया जाता है।

डा० चोपड़ा के मतानुसार इसके बीज विरेचक हैं तथा गठिया और सर्पदंश में इनका उपयोग किया जाता है। चरक, सुश्रुत और योगरत्नाकर के कर्ता भी इसको दूसरी औषधियों के साथ सर्पदंश और वृश्चिकदंश में उपयोगी मानते हैं। मगर केस और मस्कर के मतानुसार यह सर्पदंश और वृश्चिकदंश में बिलकुल निरुपयोगी सिद्ध हुआ है।

रासायनिक विश्लेषण—

फल के बारीक चूर्ण में भपके के द्वारा अर्क खींचने से एक मधुर गंधयुक्त श्याम तथा पीले रंग का एक उड़नशील तेल प्राप्त होता है। तेलीय अर्क में साधारण ब्यूटिरिक एसिड होता है। फल व गूदा में शक्कर ६० परसेंट, लुआब, संग्राही पदार्थ, ग्लूटिन, रंजक पदार्थ, पॅक्टीन, केलशियम ऑक्जेलेट, भस्म, निर्यास और जल ये द्रव्य पाये जाते हैं।

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि यह औषधि आमाशय के ऊपर अपना मृदुप्रभाव डालकर कोमल विरेचन करती है। इसलिये कमजोर आदमियों को तथा गर्भवती स्त्रियों को भी विरेचक-औषधि के रूप में यह औषधि दी जा सकती है।

अमलतास का कल्प—कल्प किया हुआ अमलतास साधारण अमलतास से ज्यादा गुणकारी होता है। और चार वर्ष के बच्चे को भी आसानी से हजम हो सकता है तथा कोई हानि नहीं पहुँचाता, इसलिये अमलतास को काम में लेने के पहिले अगर उसका कल्प कर लिया जाय तो विशेष अच्छा रहता है। इसकी विधि इस प्रकार है—अमलतास का पका हुआ फल लाकर एक सप्ताह तक बालू के ढेर में गाड़ दिया जाय। फिर उसे धूप में सुखा लिया जाय। इस फल के गूदा को दाख के रस के साथ देने से उत्तम विरेचन होता है और कोई हानि नहीं होती।

प्रयोग—

चर्म रोग—अमलतास के पंचांग (जड़, छाल, फल, फूल और पत्ते) को जल के अन्दर पीसकर दाद, खुजली और दूसरे चर्मविकारों पर लगाने से जादू के समान असर होता है। मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, पेशाब के साथ खून गिरना आदि विकारों पर इसका गूदा, नाभि पर लेप करने से बहुत फायदा होता है। लेप सूख जाने पर उखाड़ देना चाहिये और रात में लेप नहीं करना चाहिये।

श्वास की रुकावट—इसकी गिरी का क्वाथ पिलाने से लघुविरेचन होकर श्वास की रुकावट मिटती है।

सुन्नवात व गठिया—इसके पत्तों को गरम करके इनकी पुल्टिस बाँधने से सुन्नवात, गठिया और अर्दित में फायदा होता है।

अंड-वृद्धि—इसकी डेढ़ तोले गिरी को दस तोले पानी में औटाकर ढाई तोला रहने पर उसमें तीन तोले गाय का घी मिलाकर खड़े-खड़े पीने से अंड-वृद्धि में लाभ होता है।

कंठमाल—इसकी जड़ को चाँवलों के पानी के साथ पीसकर सुंघाने और लेप करने से कंठमाल में फायदा होता है।

कब्जियत—अमलतास का गूदा और इमली का गूदा दोनों को समान भाग लेकर, भिंगोकर, उसके पानी के मल-छानकर रात को सोते समय पीने से सबेरे साफ दस्त हो जाता है।

कर्ण रोग—इसके क्काथ को कान में डालने से पीप बहना बंद हो जाता है।

कुष्ट—कुष्ट, दाद इत्यादि त्वचा रोगों पर इसके पत्तों को सिरके के साथ पीसकर लेप करने से लाभ होता है।

बालक का आफरा—बालकों के आफरा और पेट के शूल में इसकी गिरी को नाभी के चारों ओर लेप करने से लाभ होता है।

सुख प्रसव—अमलतास के छिलके को औटाकर उसमें शक्कर मिलाकर पिलाने से गर्भवती स्त्री को आराम से प्रसव हो जाता है।

हरिद्रा-प्रमेह—अमलतास के पत्तों और जड़ का क्वाथ बनाकर हरिद्रा-प्रमेह में देने से लाभ होता है।

बनावटें—

अमलतासादि तैल—अमलतास के पत्ते, चकोर के पत्ते, मैंसल, हल्दी, कूठ, दारुहल्दी, पीपर, गंधक, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर लुगदी बनाकर कड़वे तेल में पका लें, इस तेल को फोड़ा, फुन्सी, दाद, खुजली आदि चर्मरोगों पर लगाने से बहुत लाभ होता है।

अमलतासादि अवलेह— नींबू के एक सेर रस में आधे सेर अमलतास की फलियों को कूट कर डाल दें। दो दिन भींगने के बाद स्वच्छ वस्त्र में डालकर हाथ से हिला २ कर छान लें। उसके पश्चात् दालचीनी, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपर, भुनी हुई हींग, छोटी इलायची के दाने और बड़ी इलायची के दाने इन सबको दो-दो तोला लेकर लोहे की खरल में पीसकर कपड़छन कर उसमें मिला दें। इसके पश्चात् सेंधानमक, कालानमक, अग्नि पर भुना हुआ काला दाना और भुना हुआ सफेद जीरा ये चारों चीजें भी पीसकर उसमें मिला दें।

इस अवलेह को ३ माशे से लेकर एक तोले की खुराक तक चाटने से मंदाग्नि और आलस्य दूर होते हैं। रात्रि को चाटकर सोने से प्रातःकाल साफ दस्त हो जाती है। चित्त खूब प्रसन्न रहता है। भोजन में अरुचि होने पर दो घंटे पहिले चाट लेने से भोजन में रुचि पैदा हो जाती है। ज्वर के अंदर मुँह का जायका बिगड़ा रहता है, वह इससे शुद्ध हो जाता है। इस अवलेह में पाँच तोले मुनक्का को नींबू के रस में पीसकर मिला देने से तथा थोड़े पके हुये अनार के दानों का रस मिला देने से इसकी गरम प्रकृति भी शीतल हो जाती है। इस औषधि को हमेशा मिट्टी या चीनी के पात्र में बनाना चाहिये। धातु के पात्र में कभी नहीं बनाना चाहिये।

अमलतासादि अरिष्ट—अमलतास का गूदा एक सेर, जमालगोटे की जड़ एक सेर, गुड़ एक सेर, धायके फूल ५ तोला, सोंठ ५ तोला, कालिमिर्च ५ तोला, पीपर ५ तोला, पानी ३२ सेर। सब से पहिले पानी में जमालगोटे की जड़ का क्वाथ बनाकर जब चौथाई जल शेष रहे, तब उसमें अमलतास का गूदा और गुड़ तथा दूसरी सब दवाओं का चूर्ण मिलाकर घी के घड़े में (हाँडी में) भरकर मुँह बंद करके जमीन में गाड़ दें। एक महीने के बाद उसको निकाल कर, छानकर, बोतलों में भर दें। इस अरिष्ट को सुबह-शाम ढाई तोले की मात्रा में देने से यह पेट की सब बीमारियों को नष्ट करता है। धन्वंतरि के बूँटी-चित्रांक में एक वैद्य महोदय ने लिखा है कि इस अरिष्ट के साथ "नारायण" चूर्ण का सेवन करने से असाध्य पेट के रोगी भी आराम हुए हैं।

माजून अमलतास—गुलाब के फूल ७ तोला, सनाय मक्की ७ तोला, सूखा धनियाँ १ तोला, सत मुलहठी (रुब्बेसूस) १ तोला, सेंधानमक १ तोला, इन सब औषधियों को कूट पीसकर बरसात के झेले हुए (Rain water) २ सेर पानी में भिंगो दें। फिर १२ तोला अंजीर, ६ तोला इमली, ५ तोला आलूबुखारा और २० तोला अमलतास का गूदा, इनमें से पहली तीन चीजों का काढ़ा बनाकर अच्छी

तरह मिलाकर चलनी से चाल लें। फिर अमलतास को भी उस जल में भिगोकर हलकी आँच से कुछ देर पकावें और फिर अच्छी तरह से मिलाकर चलनी से चाल लें, उसके पश्चात् एक सेर शक्कर मिलाकर उसे गाढ़ा होने तक अग्निपर पकाना चाहिये। फिर उतारकर बारीक की हुई दवाइयों को उसमें मिलाकर उनमें चार तोला रोगन बादाम मिला लें। रोगन बादाम ठंडा होनेपर मिलावें, नहीं तो जलने का अंदेशा रहता है।

यह माजून प्रत्येक प्रकृति वालों के लिये आँतों की रुक्षता को मिटाकर उनको मृदु करने में लाभकारी है। विशेष कर अर्शरोगी के लिये यह बहुत फायदेमंद है।

इसकी खुराक ४ माशे से ८ माशे तक है, जो पानी के साथ रात को सोते समय दी जाती है।



अमलवेत

नाम—

संस्कृत—अम्लवेतस्, चुक्र, शतवेधी, सहस्रजित, अम्ल, रसाम्ल, भीम, अम्लनायक। हिन्दी—अमलवेत, चूका, अम्बेरी। बंगाली—थेकड़, अम्लवेतस्। मराठी—चूका। गुजराती—अमलवेत। तामील—शेकंकिराई। तैलगू—चूकाकुरा। अरबी—हमाफ़, ह्यूमर बोस्तानी, हंबीजित। फारसी—तुरस्क, तुरशाह, तुरशुमुक। पंजाबी—खट्टामीठा, खटबीरी, खट्टातान, सालुनि। लैटिन—Rumex Vesicarius. (रूमेक्स व्हेसीकेरिअस) इंग्लिश—Bladder Dock, Sorrel.

वर्णन—

यह एक हलके हरे रंग की वर्षजीवी वनस्पति है। इसके पत्ते तीखी नोक वाले होते हैं। इसका वृक्ष मध्यम आकार का होता है। यह दो जाति का होता है। एक को अमलवेत व दूसरे को वेंती कहते हैं। यह पेड़ मालियों के बगीचों में बहुत होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के और फल गोल खरबूजे के समान कच्ची हालत में हरे और पकने पर पीले पड़ जाते हैं। यह चिकना होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अमलवेत अत्यन्त खट्टा, भेदक, हलका, अग्निदीपक, पित्त बढ़ाने वाला, रूखा तथा हृदयरोग, पेट दर्द, वायुगोला, कब्जियत, प्लीहा, हिचकी, शराब से पैदा हुई विकृति, श्वास, खाँसी, अजीर्ण और वातरोग को हरने वाला है। इसके रस में लोहे की सुई डालने से वह गल जाती है। चरक के मतानुसार इसके पत्ते सर्पविष को दूर करने वाले और बीज बिच्छू के जहर को नाश करने वाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह औषधि ठंडी, पौष्टिक और खुजली की बीमारी में उपयोगी है। मंदाग्नि को दूर कर यह भूख को बढ़ाती है। अपने संकोचक गुण की वजह से यह जी का मिचलाना बंद करती है। इसके पत्ते ठंडे और मृदुविरेचक हैं जो मूत्रनिस्सारक औषधि की तरह उपयोग में लिये जाते हैं। इसका रस दाँतो की तकलीफ को कम करता है। अपने ठंडे स्वभाव की वजह से यह पेट की गर्मी को शमन कर भूख को बढ़ाता है। इसके रस को लगाने से जहरीले जानवरों के डंक की पीड़ा दूर होती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि अग्निदीपक, मूत्रनिस्सारक, और संकोचक है। साँप और बिच्छू के जहर पर इसका उपयोग किया जाता है।

केस और मस्कर के मतानुसार सर्पदंश और बिच्छू के डंक पर इसके पत्ते और बीज दोनों ही निरुपयोगी सिद्ध हुए हैं। लाक्षणिक और विषनिवारक दोनों ही उपचारों में इनका कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

उपयोग—

आमाशय की दाह—इसके पंचांग का रस पिलाने से आमाशय की जलन शान्त होती है।

बिच्छू का जहर—इसके पत्तों को पीस कर लेप करने से बिच्छू और दूसरे जानवरों के डंक में फ़ायदा होता है।

आमातिसार—इसके बीजों को सेक कर उनका चूर्ण बनाकर फंकी देने से आमातिसार में लाभ पहुँचता है।

———:o:———

अमसानिया

नाम—

पंजाब—अमसानिया, बुदसुर, बुतसुर, चेवा, केवा। अफगानिस्तान—हुमहुमा। सतलज— फोक। लैटिन—Ephedra Pachyclada. Ephedra Gerardiana.

वर्णन—

यह एक प्रकार का कठोर और गठा हुआ पौधा होता है। इसकी जड़ें परस्पर में लिपटी हुई होती हैं। इसकी शाखाएँ खड़ी और चिकनी होती हैं। इसके फूल गोलाकार और फैले हुए रहते हैं। इसके फल गोल, लाल, मीठे और स्वादयुक्त रहते हैं।

यह औषधि पश्चिमी हिमालय, अफगानिस्तान, चीन, पश्चिमी मध्य एशिया, पूर्वीय फारस, यूरोप तथा हिमालय पहाड़ पर ८००० फीट से लेकर १४००० फीट की ऊंचाई तक मिलती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद और यूनानी के अन्दर इस औषधि का वर्णन दिखलाई नहीं देता।

इंडियन मेडिकल प्लाँट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसकी जड़ और लकड़ी का काढा रूस में आमवात और फिरंग रोग में दिया जाता है। इसके फल का रस श्वास-क्रिया प्रणाली के रोगों में देने के काम में आता है। चीन में इसकी पतली शाखाएँ ज्वरनिवारक मानी गई हैं।

आधुनिक अन्वेषणों के अन्दर इस औषधि ने बहुत महत्व प्राप्त किया है, जिसका वर्णन कर्नल चोपड़ा के ग्रंथ के आधार पर नीचे किया जाता है।

आधुनिक काल में कुछ औषधियों ने संसार के चिकित्सकों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया है। इन औषधियों में अम्सानिया के अन्दर पाया जाने वाला उपक्षार जो एफीड्राइन (Ephedrine) के नाम से प्रसिद्ध है। वह भी एक प्रधान है। इस विषय पर कई अनुभव किये जा चुके है। प्रोफेसर बी० ई० रीड ने भी इस विषय के ऊपर अपना पूरा ध्यान दिया है। उनकी पुस्तकों का अवलोकन करने से इस विषय का विस्तृत वर्णन प्राप्त हो सकता है। यह पदार्थ चीन में गत पाँच हजार वर्षों से उपयोग में लिया जा रहा है। इस वनस्पति का सम्बंध सिर्फ चीन से ही नहीं है, प्रत्युत इसका भोगौलिक विस्तार बहुत बड़ा है। इसकी पैदाइश पृथ्वी के सभी भागों पर फैली हुई है। भारतवर्ष के अन्दर हिमालय के शुष्क प्रांतों में भी इस जाति की वनस्पतियाँ पैदा होती हैं।

भारतवर्ष के अन्दर इस औषधि का उपयोग नहीं देखा जाता। आयुर्वेदीय और तिब्बी ग्रंथों में भी इसका कहीं वर्णन नहीं मिलता। यह कहा जाता है कि एफीड्रा (Ephedra.) की एक जाति जिसे एफीड्रा इंटरमीडिया कहते हैं—यह वही प्रसिद्ध सोमवृक्ष है, जिससे कि वैदिककाल में ऋषि लोगों का परमप्रिय पेय तैयार किया जाता था, किंतु इस कथन को पुष्ट करने के लिये उचित प्रमाणों का अभाव है।

चिकित्सा-शास्त्र के अन्दर एफीड्राइन का बहुत अधिक उपयोग और उसकी बहुमूल्य कीमत को देखकर कर्नल चोपड़ा ने सन् १६२६ में इस औषधि का रासायनिक संगठन और अनुसंधान किया। एफीड्राइन की फुटकर कीमत ६००) पर पौंड है। इसके इतना मँहगा होने के कारण एक इसीसे मिलता-जुलता उपक्षार स्यूडो एफीड्राइन (Pseudo Ephedrine.) का भी परीक्षण किया गया।

सन् १८६० में मि० वाट ने हिन्दुस्तान में पैदा होने वाली तीन जातियों का वर्णन किया है।

(१) एफीड्रा व्हलगेरियस जिसको कि एफीड्रा गिरारडियाना (Gerardiana.) और एफीड्रा डिस्टच्या (E.Distachya.) और एफीड्रा मोनोस्टचया (E.Monostachya.) भी कहते हैं, और जिसे देशी भाषाओं में अमसानिया, चेया, बुतशुर, खंडा, खामा, कुनावर तथा फोक इत्यादि नामों से भिन्न-भिन्न प्रांतों में पहचानते हैं।

(२) एफेड्रा पची क्लेडा (E.Pachyclada) जोकि एफेड्रा इन्टरमीडिया (E.Intermedia) के नाम से प्रसिद्ध है। इसे फारस में हुमा, बम्बई में गेमा और पश्तों में ओमान कहते हैं।

(३) एफेड्रा पेडनक्यूलरिस (PeduncuIoris) है, जिसे भारतीय भाषाओं में कुचन, नीकी कुरकर, ब्राटा, टंडला, लस्तुक, मंगखल और बन्दूकी कहते हैं।

उपरोक्त तीन जातियों के अतिरिक्त दो जातियाँ और पाई जाती हैं, जिनके नाम एफीड्रा फोलियेटा (E · Foliata.) और एफीड्रा फ्रेगलिस (E· Fragilis.) कहते हैं। ये दोनों जातियाँ उपरोक्त तीनों जातियों से तुलना में कम महत्व की हैं।

ये सभी जातियाँ उत्तरी-भारत के भिन्न २ स्थानों में पैदा होती हैं ; भिन्न २ स्थानों की वनस्पतियों का विश्लेषण करने से मालूम हुआ है कि उत्तर, पश्चिम, भारत के शुष्क स्थानों से प्राप्त हुए एफीड्रा में चान की एफीड्रा की अपेक्षा क्षार की मात्रा ज्यादा रहती है।

सन् १६२६ में कर्नल चोपड़ा और उनके सहयोगी लोगों ने झेलम प्रान्त की पहाड़ियों पर पैदा होने वाली दो जातियों का वर्णन किया है जो अपनी उपक्षार की बाहुल्यता के कारण विशेषरूप से ध्यान आकर्षित करती हैं।

(१) इनमें से पहली एफेड्रा व्हलगेरियस अथवा एफेड्रा गिरारडियाना है, इसके क्षारीतत्वों का अनुपात .८ से १.४ प्रतिशत तक है। इनमें से करीब आधे तो एफीड्राइन हैं और बाकी के स्यूडो एफीड्राइन हैं। इसके तनों के अन्दर जितना क्षार मिलता है, उससे इसकी हरी डालियों में चौगुना उपक्षार अर्थात् एफीड्राइन प्राप्त होता है।

(२) दूसरी जाति एफीड्राइन इंटरमेडिया है। इसके अन्दर .२ से १ प्रतिशत तक उपक्षार की मात्रा पाई जाती है और बाकी का स्यूडो एफीड्राइन होता है।

सन् १८८७ में इस बात का पता लग जाने पर कि एफीड्राइन एक काम की वस्तु है, इस विषय में कई अनुसंधान किये गये तथा इसके रासायनिक तत्त्वों पर भी विशेष लक्ष्य दिया गया। सन् १६२४ में चेन (Chen) और स्कमिट (Schmidt) ने अपने अनुसंधानों में इसकी क्रिया, गुण और धर्म का वर्णन किया और एफीड्राइन की एड्रेलाइन नामक वस्तु से क्या २ समानता और सम्बंध है, उसपर भी प्रकाश डाला। एफीड्राइन और स्यूडो एफीड्राइन, जो कि भारत की एफीड्रा की जाति से प्राप्त किया जाता है, उसपर भी विशेष अनुसंधान किये गये।

स्यूडो एफीड्राइन और एफीड्राइन दोनों के गुणों में विशेष घनिष्टता है। दोनों ही उपक्षार यकृत और अँतड़ियों की क्रियाओं पर अपना असर समानरूप से बतलाते हैं और दोनों ही रक्तवाहिनी नलियों का संकोचन भी समानरूप से करते हैं। मूत्राशय और मांसपेशियों के ऊपर भी दोनों ही उपक्षार समानरूप से असर दिखलाते हैं। फेफड़े और श्वासक्रिया पर स्यूडो एफीड्राइन के बजाय एफीड्राइन का असर बहुत जोरदार होता है।

चूंकि भारतवर्ष में पैदा होने वाली इस वनस्पति में एफीड्राइन के बनिस्पत स्यूडो एफीड्राइन की मात्रा अधिक होती है, इसलिये इस बात की विशेष रूप से जाँच की गई कि एफीड्राइन के स्थान पर स्यूडो एफीड्राइन कहाँ तक काम कर सकता है।

कलकत्ता स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडिसिन्स एफीड्राइन श्वास की बीमारी पर अजमाई गई। किन्तु इसका असर पूर्णरूप से संतोषजनक नहीं रहा। निःसन्देह यह पन्द्रह मिनट से तीस मिनट के अन्दर श्वास के सामायिक आक्रमण को रोक कर उपद्रवों को दूर कर देता है। किन्तु इसके दूसरे असर ठीक नहीं होते। इससे हृदय में पीड़ा उत्पन्न होती है और कुछ समय तक अर्थात् दस, बीस मिनट तक वह पीड़ा चालू रहती है। हृदय रोगियों के लिये इसका उपयोग विशेषतौर से हानिकारक होता है। इसका विशेष उपयोग कब्जियत की शिकायत पैदा करता है। इसके फल स्वरूप कभी २ श्वास का प्रकोप भी बढ़ जाता है। इस औषधि के अधिक उपयोग से पाचनशक्ति निर्बल होकर भूख नष्ट हो जाती है। यद्यपि इसके विषैले असर के प्रति कुछ निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता, फिर भी इसका विशेष उपयोग हानिकारक है। इसलिये बिना बीमारी का कारण खोजे सामयिक आक्रमण को मिटाने के लिये इसका उपयोग करने की आदत डालना हानिकारक है।

स्यूडो एफीड्राइन भी श्वास-क्रिया-प्रणाली पर एफीड्राइन के समान ही असर दिखलाता है। स्यूडो एफीड्राइन का असर वायुप्रणाली के प्रसरण पर एफीड्राइन के समान ही होता है। इस विषय में स्यूडो एफीड्राइन की परीक्षा भी की जा चुकी है। इसके परिणाम भी संतोषजनक रहे हैं। १५ मिनट से लगा कर आधे घंटे के भीतर ही इसकी आधे ग्रेन की मात्रा ने सीने की पीड़ा को दूर करके श्वास क्रिया को व्यवस्थित कर दिया है। श्वास के प्रकोप के पूर्व भी इसका इस्तेमाल करके देखा गया तो भी परिणाम अत्यंत संतोषजनक रहा। अभी तक अनुभव से यही पता चलता है कि इसका गुण संतोषजनक है और इसके विकार भी अधिक नहीं हैं। अगर एफीड्राइन के बजाय स्यूडो एफीड्राइन का ही इस्तेमाल किया जाय तो कम मूल्य में ही काम न होगा बल्कि एफीड्राइन के जो अन्य दुर्गुण हैं, वे भी बखूबी दूर हो जायँगे।

एफीड्रा गिरारडियाना और एफीड्रा इंटरमिडिया दोनों वनस्पतियों से तय्यार किया हुआ सत्व भी उपरोक्त स्कूल में तीन साल से काम में लिया जा रहा है। यह स्वतंत्र रूप से भी काम में लिया जाता है और श्वास को दूर करने वाली अन्य औषधियों के साथ भी उपयोग में लिया जाता है, यह श्वास के प्रकोप को रोकने के लिये उत्तम वस्तु है। शुद्ध उपक्षारों की तुलना में यह सस्ता भी है।

इन उपक्षारों का उत्तेजक असर खून के दबाव (Blood Pressure) पर भी अधिक होता है। यह हृदय को उत्तेजना देने वाली औषधि के रूप में काम में ली जाती है। एफीड्राइन का हृदय पर अवसन्नताजनक असर होता है। स्यूडो एफीड्राइन का असर ठीक इसके विपरीत है। स्यूडो एफीड्राइन हृदय की पेशियों को उत्तेजना देता है। कर्नल चोपड़ा ने एफेड्रा जाति की वनस्पति का सत्व,

जिनमें एफेड्राइन और स्यूडोएफेड्राइन दोनों ही सम्मिलित रहते हैं, काम में लेकर देखा है, जिसका परिणाम बहुत ही संतोषजनक पाया गया है। जिन लोगों का हृदय कमजोर था उनपर भी इसका इस्तेमाल करके देखा गया तो परिणाम उत्तम ही पाया गया। इससे रक्त भार (Blood Pressure) ठीक होगया। जिनका रक्त-प्रवाह अनियमित होने से और रक्त अभिसरण (Blood Circulation) प्रणाली दोषयुक्त होने से मूत्राशय पर असर हो गया था, उनको भी इससे फायदा पहुँचा।

जलोदर की बीमारी में भी यह उत्तम वस्तु है। हृदयरोग के द्वारा होने वाले पेट के सूजन में भी यह लाभदायक है। ऐसे रोगों में हृदय की धड़कन और अन्य उपद्रव, बीमारी के प्रारंभ से ही बढ़ जाते हैं। ऐसे रोगियों के उपचार में डीजीटेलिस के उपयोग से कुछ भी लाभ नहीं हुआ। दिन-प्रतिदिन बीमारी भयंकर होती गई और कई हृदय को उत्तेजना देने वाली औषधियाँ काम में ली गई। मगर कोई लाभ न हुआ। ऐसे स्थानों पर एफिड्रा के अर्क काम में लिये गये, जिससे बीमार को फायदा पहुँचा और लक्षण सब एकदम दूर हो गये, बाँये हृदय की गति रुकने पर भी एफीड्रा के अर्क ने बहुत लाभ पहुँचाया।

निमोनिया रोग के कारण उत्पन्न हुए विषों से जो भी दूषित असर हृदय की गति पर पहुँचते हैं, उसको निवारण करने के लिये भी एफीड्रा का अर्क बहुत ही उत्तम वस्तु है। इसी प्रकार रोहिणी-रोग (Diphtheria.) से उत्पन्न हुए दूषणों को भी यह दूर करता है।

इसके अर्क की मात्रा आधा ड्राम अर्थात १॥ माशे की है। यह दिन में तीन-चार बार दिया जाना चाहिये।

उपरोक्त वर्णन से पता चलता है कि यह वनस्पति भारतवर्ष की एक बहुमूल्य सम्पत्ति है और इसका सत्व तथा इसका अर्क श्वासरोग, हृदयरोग, जलोदर, डिफ्थीरिया, निमोनिया इत्यादि रोगों पर चमत्कारिक असर बतलाता है।

——:०*०:——

अम्बर

नाम—

संस्कृत—अग्निजारः, वह्निजारः, अम्बर सुगन्धः, अम्ब्रम्। **हिन्दी**—अम्बर। **फारसी**—अम्बर शाहेबू। **अरबी**—अम्बर। **लेटिन**—Amber Gris। **तामील**—मिनम्बर।

वर्णन—

अम्बर एक प्रसिद्ध मूल्यवान और सुगन्धिपूर्ण वस्तु है। इसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में यूनानी

के भिन्न २ लेखकों में बड़ा मतभेद है। कोई-कोई इसको समुद्रतल के स्रोत का जोश, कोई इसे किसी समुद्री जानवर का हंगार, कोई मधुमक्खियों के द्वारा निर्मित मोम का सुगन्धित भाग इत्यादि बतलाते हैं। मगर आधुनिक गवेषणाओं से यह मालूम होता है कि यह औषधि समुद्र में रहने वाली स्पर्मव्हेल (Sperm Whale) नामक विशालकाय मछली के पेट में से निकलता है। स्पर्मव्हेल मछली का शिकार अधिकतर उसके सिर का तेल और अम्बर प्राप्त करने के लिये ही किया जाता है।

आयुर्वेद के अन्दर भी इस औषधि के सम्बन्ध में बड़ा सन्देह है। कोई २ तो इसको एक प्रकार का समुद्री पौधा या अब्धिक्षार बतलाते हैं। कई कोषों में इसको एक वानस्पतिक द्रव्य मानकर ही इसका विवेचन किया गया है। मगर रसरत्न-समुच्चयकार के मतानुसार यह एक प्राणिज द्रव्य सिद्ध होता है। उनका कथन है कि अग्निनक्र नामक जीव का जरायु समुद्र से बहता हुआ किनारे पर आकर सूर्य की गर्मी से सूख जाता है। इसीको अग्निजार कहते हैं। चूँकि अम्बर भी एक सामुद्री प्राणिज द्रव्य है, और अग्निजार भी प्राणिज द्रव्य माना गया है, इसलिये सम्भव है कि लोगों ने अग्निजार को ही अम्बर का पर्याय मान लिया हो।

जो कुछ हो, अब यह बात एक प्रकार से निश्चित हो चुकी है कि अम्बर स्पर्मव्हेल मछली के द्वारा प्राप्त होने वाला एक प्राणिज द्रव्य है। यह लाल सागर, ब्राझील और अफ्रीका के समुद्र तटों पर तैरता हुआ पाया जाता है। एक २ मछली के उदर से ७५० पौंड तक अम्बर पाये जाने के दृष्टान्त मौजूद हैं।

पहिचान और परीक्षा—

अम्बर मोम की शकल का एक पदार्थ है, जो पीला, गुलाबी, धूसर और कुछ काले वर्ण का होता है। इसमें से शुद्ध पीली झाई वाला अम्बर उत्कृष्ट होता है। श्यामवर्ण का अम्बर उससे हलका होता है। उत्तम पीले अम्बर पर छोटे २ छींटे लगे हुए होते हैं। इसमें एक प्रकार की मधुर सुगंध आती है और यह स्निग्ध, कुछ चरपरा और लगभग स्वाद रहित होता है।

आजकल बाजारों में अम्बर के नाम से कई नकली वस्तुएँ भी बिकती हैं, इसलिये इस वस्तु को लेते समय पूरी सावधानी रखने की ज़रूरत है। इसकी परिक्षाएँ निम्नांकित हैं—

(१) इसको एक शीशी में डालकर कोयले की आँच पर रखने से यदि यह सब पिघल जाय और शीशी में तेल की भाँति बहने लगे तो उसको शुद्ध समझना चाहिये।

(२) अम्बर को लेकर आग पर डालने से अगर सुगंधित धुआँ निकलने लगे तो उसको उत्तम समझना चाहिये।

(३) अम्बर को चबाने से यदि मुँह खुशबूदार हो जाय और चबाते समय दाँतों पर वह मोम सरीखा लगे तो उसको ठीक समझना चाहिये।

यह औषधि बहुत शीघ्र जलने वाली तथा आँच दिखाते रहने से बिल्कुल भाप बनकर उड़

जाने वाली होती है। यह ईथर, वसा, उड़नशील तेल, गरम अलकोहल में घुलनशील होती है, मगर ठंडे जल में अघुलनशील रहती है। इस पर अम्लों का कुछ भी प्रभाव नहीं होता, सूखने पर अम्बर की विशिष्ट गुरुत्व ·७८० से ·९२६ तक होता है। १४५° फारेन हीट की गर्मी पर यह पिघल जाता है और २१२° फारेन हीट की गर्मी पर भाप बनकर उड़ जाता है। (आयुर्वेदीय कोष)

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदीय मत—आयुर्वेद के मतानुसार अम्बर कटुरस, उष्णवीर्य, लघुपाकी, पित्तकारी तथा कफ, वात, सन्निपात और शूल को नाश करने वाला है। यह पक्षाघात, कम्पवात हृदयरोग, नपुंसकता, क्षय, मस्तकरोग, यकृतरोग, उदररोग, प्लीहारोग, इत्यादि अनेक रोगों को नाश करने वाला है। कामाग्नि को प्रदीप्त करने में यह औषधि अत्यंत प्रभावशाली और बेजोड़ है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में गर्म, पहले दर्जे में रुक्ष, जिस्मानी, (शारीरिक) रूहानि, (आध्यात्मिक) और नफ्सानी (मानसिक) तीनों शक्तियों को दृढ़ करने वाला, प्राणरक्षक, प्रकृति को प्रसन्न करने वाला, शीतलप्रकृति वालों के लिये अत्यंत लाभकारी, बाह्य और आभ्यंतरिक इंद्रियों को पुष्ट करने वाला, ओजदायक, कामोद्दीपक, वृद्ध पुरुषों के लिये अत्यंत लाभकारी, हृदय रोग, और यकृतरोग को नाश करने वाला और हृदय की व्याकुलता को मिटाने वाला है।

यह लकवा, धनुर्वात, अवसन्नता, सिरदर्द, आधाशीशी, खाँसी, उरःक्षत, हृदय की निर्बलता, मूर्छा, कामला, जलोदर, आमाशय शूल, संधिशूल और आमाशय तथा यकृत की कमज़ोरी में लाभ पहुँचाने वाला है।

इंडियन मटेरिया मेडिका के मतानुसार अम्बर सर्वांगिक निर्बलता, अपस्मार, आक्षेप और स्नायु-दौर्बल्य में उपयोगी है। यह बेहोशी, उन्मादयुक्त तीव्रज्वर, हैजे की निस्तेज अवस्था तथा प्लेग इत्यादिक संक्रामक बीमारियों में भी उपयोग में आता है।

उपयोग—

रतिशक्ति की वृद्धि—सोने के वरक, घुटे हुए मोती और अम्बर को शहद में मिलाकर चटाने से पुरुषार्थ-शक्ति की वृद्धि होती है।

कफ़ के रोग—इसको पान में रखकर खाने से कफ के रोग मिटते हैं।

वातरोग—लौंग, जायफल और अम्बर को मिलाकर देने से सब प्रकार की वात-पीड़ा मिटती है। वातनाशक तेलों के साथ इसको मिलाने से उनकी शक्ति बढ़ जाती है।

उन्माद—ब्राह्मी और शंखाहूली के साथ इसको शहद में मिलाकर चटाने से उन्माद मिटता है और स्मरणशक्ति बढ़ती है।

प्रतिनिधि—अम्बर के प्रतिनिधि कस्तूरी और केशर हैं। इसके दर्प को नाश करने वाले बबूल का गोंद, धनियाँ, तवाखीर हैं। कपूर सूँघने से भी इसका दर्प नष्ट होता है।

यह आँतों को हानि पहुँचाने वाला है, इसलिये आँतो के रोगी को इसका सेवन नहीं करना चाहिये।

बनावटें—

अर्क अम्बर—मुश्क खालिश ४।। माशा, अम्बर बढ़िया ६ माशा, रूमी मस्तगी ६ माशा, बर्गरिहाँ, नागरमोथा, तज, सूखा धनियाँ, गुले गावज़वान-गिलानी, अनीसून, दरूनज़ अक्रबी, पिस्ता प्रत्येक १ तोला १०।। माशा। जर्नेबाद, अगर, कबाबह, खंदाँ, छडीला, बालछड़, बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, शक्राकुलमिश्री, तेजपात, दालचीनी, केशर, लौंग, बवजीदान, गुलाब, वंशलोचन, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, दूब, पोस्तइत्रज, अब्रेशम कतरा हुआ, श्वेत चन्दन, ये सब चीजें दो २ तोला, ताज़े विलायती सेव का रस आधा सेर, खट्टे अनार का रस १ सेर, अर्क वेदमुश्क, अर्क गावज़वान और अर्क बिल्ली-लोटन, सब ढाई २ सेर। इनमें से कूटने योग्य औषधियों को कूटकर तथा सब अर्कों में मिलाकर उन औषधियों को रात भर भिगोई रखें। सवेरे सेव और अनार का पानी मिलाकर देग में डाल दें और अम्बर व मुश्क को नीचे के मुँह में रख कर भपके से अर्क खींच लें।

यह अर्क हृदय, मस्तिष्क और कामेंद्रियों को बल प्रदान करने के लिये अनुपम है। मूर्छा को नष्ट करने और शक्ति को पुनर्जीवित करने के लिये अत्यंत प्रभावशाली है। आयुर्वेदीय कोष के रच-यिताओं का कथन है कि कई ऐसी स्त्रियाँ जो अत्यधिक रजःस्राव के कारण और कई ऐसे पुरुष जो बवासीर से अत्यधिक रक्तस्राव के कारण मौत के मुँह में पहुँच चुके थे, इस अर्क के पीते ही अपनी असली हालत पर लौट आये। इस अर्क के अत्यन्त विस्मयकारक प्रभाव अनुभव में आ रहे हैं।

इसकी खुराक ४ तोले की है। भिन्न २ रोगों में, भिन्न २ अनुपानों के साथ यह दिया जाता है।

अम्बरकन्द

नाम—

संस्कृत—बालकंद, कंदलता, मलकंद, पंक्तिकंद। **हिन्दी**—अम्बरकंद, गोरमा, सकाकुल भेद **लेटिन**—Eulophia Nuda (एलोफिया नूडा)

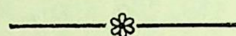
वर्णन—

यह औषधि हिमालय पहाड़ के समशीतोष्ण प्रांतो में नैपाल से सिकिम तक तथा छोटा नागपुर, आसाम, खासिया पहाड़ियाँ और कोकन से दक्षिण की ओर पाई जाती है। यह सालम मिश्री की जाति का एक कंद है। इसकी गाँठ छोटे आलू की तरह होती है। पत्ते १० से १४ इंच तक लम्बे और अणी-दार होते हैं। फूल बड़े, हरे रंग के या कालापन लिये हुए लाल रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इंडियन मेडिकल प्लाँट्स के लेखकों के मतानुसार यह कंद क्षुधावर्द्धक, गरम, गले की क्षयरोग-जनित ग्रंथियों को आराम करने वाला है, यह वात-जन्यदोष, अर्बुद, और बच्चों की खाँसी पर बहुत लाभदायक है ।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह वस्तु कृमिनाशक है और कंठमाला सम्बंधी रोगों में विशेष तौर से ली जाती है ।



अम्बरबेद

नाम—

फारसी—अम्बरबेद । **अरबी**—गुलेअर्ब ज्यादह । **लैटिन**—(Poley Germander) पोली जरमेंडर (Teucrium Polium.) ट्यूक्रियम पोलियम ।

वर्णन—

इसका पौधा लगभग एक फुट ऊँचा होता है । इसके फूल पीलापन लिये हुए सफेद और पत्ते सफेद, पतले तथा रुएँदार होते हैं । इसके मस्तक पर बालों का एक गुच्छा लगता है, जिसमें बीज भरे हुए रहते हैं । यह छोटा और बड़ा दो प्रकार का होता है । इसकी उत्पत्ति भारतवर्ष में नहीं होती, यह अरब में पैदा होता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और रुक्ष है । यह मूत्रनिस्सारक, आर्तव प्रवर्तक,जलोदर के लिये गुणकारक लेकिन आमाशय और मस्तक के लिये हानि करता है । इसका क्वाथ बुद्धि को तीव्र करने वाला और विस्मृति को दूर करने वाला, पेट के कृमियों को नष्ट करने वाला तथा मूत्रावरोध और संधिशूल में लाभ पहुँचाने वाला है । इसके नवीन पत्तों का लेप व्रण को भरने वाला और इसकी धूनी विषैले जानवरों को भगाने वाली है । शहद के साथ इसका अंजन करने से दृष्टि तेज होती है । गर्भाशय को शुद्ध करने और प्लीहा की सूजन को नष्ट करने की शक्ति भी इसमें है ।

अरब के निवासी इसको ज्वरविकार के नष्ट करने के लिये उपयोग में लेते हैं । इसके लिए वे ढाई तोला इस औषधि को रात भर जल में भिगोकर प्रातःकाल उसी पानी को छान कर पिलाते हैं ।

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि इस औषधि में बुद्धिवर्द्धन, मूत्रनिस्सारन और आर्तव **प्रवर्तन के गुण प्रधान रूप से हैं ।**

प्रतिनिधि—इसके प्रतिनिधि पहाड़ी पोदीना, तज, अनार की जड़ की छाल और शेह हैं, यह औषधि सिर की पीड़ा को पैदा करने वाली तथा आमाशय को हानिकारक है, इसके दर्प को नाश करने वाला धनियाँ है। इसकी मात्रा दो से चार रत्ती तक की है।

अम्बाड़ा

नाम—

संस्कृत—आम्रातक। **हिन्दी**—अंबाड़ा। **बंगभाषा**—आमड़ा। **मराठी**—अंबाड़ा। **कर्नाटकी**—आंवोडेयकायि। **तैलंगी**—आमाटस। **गुजराती**—अंभेड़ा। **अंग्रेजी**—स्पोन्डिआस मिनट। Spondias Minute. **लेटिन**—स्पोंडिआस मेंगिफेरा (Spondias Mangifera.)

वर्णन—

यह एक प्रकार का जंगली आम है। हिमालय की तलहटियों में चिनाव के पूर्व में तीन हजार फीट की उँचाई तक तथा ब्रह्मा, अंडमान व हांग-कांग में यह पैदा होता है। इसका झाड़ बहुत बड़ा व सीधा होता है। इसकी छाल सुगन्धयुक्त, चिकनी, फिसलनी व खाकी रंग की होती है। इसकी लकड़ी कोमल, हलकी व खाकी होती है। इसके पत्ते जिंगनी के पत्तों के समान होते हैं। ये दो से ६ इंच तक लम्बे तथा १ से चार इंच तक चौड़े होते हैं। इसके फूल मंजरी के रूप में आते हैं। फल मुर्गी के अंडे के समान होता है व पकने पर पीला हो जाता है। इसके दो भेद होते हैं। देशी व विलायती। देशी आमड़ा बहुत खट्टा होता है तथा विलायती कुछ मिठास लिये होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मतानुसार कच्चा आमड़ा खट्टा,वातनाशक, भारी, गरम, रुचिकारी और दस्तावर है। पक्का आमड़ा कसैला, सुस्वादु, शीतल, तृप्तिकारी, कफवर्द्धक, स्निग्ध, वीर्य्यवर्द्धक,पुष्टिकर, भारी, बलकारी तथा वात, पित्त, क्षत, दाह, क्षय और रुधिर-विकार को दूर करने वाला है।

इसके पत्ते स्वादयुक्त, भूख बढ़ाने वाले और संकोचक हैं। इसका कच्चा फल खट्टा, अपच, और वातनाशक होता है, यह रक्तवर्द्धक और गले के रोगों में लाभ पहुँचाने वाला है। इसका पक्का फल तिक्त, मृदु, रसयुक्त व स्वादिष्ट होता है। यह शान्तिदायक, पौष्टिक, कामोद्दीपक और अँतड़ियों को संकोचन करने वाला होता है। वात, पित्त, फोड़े, जलन, क्षय और रक्त सम्बन्धी शिकायतों को यह नष्ट करता है। इसकी छाल सर्पविष-निवारक कई औषधियों का एक अंग है तथा यह ज्वर, तृषा व पेचिश में भी उपयोगी पाई गई है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में शीतल व रुक्ष है। पित्त प्रधान रोगों में यह लाभ पहुँचाता है। नाक के रोग में इसकी छाल पीसकर बकरी के तुरन्त दुहे हुए दूध के साथ पिलाने से लाभ पहुँचाती है।

इनसाइक्लोपीडिया मुडेरिका के मतानुसार मुंडा जाति के लोग इसकी छाल को पानी के साथ पीसकर गठिया रोग पर इस्तेमाल करते हैं। यह पैत्तिक संधिवात में उपयोगी है। इसकी करीब १ छटाँक छाल आधा सेर पानी में डालकर उबाली जाती है और उसमें से सत्व निकाल कर अतिसार व रक्तातिसार की बीमारी में दिया जाता है।

इसके पत्तों का रस कान के रोगों को भी लाभदायक बताया जाता है।

डाक्टर चोपड़ा के मतानुसार यह संकोचक, सुगंधित व शान्तिदायक पदार्थ है। इसका उपयोग पेचिश की बीमारी में किया जाता है।

उपयोग—

अम्लपित्त—अम्बाड़े के कोमल फलों के रस १ तोले को पाँच तोले खड़ी शक्कर में मिलाकर सात दिन तक दोनों टाईम देने से अम्लपित्त में फायदा होता है।

कर्णशूल—इसके पत्तों का रस कान में टपकाने से व बाहर भी लगाने से कर्णशूल में लाभ होता है।

विषाक्त घाव—विष में बुझे हुए अस्त्र के घाव पर इसके फल को पीसकर लगाने से तथा सूखे व गीले फल को खिलाने से लाभ होता है।

आमातिसार—इसके पत्तों के चूर्ण तथा इसकी छाल के काढ़े को देने से आमातिसार में लाभ होता है।

अम्बोली

नाम—

बाजारू नाम—प्रियदर्श। **कनारीज**—अबॉलिगे। **मद्रास**—कनग अंबरं। **मलायलम**—मनकरुणि। **तामील**—पौलकुरिंज, सगसारि, टिंडियम्। **तैलगू**—कनकंब्रम्। **तुलू**—अबॉलिगे। **लैटिन**—Crossandra Undulaefolia.

उत्पत्तिस्थान—पश्चिमीय प्रायद्वीप, सीलोन, उत्तरीय भारत, बंगाल और मलाया।

वानस्पतिक विवरण—इसकी ऊँचाई दो हाथ तक रहती है। इसके पत्ते ४ के भँवरों में होते हैं। ये कुछ जाड़े, बर्छी आकार, तीखी नोक वाले और चमकीले रहते हैं। इसमें नसों

की आठ जोड़ होती हैं। इसके बहुत से फूल लगते हैं । ये सब बर्छी के आकार की और बहुत तीखी रहती हैं। इसका पुष्प आभ्यांतर आवरण, नारंगी व पीला रंग का होता है । इसके फूल दक्षिण में चोटी बाँधने के काम में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

डॉक्टर चोपड़ा के मत के अनुसार यह वनस्पति कामोद्दीपक है।

अम्बोली का प्रधान उपयोग कफ के नष्ट करने में होता है। औषधि के रूप में इसके पत्तों का रस २० से ३० बूँद तक और इसकी जड़ एक से दो तोला तक दी जाती है। छोटे बच्चों को होने वाली खाँसी, ब्रोकाइटिस (Brochitis) में इसके पान का रस शहद और पीपर के साथ देने से बड़ा लाभ होता है। इसी प्रकार इसकी जड़ को दूध के साथ आधे तोले से एक तोले तक उबाल कर शक्कर मिलाकर देने से स्त्रियों के श्वेत-प्रदर और रक्त-प्रदर में लाभ होता है।

अयार

नाम—

हिन्दी—अयार, अनियार। पंजाब—ऐलन, ऐरा, अरुड़, अरवान, पीरू, अप्‌तला। गढ़वाल—अँगयार। नेपाली—अँगियर, जगगछाल। लेटिन—Pieris Ovalifolia।

वर्णन—

यह औषधि हिमालय में कश्मीर से भूटान और सिकिम तक १०००० से १३००० फीट की ऊँचाई तक तथा खासिया पहाड़, बर्मा व जापान में पैदा होती है। यह एक छोटे क़द का झाड़ीनुमा बहुवर्षजीवी वृक्ष है । इसका छिलटा लाल बादामी रंग का और फूल सफेद होता है, इसके फलियाँ लगती हैं, जिसमें बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

गेंबल के मतानुसार इसके कोमल पत्ते और कलियाँ बकरों के लिये जहर है। इस औषधि का उपयोग कृमियों को नष्ट करने के लिये किया जाता है। इसका ठंडा काढ़ा चर्मरोगों में लाभदाक है।

अरण्डककड़ी

नाम—

संस्कृत—वातकुम्भ। **हिन्दी**—अंरडखरबूजा, पपैया, अरण्डककड़ी। **मराठी**—पपैया। **गुजराती**—पपैयो, राइड कॉंकड़ी, झाड़चीमड़ी। **तैलंगी**—पोपड़ चटेट्टु। **अंग्रेजी**—पेपो, Papaw. **लैटिन**—केरिकपपैया (Caricapapaya)। **कर्नाटकी**—पप्पलसु। **तुर्की**—वप्पागाई। **तैलंगी भाषा**—बोप्पई, मलापप्पायम। **तामिली भाषा**—पप्पाई।

परिचय—

अरण्डककड़ी या पपैये का वृक्ष नरम व पोली लकड़ी वाला, बहुत जल्दी बढ़ने वाला तथा थोड़े दिनों तक जीने वाला है। यह वृक्ष प्रायः सारे भारतवर्ष में होता है। इसके फल से सभी लोग परिचित हैं। इसलिये इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से इसका पका हुआ फल सुस्वादु, मधुर, कफकारी, हृदय को हितकारी, उन्मादरोग को हरने वाला, कामोद्दीपक, अँतड़ियों को संकोचन करने वाला, स्निग्ध व पित्त-नाशक है।

यूनानी मत—इसका पका हुआ फल अग्निदीपक, भूख बढ़ाने वाला, पाचक, पेट के आफरे को दूर करने वाला और मूत्रनिस्सारक है। यह पेट की जलन व तिल्ली को दूर करता है। मूत्राशय की बीमारियों को मिटाता है। खास कर पथरी रोग में बहुत लाभ पहुँचाता है। शरीर के मोटेपन को मिटाता है। कफ के साथ खून जाने की बीमारी को दूर करता है। खूनी बवासीर में और पेशाब की नलियों के घावों को दूर करने में यह फायदेमंद है। दाद इत्यादिक चर्मरोगों में यह लाभ पहुँचाता है। इसके कच्चे फल का दूध कृमिरोग को नष्ट करने वाला माना गया है। इसके बीज भी कृमिनाशक हैं और इनका उपयोग ऋतुस्राव के नियमित करने के लिये भी किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि इन बीजों में गर्भपात करने की शक्ति भी है। इसलिये गर्भवती स्त्रियों को औषधिरूप में इन्हें नहीं देना चाहिये।

आजकल की आधुनिक शोधों से मालूम हुआ है कि अरंडककड़ी का रस बदहजमी, अम्ल-पित्त, खट्टी डकार तथा भोजन के पश्चात् के पेट दर्द में बहुत ही उपयोगी वस्तु है।

डा० जार्ज हरसल ने सन् १८८६ के ब्रिटिश मेडिकल जर्नल के अन्दर इस फल का वर्णन करते हुए लिखा था कि "बदहजमी के बढ़ते हुए लक्षणों पर जैसे कि भोजन के ऊपर अरुचि, निद्रा नाश, सिर दर्द इत्यादि विकारों को अरंडककड़ी का रस दूर करता है, पेट की बाजू में एक प्रकार का चिकना पदार्थ बहुत बड़ी मात्रा में इकट्ठा हो जाता है और वह भोजन के पचाने के अन्दर बहुत बाधा पहुँचाता है, उसको निकाल देने की इस रस के अन्दर अद्भुत शक्ति है। वयस्क मनुष्यों के अजीर्ण में

जिसमें खट्टी डकार, हृदय की जलन, पेट का चढ़ना इत्यादि लक्षण रहते हैं, उनको दूर करने में यह एक बहुत कीमती दवा है।"

गोल्डकॉस्ट, फ्रेन्चगायना, आफ्रील, मध्य व दक्षिण अफ्रीका में इसके बीजों को कृमिनाशक और ऋतुस्राव नियामक तथा इसके दूध को चर्म-रोगनाशक तथा उदर रोगनाशक माना जाता है।

इसके फलों में से पेपीन नामक एक मशहूर सत्व निकलता है जो विलायती दवा बेचने वाले केमिस्टों के यहाँ पर ऊँची कीमत पर मिलता है। शरीर के अन्दर बिगड़े हुये पाचनरस को सुधारने में इसका पेपीन नामक सत्व बहुत उपयोगी इलाज माना जाता है। इस सत्व को निकालने का देशी तरीका इस प्रकार है।

जिस झाड़ के ऊपर अरंडककड़ी के कच्चे फल लगे हुए हों, उन फलों पर एक ऐसे कलईदार अस्त्र से जिसमें चार नोकें हों, हल्के २ चीरें दिलवा देना चाहिये और उन फलों के नीचे एक लकड़ी या संगमरमर का बर्तन रख देना चाहिये। उन फलों में से दूध के समान रस टपक-टपक कर इकट्ठा हो जावेगा, तत्पश्चात् बालू रेत से भरे हुए एक मिट्टी के बर्तन को चूल्हे के ऊपर चढ़ाकर उस रेती के ऊपर इस दूध के बर्तन को रखकर चूल्हे में धीमी २ आग जला देना चाहिये, जब धीरे २ वह रस औटकर खोवे की तरह हो जाय तब उसकी बट्टी बाँधकर निकाल लेना चाहिये, थोड़ी देर पश्चात् यह बट्टी सूख जायगी और अरंडककड़ी का सूखा सत तैयार हो जायगा। इस सत की एक रत्ती की मात्रा शक्कर अथवा दूध के साथ लेने से मन्दाग्नि तथा पेट के समस्त रोगों पर बहुत लाभ पहुँचता है। इसके सेवन से भोजन में रुचि उत्पन्न होती है। खाया हुआ अन्न पचता है। पेट के कृमि नष्ट होकर पेट साफ होता है। बालक व वृद्ध जिनकी पाचनशक्ति बिल्कुल नष्ट हो गई हो, उनके लिये इस फल का सत्व आशीर्वादरूप है। इसी प्रकार अच्छी तन्दुरुस्ती वाले आदमियों की भी इसके सेवन से जठराग्नि प्रबल होती है।

इसके अतिरिक्त कारपेन (Carpain) नामक कटु उपक्षार भी इसी के फल, बीज व पत्तों में से प्राप्त किया जाता है। इसका विशेष अंश पत्तों में पाया जाता है। औषधि-विज्ञान-शास्त्र में इस कारपेन नामक उपक्षार के गुणों का अनुसन्धान चल रहा है। जितना अनुसंधान अभी तक हुआ है, उससे पता चलता है कि अगर स्नायु में इसका इंजेक्शन दिया जाय तो यह शरीर के ब्लड प्रेशियर (Blood Pressure) याने रक्तभार को दूर करता है। इससे हृदय की गति कम होती है। व्हेन्ट्रीकल्स व आरिकल्स उसकी कम गति का प्रदर्शन करती हैं। श्वासक्रिया की गति में इस इंजेक्शन से कोई भी धीमापन नहीं आता।

मन्दाग्नि और पेट की बीमारियों को दूर करने के अतिरिक्त चर्मरोगों को नष्ट करने की भी इसके दूध में काफी ताकत है। विदेशी लेखकों का मत है कि कच्ची अरंडककड़ी को काटने से उसमें से जो दूध निकलता है उसको दाद या खुजली पर चुपड़ने से ये बीमारियाँ नष्ट हो जाती हैं। इतना

ही नहीं परन्तु यदि बवासीर के ऊपर भी यह रस लगाया जाय तो उनकी जड़ जल जाती है और वे खिर जाते हैं। परन्तु यह रस गरम होने की वजह से इसके लेप से बहुत जलन होती है और कई दफे तो इससे फफोले भी पड़ जाते हैं। इसलिये इसका उपयोग सोच-समझ कर करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त इसके कच्चे फलों का रस बिच्छू के डंक के ऊपर भी रामबाण माना गया है। एक रसायनशास्त्री के मतानुसार बिच्छू के जहर को दूर करने का यह एक विश्वसनीय उपाय है। डंक की जगह इसके दूध का लेप करने से जहर दूर हो जाता है। इसके बीज भी इसके लिये उपयोगी माने गये हैं।

उपयोग—

तिल्ली—इस के कच्चे फल का दूध ३॥। माशे, शक्कर ३॥। माशे, दोनों को मिलाकर उसके तीन हिस्से कर लें, यह तीनों खुराकें सवेरे, दोपहर और शाम को देने से कुछ दिनों में बढ़ी हुई तिल्ली आराम होती है। इसी प्रकार इसके सूखे फल के चूर्ण में नमक मिलाकर देने से भी लाभ होता है।

कृमिरोग—पेट के कीड़े मारने के लिये इसका सवा माशे से पौने चार माशे तक दूध देना चाहिये, इसका असर आँतों के लम्बगोल व चपटे कीड़ों पर अधिक होता है।

अतिसार—इसके कच्चे फल के चूर्ण की फंकी देने से पुराना अतिसार मिटता है।

गाँठ—इसके दूध का लेप करने से गाँठ बिखर जाती है।

उपदंश के व्रण—इसका दूध लगाने से उपदंश के घाव, सफेद चट्टे और चमड़े के दूसरे रोग मिटते हैं।

दूध *वृद्धि*—इसके कच्चे फल का शाक खिलाने से स्तनों के अन्दर दूध की वृद्धि होती है।

मंदाग्नि—अजवायन १५ तोला, सेंधा, संचर, साँभर नमक १-१ तोला, इन सब औषधियों को खट्टे नींबू व अदरख के रस में एक माह तक पड़ा रहने देना चाहिये। उसके पश्चात् इस औषधि की तीन माशे मात्रा में एक रत्ती अरण्डककड़ी का सत अथवा पेपीन डालकर खिलाने से भयङ्कर मन्दाग्नि भी दूर होती है।

अरण्ड

नाम—

संस्कृत—एरंड, व्याघ्रपुच्छ, त्रिपुटीफल, आमण्ड, चित्रः । हिन्दी—अरंड, अरंडी, अंडी । मारवाड़ी—इरंड । गुजराती—एरंडो । मराठी—एरंड । बंगाली—भरेंडा । फारसी—बेद अंजीर । अरबी—खिरवा । कर्नाटकी—हरलूगिड़ । द्राविड़ी—आमणक्क । तैलंगी—आमिदट्टू । अंग्रेजी—Castor Oil Plant, Palma Christi. लैटिन—Ricinus Communis, R. Enermis.

वर्णन—

अरंड का वृक्ष दो प्रकार का होता है । बड़ी जाति के अरंड को पारस-अरंड कहते हैं । इसके बीज बड़े होते हैं और इसका तेल जलाने के काम में आता है । औषधि प्रयोग के काम में यह अधिक नहीं आता । केवल इसके पत्ते औषधि प्रयोग के काम में आते हैं । दूसरी प्रकार का एरंड छोटी जाति का होता है । इस एरंड की जड़ और इसके बीजों का तेल औषधि प्रयोग के काम में आता है । इन बीजों का तेल पानी के साथ उबालकर या दबाकर या पीलकर निकाला जाता है । उबाल करके निकाला हुआ तेल दाह पैदा करता है, इसलिए दबा करके निकाला हुआ तेल औषधि के प्रयोग में अच्छा होता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वेदिक मत से दोनों प्रकार के एरंड मधुर, गरम, भारी तथा शूल, सूजन, कमर व पेडू के दर्द, मस्तक पीड़ा, पेट के दर्द, अण्डवृद्धि, श्वास, कफ, आफरा, खाँसी, कुष्ठ और आमवात को नष्ट करने वाले हैं ।

इसके पत्ते वात, कफ, आँतों के कीड़े, रतौंधी, कर्णरोग, मूत्रकृच्छ्र और पथरी को नष्ट करने वाले हैं । ये पित्त को बढ़ाते हैं । इसके फूल बदगाँठ, गुदाद्वार और योनिद्वार सम्बन्धी तकलीफ और गुल्म, शूल और ऊर्ध्ववात को दूर करने वाले हैं । इसके फल गरम, भूख बढ़ाने वाले, वात-नाशक व बवासीर, यकृत और तिल्ली में लाभदायक हैं । इसकी मींगी विरेचक, धातुपरिवर्तक, कृमि-नाशक, कामोद्दीपक और हृदय रोगों में लाभजनक है । यह जलोदर, सूजन, विषमज्वर, कुष्ट, कटिवात, श्लीपद, आक्षेप इत्यादि रोगों में लाभदायक है । इसकी जड़ का छिलका विरेचक, धातुपरिवर्तक, चर्म-रोगों में लाभ पहुँचाने वाला व स्तनों के दूध को बढ़ाने वाला है ।

सिर दर्द को दूर करने के लिये इसके पत्तों का सिर पर लेप किया जाता है व फोड़ों पर पुल्टिस के रूप में ये पत्ते लाभदायक सिद्ध हुए हैं ।

कभी २ किसी २ स्त्री के स्तनों में दूध का आना बंद हो जाता है और स्तनों की नसें बंधकर

उनमें गाँठें पड़ जाती हैं, ऐसे समय में लोग भूत-प्रेत की शंका करके झाड़ फूंक करने लगते हैं। ऐसे प्रसंग पर आधा सेर अरंड के पत्ते लेकर १० सेर पानी में घंटे भर उबाल कर उस पानी की स्त्री की छाती पर १०-१५ मिनट तक धार देने से तथा उसके पश्चात स्तनों पर अरंडी के तेल का मालिश कर उबाले हुए पत्तों को बारीक पीसकर उनका पुल्टिस स्तनों पर बाँध देने से गाँठें बिखर जाती हैं और दूध का प्रवाह पीछा शुरू हो जाता है।

छोटे २ बच्चों के पेट में दूध के चिथड़े जम जाते हैं और वे सड़ने लगते हैं जिससे दस्त और उल्टी होने लगती है और बुखार आता है, ऐसे अवसर पर इन त्रासदायक दूध की गाँठों को बाहर निकालने के लिये अरंडी के तेल के समान दूसरी कोई औषधि नहीं है। यह अँतड़ियों की श्लेष्म-त्वचा को मुलायम करके मल की गाँठों को ढीली करके आसानी से निकाल देता है और दूसरे उग्र जुलाबों की तरह किसी प्रकार का नुकसान भी नहीं करता है, यह अत्यन्त सौम्य विरेचन है।

एपेंडिसाइटस—मोटी अँतड़ी की टोंच पर एक अवशिष्ट भाग रहता है, जो कभी २ सूज जाता है और जिसकी वजह से कमर की दाहिनी ओर दुखने लगता है, दस्त साफ नहीं होता, वमन होते हैं, बुखार आता है, नाड़ी शीघ्रगामी हो जाती है। इस रोग को अँग्रेजी में "एपेंडिसायटस" कहते हैं और यह बिना ऑपरेशन के आराम नहीं होता। इस रोग के प्रारंभ में ही अगर एरंडी का तेल दिया जाय और एरडी के तेल के साथ ही हींग मिलाकर उसका एनिमा दिया जाय तो बिना शस्त्र क्रिया के ही यह रोग आराम हो सकता है। इस रोग में पेट का दर्द मिटाने के लिये अफीम नहीं देना चाहिये, बल्कि उसकी जगह खुरासानी अजवायन का प्रयोग करना चाहिये।

इस प्रकार कटिशूल, गृध्रसी, पार्श्वशूल, हृदयशूल, कफशूल, उदरशूल, आमवात और संधियों की सूजन में भी अरंडी की जड़ और सोंठ का काढ़ा देने से लाभ होता है। रक्तातिसार के प्रारंभ में ही अगर अरंडी का तेल दे दिया जाय तो आंव पड़ने का डर कम हो जाता है। (जंगलनी जड़ी-बूटी)

सुश्रुत और योग-रत्नाकर के मतानुसार यह औषधि सर्पदंश और बिच्छू के डंक पर लाभकारी मानी गई है, मगर केस और मस्कर का कथन है कि साँप और बिच्छू के विषों पर यह औषधि निरुपयोगी सिद्ध हुई है। इसी प्रकार इसके तेल को कृमिनाशक समझना भी भ्रम पूर्ण है।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपरा के मतानुसार अरंडी के तेल का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें Tri-ricinolein(ट्रीरिकिनोलिन)थोड़ी मात्रा में Palmitin(पामिटिन)और Stearin (स्टेरिन)ये तीन द्रव्य पाये जाते हैं। इस तेल में अलकोहल और एसिटिक एसिड (सिरके का तिजाब) में मिलजाने की अद्भुत शक्ति पाई जाती है। इसके अन्दर Hydroxy Acid (हाइड्रोक्सि एसिड) रहता है, जो इसका खास विरेचक तत्व है। इसका तेल पीने से उसमें जो एसिड रहता है वह पेट में जाकर अपना विरेचक असर दिखलाता है।

इसके बीजों के भीतर तेल के अतिरिक्त एक प्रकार का विष भी रहता है, जिसको (Ricin) रिसीन कहते हैं। यह खून को जमाने का काम करता है व कभी २ अँतड़ियों को सुजा भी देता है। यह पदार्थ रेचक नहीं होता है और अरंडी के तेल में इसका अंश नहीं रहता है, केवल बीजों में रहता है।

उपयोग—

विरेचन—इसका तेल खास तौर से जुलाब के काम में आता है। इससे निरुपद्रव और तीव्र जुलाब लगता है। ऐसे रोगों में जिनमें कमजोरी की वजह से रोगियों को दूसरे जुलाब नहीं दिये जा सकते, इसका जुलाब दिया जा सकता है।

सूजन—इसके बीज को पीस कर गरम करके लेप करने से छोटी संधियों की और गठिया की सूजन मिटती है। स्त्रियों के स्तनों पर भी इसका लेप फायदेमंद होता है।

आँखों की सूजन—इसके पत्तों की जौ के आटे के साथ पुल्टिस बनाकर बाँधने से आँखों पर आई हुई पित्त की सूजन मिटती है।

अण्ड वृद्धि—इसकी जड़ को सिरके में पीसकर गुन-गुना लेप करने से अण्डकोषों की सूजन उतरती है।

गृध्रसी और वातरोग—इसके तेल को गौ-मूत्र में मिलाकर नित्य थोड़ी २ मात्रा में एक महीने तक पिलाने से गृध्रसी उरुस्तम्भ आदि रोग मिटते हैं।

चर्मरोग—इसकी जड़ का काढ़ा बनाकर पिलाने से चर्मरोगों में लाभ होता है। इसी प्रकार बिगड़े हुए घाव और फोड़ों पर इसके पत्तों को पीसकर लगाने से ये अच्छे हो जाते हैं।

कृमिरोग—इसके पत्तों का रस पिलाने से तथा उसको गुदाद्वार पर लगाने से पेट के कृमि नष्ट होते हैं।

प्लीहोदर—इसके पंचांग को हाँडी में भर कर उस हाँडी का मुँह कपड़मिट्टी से बंद कर अग्नि में जला कर उसमें तैयार की हुई भस्म को एक तोला की मात्रा में चार तोले गौ-मूत्र मिलाकर पिलाने से प्लीहोदर मिटता है।

संतति निग्रह—ऐसा कहा जाता है कि ऋतुस्नान के पीछे स्त्री को इसकी एक मींगी खिला देने से एक वर्षतक गर्भ नहीं रहता।

कामला रोग—इसकी जड़ के चूर्ण को शहद में मिला कर चटाने से कामला रोग में फायदा होता है।

गुर्दे की पीड़ा—इसकी मींगी को पीस और गुन-गुना लेप करने से गुर्दे की वातपीड़ा में लाभ होता है।

नक्सीर—इसकी मींगी के छिलके की भस्म को नाक में फूँकने से नाक से बहता हुआ खून बंद हो जाता है।

बवासीर—इसके हरे पत्तों को पीसकर गुदा पर बाँधने से और इसका बीज खाने से बवासीर में लाभ होता है।

मूत्रेंद्रिय की निर्बलता—इसके बीज और मीठा तेल दोनों को बराबर लेकर औटाकर नित्य मूत्रेंद्रिय पर मालिश करने से मूत्रेंद्रिय की कमजोरी मिटती है।

स्तनों की शिथिलता—इसके पत्तों को सिरके में पीसकर लेप करने से स्तनों का ढीलापन मिटकर वे कठोर हो जाते हैं।

—:o*o:—

अरण्यकासनी

नाम—

हिन्दी—अरण्य कासनी। **पंजाबी**—कानफूल, बरन, दूधल। **दक्षिणी**—पथरी। **सिंधी**—बुथुर। **लेटिन**—Taraxacum Officinale. **अंग्रेजी**—Deudelion.

वर्णन—

यह एक प्रकार की स्थायी वनस्पति है। इसका रस दूधिया होता है। इसके पत्ते चौड़ाई में कम और लम्बे आकार के होते हैं। इसके फूल पीले रहते हैं और विशेषरूप से काम में आते हैं। इसकी ताजी जड़ ६ से १६ इंच तक लम्बी होती है। ताजी हालत में यह हलके पीले रंग की और सूखी हुई हालत में धूसर वर्ण की झुर्रीदार होती है। भीतर से यह सफेद रंग की और कुछ पीलापन लिये हुए होती है। गीली हालत में यह लचीली और सूखने पर हलकी चरचराहट के साथ टूटने वाली होती है। बसंत-ऋतु के प्रारंभ में इसकी जड़ मीठे स्वाद को लिये रहती है, मगर गरमियों में इसका दूध गाढ़ा हो जाने की वजह से यह कड़वी हो जाती है। यह औषधि हिमालय में एक हजार फीट से लेकर अठारह हजार फीट की ऊँचाई तक तथा नीलगिरि पर्वत, तिब्बत, यूरोप और उत्तरी अमेरिका में पैदा होती है। सहारनपुर के सरकारी उद्यान में भी इसकी खेती की जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

प्राचीन आयुर्वेद के अन्दर इस औषधि का उल्लेख नहीं पाया जाता।

इंडियन मेडिकल प्लांट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसकी जड़ मूत्रनिस्सारक, पौष्टिक और मृदु-विरेचक है। यह खास करके गुर्दे और यकृत की बीमारियों में काम में ली जाती है। इसकी ताज

जड़ का रस या इसका ठंडा काढ़ा केलम्बा के समान आमाशय को बल देने वाला तथा कोठे को मुलायम करने वाला होता है।

इसका सत्व एलोपेथिक में एक्स्ट्रेक्टम टेरेक्ससाइ लिक्विडम(Extractum Taraxaci Liquidum.) के नाम से प्रसिद्ध है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि यकृत के जीर्णरोगों पर फायदेमन्द है। इसके अन्दर एक प्रकार का कड़वा सत्व रहता है।



अरण्यतम्बाकू

नाम—

संस्कृत—अरण्य तम्बाकू। **हिन्दी**—बन तम्बाकू, गीदड़ तम्बाकू, बन तमाल। **पंजाबी**—बन तम्बाकू, एकबीर, फुँटर, रेवंद चीनी, क्वीस्त्री। **अरबी**—माही ज़हरज, अदानद दुब। **फारसी**—बुसीर, माही जहरद। **लेटिन**—Verbascum, Thapsus. (व्हरबेसकम थेपसूस) **इंग्लिश**—Mulein. (मुलियन)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का सीधा खड़ा रहने वाला वृक्ष है। यह वृक्ष भूरे और पीले रंग के कोमल रुएँ से आच्छादित रहता है। इसके फूल पीले रंग के और पत्ते बर्छी के आकार के होते हैं। औषधि-प्रयोग के लिये इसके पुष्पदल ही एकत्रित किये जाते हैं। इसके पत्ते पाँच खंड युक्त होते हैं। इसके ऊपर का भाग चिकना और नीचे का रुएँदार होता है। इसके नरतंतु गर्भकेशर की नली से लगे हुए होते हैं। इसका स्वाद लुआबी और कुछ २ कड़वा रहता है। इसके फूल के अन्दर पुष्करमूल के समान वास आती है। इसकी फलियाँ कुछ लम्बी और गोल होती हैं। इसके बीज छोटे और अत्यंत सख्त होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के अन्दर इस औषधि का कोई खास उल्लेख नहीं मिलता।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह औषधि तीसरे दर्जे में गर्म और रुक्ष है। इसके पत्ते वेदना को दूर करने वाले, आक्षेप को मिटाने वाले, पेशाब लाने वाले, स्निग्धता पैदा करने वाले, लुआबदार और नींद लाने वाले हैं। छाती के दर्द, आमवात, संधिवात, आमातिसार और कफ के रोगों में यह औषधि उपयोगी मानी जाती हैं।

हकीम डिसकोरिडस ने इस औषधि के कई भेदों का वर्णन किया है। वे इसे खाँसी, फेफड़े के रोग और अतिसार के अंदर लाभदायक बतलाते हैं।

इंग्लैण्ड के अन्दर इस के ताजा पत्तों से व दूसरे अंगों से शराब के साथ एक प्रकार का टिंचर तयार किया जाता है जोकि मस्तक के शूल में बड़ा ही उपयोगी होता है। इसका तेल (Mulleinoil) जीवाणुनाशक और कान के दर्दों में आश्चर्य्यजनक लाभ पहुँचाने वाला है। कान के भीतर की जलन और कान की सूजन के पुराने रोगों को मिटाने के लिये एक सुदीर्घकाल से बड़ी सफलतापूर्वक इसका उपयोग किया जा रहा है । यह तेल बच्चों के मूत्रस्राव रोग में भी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जर्मनी के अन्दर भी यह वस्तु बड़ी उपयोगी मानी जाती है। वहाँ पर इसकी जड़ का काढ़ा आक्षेप, सिरदर्द तथा मस्तकपीड़ा को दूर करने के काम में लिया जाता है। इसके सूखे पत्ते यदि चिलम और हुक्के में पिये जायँ तो यह खाँसी, श्वास और क्षयरोग में लाभ पहुँचाता है।

ब्रिटिश मेडिकल जरनल के सन् १८८३ के २७ वीं जनवरी के अङ्क में डाक्टर क्वीनलैण्ड ने इस औषधि के सम्बंध में जो तथ्य निकाले हैं, वे इस प्रकार हैं।

"यह औषधि यक्ष्मा की प्रारंभिक अवस्था और फेफड़े के रोगों में बहुत लाभदायक है। आयरलैण्ड के अन्दर उपरोक्त रोगों के अंदर प्रचुर परिमाण में यह उपयोग में ली जाती है। यह आंतों के ढीलेपन को दूर करती है। यक्ष्मा के रात्रिस्वेद पर इसका कोई प्रबल असर नहीं होता, पर इसमें रोगनिवारक और वजन बढ़ाने की शक्ति है। इससे यह यक्ष्मा और अतिसार को रोक देती है।"

डाक्टर स्टुअर्ट के मतानुसार इसकी जड़ उत्तर भारत में ज्वरनाशक औषधि के रूप में काम में ली जाती है।

डा० वेट के मतानुसार यह यक्ष्मा की मूल्यवान औषधि है। यह खाँसी को कम करने वाली, आँतों की शक्ति को बढ़ाने वाली, और रात्रिस्वेद को रोकने वाली है । इसके ढाई तोले पत्तों को ढाई पाव दूध में उबालकर दिन में दो बार देने से यह श्वास रुकने की तकलीफ को दूर करती है।

इंडियन मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसके दो तोला पत्तों को ढाई पाव दूध में उबाल कर, आधा दूध रहने पर शक्कर मिलाकर रात को सोते समय पीने से खाँसी की वेदना बंद होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि शांतिदायक, मूत्रनिस्सारक, वेदनाहर, शूलनिवारक, धातु-परिवर्तक और आक्षेप निवारक है ।

यह मछलियों के लिये एक प्रकार का जहर है, इसमें एक प्रकार का कड़वा सत्व और उड़नशील तेल पाया जाता है।

अरण्यतुलसी

नाम—

संस्कृत—अर्जक, बर्बरी, बनबर्बरी । **हिन्दी**—बर्बरी, बनतुलसी । **बंगाली**—बाबुइ तुलसी, वनबाबुईतुलसी । **मराठी**—रानतुलस । **गुजराती**—रानतुलसीभेद । **कर्नाटकी**—कगोरले, करीयक गोरले । **तैलंगी**—कारुतुलसी । **फ़ारसी**—पलंग मुस्क । **अरबी**—फरंज मुस्क । **लेटिन**—Ocimum Gratissimum. श्रोसिमम ग्रेटिसिमम् ।

परिचय—

इसका वृक्ष सीधा, डालियों वाला और साल भर तक कायम रहने वाला होता है । इसकी छाल राख के रंग की होती है । जब पौधा छोटा होता है, तब चारों तरफ चार शाखाएँ फूटती हैं । इस पौधे की ऊँचाई ४ से ८ फीट तक होती है । इसके पत्ते दोनों बाजुओं पर चिकने होते हैं । इसके पत्तों की लम्बाई २ इंच व ज्यादे से ज्यादा ४ इंच होती है । यह वनस्पति खास करके एशिया व सिन्ध की है । बंगाल,नैपाल, चटगाँव और पूर्वी नैपाल में भी यह पैदा होती है । तुलसी की जितनी जातें हैं, उनमें सबसे अधिक सुगन्ध इसके पत्तों को हाथ पर मलने से आती है । यह काली व सफेद के भेद से दो प्रकार की होती है ।

आयुर्वेदिक मत—राज-निघण्टकार के मतानुसार यह चर्परी, रुचिकारक, गरम तथा वातरोग, कफ, व नेत्ररोग को नाश करने वाली है और सुखपूर्वक प्रसव कराने वाली है ।

यह वनस्पति स्वाद में तिक्त, रूखी, शीतल, चरपरी, दाहजनक, तीक्ष्ण, रुचिकारक, हृदय को हितकारी, दीपन, पचने में हल्की, विषनाशक तथा वमन, मूर्छा, वात, कफ, चर्मरोग, अग्निविसर्प, प्रदाह और पथरीरोग में लाभदायक है ।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पेट के आफरे को दूर करने वाली,कामोद्दीपक,मस्तिष्क की बीमारी,हृदयरोग तथा यकृत और तिल्ली में लाभ पहुँचाने वाली है । यह मुँह की दुर्गन्ध को दूर करने वाली,दाँत के मसूड़ों को मजबूत बनाने वाली तथा आँतों के दर्द व बवासीर में लाभ पहुँचाने वाली है ।

इसको पानी में उबाल कर उसका बफारा देने से गठिया व पक्षाघात के रोगियों को लाभ पहुँचता है । इसके पत्तों का काढ़ा वीर्य-सम्बन्धी रोगों में फायदेमन्द है । यह सुजाक की भी एक उत्तम औषधि है । सिरदर्द व स्नायुशूल में इसके बीजों का उपयोग किया जाता है ।

मेडागास्कर में यह औषधि बहुत प्रचलित इलाज के रूप में काम में ली जाती है । वहाँ पर यह पौष्टिक, छाती के रोग को दूर करने वाली, उल्टी को रोकने वाली और आक्षेप-निवारक समझी जाती है । स्नायुशूल संम्बधी पीड़ा को भी यह दूर करती है । बॅडसिलियो लोग इसके पत्तों को दाँतों की पीड़ा

में चूसने के काम में लेते हैं। वे लोग इसके पत्तों के रस को या बीजों के चूर्ण को सिरदर्द की बीमारी में सूंघने के काम में लेते हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह पेट के आफरे को उतारने वाली, मूत्रवर्द्धक और शान्तिदायक होती है। यह रक्तस्राव को रोकने वाली है। इसका रासायनिक विश्लेषण करने से मालूम हुआ है कि इसमें एक प्रकार का उड़नशील पदार्थ जिसको ऐसेन्शियल् ऑइल कहते हैं, रहता है। इसके अतिरिक्त थायमल और यूगेनल नामक दो पदार्थ और रहते हैं।

सन्याल व घोष के मतानुसार यह पौधा पेट के आफरे को दूर करने वाला व उत्तेजक माना जाता है। इसके बीज शान्तिदायक व मूत्रनिसारक हैं। इसके बीजों को कुछ समय तक भिंगोया जाय तो ये फूल जाते हैं। उनके फूलने से एक प्रकार का चिकना व लसदार पदार्थ बन जाता है। इसमें शक्कर डालकर पीने से यह पेचिश व सुजाक की बीमारी में ठण्डक पहुँचाता है। यह नाक के रोगों में भी उपयोगी है। बंगाल के अन्दर इसका प्रयोग पीनस के रोग पर दीर्घकाल से किया जा रहा है।

इसके पत्तों का काढ़ा वीर्य सम्बन्धी निर्बलता को दूर करता है। इसके बीज सिरदर्द व स्नायु-शूल के काम में लिये जाते हैं। इसका ताजा रस कान में टपकाने से कान का दर्द आराम होता है। मूत्राशय से संबन्ध रखने वाली बीमारी में यह लाभदायक है।

उपयोग—

सुजाक—इसके पत्तों का रस पिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

लकवा व गठिया—इसके पंचांग को गरम पानी में उबालकर उसका बफारा देने से लकवा व गठिया की बीमारी में लाभ पहुँचता है।

सिर दर्द—इसके पत्तों के रस को ललाट व कनपटियों पर लेप करने से मस्तिष्क की पीड़ा मिटती है।

स्नायु शूल—इसके बीजों की फंकी देने से स्नायु-शूल मिटता है।

घाव के कीड़े—इसके सूखे पत्तों का चूर्ण घाव पर डालने से उसके कीड़े निकल जाते हैं।

अतिसार—इसके बीजों के चूर्ण की ३॥। माशे से ७॥ माशे तक फंकी देने से जवान आदमी का अतिसार बन्द होता है।

———

अरनी

नाम—

संस्कृत—अग्निमन्थः, जया, तरकारी, नादेयी । हिन्दी—अरनी । मराठी—टाकली । बंगाली—गनिरी । पंजाबी—अगेथू । तैलंगी—तक्किली, चट्टू । द्राविड़ी—वन्निमरम । लैटिन—Premna Integrifolia.

वर्णन—

अरनी के वृक्ष दक्षिण हिन्दुस्तान, सिलोन, बंगाल, बम्बई, अवध, गढ़वाल और राजपूताना आदि बहुत से देशों में पैदा होते हैं ।

अरनी दो प्रकार की होती है, एक छोटी और दूसरी बड़ी, सफेद व काले रंग के फूलों के भेद से भी यह दो प्रकार की होती है । बड़ी अरनी का वृक्ष ३० फीट ऊँचा होता है । इसके पत्ते कटे हुए व कंगूरेदार होते हैं । इसकी पुरानी शाखाओं में आमने-सामने मजबूत काँटे लगे हुए होते हैं । इसके कुछ नीली झाँई लिये हुए, सफेद रंग के फूल लगते हैं । फूलों की पंखड़ियाँ कुछ मोटी होती हैं । इसकी लकड़ी मजबूत व सफेद रंग की होती है । उसपर बैंगनी रंग की धारियाँ पड़ी हुई होती हैं । चैत्र, वैशाख में इसके फूल लगते हैं और फूलों के गिरने के बाद काले रंग के छोटे २ फूल आते हैं । ऐसा कहा जाता है कि इसकी लकड़ी को परस्पर में रगड़ने से अग्नि उत्पन्न होती है, इसीसे इसका नाम अग्निमन्थः पड़ा है ।

छोटी अरनी का झाड़ प्रायः दो-तीन गज ऊँचा होता है, इसकी जड़ मोटी, कड़वी व भूरे रंग की होती है । उसमें कुछ २ सुगंध भी आती है । इसके पत्ते १ से २ इंच तक लम्बे होते हैं । इन पत्तों पर सुगंधयुक्त सफेद रंग के फूल लगते हैं । इसके फल काले रंग के होते हैं जिनमें चार २ बीज निकलते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—धन्वन्तरि-निघंटु के मतानुसार अरनी कड़वी, तीखी, उष्ण तथा वात, कफ,पाण्डुरोग, सूजन,मन्दाग्नि,बवासीर, कब्जियत इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करने वाली है ।

शोढ़ल के मतानुसार अरनी भारी, कड़वी, सारक तथा वायु व सूजन को जीतने वाली है ।

इसकी जड़ विरेचक, अग्निवर्द्धक और यकृत की पीड़ा को दूर करने वाली होती है । इसके पत्तों का काढ़ा मंदाग्नि को दूर करने तथा पेट का आफरा उतारने के लिये दिया जाता है । इसकी जड़ का काढ़ा हृदय को बल देने वाला और पौष्टिक है, इसके पत्तों को कालीमिर्च के साथ पीसकर सर्दी व बुखार में देते हैं । गठिया की बीमारी में इसके पंचांग का क्वाथ लाभदायक है । यह क्वाथ स्नायु-शूल, और स्नायु-पीड़ा में भी उपयोगी है ।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसकी जड़ को चार औंस (आधा पाव) लेकर एक पिंट (आधा सेर) पानी में १५ मिनट तक उबाल कर दिन में दो बार १ छटाँक से आधा पाव की मात्रा में देने से जठराग्नि प्रबल होती है। यह औषधि पौष्टिक भी है।

हमारे प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इस औषधि का कई स्थानों पर वर्णन आया है, सुप्रसिद्ध दशमूल क्वाथ के अन्दर यह औषधि भी एक प्रधान अंग मानी गई है। इसके अतिरिक्त चरक में यह औषधि बवासीर के लिये, सुश्रुत में इक्षुप्रमेह के लिये, चक्रदत्त में वसाप्रमेह के लिये, हारीत में वात-व्रण के लिये इत्यादि भिन्न २ ग्रन्थों में भिन्न २ रोगों के लिये उपयोगी बतलाई गई है।

उपयोग—

बवासीर—अरनी के पत्तों का काढ़ा पिलाने से तथा इसके पत्तों की पुल्टिस बनाकर बाँधने से बवासीर की पीड़ा नष्ट होती है।

वायुगोला—छोटी व बड़ी अरनी के जल का काढ़ा पिलाने से वायुगोले में लाभ होता है।

सूजन—इसकी जड़ को सांटे की जड़ के साथ पीसकर लेप करने से शरीर की ढीली पड़ी हुई सूजन उतर जाती है।

गठिया और स्नायु पीड़ा—के अन्दर इसके पंचांग का क्वाथ पिलाने से लाभ होता है।

शीत-पित्त—इसकी जड़ का चूर्ण घी के साथ सात दिन पिलाने से शीत-पित्त मिटती है।

आमाशय का शूल—इसके पत्तों को उबालकर मल, छानकर पिलाने से आमाशय का शूल मिटता है।

हृदय की निर्बलता—इसके पत्तों का धनियें के साथ क्वाथ बनाकर पिलाने से हृदय की निर्बलता मिटती है।

उपदंश—छोटी अरनी के पत्तों का सवा तोला रस कुछ दिनों तक पिलाने से पुरानी गर्मी की पीड़ा मिटती है।

रुधिर विकार—इसके पत्तों के रस में शहद मिलाकर पिलाने से रक्तविकार में लाभ पहुँचता है।

बनावटें—

दशमूल क्वाथ—अरनी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों कटेरी, गोखरू, बेलगिरी, अरलू, खम्बारी, पाढर, इन दसों औषधियों को समान भाग लेकर कूट पीसकर एक तोले की मात्रा में आधा सेर पानी के अन्दर जोश देना चाहिये। जब एक छटाँक पानी शेष रह जाय तब छानकर एक तोला शहद मिलाकर पिलाना चाहिये। अगर उसमें थोड़ा पीपल का चूर्ण भी डाल दिया जाय तो विशेष लाभदायक होता है। यह काढ़ा सूतिकारोग के लिये अमृततुल्य है। अगर प्रसूता स्त्री को दस दिन तक लगातार यह काढ़ा पिलाया जाय तो उसके सब उपद्रव दूर होते हैं। इसके अतिरिक्त सन्निपात, उदररोग, पसली का दर्द, त्रिदोष इत्यादि रोगों को भी यह क्वाथ दूर करता है।

———:०:———

अरलू

नाम—

संस्कृत—अरलू, श्योनाक, टुंटुकम् । **हिन्दी**—अरलू, सोनापाठा, टेंटू । **बंगाली**—सोना, सोनालू । **गुजराती**—अरडूसो । **मराठी**—टेटू, मानिम्थ्य, अडूलसा । **कर्नाटकी**—शोणा, शोडिलमर । **तैलंगी**—पैद्दामानु । **उड़िया**—फणफणा । **पंजाबी**—मुलिन । **नैपाली**—करुमकन्द । **लैटिन**—Ailanthus. Excelsa. (ऐलेन्थस एक्सेलेसा)

पहिचान—

अरलू के झाड़ नीम के बराबर ऊँचे होते हैं। इसके झाड़ व इसकी डालियाँ अक्सर सीधी होती हैं। इसकी छाल का रंग सफेद राख के समान होता है। इसके पत्ते ४ से ८ इंच तक लंबे व दो से तीन इंच तक चौड़े गहरी कटी हुई कोरों के व कंगूरेदार होते हैं। इसकी डालियाँ १ फुट से लेकर तीन फुट तक लम्बी होती हैं। इसके फूल कुछ पीलास लिये हुए हरे रंग के होते हैं। यह जाड़े के दिनों में आते हैं और इनके ऊपर पित्तपापड़ा की तरह लम्बी फलियें लगती हैं, जो गर्मी की मौसिम तक पक जाती हैं। ये फलियाँ दो २ फुट की लम्बी तलवार के समान होती हैं। फली के भीतर रूई व दाने निकलते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत के अनुसार अरलू, कसैला, कड़वा, चरपरा, जठराग्नि को दीपन करने वाला, मलरोधक, शीतल, वीर्यवर्द्धक, बलदायक तथा वात, पित्त, सन्निपात, ज्वर, कफ, त्रिदोष, अरुचि, आमवात, कृमि, उल्टी, खाँसी, अतिसार, तृषा और कोढ़ का नाश करने वाला है। इसका कच्चा फल कसैला, मधुर, हल्का, हृदय को बलकारी, रुचिकर, पाचक, कण्ठ को हितकारी, अग्नि-प्रदीपक, गरम, कड़वा, खारा तथा गुल्म-वात, कफ, बवासीर और कृमिरोग को नष्ट करने वाला है।

इसकी छाल कड़वी और ज्वर तथा तृषा में शान्ति पहुँचाने वाली, संकोचक, भूख बढ़ाने वाली, कृमिनाशक और ज्वर को नष्ट करने वाली है। यह बच्चों के अतिसार, पेचिश, कान के दर्द, चमड़े के रोग और गुदाद्वार की तकलीफों में लाभ पहुँचाती है। यह औषधि भी दश मूल का अङ्ग है।

बम्बई में इसकी छाल व पत्ते बहुत पौष्टिक माने जाते हैं तथा प्रसूति के पश्चात् की कमजोरी को दूर करने के लिये दिये जाते हैं।

इसकी छाल का रस नारियल के रस के साथ में या शहद के साथ में देने से प्रसूति के बाद होने वाली तकलीफों को दूर करता है।

राज-निघंटु के अन्दर इस औषधि को अतिसार की एक महौषधि माना है। लिखा है—

पुटपाक विधानेन, रसो निष्कास्य भक्षितः।
चिरंतन मतिसारं, नाशयेदिति कीर्त्तितम् ॥

इसकी छाल व पत्तों को बारीक पीसकर, गोला बनाकर, उसके ऊपर बड़ के पत्ते लपेट कर, कपड़-मिट्टी कर भाड़ में डाल देना चाहिये, जब मिट्टी पककर लाल हो जाय, तब उसको निकाल कर ठण्डा होने पर दबा कर निचोड़ लेना चाहिये, इस रस में से दो तोला रस सबेरे-शाम पीने से बहुत दिनों का अतिसार, खूनी दस्त इत्यादि रोग आराम होते हैं। जिस प्रकार विलायती दवा 'सेलोल' के अन्दर अतिसार को नष्ट करने का गुण है, उसी प्रकार इस औषधि में भी यह गुण रहता है।

उपयोग—

प्रसूतिजन्य दुर्बलता—जिन स्त्रियों को प्रसूति हुये के पश्चात् चार-छः दिन तक भयङ्कर पीड़ा रहती है, उनको इसकी छाल का चार-छः रत्ती चूर्ण लेकर इतनी ही सोंठ और इतने ही गुड़ के साथ मिलाकर उसकी तीन गोलियाँ बनाकर सबेरे-दोपहर और शाम को एक २ गोली दशमूल-क्वाथ के साथ देने से चमत्कारिक ढंग से सब पीडायें दूर होती हैं और दस-पद्रन्ह दिन तक लगातार देते रहने से प्रसव के पश्चात् आने वाली कमजोरी दूर होकर सूतिका रोग होने का भय जाता रहता है।

सन्धि वात—इस औषधि में सोडा सेलिसाइलिक नामक विदेशी औषधि की तरह स्नायु-जाल को विकसित करने का गुण भी रहता है। इसलिये इसकी छाल के चूर्ण को एक रत्ती से डेढ़ रत्ती की मात्रा में नियमित रूप से लेते रहने से तथा इसके पत्तों को गरम करके सन्धियों पर बाँधने से सन्धिवात में बहुत लाभ होता है।

ज्वर-नाशक प्याला—इसकी छाल तथा इसकी लकड़ी में एलोपेथिक दवा "क्वाशिया" की तरह विषमज्वर को नाश करने वाला गुण भी रहता है। क्वाशिया की तरह ही इसकी लकड़ी का छोटा प्याला बनाकर उस प्याले में रात भर पानी भरा रखकर सबेरे उस पानी को पीने से इकाँतरा, तिजारी, चौथिया इत्यादि सब प्रकार के मलेरिया ज्वर नष्ट होते हैं। यह प्याला कड़वा, चरपरा, जठराग्नि को बल पहुँचाने वाला, मल को रोकने वाला, शीतल तथा मलेरिया के असर को रोकने वाला है। इस प्याले के अन्दर भरा हुआ पानी पीने से और इसकी छाल का डेढ़ २ रत्ती चूर्ण सबेरे-शाम खाने से बुखार के अन्दर बहुत लाभ पहुँचाता है। (जंगलनी जड़ी-बूटी-भाग ४)

श्वास रोग—इसके चूर्ण को अदरख के रस व शहद के साथ चटाने से श्वास में लाभ होता है।

मन्दाग्नि—इसकी छाल को ठण्डे या गरम पानी में चार पहर भिंगोकर मल, छानकर दिन में दो बार पिलाने से मन्दाग्नि मिटती है।

आक्षेप वायु—इसकी तीन माशे छाल व तीन माशे सोंठ को औटाकर पिलाने से बाँयठे और आक्षेप वायु मिटती है।

खाँसी—इसके गोंद के चूर्ण को थोड़ा २ दूध के साथ पिलाने से आमातिसार व खाँसी मिटती है।

कर्ण-शूल—अरलू की जड़ की छाल लाकर बारीक पीसकर उसकी लुग्दी तिलों के तैल के अन्दर रखकर, तैल से दूने वजन का पानी डालकर आग पर जोश देना चाहिये। जब पानी जलकर शुद्ध तैल रह जाय तब उसको छान करके रख लेना चाहिये। इस तैल को कानों के अन्दर टपकाने से त्रिदोष से पैदा हुआ कर्णशूल मिटता है।

उपदंश—अरलू की जड़ की छाल लाकर बारीक करके सुखा देना चाहिये। इसमें से आधा तोला छाल लेकर चार-पाँच तोले पानी के अन्दर चार घंटे तक भिगोना चाहिये। उसके पश्चात् उस छाल को बारीक पीसकर उसी पानी के अन्दर छानकर उसमें मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक सबेरे-शाम पीना चाहिये। पथ्य में गेहूँ की रोटी, घी, शक्कर इत्यादि वस्तु खाना चाहिये, भात नहीं खाना चाहिये। सात दिन तक स्नान भी नहीं करना चाहिये, आठवें दिन नीम के पत्तों के औटाये हुए पानी में स्नान करके पथ्य छोड़ना चाहिये।

बवासीर—अरलू की छाल, चित्रकमूल, इन्द्रजौ, करंज की छाल, सेंधा नमक, सोंठ, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर कूट-पीस छान चूर्ण बनाकर डेढ़ से तीन माशे की मात्रा में मट्ठे के साथ लेने से बवासीर नष्ट होता है।

मुँह के छाले—अरलू की छाल का काढ़ा बनाकर उसके कुल्ले करने से मुँह के छाले नष्ट होते हैं।

अरल्वादि क्वाथ—अरलू, अतीस, मोथा, सोंठ, बेलगिरी और अनार दाना, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर जौकुट करके, इसमें से एक तोला औषधि, आधा सेर पानी के अन्दर उबाल कर, जब छटाँक भर पानी रह जाय तब छानकर उसे पिलाने से सब प्रकार के ज्वर व अतिसार नष्ट होते हैं।

अरवी

नाम—

संस्कृत—आलुकी, कच्वी, कचुः। **हिन्दी**—अरवी, अरुई। **मराठी**—अरवी, चमकुरा। **बंगाली**—कचु। **पंजाबी**—अरवी। **द्राविड़ी**—शोमकलेक। **कर्नाटकी**—श्यामेगडें। **अरबी**—कलकास। **लैटिन**—(Colocasia. Eoculonta.)

परिचय—

अरवी के पेड़ भारतवर्ष में सब दूर होते हैं। इसके पत्ते कमल के पत्तों की तरह, मगर उनसे कुछ छोटे बहुत सुन्दर होते हैं। इसके पत्ते फूटते ही जमीन के ऊपर फैल जाते हैं। इसके फल जमीन के

अन्दर लगते हैं, जो कुछ काले व रतालू की तरह होते हैं, इन फलों की तरकारी बनाकर भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के लोग खाते हैं। इसकी तरकारी चिकनी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—निघंटु-रत्नाकर के मतानुसार अरवी मलस्तम्भक, स्निग्ध, जड़, बलकारक, कफनाशक और तेल में पकाने से रुचिकर होती है।

यूनानी मत—यह शरीर को मोटा करने वाली, खाँसी को लाभ पहुँचाने वाली, मलरोधक और वीर्य को गाढ़ा करने वाली है,इसका स्वभाव वादी को बढ़ाने वाला है तथा हजम होने में यह बहुत कठिन है। इसके प्रतिनिधि दालचीनी, लौंग व अजवायन हैं तथा इसके दर्प को नष्ट करने वाली भिंडी है।

इसके पत्तों की डंडी का रस रक्तस्राव को बंद करने के लिये लिया जाता है। कभी २ कान के दर्द में भी यह उपयोगी पाया गया है। यह रस एक प्रकार का उत्तेजक पदार्थ है। इसको चमड़े के ऊपर लगाने से चमड़ा लाल हो जाता है,इसका खास उपयोग जलन वाली गाँठों व फोड़ों में किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि इसकी गठान का उपयोग करने से सिर की गंज में लाभ पहुँचता है। भंवरी इत्यादि जहरीले कीड़े काटने पर भी इसका उपयोग किया जाता है। बवासीर की बीमारी में भी यह लाभदायक सिद्ध हुई है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह रक्तस्राव को रोकने वाली और एक प्रकार की चर्मदाहक औषधि है। बिच्छू के डंक पर भी यह लाभकारी मानी गई है। मगर केस व महेस्कर के मतानुसार यह निरुपयोगी सिद्ध हुई है।

उपयोग—

खून का बहना—इसके कोमल पत्तों में से रस निकाल कर लगाने व पिलाने से रक्तवाहिनी-शिरा में से निकलता हुआ खून बन्द हो जाता है। इस रस को घाव के ऊपर लगाने से घाव भी शीघ्र भर जाता है।

सूजन—काली अरवी के पत्ते व उनकी डंडियों का रस निकाल कर उसमें नमक डालकर लेप करने से गाँठों व पेशियों की सूजन बिखर जाती है।

सिर की गंज—काली अरवी के कंद का रस निकाल कर सिर पर मालिश करने से बालों का गिरना बन्द हो जाता है व नवीन बाल उगने लगते हैं।

जहरीले जानवरों का डंक—भंवरी व अन्य दूसरे जहरीले जानवरों के डंक पर इसका रस लगाने से लाभ पहुँचता है।

खूनी बवासीर—काली अरवी का रस पिलाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

अरहर

नाम—

संस्कृत—आढ़की, तुवरी, पीतपुष्पा, वृतबीजा। हिन्दी—अरहर, तुअर। मारवाड़ी—तूर, अरेड़। गुजराती—तूर। मराठी—तुरी। बंगाली—आपूरी, अडर। पंजाबी—हरहर। अरबी—साज़। फारसी—शाक़ल। लेटिन—Cojanus, Indicus. Cytisuscajan.

विवरण—

अरहर की दाल प्रायः भारतवर्ष में सब दूर खाई जाती है। इसको प्रायः सब लोग जानते हैं। इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अरहर मधुर, कसैली, कुछ वातकारक, भारी, रुचिकर, मलरोधक, रूखी, कांति-वर्द्धक, शीतल तथा कफ, पित्त, ज्वर, विष, रुधिरविकार, गोला, वात और बवासीर को दूर करती है। इसके लेप करने से कफ व पित्त का नाश होता है और इसका सेक करने से मेद व कफ दूर होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह कब्जियत करने वाली, पचने में भारी, आँतों में दर्द पैदा करने वाली, अतिसार व कमजोरी को बढ़ाने वाली, कृमिनाशक और यकृत को दुरुस्त करने वाली है। यह कफ व प्रदाह कम करने वाली तथा बवासीर के लिये फायदेमंद है।

इसकी दाल व पत्तों को मिलाकर एक प्रकार का लेप बनाया जाता है। इस लेप को स्तनों के ऊपर लगाने से यह ग्रन्थि रस को रोककर दूध बढ़ता है। इसके बीजों की पुल्टिस जलने वाली सूजन को कम करती है।

चरक के मतानुसार इसकी दाल दूसरी वनस्पतियों के साथ सर्प के जहर में लाभ पहुँचाती है।

डा० चोपड़ा के मतानुसार यह सर्पदंश के काम में आती है। मगर केस और मस्कर के सिद्धान्तानुसार सर्पविष के अन्दर यह निरुपयोगी है।

गायना के अन्दर इसके बीजों का आटा सूजन को नष्ट करने वाला माना जाता है। इसके उबाले हुए पत्ते घाव पर लगाये जाते हैं। इसके पत्तों में से ठंड की मौसम में रस निकाला जाता है। यह रक्तस्राव के अन्दर उपयोगी माना जाता है। इसके फूलों का रस वक्षरोग को नष्ट करता है।

यद्यपि ऊपर अरहर को औषधि की तरह मानकर गुण-दोष लिखे गये हैं। फिर भी यह वस्तु औषधि की अपेक्षा नित्य व्यवहार में आने वाली खाद्य-सामग्री के अन्दर ही काम में आती है।

उपयोग—

मुँह के छाले—इसके पत्तों के रस से या इसकी दाल को पानी में भिगोकर उस पानी से कुल्ले करने से मुँह के छाले मिटते हैं।

अफीम का जहर—इसके पत्तों का रस पिलाने से अफीम का जहर उतरता है।

आधाशीशी—दूध व अरहर के पत्तों का रस मिलाकर सूँघने से आधाशीशी बन्द होती है।

हिचकी—इसकी भूसी हुक्के में रखकर पीने से हिचकी बन्द हो जाती है।

अरारोट

नाम—

हिन्दी—अरारोट, विलायती तिखुर। बम्बई—तवकिल। मराठी—कुएमउ। कनाड़ी—कुए-हितू। तामील—अरुरुट्ट-किलंगू। तेलगू—पलगुंड। अंग्रेजी—West Indian Arrow-root लैटिन—Maranta Arundinacea. (मेरेण्टा एरएडीनेसिया)

वर्णन—

यह एक प्रकार का सफेद सत्व है, जो मेरेण्टा एरएडीनेसिया नामक वृक्ष से प्राप्त होता है। इस वृक्ष का मूल उत्पत्ति-स्थान अमेरिका है, जहाँ पर यह गरमी के दिनों में घास की हरी झोपड़ियों में और वराण्डों में बोया जाता है। इसकी जड़ में गाजर के समान एक प्रकार का कन्द होता है और उसी कन्द से यह औषधि तैयार होती है। यह वृक्ष अगस्त के अन्दर फूलने लगता है। इसके फूल सफेद होते हैं। जनवरी, फरवरी में जब यह तैयार हो जाता है तब इसके पत्ते झड़ने लगते हैं और इसके कंद निकाल लिये जाते हैं।

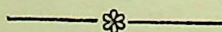
निकालने के पश्चात् इसकी जड़ों को पानी के अन्दर खूब धोकर जल के साथ पीसते हैं और उसे मल छानकर एक ओर रख देते हैं। उस पानी में से इसका सफेद सत्व नितर कर नीचे बैठ जाता है, उसको निकाल लिया जाता है।

भारतवर्ष के अन्दर भी पूर्वीय बंगाल, संयुक्त प्रांत और मद्रास में इसकी खेती होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस औषधि की गठानें चरपरी, कसैली और चर्मदाहक होती हैं। ये घाव पूरने के काम में ली जाती हैं। इनमें से उत्तम जाति का अरारोट प्राप्त होता है। इन गठानों का सत्व पौष्टिक और स्नेह-जनक है। इसको प्रायः दूध में पकाकर कमजोर रोगियों, बालकों, आँत के रोगियों और मूत्र सम्बन्धी रोगियों को दिया जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक और शांतिदायक है।



अरारोबा

नाम—

लैटिन—Araroba (अरारोबा) अँग्रेजी—Goa Powder (गोआ पाउडर) Crude Chrysarobin. (क्रूड क्राइसारोबीन)

वर्णन—

यह औषधि ब्राभील देश के बहिया नामक स्थान में उत्पन्न होती है। इसके वृक्ष को वहाँ के लोग एञ्जेलीम अमरगोसो (Angelim Amargoso) कहते हैं। इस वृक्ष के छिद्र युक्त तनों के खोखले भागों में से यह प्राप्त होता है। इसको प्राप्त करने के लिए इसके वृक्ष को काटकर, चीरकर खोखली जगहों में से खुरचकर इसे इकट्ठा किया जाता है। इसका चूर्ण 'गोआपाउडर' के नाम से सारे भारत में दाद की औषधि की तरह प्रसिद्ध है।

अठाहरवीं शताब्दी के पहले तक भारतवासी इस औषधि से परिचित नहीं थे। सबसे पहिले गोआ के रहने वाले ईसाई लोगों ने चर्मरोग और दाद के ऊपर इस औषधि का प्रयोग करना शुरु किया। वे लोग इस योग को अत्यंत गुप्त रखते थे। उसके पश्चात् यह औषधि बम्बई में आकर गोआपाउडर, ब्राभील-पाउडर, रिंगवर्म पाउडर इत्यादि नामों से ३०) पौंड तक बिकने लगी। सन् १८६४ ईसवी में सुप्रसिद्ध डाक्टर केम्प ने इस औषधि की तरफ ध्यान दिया और इसकी उपयोगिता को जाहिर किया, उसके पश्चात् इस विषय पर विशेष खोज होने लगी और अंत में मालूम हुआ कि यह औषधि एक प्रकार के बबूल की जाति के वृक्ष से प्राप्त होती है और ब्राभील देश में बहुत समय से चर्मरोगों में उपयोग की जाती रही है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि चर्मरोगों के अन्दर अपना खास प्रभाव रखती है। चमड़े के ऊपर इसका अत्यंत सशक्त और क्षोभक प्रभाव होता है। दाद, विचर्चिका (Psoriasis) एक्भेमा (Eczema) यौवन पीठिका (Acne) इत्यादि सब रोगों पर इसको बेसलीन के साथ मिलाकर प्रलेप करने से बहुत लाभ होता है। मगर यह ख्याल रखना चाहिये कि इस लेप को दर्द की सीमा तक ही लगाना चाहिये। उसके बाहर स्वस्थ चमड़ी पर स्पर्श भी न होने देना चाहिये।

डाईमाक का कथन है कि विस्फोटक, विचर्चिका (Psoriasis) और दाद इत्यादि चर्म-रोगों में शीघ्र और निश्चित रूप से फायदा पहुँचाने वाली जो औषधि मुझे मालूम हुई है, वह गोआ-पाउडर और नीम्बू का रस या नीम्बू का सिरका है। इस पाउडर को नींबू के रस में गाढ़ा २ मिला कर दर्द की जगह पर लेप करने से दो-तीन दिन में पूर्ण लाभ होता है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि इस औषधि को आँख या आँख के आस-पास हरगिज न लगने देना चाहिये। क्योंकि इसका आँख के ऊपर बहुत खराब असर पड़ता है।

इस औषधि के भीतरी प्रयोग से भी विचर्चिका, एक्झेमा तथा यौवन-पीठिकाओं में लाभ पहुँचता है। मगर इसकी छोटी से छोटी एक चाँवल से कम की मात्रा भी पेट के अन्दर ऐंठन पैदा करके घबराहट, व्यग्रता और वमन पैदा करती है। इसलिये इसका भीतरी प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिये।

—:०*०:—

अरिमेद

नाम—

संस्कृत—अरिमेद। हिन्दी—दुर्गंधिखैर, विलायती बबूल। बंगाली—दुर्गन्धखदिर, विट्खयेर। मराठी—शेण्याखैर, गंधीहिंबर, घाणेराखैर। गुजराती—इरिमेद, गन्धिलोखेर। लेटिन—(एकेशिया फारनेशियाना) Acacia Farnesiana.

पहिचान—

इसका वृक्ष प्रायः बबूल व कीकर के वृक्ष के समान होता है।

इसकी शाखाएँ पतली व टेढ़ी-मेढ़ी रहती हैं। उनपर भूरे या हल्के बादामी रंग के धब्बे रहते हैं। इसके पत्तों के बीच में एक प्रकार की ग्रन्थि रहती है। इन पत्तों के अन्दर मनुष्य की विष्टा की तरह बू आती है। इसलिये इसको विट-गन्धी भी कहते हैं। यह झाड़ प्रायः गरम आब-हवा के स्थानों पर हुआ करता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत-आयुर्वेद के मतानुसार अरिमेद, कसैला, गरम, कड़वा, भूत-व्याधिनाशक तथा सूजन, मुखरोग, दन्तरोग, रुधिर-विकार, अतिसार, खाँसी, विष, विसर्प, कृमि, कोढ़ और जहरीले घाव को दूर करने वाला है।

इसकी छाल तिक्त व गरम होती है। यह जहरनाशक अतिसार-निवारक और कृमिरोग को दूर करने वाली है। मुँह की सूजन, रक्तविकार, खुजली, वायु-नलियों के प्रदाह, धवलरोग तथा व्रण में भी यह लाभ पहुँचाती है। दाँतों की सड़ान और अग्नि-विसर्प रोग में भी यह लाभदायक है। इसका गोंद मीठा, बलवर्द्धक और कामोद्दीपक है। इसकी कोमल पत्तियाँ सुजाक के रोग में लाभ पहुँचाती हैं।

फिलिपाइन द्वीप-समूह के अन्दर इस वृक्ष की छाल का काढ़ा प्रदररोग में लाभदायक समझा जाता है। इसके कोमल पत्ते उबालकर घाव व फोड़ों में लेप के ऊपर लगाये जाते हैं, इस लेप को लगाने के पहले इसके पत्ते के काढ़े से घाव को धो डालना जरूरी है।

सुश्रुत के अन्दर सर्पदंश के उपचार में जो क्षार-गज नामक औषधि बतलाई गई है। उसका यह वनस्पति भी एक अंग है। मगर मस्कर व केस के मतानुसार सर्प व बिच्छू के जहर पर इस औषधि का कोई प्रभाव नहीं है।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके अन्दर इसेंसियल ऑइल नामक एक उड़नशील पदार्थ रहता है।

उपयोग—

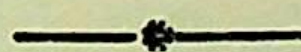
अतिसार—इसकी छाल का काढ़ा बनाकर पीने से अतिसार में फायदा पहुँचता है।

सुजाक—इसकी ७॥ माशे कोमल पत्तियों को पीसकर गोली बनाकर खिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

मुखरोग—इसकी छाल के काढ़े से कुल्ले करने से दन्तरोग और मसूड़ों में से खून आना बन्द होता है।

बनावटें—

अरिमेदादि तेल—१२॥ छटाँक अरिमेद की छाल को लेकर चार सेर पानी में पकावें, जब एक सेर जल रह जाय तब आधा सेर काली तिल्ली का तेल डालकर उसमें एक छटाँक मजीठ की लुग्दी रखकर जोश दें, जब तेल मात्र शेष रह जाय तब छानकर बोतल में भर लें। चक्रदत्त के मतानुसार यह तेल सब प्रकार के मुख रोगों में लाभ पहुँचाता है।



अरीठा

नाम—

संस्कृत—अरिष्टः, फेनिलः रक्तबीजः, मंगल्यः। **मारवाड़ी**—अरीठो। **गुजराती**—अरीठा। **मराठी**—रीठा। **पंजाबी**—रेठा। **द्राविड़ी**—योनान कोट्टे। **तैलंगी**—कुंकुडु चेट्टू। **कर्नाटकी**—कुकुटेकायि। **अरबी**—बन्दक। **फ़ारसी**—रित्ता। **लैटिन**—Sapindus Trifoliatus, Sapinadus Mukorossi. **अंग्रेजी**—Soapnut.

वर्णन—

अरीठे का वृक्ष दो प्रकार का होता है। एक को लैटिन में Sapindus-Trifoliatus. और दूसरे को Sapinadus Mukorossi. कहते हैं। यह वृक्ष प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होता है। इसके पत्ते

गूलर के पत्तों से बड़े होते हैं, इसकी छाल भूरी होती है। इसके फल गुच्छों के रूप में आते हैं। इसके बीजों की गिरी पहले कुछ मीठी और पीछे कड़वी लगती है।

पहली जाति का अरीठा फेन वाला होता है और यह कपड़े धोने, सिर धोने, तथा साबुन के स्थान में काम आता है। दूसरी जाति के अरीठे के बीजों में से जो तैल निकलता है वह औषधि के काम में आता है। इस झाड़ के गोंद भी लगता है।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदाचार्य्यों के मतानुसार अरीठा पचने में चरपरा, त्रिदोषनाशक, तीक्ष्ण, गरम, भारी, गर्भपातक और वमनकारक है। यह गर्भाशय को निश्चेष्ट करने वाला और विष के असर को नष्ट करने वाला है।

डा० मुडीन शरीफ़ (Moodeensheriff.) इस औषधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"मैं इस औषधि को कई दिनों से प्रयोग में ले रहा हूँ। वमनकारक औषधियों में यह औषधि सबसे सस्ती है। यह औषधि अपना असर बहुत शीघ्र बतलाती है व अन्य वमनकारक औषधियों की तुलना में कम जोशीली और अपेय रहती है। आधाशीशी और श्वास के रोग में यह औषधि बहुत लाभ पहुँचाती है। लेकिन मृगी तथा अपस्मार के रोग में यह औषधि लाभदायक सिद्ध नहीं हुई, इस रोग में यह केवल क्षणिक असर दिखलाती है।"

इसके अन्दर का मगज एक उत्तम कृमिनाशक औषधि है, ऐसा कुछ भारतीय वैद्य मानते हैं, पर मैंने कभी इस औषधि से पेट के कीटाणुओं को बाहर आते नहीं देखा। इसकी मात्रा चार से पाँच ग्रेन या दो से तीन रत्ती तक मानी जाती है, मगर अधिक मात्रा में इस्तेमाल करने पर भी हमने इसे नुकसान करते नहीं देखा। इतना ही हुआ कि वमन के साथ एक-दो पतले दस्त भी आये। इसकी जड़ और जड़ का छिलका बहुत कठोर होता है, जो बड़ी कठिनाई से पीसा जाता है। हमने इस औषधि के हरएक हिस्से को काढ़े के रूप में कम ज्यादा मात्रा में उपयोग करके देखा है और इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि यह एक प्रकार की नरम, कफनिस्सारक और शान्तिदायक औषधि है। उपचार की दृष्टि से यह कमजोर है।"

कर्नल चौपड़ा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक, कफनिस्सारक, वमनकारक, क्षारयुक्त और बिच्छू के डङ्क में उपयोगी है।

परांजपे और रामस्वामी ऐय्यर ने इसका रासायनिक विश्लेषण करके यह सिद्ध किया है, इस औषधि में N-Eicosanic Acid. (इकोसेनिक एसिड) प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

केस और महेस्कर के मतानुसार यह औषधि बाह्य-उपचार की दृष्टि से सर्पदंश और बिच्छू के डंक में बिल्कुल निरुपयोगी है।

उपरोक्त अवतरणों से यह मालूम होता है कि आयुर्वेदिक औषधियों में अरीठा एक प्रधान वमन-कारक औषधि है। वमनकारक होने के ही कारण यह विषनाशक भी मानी गई है। क्योंकि विष को

नष्ट करने में वमन भी एक प्रधान उपाय है। इसके अतिरिक्त बेहोशी को दूर करने का भी इस औषधि में विशेष गुण है।

उपयोग और बनावटें—

हिस्टीरिया और मृगी—अरीठे के फल की गिरी को पानी में घिसकर उसकी दो-चार बूंदें नाक में टपकाने से तथा सलाई के द्वारा थोड़ा सा आँख में आँजने से मृगी हिस्टीरिया तथा और किसी भी कारण से पैदा हुई बेहोशी तुरन्त दूर हो जाती है, आँख में आँजने पर यदि जलन हो तो गाय का घी या मक्खन आँजने से शान्ति होती है।

आधाशीशी—अरीठे के फल को एक-दो कालीमिर्च के साथ पानी में घिसकर नाक में टपकाने से आधाशीशी का रोग तत्काल दूर होता है।

अनन्त वायु—प्रसव के पश्चात् वायु का कोप होने से स्त्रियों का मस्तिष्क शून्य हो जाता है, आँखों के आगे अंधकार छा जाता है, दातों की बत्तीसी भिड़ जाती है और वायु की तार्यो आने लगती हैं। ऐसे कठिन समय में अरीठे के पानी में घिसकर फेन पैदाकर आँख में आँजने से तत्काल वायु का कोप दूर होकर जादू के समान असर दिखलाई देता है।

अरीठे की सूंघनी—अरीठे का मगज, नकछिंकनी, कायफल, नौसादर, सफेदमिर्च, अपामार्ग के बीज और बायविडंग, ये सब बराबर लेकर कूट, पीस, छानकर चूर्ण करके रख लेना चाहिये, जब जरूरत पड़े तब उसमें से थोड़ा-सा लेकर उसमें सीप का चूना अच्छी तरह से मिलाकर सुंघाने से सर्दी, आधाशीशी, हिस्टीरिया तथा मस्तक में खून का चढ़ जाना आदि रोग दूर होते हैं।

अरीठे का अंजन—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, साँप की काँचली की राख, साबुन, हींगलू, हींग, मैन्सल, रायन के बीज और नीलाथूथा ये सब समान भाग लेकर इनको लहसन के रस में खरल करके फिर तुलसी के रस में खरल करना चाहिये। उसके बाद गोलियाँ बनाकर रख लेना चाहिये। इस गोली को अरीठे के फेन में घिसकर आँख में आँजने से भूत, प्रेत, डाकन वगैरह के दोष, हिस्टीरिया, बेहोशी, अनन्तवायु इत्यादि रोग तत्काल दूर होते हैं।

सन्निपात—अरीठे का मगज, अंकोल के जड़ की छाल, समुद्र फल के बीज, विष्णुकान्ता के बीज, और कड़वी तरोई के बीज—ये सब समान भाग लेकर तुलसी के रस में खरल कर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेना चाहिये। रोगी की शक्ति का विचार करके एक से चार गोलियों तक गरम पानी के साथ देने से उल्टी और टट्टी होकर महाभयंकर सन्निपात दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसी औषधि से सर्पदंश, पागल कुत्ते का जहर तथा संखिया, अफीम, बच्छनाग वगैरह विषों के विकार भी वमन होकर नष्ट हो जाते हैं।

बिच्छू का जहर—अरीठे के एक फल की गिरी लेकर उसको पीसकर तीन हिस्से करके गुड़ में मिला कर उसकी तीन गोलियें बना लेना चाहिये। पाँच २ मिनट में एक २ गोली ठंडे पानी के साथ देने से तथा इसी के फल को घिसकर आँख में आँजने से और डंक पर लगाने से जहर उतरता है। इसी प्रकार अगर इसके फल के चूर्ण को तम्बाकू की तरह पिया जाय तो भी विष नष्ट होता है।

खूनी बवासीर—अरीठे के फल में से बीज निकाल कर शेष भाग को लोहे की कढ़ाई में डालकर अग्नि पर चढ़ाने से जब वह जल कर कोयला हो जाय तब उसे उतार कर उतनाही पपड़िया कत्था मिलाकर अच्छी तरह से पीसकर कपड़-छन कर लेना चाहिये। इस औषधि में से एक रत्ती औषधि लेकर मक्खन या मलाई के साथ प्रतिदिन सवेरे-शाम लेना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक करना आवश्यक है। जब तक दवा चले तब तक नमक और खटाई नहीं खाना चाहिये। इसके सेवन से कब्जियत, बवासीर की खुजली, बवासीर में से खून का बहना वगैरह फौरन आराम होता है। जंगलनी जड़ी-बूटी नामक ग्रन्थ के लेखक लिखते हैं कि यह प्रयोग एक महात्मा की तरफ से प्रसादरूप में मिला हुआ है और इससे सौ में से नब्बे बीमारों को फायदा होता है। लेकिन छः महीने के बाद फिर पीछा रोग शुरू होने का भय रहता रहता है। इसलिये अगर हर छठे महीने यह प्रयोग कर लिया जाय तो हमेशा के लिये आराम हो जाता है।

मासिक धर्म की रुकावट—अरीठे के फलों के मगज को पीसकर उनकी बत्ती बनाकर स्त्री की जननेन्द्रिय में रखने से मासिकधर्म की रुकावट मिटती है। प्रसव के समय भी यह बत्ती रखने से बिना विलंब के प्रसव होता है।

केशमंजन पाउडर—कपूर काचरी, नागरमोथा, दस-दस तोला और कपूर तथा अरीठे के फल की गिरी चार-चार तोला, शीकाकाई २५ तोला, सूखे हुए आँवले २०० तोला, इन सबका चूर्ण करके इसमें से ५ तोला चूर्ण १।। पाव उबलते हुए पानी के साथ १५ मिनट तक भिंगोकर रखना चाहिये। बाद में मल, छानकर बालों को उस पानी से मसलना चाहिये। उसके बाद गरम पानी से बालों को खूब धो डालना चाहिये। इससे बाल अत्यंत मुलायम और रेशम के समान सुहावने हो जाते हैं तथा सिर के अन्दर यदि जूँ-लीक होती है तो वह भी मर जाती है।

अर्जुन

नाम—

संस्कृत—अर्ज्जुन, कुकुभ । बंगाली—अर्जुन । मराठी—अर्ज्जुन सादड़ा । लेटिन—Terminalia Arjuna (टरमिनेलिया अर्ज्जुन) । अंग्रेजी—Arjuna-Myro Balan.

वर्णन—

अर्जुन वृक्ष के सम्बन्ध में वैद्यों के अंदर, काफी मत-भेद है । शालिग्राम-निघंटु के रचयिता ने Stereulia Urcus नामक वृक्ष को अर्जुन वृक्ष माना है । कई वैद्य सादड़ा के वृक्ष को ही अर्जुन वृक्ष मानते हैं । कुछ लोग Terminalia Tomentosa नामक वृक्ष को अर्जुन वृक्ष समझते हैं लेकिन आजकल के अन्वेषणों से मालूम हुआ है कि जिस वृक्ष को लैटिन में Terminalia Arjuna (टरमिनेलिया अर्जुन) कहते हैं, वही वास्तविक अर्जुन है ।

यह वृक्ष हिमालय की तलहटी, बर्मा, बंगाल, मध्यभारत, दक्षिण बिहार, छोटा नागपुर, सीलोन, इत्यादि प्रान्तों में नदी-नालों के किनारे पैदा होता है । पंजाब तथा वायव्य प्रान्तों में यह कुदरती तौर पर पैदा नहीं होता प्रत्युत् ।बोकरके पैदा किया जाता है ।

स्वरूप—अर्जुन के वृक्ष जंगलों में पैदा होते हैं, ये बहुत बड़े होते हैं । इनकी ऊँचाई ६० से ८० फीट तक और पेड़ की गोलाई १० से २० फीट तक होती है । इसके पत्ते का आकार मनुष्य की जीभ के समान होता है, पत्तों के पीछे डंठल पर दो गाँठें होती हैं, जो बाहर से दिखलाई नहीं देतीं । वैशाख और ज्येष्ठ में इसके फूल आते हैं । फूल बहुत छोटे हरी झाई लिये हुए सफेद रंग के होते हैं । इसके फल जाड़े की ऋतु में पकते हैं । इसकी छाल हरापन लिये हुए सफेद,खाक़ी,भूरी, या बैंगनी रंग की और साफ होती है, इस छाल में से खाकी रंग निकलता है । इसकी लकड़ी की राख रंगने के काम में आती है । इस झाड़ के एक प्रकार का साफ, सुनहरी, भूरा और पारदर्शक गोंद लगता है । जो खाने के काम में आता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—राज-निघंटु के कर्त्ता लिखते हैं कि अर्जुन कसैला, गरम, कफनाशक, व्रण शोधक तथा पित्त, श्रम और तृषा निवारक है, यह वात को कुपित करता है तथा क्षत, भग्न, और मूत्रकृच्छ्र रोग में हितकारी है ।

निघंटु-रत्नाकर के रचयिता लिखते हैं कि अर्जुन कसैला, उष्ण, मधुर, शीतल, कान्तिजनक, व्रणशोधक, बलकारक, हलका तथा अस्थिभंग, अस्थिसंहार, कफ, पित्त, श्रम, तृषा, दाह, प्रमेह, हृदयरोग, पांडुरोग, विषबाधा, क्षतक्षय, मेदवृद्धि, रुधिरविकार, पसीना, श्वास, क्षत और भस्मरोग को नाश करता है ।

सुश्रुत के मतानुसार इस पौधे की राख सर्पदंश के काम में ली जाती है। वाग्भट के मतानुसार बिच्छू के डंक पर इसका छिलका उपयोग में लिया जाता है।

महर्षि चरक इसको संकोचक व मूत्र को साफ करने वाला बतलाते हैं।

प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रियों में वाग्भट ही पहिले व्यक्ति हैं जिन्होंने इस औषधि को हृदयरोग के अन्दर उपयोगी बतलाया है। उनके पश्चात् तो चक्रदत्त, भावमिश्र और आयुर्वेद के अन्य शास्त्रियों ने भी इसको हृदयरोग की महौषधि माना है, इनके पश्चात् के और-और लेखकों ने भी इसे प्रधानतया हृदयरोग की औषधि माना है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसका छिलका कडुआ, कफनिस्सारक, कामोद्दीपक, पौष्टिक और मूत्र को साफ लाने वाला है। यह पित्त में भी उपयोगी है। अस्थिभंग और घावों पर इसको बाह्य उपचार की तरह काम में लेते हैं। पुराने प्रमेह में और अत्यधिक मूत्र आने की बीमारी में इसका क्वाथ पिलाने के काम में लिया जाता है।

हड्डी टूटने पर व शस्त्र की जखम में इसका बारीक चूर्ण पिलाने के काम में लिया जाता है। विशेष करके खून बहना जब अधिक हो जाता है तब इसको दूध के साथ पिलाते हैं। इसकी छाल का काढ़ा उपदंश के घाव धोने के काम में भी लिया जाता है।

आधुनिक खोज—

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी इस औषधि के विषय में काफी खोज की है। सन् १८२६ में ऐन्सेली (Ainslie) नामक विद्वान ने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि यह ज्वरनाशक औषधि है। इसको तेल के साथ पीसकर बच्चों और युवकों के मुख-क्षत की बीमारी पर भी काम में लेते हैं।

डायमॉक नामक विद्वान ने इसकी छाल का वैज्ञानिक विश्लेषण किया था। उनके कथनानुसार इसकी राख में ३४ सैकड़ा केलशियम कारबोनेट (Calcium Carbonate) रहता है। जलीय रस क्रिया के द्वारा मालूम हुआ कि इसमें १६ सैकड़ा टेनिन (Tannin) रहता है। २३ सैकड़ा इसमें द्रव पदार्थ है। टेनिन के अतिरिक्त इसमें रंगने का पदार्थ बहुत कम मात्रा में है जो अलकोहल की मदद से निकाला गया है।

सन् १९०९ में घोषाल ने इसकी छाल का विस्तृत रासायनिक विश्लेषण किया। उनके मतानुसार इसमें शक्कर, टेनिन और एक प्रकार का रंगने का पदार्थ पाया गया और एक विशेष पदार्थ जिसको ग्लुकोसाइड (Glucoside) कहते हैं, वह भी पाया गया। इसमें Calcium Garbonate. (केलशम कारबोनेट) सोडियम और कुछ क्लोराइड भी है। इस औषधि को मेंढक, खरगोश, और मनुष्यों पर भी अजमाया गया। उससे वे इस नतीजे पर आये कि हृदय रोगों पर जिनमें पौष्टिक और उत्तेजक पदार्थ देने की आवश्यकता हो, यह एक अमूल्य औषधि है।

सन् १६१६ और १६२० में कोमान (Koman) ने इस औषधि की परीक्षा की और कई रोगियों पर इस औषधि को अजमाया, मगर उनके मत से यह वनस्पति बिल्कुल निरुपयोगी सिद्ध हुई।

सन् १६२३ में कर्नल चोपड़ा ने लिखा कि डाक्टर एस० घोष ने लगातार कई महीने तक घोर परिश्रम करके अर्जुन वृक्ष से एक प्रकार का ग्लुकोसाइड नामक पदार्थ निकाला है जिसको कि यदि व्हेन में इंजेक्शन लगाकर खून में पहुँचाया जाय तो ब्लडप्रेशर को बढ़ाता है। सन् १६२४ में उन्होंने यह देखा कि इसके अन्दर का मद्यसार हृदयरोगों में लाभ पहुँचाता है। सन् १६२५ में भी उन्होंने इस बात की पुष्टि की, किन्तु उसके एक साल पश्चात् ही इस विषय की आशा-वादिता कम हो गई। अन्त में सन् १६२६ में चोपड़ा और घोष ने उनके अन्वेषणों का परिणाम इस प्रकार प्रगट किया—

(१) इसमें करीब १२ सैकड़ा टेनिन रहता है, उसमें भी खासकर पायराकेटेकल (Pyrocatechol) टेनिन रहता है।

(२) कुछ रंगदार पदार्थ भी इसमें होते हैं।

(३) ऑरगेनिक एसिड प्राणी-वर्ग से संबंध रखने वाला एक अम्ल व फायटास्ट्राल (Phytosterol)

(४) एक प्रकार का ऑरगेनिक ईथर भी रहता है, जोकि तेजाब की मदद से क्षाररूप में विच्छेदन किया जा सकता है।

(५) केलशियम साल्टस् इसमें अधिक परिमाण में रहते हैं व एल्यूमिनम और मेगनेशियम कम तादाद में पाये जाते हैं।

(६) शक्कर का तत्व भी इसमें रहता है।

उपरोक्त अन्वेषक अंततः इस परिणाम पर आये कि अर्जुन वृक्ष की छाल में अलकोलाइड (Alkaloid) ग्लुकोसाइड तथा इसेंशिअल ऑइल की मात्रा नहीं है। इसमें केलशियमसाल्ट, टेनिन, ऑर्गेनिक एसिड, आर्गेनिक ईथर और शक्कर के अतिरिक्त कोई भी वस्तु नहीं पाई जाती।

(७) भिन्न-भिन्न पदार्थ, जो इसके छिलके में पाये गये हैं, जैसे पेट्रोलियम ईथर, अलकोहॉलिक व अन्य सत्व उपचार की दृष्टि से विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हुये।

(८) इसके छिलके के द्वारा निकाला हुआ एलकोहॉलिक कई हृदयरोग के बीमारों पर अजमाया गया, मगर विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ।

महेस्कर और केस के सिद्धान्त के अनुसार सर्पदंश और बिच्छू के डंक पर भी यह औषधि निरुपयोगी सिद्ध हुई है।

केस (Caius) महेस्कर तथा आयजक नामक विद्वानों ने भी इस औषधि का परीक्षण किया और इसके भिन्न-भिन्न पन्द्रह प्रकार के भेदों का उल्लेख किया है। उक्त विद्वानों ने इनकी

शुष्क-निर्मल छालों को उष्णफांट, क्काथ एवम् एलकोहॉलिक एक्स्ट्रेक्ट के रूप में प्रयोग कर इनके प्रभाव का पृथक् २ अध्ययन किया और परिणाम यह रहा कि इन्होंने इनको उत्तम, सबल हृदयोत्तेजक, मूत्रल इत्यादि गुणों से युक्त पाया, परन्तु अभी तक कोई प्रभावात्मक द्रव्य इसमें से पृथक् नहीं किया गया।

उपरोक्त रासायनिक विश्लेषणों से जिस तथ्य पर वैज्ञानिक पहुँचते हैं, उससे मालूम होता है कि इसमें कोई ऐसा प्रभावशाली तत्व जो हृदय को बलकारक सिद्ध हो, नहीं पाया गया।

मगर प्राचीन वाग्भट्टादिक ऋषियों ने इसको हृदय को बल देने वाला लिखा है और उसीका समर्थन करते हुए कलकत्ते के एक प्रसिद्ध डॉक्टर मि० प्यारीशंकरदास गुप्ता अपना निजी अनुभव प्रगट करते हुए प्रेक्टिकल मेडिसन नामक पेपर में लिखते हैं—

"मेरा एक मरीज जोकि भयंकर हृदयरोग से ग्रसित था और जिसे मेरी दवा से लाभ नहीं हुआ, वह कविराज ईश्वरचंद्रसेन के पास गया। उन्होंने अर्जुन वृक्ष की छाल से निर्मित की हुई औषधि उसे दी, जिससे उसे आराम हुआ, उसके पश्चात् मैंने भी इसकी छाल में से टिंचर बनाया और Cardiacand Vascular बीमारियों में उसका उपयोग किया, जिससे अद्भुतगुण दृष्टिगोचर हुए। उसके पश्चात् अभी तक इस प्रकार की बीमारियों से कष्ट पाते हुए लोगों को मैं अर्जुन वृक्ष का टिंचर देता हूँ और उससे बहुत ही संतोषजनक परिणाम दृष्टिगोचर होता है। इसलिये मैं अपने डाक्टर मित्रों को हार्टडिसीज में इस औषधि का उपयोग करने की निःशंकरूप से सूचना देता हूँ।"

कविराज हरलाल गुप्ता का मत है कि अर्जुन वृक्ष की छाल हृदयरोग की महौषधि है, इसके अतिरिक्त खराब व्रणों को इसके क्वाथ से धोने से वे जल्दी भरकर सूख जाते हैं। हड्डी टूटने की दशा में भी इसकी छाल का क्वाथ या चूर्ण देने से लाभ होता है।

उपयोग—

हृदयरोग को दूर करने के अतिरिक्त इस वृक्ष कीछाल के अंदर और भी कई बीमारियों को दूर करने की प्रबल-क्षमता है जिसका संक्षिप्त-विवरण इस प्रकार है—

रक्तपित्त—अर्जुन की छाल को रात भर जल में भिगोकर रखे, सवेरे उसको मलकर, छानकर या उसको औटाकर उसका क्वाथ पीने से रक्त-पित्त में लाभ पहुँचता है। (चरक)

शुक्रमेह—शुक्रमेह के रोगी को अर्जुन की छाल या श्वेत चंदन का क्वाथ पिलाने से लाभ पहुँचता है। (सुश्रुत)

रक्तातिसार—अर्जुन की छाल को बकरी के दूध में पीसकर उसमें दूध और शहद मिलाकर पीने से रक्तातिसार दूर होता है। (चक्रदत्त)

क्षय-कास—अर्जुन की छाल के चूर्ण में अड़ूसे के पत्ते के स्वरस की सात भावना देकर शहद, मिश्री या गो-घृत के साथ चटाने से क्षय की खाँसी का—जिसमें कफ में खून जाता हो—नाश होता है। (भाव-प्रकाश)

मूत्राघात—मूत्रा-घात रोग में अर्जुन की अंतरछाल का क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये।

हृदयरोग—गेहूँ और अर्जुन वृक्ष की अंतरछाल को बकरी के दूध और गाय के घी में पकाकर उसमें मिश्री और मधु मिलाकर चटाने से अतिउग्र हृदयरोग मिटता है। (अनुभूत चिकित्सा-सागर)

बनावटें और प्रयोग—

अर्जुनारिष्ट—अर्जुन वृक्ष की अंतरछाल ४०० तोला, मुनक्का २०० तोला, महुए के फूल १०० तोला लेकर सवा मन पानी के अंदर औटाना चाहिये। जब साढ़े बारह सेर पानी रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिये, उसके पश्चात् इस पानी में पाँच सेर गुड़ और एक सेर धावड़ी के फूलों का चूर्ण डालकर, मिट्टी के बर्तन में भरकर मुंह बंद कर एक महीने तक पड़ा रहने देना चाहिये, पश्चात् उसको छानकर उपयोग में लेना चाहिये। इस औषधि में से प्रतिदिन दोनों टाइम एक से लेकर चार तोले तक औषधि उतने ही पानी के साथ पीने से हार्टडिसीज और फेंफड़े की व्याधियाँ दूर होती हैं।

अरुणि

नाम—

हिन्दी—सुरसरनि, अरुणि। कनाडी—गन्दुपचचेरि। तेलगू—बेलारि। लेटिन—Breynia Rhamnoides. (ब्रेनिया रहेमुनाइडिस)

वर्णन—

यह एक प्रकार की छोटी जाति का पौधा होता है। इसकी शाखाएँ फैली हुई रहती हैं। उन शाखाओं पर बहुत से पत्ते रहते हैं और वे पतले होते हैं। इसकी छाल पीली रहती है। इसके नीचे का भाग कुछ सफेदी लिये हुए रहता है। इसके फूल छोटे होते हैं। नरजाति के फूल गुच्छों में लगे हुए रहते हैं और नारीजाति के अकेले रहते हैं। इसका फल गोल, फिसलना और मट-मैले रंग का होता है। यह वनस्पति भारतवर्ष के तमाम उष्ण कटिबंध में और सीलोन, मलाया, चीन और फिलिपाइन में होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल संकोचक है। इसके सूखे पत्ते तम्बाखू की तरह पीने से टाँसिल की (गले का कौवा) सूजन में तथा तालूपार्श्वग्रन्थि की सूजन में लाभ होता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि कृमिनाशक और संकोचक है।

—:०*०:—

अलर्क

नाम—

संस्कृत—अचूड़ा, अलर्क । **कनाड़ी**—अम्बुसो देवलि, काकमुंज । **तामील**—कुदुलम् । **तैलगू**—मुन्दलमुस्त, उचितं । **लैटिन**—Solanum Trilobatum)

यह औषधि विशेष कर गुजरात, दक्षिण, कर्नाटक, सीलोन और मलाया प्रायद्वीप में उत्पन्न होती है । इसका पौधा बहुत छोटी जाति का होता है । इसका फूल बड़ा और दिखने में सुन्दर होता है । इसका फल गोल होता है और पकने पर लाल रंग का हो जाता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इस औषधि की जड़ छोटी कटेरी की प्रतिनिधिरूप में काम में आती है, इसकी जड़ और पत्ते स्वाद में कड़वे होते हैं । इसका अवलेह, चूर्ण और काढ़ा क्षयरोगी के लिए लाभदायक माने जाते हैं । इसके पञ्चाङ्ग का क्वाथ तीक्ष्ण एवं पुरातन वायु-नलियों के प्रदाह में तथा सब प्रकार की खाँसी में लाभदायक सिद्ध हुआ है ।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि हृदय को बल देने वाली पेट के आफरे को दूर करने वाली तथा श्वास, जीर्णज्वर और प्रसव-कष्ट में उपयोगी है ।

अल्ल

नाम—

हिंदी—अल्ल, बिछुआ, आवा, चीचड़ । **मराठी**—मोतीखजानी । **आसाम**—होरूसूरत । **पंजाब**—अंजन, थाबर । **नैपाल**—उलो । **लैटिन**—Girardinia Zeylanica.

वर्णन—

यह एक प्रकार का ऊँचा और फैला हुआ झाड़ होता है । इसकी डालियों पर एक प्रकार का चुभने वाला रुआँ रहता है । इसके पत्ते काफी चौड़े और आगे से कटे हुए रहते हैं । इसके फूल नर और नारी दो प्रकार के होते हैं । इसके फल के दोनों तरफ रुआँ रहता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते सिर दर्द के उपचार के काम में लिये जाते हैं । इसके पत्तों को पीसकर जोड़ों के सूजन में भी काम में लेते हैं । ज्वर की बीमारी में भी इसका काढ़ा काम में लिया जात है ।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह सिरदर्द और जोड़ों की सूजन में मुफीद है । इसका काढ़ा ज्वर में फायदेमन्द है ।

अलसी

नाम

संस्कृत—अतसी, पिच्छला, उमा, क्षुमा। हिन्दी—अलसी, तीसी, मसीना। बङ्गाली—मसीना, तिसी। मराठी—जवस, अलशी। गुजराती—अलशी। कर्नाटकी—असगे। तैलंगी—नल्लपगसिचेट्टु। फ़ारसी—तुख्मेकतान। अरबी—बजरुलकतान। अंग्रेजी—Lin Seed. लैटिन—Lini Semina linam Qusitai ssimum.

पहिचान—

अलसी की फसल सारे भारतवर्ष में बहुतायत से होती है। इसका तेल सर्वत्र उपयोग में आता है। प्रायः सभी लोग इससे परिचित हैं, इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं है। कलकत्ते आदि स्थानों में लाल, सफेद और धूसर रंग के भेद से अलसी तीन प्रकार की होती है, इसके अतिरिक्त Linum Catharticum नामक एक प्रकार की अलसी यूरोप में होती है जो विरेचन के काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से अलसी मदगन्धयुक्त, मधुर, बलकारक, किञ्चित् कफ वातकारक, पित्तनाशक, स्निग्ध, पचने में भारी, गरम, पौष्टिक, कामोद्दीपक, पीठ के दर्द और सूजन को मिटाने वाली है। इसके अतिरिक्त यह मूत्र की बीमारी और कुष्ठ को नष्ट करती है। नेत्र की ज्योति को हानि पहुँचाती है। किसी-किसी के मत से यह वीर्य को नष्ट करने वाली, दृष्टिनाशक और वात-रक्त-विनाशक है।

चरक के मतानुसार अलसी फोड़ा पकाने की एक प्रसिद्ध औषधि है। इसको जल में पीसकर उसमें थोड़ा-सा जौ का सत्तू मिलाकर, खट्टे दही के साथ फोड़े पर लेप करने से फोड़ा पक जाता है। वात-प्रधान फोड़े में अगर जलन और वेदना हो तो तिल और अलसी को भूनकर गाय के दूध में उबालें, ठण्डा होने पर उसी दूध में उन्हें पीसकर फोड़े पर लेप करने से लाभ होता है।

सुश्रुत के के अन्दर वात-प्रधान वात-रक्त में वेदना को दूर करने के लिये अलसी को दूध में पीसकर लेप करने का आदेश किया गया है। सुजाक के अन्दर भी सुश्रुत इसे लाभकारी बतलाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में गर्म और तीसरे दर्जे में रुक्ष है। किसी-किसीके मत से दूसरे दर्जे में शीतल और रुक्ष है। इसके बीज चिकने होते हैं। ये मूत्रनिस्सारक, कामोद्दीपक, दूध बढ़ाने वाले और ऋतुस्राव नियामक होते हैं। खाँसी और गुर्दे की तकलीफ में ये लाभदायक हैं। इसकी छाल और पत्ते सुजाक के लिये उत्तम है। इसकी छाल को जलाकर यदि घाव पर लगाया जाय तो यह रक्तस्राव को रोक कर घाव को पूर देती है। इसके फूल मस्तिष्क और हृदय को पुष्ट करने वाले हैं। इसके बीज पित्तनाशक, रक्तशोधक, घावों को भरने वाले तथा दाद के लिये लाभकारी हैं। इसके भूँजे हुए बीज संकोचक माने जाते हैं। इनका सेक वायु-गोले पर लाभकारी है।

इमरसन के मतानुसार इसके बीजों का उपयोग सुजाक की बीमारी में पिलाने के काम में लिया जाता है। मूत्राशय की अन्य तकलीफों में भी ये लाभदायक हैं। इसके तेल की पुल्टिस गठिया की सूजन पर लगाई जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार अलसी की पुल्टिस नासूर, फ़ोड़े, वायु-नलियों के प्रदाह इत्यादि व्याधियों पर लाभ पहुँचाती है। भीतरी उपचार में (पिलाने के काम में) यद्यपि इसका उपयोग कम लिया जाता है, फिर भी लीनीमेंट वगैरह बनाने में इसका उपयोग होता है। अलसी की चाय भी बनाई जाती है। करीब आधा सेर पानी में आधी छटाँक अलसी का बीज डालकर दस मिनट तक उबालकर इसे छान लेते हैं। यह रक्तातिसार और मूत्र सम्बन्धी शिकायतों को दूर करने के काम में ली जाती है।

सन्याल और घोष के मतानुसार सब प्रकार के प्रदाहकारी फोड़ों पर इसकी पुल्टिस बनाकर लगाना मुफीद है। अलसी की पुल्टिस गठियारोग की सूजन पर भी लगायी जाती है। इसके बीजों को पानी में गलाकर मसलने से एक प्रकार का लसदार स्निग्ध पदार्थ तैयार होता है। उसे आँखों की बीमारी (नेत्र-शुक्ररोग) में आँखों में डाला जाता है। अलसी के तेल में समान भाग चूने का पानी मिलाने से केरान (Carron) नामक मिश्रण तैयार होता है। यह आग से जले हुए या दाहकारक स्थान पर लगाने के लिए बहुत बढ़िया उपचार है।

अलसी की चाय, सूखी खाँसी पर जोकि गल-नाली की सूजन व फेफड़े के कुछ हिस्से की सूजन से पैदा होती है, लाभदायक है। आमाशय की जलन व सूजन पर तथा मूत्राशय और मूत्रनाली के प्रदाह या सुजाक इत्यादि रोगों पर भी यह लाभदायक है।

डायमॉक का कथन है कि सन् १७६७ में 'गॅलस्की' ने अलसी के तैल को मस्तकशूल पर बहुत मुफीद बतलाया था। उन्होंने इसे अँतड़ियों की पीड़ा पर भी बहुत लाभदायक बतलाया है। इसके तैल की खुराक आधे औंस से एक औंस तक है। यह प्रातःकाल और सायंकाल मृदुविरेचक के तौर पर बवासीर में दी जाती है।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके बीजों में ३० से लेकर ३५ सैकड़ा तक तैल रहता है। इसका रंग ललाई लिये हुए गहरा पीला रहता है। हवा में रखने से यह तैल सूखता है और स्वच्छ वारनिश के रंग का हो जाता है। इसका उपयोग वारनिश बनाने के काम में लिया जाता है। अलसी में दस से लेकर पंद्रह प्रतिशत तक खनिजतत्व रहते हैं। खास कर इसमें फासफ़ेट ऑफ़ पोटेशियम, मेगनेशियम, केलाशियम, और पच्चीस प्रति सैकड़ा प्रोटीन तत्व होते हैं। इसके छोटे झाड़ में एक प्रकार का साइनोजेनेटिक ग्लुकोसाइड व फ़ेसिओल्डनेटिन नामक पदार्थ रहते हैं।

उपयोग—

क्षयरोग—एक औंस अलसी के बीजों को पीसकर रातभर ठण्डे जल में भिगो रक्खें। प्रातःकाल इस जल को मल, छानकर कुछ गर्म कर इसमें नीम्बू का रस मिलाकर पीना चाहिये। क्षयरोगी के लिए यह अत्युत्तम पेय है।

फोड़े—सोलह भाग अलसी में एक भाग राई मिलाकर उसका पुल्टिस बाँधने से फोड़े जल्दी पक जाते हैं।

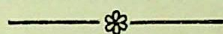
सुजाक—अलसी के बीजों के चूर्ण में मिश्री मिलाकर फंकी देने से तथा इसके तेल की पाँच बूंद मूत्रेन्द्रिय के छेद में डालने से सुजाक में लाभ होता है।

पीठ का दर्द—इसके तेल में सोंठ का चूर्ण डालकर गर्मकर मालिश करने से पीठ का शूल मिटता है।

खाँसी—इसके बीजों को सेक कर, चूर्ण कर, शहद के साथ चटाने से खाँसी मिटती है।

कान की सूजन—अलसी को प्याज के रस में पका कर उसे कान में टपकाने से कान की सूजन मिटती है।

गुदा का घाव—अलसी की राख को गुदा के घाव पर भुर-भुराने से घाव भर जाता है।



अलियार

नाम—

हिन्दी—अलियार, सोनलता, विलायती नहंडी। मध्यप्रान्त—बन्देरु, खराटा। सिलोन—विराली। कनाड़ी—बन्देरा। तैलगू—बन्देरु। पंजाबी—वनमेंढ़, । लैटिन—Dodonaea viscosa.

वर्णन—

यह एक प्रकार का झाड़ीदार पौधा है। इसकी ऊँचाई बहुत कम और पत्ते छोटे होते हैं। झाड़ के नीचे से ही डालियाँ फूट जाती हैं। इसके पत्ते चमकीले व नीचे की तरफ झुके हुए रहते हैं। फूल कुछ हरा रंग लिये रहते हैं तथा बीज काले होते हैं, यह सारे भारतवर्ष में तथा दूसरे गरम प्रदेशों में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत-आयुर्वेदिक निघंटों तथा यूनानी ग्रन्थों के अन्दर इस औषधि का कुछ उल्लेख नहीं पाया जाता। पाश्चात्य ढंग से खोज करने वाले लेखकों ने अपने ग्रन्थों में इसका वर्णन किया है।

इण्डियन मेडिकल प्लान्ट्स नामक ग्रन्थ के अन्दर इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है।

इसके पत्ते तूरे और कुछ कड़वे होते हैं। लिनडे के मतानुसार ये पत्ते स्नान व बफारा देने के काम में लिये जाते हैं।

यह विश्वास किया जाता है कि अगर इसके पीसे हुए पत्ते घाव पर लगाये जायँ तो ये वगैर किसी प्रकार का सफेद निशान करते हुए घाव को पूर देंगे, इसका चूर्ण उत्तापन,जीर्णदाह व अन्य दहन में भी काम में लिया जाता है।

इसका पत्ता गठिया में उपयोगी है। इसमें ज्वरघ्न गुण भी है।

पंजाब में सर्पदंश में यह काम में लिया जाता है। इसके पत्ते पीसकर काटे हुए हिस्से पर लगाये जाते हैं। इसके पत्तों का रस सर्पदंश में पिलाने के काम में भी लिये जाता है।

इब्जमूलर के मतानुसार आरेमोराह में कोरस नाम के स्थान पर इसके रस को सूजन वगैरह में धोने के काम में लेते हैं। मुलापारू में इसे पोल्टिस बाँधने के काम में लेते हैं।

दक्षिणी अफ्रीका में यह वृक्ष बहुत रोगों के काम में लिया जाता है। इसका खास उपयोग पेट की तकलीफों में होता है।

उपयोग—

मेडागास्कर में इसके पत्तों का उपयोग ज्वरघ्न औषधि के रूप में लिया जाता है व इसकी लकड़ी का काढ़ा स्नान करने के काम में व सेक के काम में लिया जाता है। ऐसी परिस्थिति में यह अपना संकोचक गुण बतलाता है।

लारियूनियन में इसके पत्तों का उपयोग किया जाता है। यह एक उत्तम प्रकार की पसीना लाने वाली औषधि मानी गई है। यह एक महौषधि है। यह सर्व-व्याधिनाशक समझी जाती है।

पेरू में इसके पत्ते चूसे जाते हैं व उत्तेजक माने जाते हैं।

महेस्कर व केस के मतानुसार इसके पत्ते सर्व-विषनिवारक नहीं माने गये हैं और न ये सर्पदंश के लाक्षणिक उपचार में उपयोगी माने गये हैं।

डा० चोपड़ा के मतानुसार यह ज्वरघ्न व पसीना लाने वाली औषधि है। यह गठियारोग में उपयोगी है।

अलिश

नाम—

पंजाबी—अखि, अलिश, चंच, कंच, शालिदग अंच । लैटिन—Rubus Fruticasus. (रूबस फ्रूटिकेसस)

वर्णन—

यह एक झाड़ीनुमा वृक्ष है, जिसका प्रकाण्ड कुछ सीधा रहता है । इसके काँटे सभी ओर फैले रहते हैं । इसके पत्ते तीन २ और पाँच २ के गुच्छों में रहते हैं । इनका आकार गोलाई लिये हुए रहता है । इन पत्तों पर नरम रुआँ रहता है । इनके नीचे का रंग भूरा रहता है । पत्तों के नीचे की धारियाँ साफ देखी जाती हैं । इसके फूल हलके गुलाबी रंग के होते हैं । इन फूलों का बाहरी आवरण मखमली होता है । इसका फल काला और मुलायम होता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

भारतीय चिकित्सा-शास्त्रों में इस औषधि का वर्णन नहीं देखा जाता ।

इंडियन मेडिकल प्लांट्स के रचयिताओं का मत है कि यूरोप के अन्दर इस औषधि के फल का शराब (Black Berry Wine) और इसके फल का मुरब्बा गले के रोगों में काम में लिया जाता है । इसके पत्तों का सत्व अतिसार के खून को व दूसरे रक्तस्राव को बन्द करता है । इसकी जड़ का काढ़ा कुक्कुर-खाँसी में बहुत लाभदायक है । ब्लेक बेरी का शराब आँतों के ढीलेपन के लिये एक विश्वस्त संकोचक औषधि है । यह हृदय को भी सिकोड़ता है ।



अल्लीपल्ली

नाम—

हिंदी—अल्लीपल्ली । पंजाब—अल्लीपल्ली । लेटिन—Asparagus Filicinus.

वर्णन—

इस वृक्ष का तना फिसलने वाला होता है । इसकी शाखाएँ बहुत फैली हुई रहती हैं । उपयोग में विशेष कर इसकी जड़ आती है । यह वस्तु हिमालय के समशीतोष्ण भागों में काश्मीर से भूटान तक तथा आसाम, बर्मा, और चीन में पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इस की जड़ बलवर्द्धक और संकोचक समझी जाती है । कनावार के लोगों का ऐसा विश्वास है कि इसकी डाली को शीतला के रोगी के हाथ में देने से वह जल्दी रोग मुक्त हो जाता है । इसकी जड़ कृमि-

नाशक, मूत्रनिस्सारक और हैजे की बीमारी में लाभदायक है। गठिया की बीमारी में भी यह औषधि फायदा पहुँचाती है। (इंडियन मेडिकल प्लांट्स)

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक और संकोचक है।

अलेथी

नाम—

पंजाब—अलेठी। सिंध—अलेठी,पुतलानी,चिपल। लैटिन—Zygophyllum Simplex. (झिगोफिलम सिम्प्लेक्स)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का बहुशाखी वृक्ष है। इसकी शाखाएँ बहुत नाजुक होती हैं। इसके पत्ते छोटे और दलदार होते हैं। इसके फूल छोटे और बीज बारीक, मुलायम, फिसलने और नुकीदार होते हैं। यह औषधि राजपूताने के रेगिस्तान, कच्छ, सिंध, अरब इत्यादि स्थानों पर मिलती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

अरबी लोग इसके पत्ते और बीजों को पानी के साथ पीसकर इसके शीत निर्यास को आँखों के रोगों पर लगाने के काम में लेते हैं। वे इसके बीजों को कृमिनाशक मानते हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके पत्ते आँखों की बीमारियों पर काम में लिये जाते हैं।

अवचिरेता

नाम—

हिन्दी—अवचिरेता, तीताखाना। बंगाली—कुचुरी, संभाल,ओरखफूल। तैलगू—कॆंटोकॆंटो। लैटिन—Exacumtetra Gonum.

पहिचान—

इसका वृक्ष सीधा होता है। शाखाएँ चारों ओर फूटती हैं। पत्ते आमने-सामने तथा नुकीदार होते हैं। इसके फूल नीले होते हैं। यह औषधि विशेष कर हिमालय प्रांत में, शिमला और भूटान में,पाँच हजार फीट की ऊँचाई तक होती है। यह उत्तरी गंगा की तलहटी में, बंगाल, छोटा नागपुर, मध्य-प्रान्त और खसिया पहाड़ी में भी होती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि स्वाद में कड़वी, पौष्टिक और अग्निवर्द्धक होती है।

—:०:—

अशोक

नाम—

संस्कृत—अशोकः, मधुपुष्पः, अपशोकः, मंजरी । **मारवाड़ी**—आसापाली । **गुजराती**—आसोपालव । **मराठी**—अशोक । **लैटिन**—Jonesia Asoca (जोनेसिया अशोका) Saraca Indica (सराका इंडिका) ।

वर्णन—

अशोक का वृक्ष आम के वृक्ष के बराबर होता है । इसकी कई जातियाँ होती हैं । एक जाति के पत्ते रामफल के समान और फूल नारंगी रंग के होते हैं जो वसंतऋतु में खिलते हैं । इसीको लैटिन में 'जोनेसिया अशोक' कहते हैं और यही असली अशोक है । दूसरी जाति के अशोक के पत्ते आम के पत्तों की तरह होते हैं और फूल कुछ पीली झाँईं लिये हुए सफेद रंग के होते हैं । इन पर चौमासे के प्रारंभ में फल आते हैं । कच्चे फलों का रंग हरा और पकने पर ललाई लिये हुए काला हो जाता है । यह अशोक असली नहीं होता, फिर भी लोग औषधि-कार्य में इसका उपयोग करते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघंटु-रत्नाकर के मतानुसार अशोक मधुर, शीतल, हड्डी को जोड़ने वाला, प्रिय, सुगन्धित कृमिनाशक, कसैला, गरम, कडुआ, देह की कान्ति को बढ़ाने वाला, स्त्रियों के शोक को दूर करने वाला, मलरोधक तथा पित्त, दाह, श्रम, गुल्म, उदररोग, शूल, विष, बवासीर, व्रण, तृषा, सूजन, अपच और रुधिररोग को दूर करने वाला है ।

शोढ़ल के मतानुसार अशोक की छाल रक्त-प्रदर रोग को नष्ट करने वाली है । चक्रदत्त भी इसको रक्त-प्रदरनाशक मानते हैं । लेकिन चरक, सुश्रुत, राज-निघंटु आदि ग्रन्थों के प्राचीन आचार्यों ने रक्त-प्रदर की चिकित्सा में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है । पर आजकल के वैद्यों ने रक्त-प्रदर के अंदर इस औषधि का उपयोग करके लाभ उठाया है ।

मेजर वसु और डाक्टर कीर्तिकर Indin Medical Plants नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि अशोक की छाल कटु-तिक्त, ज्वर व तृषानाशक, घाव को भरने वाली, अँतड़ियों को सिकोड़ने वाली, कृमिनाशक, अपच की बीमारी को दूर करने वाली, प्यास, जलन, रक्तविकार, थकावट, शूल, बवासीर इत्यादि रोगों में लाभदायक है । इसके अतिरिक्त पेट बढ़ने की बीमारी, अत्यधिक रजस्राव, गर्भाशय से खून बहना, अस्थिभंग व मूत्रकृच्छ्र की बीमारी में भी यह उपयोगी है ।

इसकी छाल का स्वरस बहुत तेज और संकोचक है । अत्यधिक रजस्राव के ऊपर इसे काम में लिया गया और यह पूर्णरूप से उपयोगी सिद्ध हुआ ।

सुश्रुत के मतानुसार इसकी छाल, फूल व फल साँप, बिच्छू के जहर में उपयोगी है, किन्तु महेस्कर और केस के मतानुसार इस औषधि में कोई भी विषनाशक गुण नहीं है।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपड़ा ने इसकी सूखी जड़ के चूर्ण का रासायनिक विश्लेषण किया, जिसका परिणाम इस प्रकार निकला—

Petrolium Ether Extract (पेट्रोलियम ईथर एक्स्ट्रेक्ट)—0.307 प्रतिशत।

Ether Extract (ईथर एक्स्ट्रेक्ट)—·235 प्रतिशत।

Absolute Alkoholic Extract (अॅबसोल्यूट ऐलकोहॉलिक एक्स्ट्रेक्ट) 14·2 प्रतिशत।

इसके अन्दर का एलकोहॉलिक एक्स्ट्रेक्ट गरम पानी के अन्दर घुलने वाला है। उसमें टेनिन की मात्रा काफी पाई गई है और एक इस प्रकार का प्राणीवर्ग से सम्बन्ध रखने वाला पदार्थ पाया गया जिसमें लोहे की मात्रा काफी थी। इसमें एलकेलाइड (Alkaloid) और इसेनशिअल ऑइल Essential Oil की मात्रा बिलकुल नहीं पाई गई।

बहुत से लोग इसकी छाल को गर्भाशय की बीमारी में और खास करके अत्यधिक ऋतुस्राव में अक्सीर मानते हैं पर कर्नल चोपड़ा के मतानुसार उपरोक्त बीमारियों में इसका कोई खास असर नहीं है।

डाक्टर वेट, डाक्टर डीमक, डाक्टर एन्सली वगैरह विदेशी विद्वानों ने इसपर अपना मत जाहिर करते हुए लिखा है कि अशोक की छाल बहुत सख्त ग्राही है। क्योंकि उसमें टेनिन एसिड रहता है। देशी वैद्यों की तरफ से यह औषधि गर्भाशय के रोग और खास कर के रक्त-प्रदर के लिये काफी मात्रा में व्यवहृत होती है।

उपयोग—

उपरोक्त अवतरणों से मालूम होता है कि देशी वैद्य अशोक की छाल को रक्त-प्रदर के लिये रामबाण औषधि मानते हैं, इसके क्वाथ को देने का साधारण तरीका इस प्रकार है।

रक्त-प्रदर—अशोक की छाल ८ तोला लेकर उसे ६४ तोला पानी में उबालना चाहिये, जब तीन चौथाई पानी जलजाय तब उसमें ८ तोला गाय का दूध डालकर फिर उबालना चाहिये। जब सब पानी जलकर दूध मात्र शेष रह जाय तब उतारकर मल, छानकर रोगी को पिलाना चाहिये, इससे रक्त-प्रदर में बहुत लाभ होता है।

बनावटें—

अशोकादि घृत—अशोक की अन्तर्छाल दो सेर लेकर, उसे जौकुट कर, उसे सोलह सेर पानी में उबालकर, जब चार सेर पानी बाकी रहे, तब उतारकर छान लेना चाहिए, उसके पश्चात् चाँवलों का धोवन चार सेर, बकरी का दूध चार सेर, गाय का घी चार सेर और जल भाँगरे का रस चार सेर, लेकर एक लोहे की कढ़ाई में इन सब चीजों को डाल देना चाहिये। पश्चात् विदारीकन्द आठ तोला,

शतावरी आठ तोला, असगन्ध आठ तोला, मुलेठी आठ तोला, फालसा आठ तोला, अंजीर आठ तोला, रसौत चार तोला, अशोक की अन्तर्छाल चार तोला, मुनक्का चार तोला, चौलाई की जड़ चार तोला, इन सब औषधियों को पानी के साथ पीसकर लुग्दी का गोला बनाकर उपरोक्त औषधियों के बीच में लोहे की कढ़ाई में रखना चाहिये। उसके पश्चात् कढ़ाई को चूल्हे पर चढ़ाकर धीमी आँच से पकाना चाहिये। जब अशोक का काढ़ा, दूध तथा और सब अंश जलकर केवल घी मात्र शेष रहे तब उतारकर छान लेना चाहिये। यह घृत तीन माशे से एक तोला तक की मात्रा में रोगी की प्रकृति के अनुसार गरम दूध के साथ देने से रक्त-प्रदर में तो आश्चर्य्यजनक लाभ होता ही है, पर इसके अलावा श्वेतप्रदर, हरा, पीला, काला, योनि-स्राव वगैरह सब रोग भी इससे आराम होते हैं। अनेक प्रकार की औषधियों से निराश व्यक्ति भी इससे लाभ उठाते देखे गये हैं।

अशोकारिष्ट—असली अशोक की छाल दो-सौ चालीस तोला लेकर, छत्तीस सेर पानी में औटाना चाहिए, जब १२ सेर पानी बाकी रहे तब उसे उतारकर, छानकर उसमें आठ सेर गुड़ मिला देना चाहिए। इसके बाद हरड़, बहेड़ा, आँवला, लोध, डाभ के फूल, विदारीकंद, नागकेशर, गुल-बनफशा, असगन्ध, गुलाब के फूल, अड़ूसा, कमल के फूल, जीरा, मजीठ, शतावरी, पीपर ये सब चीजें एक २ तोला और धावड़ी के फूल दस तोला, इन सबका चूर्ण कर उसमें मिला देना चाहिये। फिर इस औषधि को बरनियों में भरकर, इनमें १ सेर शराब मिलाकर एक सप्ताह तक पड़ी रहने देना चाहिये। फिर छानकर छः माशे से एक तोले तक की मात्रा में इसका उपयोग करना चाहिये। यह औषधि सब प्रकार के प्रदररोग, सोमरोग, दुष्टार्त्तव, गर्भपात इत्यादि रोगों में अत्यन्त चमत्कारिक असर दिखलाती है।

———

असगंध

नाम—

संस्कृत—अश्वगंधा, तुरगी, पिवरी, पुष्टिदा। **हिन्दी**—असगंध। **गुजराती**—आसंध। **कर्नाटकी**—हिरिमद्दू। **लैटिन**—Withania Somnifera (वाईथेनिया सोमनिफेरा)

वर्णन—

असगंध के झाड़ वर्षाऋतु के अन्दर पैदा होते हैं। कई स्थानों पर यह बारहों मास पाये जाते हैं। इसके पौधे दो से तीन फीट तक ऊँचे होते हैं। और इसके रींगणी की तरह कई शाखाएँ निकलती

हैं। इसके चनोटी के समान लाल रंग के फल लगते हैं जो बरसात के अन्त में या जाड़े के प्रारम्भ में दिखाई देते हैं। इसकी जड़ एक फुट लम्बी, मजबूत, चेपदार और कड़वी होती है।

बाजार के अन्दर गंधियों के यहाँ जो असगंध बेचा जाता है, वह इस वनस्पति की जड़ नहीं है। बल्कि यह Conuolvulus Asgandha. (कानयोलव्हलस असगंध) नाम की नसोतर वर्ग की लता की जड़ें हैं। इसलिये उसके गुण और इस वनस्पति के गुण में बहुत अन्तर है। बाजारू असगंध की जड़ें जहरी नहीं होती, मगर इस असगंध की जड़ें जहरी होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

राज-निघंटु के मतानुसार असगंध चरपरी, गरम, कड़वी, मदगंधियुक्त, बलकारक, वातनाशक, तथा खाँसी, श्वास, क्षत्र और व्रण को नष्ट करने वाली है।

भाव-प्रकाश के मतानुसार असगंध वात, कफ, सूजन, श्वेत कुष्ट और कफ-रोगनाशक तथा बलकारक, रसायन, कड़वी, कसैली, गरम और अत्यन्त वीर्यवर्द्धक है।

शोढ़ल के मतानुसार असगंध के पत्तों का लेप गाँठ, गलगाँठ तथा अपचि नामक ग्रन्थि को दूर करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी गठान कुछ कड़वी, पुष्ट करने वाली श्वास में लाभदायक तथा नलियों के प्रदाह को मिटाने वाली है। यह ऋतुस्राव को नियमन करने वाली, गर्भाधान में सहायता पहुँचाने वाली तथा कटिवात और संधि-प्रदाह में लाभकारी है।

इसकी जड़ पौष्टिक, धातु-परिवर्तक और कामोद्दीपक है। क्षयरोग, बुढ़ापे की दुर्बलता तथा गठिया में भी यह लाभजनक है। इसमें निद्रा लाने वाले और मूत्र बढ़ाने वाले पदार्थ भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

आज से करीब पैंतीस वर्ष पूर्व सन् १९०३ में इस औषधि के सम्बन्ध में एक नवीन खोज हुई, जो पोरबन्दर स्टेट के फारेस्ट डिपार्टमेन्ट के भूतकालीन क्यूरेटर जैकृष्ण इन्द्रजी के द्वारा उसी स्टेट के सन् १९०३ की फरवरी मास के १६ वीं तारीख के गजट में प्रकाशित हुई थी। उसका आशय इस प्रकार है—

"करीब सात वर्ष के पहले एक जैन साधु ने एक जड़ी का करीब दो इञ्च लम्बा और डेढ़ इञ्च मोटा एक टुकड़ा पोरबन्दर की पींजरापोल के तत्कालीन मैनेजर सेठ जयचन्द सावडिया को दिया था और उन साधु ने यह कहा था कि चाहे जैसी गठान के ऊपर उसको चुपड़ने से वह गाँठ फूट-कर आराम हो जाती है। इन साधु के गये के कुछ ही महीनों के पश्चात् संवत् १९५४ में पोर बन्दर के अन्दर प्लेग की भयङ्कर बीमारी चली, उस समय प्लेग की गाँठ के ऊपर इस जड़ी का उपयोग किया, जिससे चार-पाँच आदमियों की गाँठे फूट कर उन्हें आराम हो गया। उसके पश्चात्

उस जड़ी का केवल आधा इन्च टुकड़ा बाकी रह गया तब उन्होंने उस टुकड़े को वहाँ के चीफ मेडिकल आफिसर डाक्टर हरि श्रीकृष्ण देव को यह टुकड़ा दिखलाया और इसके गुण के सम्बन्ध में बात की, तब उक्त डाक्टर साहब ने सेठ जयचन्द को मेरे पास इस जड़ी की परीक्षा करने के लिये भेजा। इस जड़ी को सूँघते ही मुझे असगन्ध का सन्देह हुआ और मैंने तत्काल संस्थान के बाग़ में से असगन्ध की जड़ निकलवा मँगाई। इस जड़ के टुकड़े के साथ उसका मिलान करने से उसकी गन्ध, स्वाद, सूरत वगैरह सब बातें मिल गईं, तब उस जड़ का एक बड़ा टुकड़ा इसी प्रकार उपयोग करने के लिये जयचन्द सेठ को दिया गया तथा डाक्टर देव और कम्पौन्डर मि० नरोत्तम तथा डा० मणिशंकर ने भी इसको प्लेग की गाँठ के ऊपर अजमाया, जिससे उनको प्लेग के ऊपर यह औषधि बहुत असरकारक मालूम हुई। उन्होंने पन्द्रह खारवा,चार भुई, दो सिन्धि, चार ब्राह्मण तथा दस लुहाणा वैश्यों को प्लेग की बीमारी सेआराम किया। इसी प्रकार सम्वत् १९५६ में तथा १९५८ में दूसरी और तीसरी बार जब प्लेग चला तब भी इस असगन्ध की जड़ से कई लोगों की जानें बचीं।"

सन् १९०२ के दिसम्बर महीने में अहमदाबाद में वैद्यक प्रदर्शनी हुई और उस प्रदर्शनी में भी इन जड़ों को रखा गया। वहाँ से बड़ोदा के कला-भवन के रसायनशास्त्री मि० मोतीलाल छोटेलाल त्रिवेदी भी इस जड़ को ले गये और उन्होंने प्लेग के रोगियों पर इस जड़ का अनुभव किया। उसके परिणाम में उन्होंने लिखा कि इस जड़ को पानी में घिसकर लेप करने से प्लेग के दस रोगी मैंने आराम किये हैं।

उसके बाद बम्बई समाचार वगैरह कितने ही पत्रों में इस औषधि का विज्ञापन छपाया गया तथा उसके परिणाम-स्वरूप काठियावाड़, कच्छ, सिन्ध, गुजरात, मारवाड़ और दक्षिण तथा उत्तर हिन्दुस्तान में कई स्थानों पर इस संस्थान की तरफ से धर्मार्थ यह औषधि भेजी गई और सब स्थानों पर इसका परिणाम बहुत ही सन्तोष-जनक हुआ।

उपयोग करने की रीति—

इसकी ताजी जड़ को पानी में घिसकर चन्दन की तरह गाँठ के ऊपर लेप करना चाहिये, आस-पास जहाँ तक सूजन या जगह लाल हो रही हो वहाँ तक उसको लगा देना चाहिये, सूखने के पश्चात् यह लेप खिंचाता है जिसकी वजह से आस-पास की तमाम सूजन एक मध्य बिंदु में इकट्ठी हो जाती है। ज्यों-ज्यों गाँठ ऊपर आती है त्यों-त्यों रोगी बेहोशी से निकलकर होश में आता चला जाता है। अन्त में गाँठ पककर फूट जाती है। गाँठ के फूट जाने के पश्चात् उसके आस-पास इस की जड़ का लेप करने से और गाँठ के मुँह पर गेहूँ के आटे की पुल्टिस बाँधने से सारा पीप खिंचकर निकल जाता है और अन्त में सादे मलहम की पट्टी चढ़ाने से गाँठ भर जाती है, जिस समय इस दवा का लेप चालू हो, उस समय पीने के लिये नीचे लिखा मिक्श्चर दिया जाय तो विशेष लाभ होता है।

एमोनिया एरोमेटिक ६० बूंद, एड्रीन-लिन-क्लोराइड लिक्वीड २० बूंद, स्प्रिट इथर ३० बूंद, पेका पिपर मेंट १६० बूंद, टि- डिजिटेलिस ३० बूंद, फास्फोरिक एसिड १ बूंद, स्प्रिट केम्फर १२० बूंद,

इन सारी औषधियों को मिलाकर एक शीशी में भरकरके मजबूत काक लगाकर रख देना चाहिये। इसमें से ३० बूंद की खुराक दिन में तीन बार १ औंस पानी में मिलाकर लेना चाहिये। एड्रिन-लिन-क्लोराइड का लिक्विड १००० बूंद पानी में १ बूंद एड्रिन-लिन-क्लोराइड डालने से तैयार होता है।

इसके अतिरिक्त असगंध के अन्दर और भी कई-एक गुण हैं,वातनाशक तथा शुक्र-वृद्धिकर औषधियों में यह औषधि अपना प्रधान स्थान रखती है। शुक्र-वृद्धिकारक होने के कारण इसको शुक्ला भी कहते हैं, चरक सुश्रुत वाग्भट्ट चक्रदत्त इत्यादि प्राचीन आयुर्वेद-ग्रन्थकारों ने वात-व्याधिनाशक औषधियों में इसको प्रधान स्थान दिया है।

रासायनिक विश्लेषण—

रासायनिक विश्लेषण करने से इसके अन्दर सोमनिफेरिन (Somniferin) और एक क्षार तत्व पाया जाता है तथा राल, मज्जा और रंजकपदार्थ भी पाये जाते हैं।

प्रयोग— ❀

बल-वर्द्धन—सफेद मूसली, विधारा इत्यादि धातुवर्द्धक औषधियों के साथ इसकी फंकी लेकर ऊपर से दूध पीने से बल बढ़ता है।

गठिया—इसके पंचाग का २॥ से ५ तोले तक रस पीने से गठिया में लाभ पहुँचता है।

क्षयरोग—अड़ूसे के क्काथ के साथ इसके चूर्ण की फंकी लेने से क्षयरोग में लाभ पहुँचता है।

वन्ध्यत्व—इसके चूर्ण की तीन माशे से छः माशे तक की फंकी रजोधर्म के प्रारंभ में देने से स्त्री को गर्भ रहता है।

इस टाइम में दूध और चाँवल का भोजन कराना चाहिये। * इसके क्काथ से शुद्ध किया हुआ घी पिलाने से भी मासिकधर्म से शुद्ध हुई स्त्री गर्भ-धारण करती है।

कटिशूल (कमर का दर्द)—असगंध के चूर्ण को शक्कर और घी में मिलाकर चटाने से कटि-शूल मिटता है।

नारू—असगंध को छाछ या तेल में पीसकर लेप करने से नारू में लाभ पहुँचता है।

वातरक्त—असगंध और चोपचीनी के रस का काढ़ा पिलाने से वात-रक्त में लाभ पहुँचता है।

❀ ये प्रयोग सम्भवतः बाजारू असगन्ध के हैं।

* क्काथेन हयगन्धायाः, साधितं सघृतं पयः।
ऋतुस्नाताऽबला पीत्वा, धत्ते गर्भं न संशयः॥
(योनिव्याधि-चिकित्सा)

बनावटें—

अश्वगंधादि चूर्ण—असगन्ध और विधारा समान भाग लेकर दोनों को बराबर मिलाकर बोतल में भरकर रख देना चाहिये। इसमें से १ तोला चूर्ण सवेरे १ तोला शाम को दूध के साथ धैर्यपूर्वक लेने से बहुत पुरुषार्थ बढ़ता है। वात-व्याधि नष्ट होकर बुढ़ापा मिटता है, सफेद बाल काले हो जाते हैं, इत्यादि अनेक गुण इस चूर्ण में है।

अश्वगन्धादि घृत—असगन्ध की जड़ ४०० तोला लेकर १०२४ तोला जल में इसका काढ़ा बनाना चाहिये। जब चौथाई जल शेष रह जावे, तब वस्त्र से छानकर उसमें गाय का घी ६४ तोला, गाय का दूध २५६ तोला तथा कांकोली, क्षीरकांकोली, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, कौंचबीज, अड़ूसा, मुलेठी, मुनक्का, धमासा, पीपल, जायपत्री, खिरेटी, बिदारीकंद, शतावरी—इन औषधियों को दो-दो तोला लेकर पानी के साथ पीसकर लुग्दी बना दूध और घी के बीच में रखकर हलकी आँच से पकावें, जब दूध और काढ़ा जलकर केवल घी मात्र शेष रह जावे, तब उतारकर छान लें।

इस घी के सेवन से क्षय, दुर्बलता, बालों का सफेद होना, हृदयरोग, उरक्षत, नपुंसकता, खाँसी, श्वास, वात व्याधि, स्त्रियों का बन्ध्यापन आदि अनेक व्याधियाँ दूर होती हैं।

असगन्ध पाक—नागोरी असगन्ध १ सेर, सटुआसोंठ १ सेर, छोटी पीपल पावभर, कालीमिर्च आधा पाव, इन सबको पीसकर कपड़-छन कर लेना चाहिये, फिर सोलह सेर दूध को औटाकर, जब वह आधा रह जाय तब उसमें ऊपर का चूर्ण डालकर उसका खोवा कर लेना चाहिये। जब खोवा हो जावे तब कढ़ाई में दो सेर घी डालकर खोवे को भून लेना चाहिये, जब खोवा लाल होजावे तब उसे उतार कर उसमें तज, तेजपात, नागकेशर, इलायची, लौंग, पीपलामूल, जायफल, नेत्रवाला, सफेद चन्दन का बुरादा, नागरमोथा, सूखे आँवले, वंशलोचन, खैरसार, चित्रक की छाल और शतावर सबको एक २ तोले लेकर पीस, कूटकर छान लेना चाहिये। उसके पश्चात् चार सेर मिश्री की चासनी बनाकर उसमें ऊपर का भुना हुआ खोवा और चूर्ण अच्छी तरह मिलाकर आधी २ छटाँक के लड्डू बाँध लेना चाहिये।

जिन लोगों की प्रकृति सर्द और बादी की है, उन लोगों को जाड़े के दिनों में १ लड्डू खाकर ऊपर से दूध पी लेना चाहिये। यह पाक वातव्याधि, बुढ़ापा, कमर और जोड़ों का दर्द तथा श्वास और खाँसी को दूर करता है। ख्याल रखना चाहिये कि यह पाक बहुत गर्म है। इसलिये यह पाक गर्म मिजाज वाले आदमियों को नहीं खाना चाहिये। वृद्ध आदमियों के लिये यह पाक वास्तव में अमृत है।

धातु-वर्द्धक सुधा—असगंध आधापाव, शतावर पावभर, सफेद मुसली डेढ़पाव, तालमखाना आधासेर, मखाने अढ़ाई पाव, सेमर का मूसला तीन पाव, चीनी एक सेर, सब दवाइयों को कूट, पीस, छानकर चीनी मिला देना चाहिये और हाँडी में रखकर उस का मुँह बाँधकर रख देना चाहिये। सवेरे-शाम आधा सेर गेहूँ के आटे की रोटी बनाकर उसे चूर कर, उसमें आधा पाव चीनी और हाँडी

की तीन तोले दवा मिलाकर जौ की भूसी के साथ गाय को खिला देना चाहिए । यह खुराक चालीस दिन तक गाय को खिलाओ और खिलाने के १० दिन बाद गाय का धारोष्ण दूध मिश्री मिलाकर सवेरे-शाम पीओ। अगर ऐसा दूध चालीस दिन पी लिया जाय तो अत्यंत बलवृद्धि होगी।

चिकित्सा-चन्द्रोदय के लेखक बाबू हरिदासजी का कथन है कि हमने कलकत्ते के एक धनी मारवाड़ी को यह दूध सेवन कराया, परिणाम यह हुआ कि उसकी हड्डियाँ हृष्ट-पुष्ट होगई । महाकुरूप चेहरा गुलाब का फूल बन गया। मतलब यह है कि इसके सेवन से क्षय,क्षीणता,प्रमेह, दिल-दिमाग की कमजोरी और सिर के रोग में बहुत लाभ होता है, जिनको वीर्य की कमी से नामर्दी और क्षय हो उनके लिये तो यह अमृत ही है।

असन

नाम—

संस्कृत—असन्, बीजक, पीतशाल, महाकुटज, बन्धुकपुष्प, प्रियक । **हिन्दी**—आसन, विजयसार, विजयसार का गोंद । **बंगाली**—पियाशाल । **मराठी**—असाणा, बिबला । **गुजराती**—बीयाँ, हीरादखंन । **कर्नाटकी**—केपिन्नहोने । **तेलंगी**—पेदगी, मद्दी । **तामील**—कुरिंजी । **बम्बई**—असन । **पंजाबी**—विजयसार । **फारसी**—कमरकस । **उर्दू**—एमुलक्वेन । **अंग्रेजी**—Indian Kinotree. **लेटिन**—Pterocarpus Mrrsupium. (टेराकारपस मारसुपीएम) ।

वर्णन—

यह एक बड़े किस्म का सालवृक्ष की तरह वृक्ष होता है । इसकी छाल मोटी और भूरे रंग की, कुछ पीलापन लिये हुए होती है। इसके पत्ते पीपल के पत्तों से कुछ २ छोटे होते हैं जोकि पाँच २ सात २ के गुच्छों में लगते हैं। इन पत्तों के दोनों ओर बारीक रुएँ होते हैं। इसके डेढ़-दो इञ्च लम्बी नोकदार फलियाँ लगती हैं। इसके फल पीले आँवले के समान होते हैं । इसकी लकड़ी कालापन लिये हुए होती हैं। इसके एक प्रकार का लाल गोंद लगता है । यही गोंद विशेष करके औषधि के काम में आता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से यह वृक्ष और इसका गोंद गरम, कडुआ और तीखे स्वाद वाला होता है। यह विरेचक, कृमिनाशक, गलरोग-निवारक, रक्त-मण्डल-नाशक तथा कोढ़,विसर्प,चित्र-कुष्ट, प्रमेह, गुदा के रोग और रक्त-पित्त को नष्ट करने वाला है। यह त्वचा और केशों को लाभ पहुँचाने वाला और रसायन है। इसके फूल पचने में मधुर, कड़वे, पाचक और वातवर्द्धक हैं।

रक्त-विकार, शरीर के फोड़े, मूत्ररोग, और श्लीपद रोग में भी यह औषधि मुफीद है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका गोंद कडुआ और बदजायके होता है। यह रक्तस्राव को रोकने वाला, जख्म को पूरने वाला, यकृत के लिये पौष्टिक, कृमिनाशक और ज्वर में लाभ पहुँचाने वाला है, चक्षुरोग, फोड़े, मूत्रविकार, पुरातन प्रमेह और आँतों के दर्द में भी यह औषधि मुफीद है।

गोआ में इस वृक्ष का छिलटा संकोचक औषधि के काम में लिया जाता है। कारोमण्डल के किनारे के ऊपर, दाँत के रोगों में इसका उपयोग किया जाता है।

रक्तातिसार, अतिसार, दिल की घबराहट और मुँह से पानी छूटने के रोगों में यह एक उत्तम संकोचक औषधि है।

मटेरिया मेडिका ऑफ इन्डिया के लेखक डाक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार असन की छाल, अतिसार, ग्रहणी और श्वेत-प्रदर में उपयोगी है।

डा० ई० रास के मतानुसार मुखपाक के अन्दर इसके चूर्ण को तेल में मिलाकर उपयोग करना चाहिये।

बङ्गसेन के मतानुसार खैर की लकड़ी और असनसार का काढ़ा, शुद्ध गूगल और त्रिफला के चूर्ण के साथ सेवन कराने से उपदंश में लाभ होता है।

रमफीयस के मतानुसार इसके पिसे हुए पत्ते फोड़ों पर, अर्बुद पर व अन्य चर्मरोगों पर काम में लिये जाते हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह एक उत्तम संकोचक औषधि है।

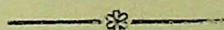
उपयोग—

रक्त-प्रदर—इसका गोंद रुधिर सम्बन्धी रोगों को जैसे रक्त-प्रदर, रक्तातिसार इत्यादि मिटाने के लिये बहुत उपयोगी है।

दंतपीड़ा—इसके पत्तों के काढ़े से कुल्ले करने से मुखपाक और दंतपीड़ा मिटती है।

चोट—इसकी लकड़ी को पानी में घिसकर लेप करने से चोट की पीड़ा मिटती है।

कुष्ट—इसकी लकड़ी को जौकुट कर पानी में भिगोकर, मल, छानकर पिलाने से कुष्ट और रक्त-विकार में लाभ होता है।



अस्पर्क

नाम—

हिन्दी—अस्पर्क। उर्दू—अस्पर्क। बंगाली—बऊपिरिंग। **परशियन**—अक्लिलउलमलक। **लैटिन**—Melilotus Officinalis. (मेलीलोटस आफिसिनेलीस)

वर्णन—

यह वनस्पति तुब्रा से लदक तक १० हजार से १३ हजार फीट की ऊँचाई तक पूर्वीय प्रदेश में और योरप में पैदा होती है। यह एक प्रकार की सीधे प्रकाण्ड वाली वनस्पति है। इसके पत्ते गोल रहते हैं। इसका फूल मध्यम आकार का रहता है, रंग पीला होता है। यह कुछ सफेदी लिये हुए रहता है। इसके फूल की कटौरी छोटी होती है। इसके पापड़े गोलाकार, चपटे और रुएँदार होते हैं। इसके बीज फिसलने होते हैं।

गुणदोष और प्रभाव—

इसका छोटा फल शान्तिदायक, पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करने वाला व कामोद्दीपक होता है। यह धवलरोग में उपयोगी है। इस वनस्पति में रक्तस्राव रोधकगुण है। यह रगड़न के काम में ली जाती है। यह वनस्पति सुगन्धित, स्निग्धकारक और पेट के आफरे को दूर करने वाली है। यह मनुष्य को बद्धकोष्टता से मुक्त करती है। अंगों के दर्द पर सेक करने में और पुल्टिस बाँधने में इसका बाह्यउपयोग किया जाता है। इसका काढ़ा स्निग्धकारक है। इसे लोशन और एनिमा के रूप में काम में लेते हैं।

डाक्टर चोपड़ा के मतानुसार यह संकोचक है। यह सूजन की व आँतों की शिकायतों की उत्तम औषधि है। यह पेट के आफरे को दूर करने वाली है। इसमें ग्लुकोसाइड नाम का एक पदार्थ रहता है।

असाबइलफतियात

नाम—

अरेबिक—असाब इलफतियात। **लैटिन**—Calamintha Clinopodium. (केलेमिंथा क्लिनोपोडियम)

वर्णन—

यह औषधि हिमालय पर्वत में काश्मीर से कुमाऊँ तक ४००० फीट की ऊँचाई से १२००० फीट की ऊँचाई तक और यूरोप, उत्तरी आफ्रीका और कनाडा में पैदा होती है। इसका प्रकाण्ड सीधा, पत्ते गोलाकार और फूल बड़े गुच्छेदार होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि संकोचक, पेट के आफरे को दूर करने वाली और हृदय को बल देने वाली है।

असालू

नाम—

संस्कृत—चन्द्रशूरं, वासपुष्पा, रक्तराजी, कालमेषा। **हिन्दी**—हालों। **मारवाड़ी**—असालू। **गुजराती**—अंसालियों। **बंगाली**—हालिम। **पंजाबी**—हालूं। **मराठी**—अहालील। **तैलगू**—आदित्यालू। **उर्दू**—हालिम। **अरबी**—हरफुलबज, हर्फजरजीर। **फ़ारसी**—तराहतेजक। **लैटिन**—Lepidum Sativum,

विवरण—

असालू प्रायः सारे भारतवर्ष में बोई जाती है। इसका पौधा सरसों के पौधे की तरह होता है। इसके पत्ते कटे हुए से रहते हैं। इसके फूल नीले रंग के होते हैं। इसमें फलियाँ आती हैं, उन फलियों पर कुछ रुआँ-सा रहता है। इसके बीजों में बहुत चेप होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मतानुसार यह औषधि गरम, कड़वी, पौष्टिक, दूध बढ़ाने वाली, बाजीकरण और कामोद्दीपक है। यह वात, कफ, अतिसार और त्वचा के रोगों को नष्ट करने वाली है। दुग्ध-युक्त असालू, अभिघातरोग, चर्मरोग, वातरोग, नेत्ररोग और रुधिर-विकार को दूर करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसके बीज और पत्ते गरम, शुष्क, मूत्रनिस्सारक, विरेचक, और कामोद्दीपक हैं। यकृत के रोग, वायु-नलियों के प्रदाह, छाती के दर्द, गठिया और आमाशय की तकलीफों में ये लाभजनक हैं। ये मस्तिष्क-शक्ति को बढ़ाने वाले और बुद्धिवर्द्धक हैं।

होनिक बर्गर के मतानुसार यह पौधा पंजाब के अन्दर श्वास की बीमारियों में काम में लिया जाता है। इसकी जड़ उपदंश की बीमारी में भी लाभदायक मानी जाती है। खूनी बवासीर और अँतड़ियों में होने वाले आक्षेप-युक्त मरोड़ों में भी यह उपयोगी है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक और धातु-परिवर्त्तक है। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तैल रहता है।

बेलू के मतानुसार इसके बीज पंजाब में स्तनों में दूध बढ़ाने वाले माने जाते हैं। इनको दूध के साथ मिलाकर पिलाया जाता है। इस विधि से पिलाने से ये गर्भस्रावक औषधि का काम करते हैं। इसलिए गर्भवती स्त्रियों को इन्हें नहीं पिलाना चाहिये।

उपयोग—

रुधिर-विकार—हिचकी, अतिसार और रुधिर-विकार के रोग में यह औषधि बहुत उपकारी है। इसके सेवन से तिल्ली आदि बढ़े हुए यंत्र अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाते हैं।

आमाशय की पीड़ा—इसका काढ़ा पिलाने से आमाशय की पीड़ा मिटती है और वह कुछ उत्तेजित हो जाता है।

सूजन—इसके बीजों को कूटकर नीम्बू के रस में मिलाकर लेप करने से सूजन बिखर जाती है।

श्वास और खांसी—इसकी डालियों को औटाकर पिलाने से श्वास और सूखी खाँसी मिटती है।

खूनी बवासीर—इसका शर्बत बनाकर पिलाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

उपदंश—इसका काढ़ा बनाकर पिलाने से सारे शरीर में फैला हुआ उपदंश का विष शान्त होता है।

अतिसार—इसकी जड़ के चूर्ण की फंकी देने से बार २ दस्त की शङ्का होना तथा अतिसार मिटता है।

खुजली और दाह—दाह और खुजली पैदा करने वाले पदार्थों के विष को उतारने के लिए इसके बीजों का चेप निकाल कर पिलाना चाहिये।

काढ़ा बनाने की रीति—इसका काढ़ा बनाने के लिए इसके दो तोले अधकचरे बीज और पौने-चार माशे कुटी हुई मुलेठी लेकर तीन पाव पानी में डालकर बन्द बर्तन में दस मिनट तक औटाना चाहिए, फिर उसे मसल, छानकर उपयोग में लेना चाहिए।

अस्थिसंहार

नाम—

संस्कृत—अस्थिसंहार, क्रोष्टुघंटिका, वज्रकंद, वज्रवल्ली। **हिन्दी**—हाड़जोड़, हरजोरा। **गुजराती**-बेदारी। **मराठी**—कंदबेल। **बंगाली**—हारभंग। **बम्बई**—हाड़जोड़। **तैलगू**—वज्रवल्ली। **उर्दू**-हारजोर **लैटिन**—Vitis Quadrangularis. (व्हाइटिस क्वाड्रानग्यूलेरिस)।

वर्णन—

इसकी बेल थूअर की जाति की होती है। इसकी शाखाएँ और डालियाँ चोकौर होती हैं। फूल गुलाबी, पियाजी और सफेद होते हैं। इस बेल में चार-छः अंगुल पर गाँठें होती हैं। इसके छोटे मटर के बराबर लाल रंग के फल लगते हैं। उसमें एक बीज होता है। इसकी डालिएँ पुरानी होने से खट्टी पड़ जाती हैं। यह औषधि प्रायः सारे भारतवर्ष, मलाया द्वीप समूह, सीलोन और पूर्वी अफ्रीका में पाई जाती है।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह औषधि वात कफनाशक, टूटी हुई हड्डी को जोड़ने वाली, गरम, कृमिनाशक, पाचक, अग्निवर्द्धक, पौष्टिक, नेत्ररोग-नाशक, स्वादिष्ट, कामोद्दीपक और पित्तकारक है। यह बवासीर, मृगी, अर्बुद, क्षुधा नष्ट होने की बीमारी, तिल्ली, हड्डी का टूटना और जलोदर में लाभ पहुँचाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका डंठल कड़वा होता है। इसको टूटी हुई हड्डी पर लगाने से लाभ होता है। पीठ के दर्द की शिकायत और मेरुदण्ड की पीड़ा में भी यह मुफीद है।

इसके पत्ते व छोटे वृक्ष धातु-परिवर्तक हैं। इनको सुखाकर, चूर्ण कर, अपच के द्वारा हुई आँतों की शिकायत में देने से लाभ होता है।

इसकी डाल का रस अनियमित मासिक स्राव और बालकों के उत्कुश रोग (Scurvy) में दिया जाता है। नाक से खून बहने और कर्णस्राव की बीमारियों में भी यह रस लाभ पहुँचाता है।

इस बेल के तने (प्रकाण्ड) को पीसकर दमे की बीमारी पर भी देते हैं।

डा० मुहिउद्दीन शरीफ का कथन है कि इस औषधि के काण्ड की लकड़ी के मुरब्बे को दो से चार ड्राम तक की मात्रा में चौबीस घण्टे में दो या तीन बार देने से,ट्रिपलिकेन में एक आदमी जोकि चिरकाल से हठीले अजीर्ण से पीड़ित था,चालीस दिन तक सेवन करने से बिल्कुल रोग मुक्त हो गया। इस मुरब्बे की बनाने की तरकीब इस प्रकार है। इसकी बेल के नवीन और कोमल प्रकाण्ड के छोटे २ टुकड़े करके उनको आँवले की तरह कोंचनी से छेद डालें। फिर उनको पानी में डालकर मुलायम होने तक उबालें। उसके पश्चात् उनको कारवोनेट ऑफ सोडा मिश्रित पानी में फिर उबालें। जब वे बिल्कुल मुलायम और चरपराहट से बिल्कुल शून्य हो जायँ, तब उनको स्वच्छ, गरम जल से धोकर शक्कर की चासनी में डाल दें। एक सप्ताह के पश्चात् इसको उपयोग में लें। (मटेरिया मेडिका—डाक्टर मोहि उद्दीन शरीफ)।

मटेरिया मेडिका आफ इण्डिया के लेखक डाक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार यह औषधि रसायन और उत्तेजक है। अजीर्ण, मन्दाग्नि और स्कर्व्हीं रोग में यह लाभदायक है। हड्डी टूटने पर इसकी गीली डालों को पीसकर उसका लेप करते हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह धातु-परिवर्तक और अग्नि-प्रवर्द्धक है। यह अनियमित रजस्राव में दिया जाता है। इसकी जड़ अस्थिभंग के काम में ली जाती है। मद्रास के अन्दर इस वनस्पति की छोटी डालियाँ और छोटे पौधे एक बर्तन में बंद करके जला लिये जाते हैं।। इनकी राख को अपच और अग्निमांद्य की बीमारी में देते हैं। इसकी लकड़ी का रस कर्णस्राव और नक्सीर में मुफीद माना गया है।

उपयोग—

वात व्याधि—भाव-प्रकाश का कथन है कि हड़संहारी की लकड़ी का एक टुकड़ा लेकर उसकी छाल को छीलकर उसका चूर्ण कर लें और उस चूर्ण में भींगी हुई उड़द की छिलके रहित दाल चूर्ण से आधी मिलावें। फिर दोनों को सिलपर महीन पीसकर तिल के तेल में पकोड़ी बनालें। यह पकोड़ी भयंकर वात का नाश करती है।

अतिसार—इसके पत्ते और कोपलों के चूर्ण की फंकी देने से अतिसार में लाभ होता है।

कर्णपीड़ा—कर्णपीड़ा में इसकी शाखा का रस कान में डालने से आराम होता है।

मसूड़ों की सूजन—मसूड़ों की सूजन और बिना समय मासिकधर्म होने के रोग में भी यह वनस्पति बहुत फायदेमंद साबित हुई है। इसके पंचांग को गर्म कर उसके दो तोले रस में, दो तोला घी, एक तोला गोपीचन्दन और एक तोला शक्कर मिलाकर रोगी को चटा देना चाहिये।

पेट की पीड़ा—पेट की पीड़ा में इस वनस्पति की शाखा को चूने के पानी में उबाल कर पिलाने से पेट की पीड़ा मिटती है।

बलवर्द्धक--इसकी फंकी लेने से बल बढ़ता है।

मन्दाग्नि—मंदाग्नि में इसके चूर्ण को सोंठ के साथ देने से फायदा होता है।

उदर रोग—इसकी नरम कोपलों को थोड़ी-सी सेक कर चटनी बनाना चाहिये। फिर उस चटनी को खिलाने से पेट के रोग मिटते हैं तथा भूख लगती है।

अजीर्ण—इसकी कोपलों के टुकड़ों को एक मिट्टी के बर्त्तन में बंद कर जलाकर उस भस्म की फंकी देने से अजीर्ण और मंदाग्नि मिटती है।

रीढ़ की हड्डी की पीड़ा—इसकी कोमल शाखाओं का बिछौना कर, उस पर सोने से रीढ़ की हड्डी की पीड़ा मिटती है।

उपदंश—इस औषधि की नरम लकड़ी को कूट, पीसकर उसका रस निकालना चाहिये। इस रस को दो तोले की मात्रा में उतना ही गाय का घी मिलाकर दिन में दो बार लेना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक करने से गर्मी के चट्टे, घाव आदि उपद्रव दूर होते हैं। दवा लेते समय नमक को बिल्कुल उपयोग में नहीं लेना चाहिये।

आंकड़ा

नाम—

संस्कृत—अर्क, राजार्क, क्षीरदल, शुकफल,विभावसु। हिन्दी--आक,मंदार। बङ्गाली-आकंद। मराठी—रुई, पांढरी रुई। तैलंगी—नलिजिल्ले डेघोली, तेलाजिल्लीडे। फारसी—खरक, दूध। अरबी--ऊशर। अंग्रेजी—Gigantic Swallow Wort. (जायजेन्टिक स्वेलोवर्ट) लैटिन—Calotropis Gigantica. (केलोट्रोपिस जायगेन्टिका) Calotropis Procera. (के० प्रोसीरा)।

वर्णन—

आक के झाड़ सब स्थानों पर मिलते हैं और सब लोग उनको जानते हैं। इसलिये इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं। इसकी लाल और सफेद, इस प्रकार दो जातियाँ होती हैं। लाल जाति को लैटिन में Calotropis Gigantica. (के० जायगेंटिका) और सफेद जाति को Calo. Procera. (के० प्रोसेरा) कहते हैं। लाल जाति का आक सब स्थानों पर सुलभता से मिलता है। मगर सफेद जाति का आक बहुत दुष्प्राप्य रहता है। सफेद जाति के आक की तलाश में कीमियागर लोग बहुत रहते हैं।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से दोनों प्रकार के आक रेचक तथा वात, कोढ़, कण्डु, विष, व्रण, प्लीहा, गुल्म, बवासीर, श्लेष्मा, उदर, यकृत और कृमिरोग को नष्ट करने वाले हैं।

आक का दूध तिक्त, उष्ण, स्निग्ध, लवण-रसयुक्त, हलका तथा कोढ़, गुल्म और उदररोग को नष्ट करने वाला है। यह एक श्रेष्ठ विरेचन है।

इसकी जड़ की छाल पसीना लाने वाली, श्वास को दूर करने वाली, गरम, वमनकारक और उपदंश को नष्ट करने वाली है।

इसका फूल मधुर, तिक्त,ग्राही तथा कुष्ट, कृमि, चूहे का जहर, रक्त-पित्त, गुल्म और सूजन को दूर करने वाला है।

इसकी जड़ की छाल कड़वी, तीखी, गरम, दीपन, पाचन, पित्त का स्राव करने वाली, रस-ग्रंथि और त्वचा को उत्तेजन देने वाली,धातुपरिवर्तक,उत्तेजक,बलदायक और रसायन है। छोटी मात्रा में यह आमाशय को उत्तेजन देकर रस-क्रिया का बराबर संचालन करती है। लेकिन अधिक मात्रा में यह आमाशय में दाह उत्पन्न करके वमन पैदा करती है। इसके उपयोग से बहुत पसीना होता है। इससे इसका स्वेद-जनन-धर्म भी बहुत उत्तम माना गया है। इसका रसायनधर्म भी पारे के समान उत्तम है। क्योंकि इसके सेवन से यकृत की क्रिया सुधरती है और पित्त का स्राव भलीभाँति होता है। शरीर की जुदी २ ग्रंथियों को यह उत्तेजन देती है, जिससे सारे शरीर की रस-क्रिया और जीवन-विनिमय क्रिया भलीभाँति होने लगती है। फलस्वरूप शरीर पुष्ट होता है और बल बढ़ता है।

यकृत-वृद्धि, प्लीहा-वृद्धि, आँतों की व्याधियाँ इत्यादि रोगों पर यह अपना प्रभावशाली असर बतलाती है।

औषधि के रूप में इसकी जड़ की छाल, पत्ते, फूल और दूध काम में आते हैं। इस वनस्पति में अनेक उत्तम गुण होने से आयुर्वेद के अन्दर यह एक दिव्य औषधि मानी गई है। जितना लाभ इस पौधे से वैद्यों और भारतीय-रसायन-शास्त्रियों ने उठाया, उतना किसी दूसरी औषधि से नहीं उठाया। आज तक भी इस पौधे का यहाँ पर प्रचुररूप से उपयोग होता है। किसी २ ने तो इसीलिये इसको 'वानस्पतिक पारद' भी कह डाला है।

यूनानी मत—यूनानी हकीमों के अन्दर इस औषधि का उल्लेख करीब एक हजार वर्षों से पाया जाता है। सबसे पहिले अबूहनीफा ने अपनी पुस्तक नबातात में इस औषधि का उल्लेख किया है। कानूनशेखू रईस, तजकिरा, दाउद अन्ताकि इत्यादि ग्रंथों में भी इसका उल्लेख पाया जाता है। उसके पश्चात् पीछे के ग्रंथों में तो इसका विस्तृत-वर्णन मिलता है।

मख्जनूल अदविया के लेखक मीरमहम्मद हुसेन और मुहीत आजम के लेखक महम्मद आजमखाँ ने आक की तीन जातियों का उल्लेख किया है।

(१) पहली जाति के झाड़ बहुत बड़े, पत्ते भी बहुत बड़े और फूल सफेद होते हैं। इसमें बहुत ज्यादा दूध होता है। यह जाति सर्वोत्तम है।

(२) दूसरी जाति के पौधे और पत्ते, अपेक्षाकृत छोटे और फल बाहर से सफेद, भीतर से बैंगनी या गहरे नीले रंग के होते हैं।

(३) तीसरी जाति सबसे छोटी जाति है, जिसके फूल सफेदी लिये हुए पिश्ताई रंग के होते हैं। इस के पौधे मरुभूमि में उगते हैं। किसी २ के मत से यह तीसरी जाति बहुत विषैली होती है।

यूनानी मत से आक गर्म और रुक्ष है। इसका दूध चौथे दर्जे में गरम और रुक्ष तथा इसके शेष हिस्से तीसरे दर्जे में गरम और रुक्ष है। किसी २ के मत से आक का दूध तीसरे दर्जे में गरम और चौथे दर्जे में रुक्ष है तथा इसके फूल दूसरे दर्जे में गरम और रुक्ष हैं। यह यकृत और फेफड़े को नुकसान पहुँचाता है। इसके प्रतिनिधि इपीकोना तथा अन्तमूल हैं और इसके दर्प को नाश करने वाले दूध और घी हैं। इसके दूध की मात्रा दो रत्ती से चार रत्ती तक और इसकी छाल, फूल और पत्ती की मात्रा छः रत्ती तक दी जा सकती है, काढ़ा बनाने के अन्दर इसकी छाल और पत्ती की मात्रा ६ माशे तक ली जा सकती है।

मख्ज़नूल अदविया के लेखक मीरमहम्मद हुसेन के मतानुसार आक का दूध दाहक, कफ को रेचन करने वाला और चमड़ी पर फफोला पैदा करने वाला है। सभी प्रकार के दूधों में यह सबसे अधिक तीक्ष्ण माना जाता है।

शारह गाजरुनी के मतानुसार इसका पत्ता सूजन को कम करने वाला और सर्दी को दूर करने वाला है। इसलिये गठिया के दर्द और दूसरे प्रकार के दर्दों में इनको गरमकर बाँधने से वेदना-शांत होती है और सूजन उतर जाती है। पीले पड़े हुए आँकड़े के पत्तों का रस नाक में सुंघाने से आधाशीशी में लाभ होता है। कफ-निस्सारक होने से यह खाँसी और दमे को दूर करता है। इसके पत्तों को सुखाकर उनको कूट, छानकर खराब जख्मों पर भुर-भुराने से दूषित मांस दूर होकर स्वस्थ मांस पैदा होता है।

आक की शक्कर—फारस और अरब में पैदा होने वाले आक में एक प्रकार का गोंद पैदा होता है, जिसको शकरमदार, शक्कर ऊशर इत्यादि नामों से सम्बोधित करते हैं। यह शक्कर प्रकृति को मृदु करने वाली, खाँसी और श्वास कष्ट, फेफड़े के व्रण तथा छाती, जिगर और मेदे की तकलीफों में लाभदायक होती है। आँख में आँजने से आँख की फूली को दूर करके दृष्टि-शक्ति को बढ़ाती है। ऊँटनी के दूध के साथ देने से यह जलोदर रोग में लाभ पहुँचाती है।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपड़ा के।मतानुसार इसकी जड़ की छाल में दो विशेष प्रकार के तत्व पाये जाते हैं, जिनके नाम वार्डन (Warden) और वाडेल (Waddel) ने मदार एलबन (Mudar Alban) और मदार फ्लुव्हिल (Mudar Fluevil) दिया है। ये दोनों पदार्थ गटापारचा में मिलने वाले अलबन और फ्लुव्हिल से मिलते-जुलते हैं। इसमें से मदार एलबन एक प्रकार का रवादार सत्व है, जो अत्यंत प्रभावशाली है। यह ईथर तथा अलकोहल में घुलनशील तथा शीतल जल और जैतून के तैल में अघुलनशील रहता है। गर्मी से जम जाने और सर्दी में खुले रखने पर पिघल जाने का इसमें अद्भुत गुण है। इसके अतिरिक्त इसमें एक प्रकार की कड़वी, चरपरी और पीले रंग की राल भी पाई पाई जाती है, जो इसका प्रभावशाली अंश है।

कर्नल चोपड़ा का कथन है कि इस औषधि की उपयोगिता के विषय में बहुत मत-भिन्नता है। आधुनिक खोजों ने यह बतला दिया है कि जितने गुण इसमें बतलाये जाते हैं, उतने इसमें नहीं हैं।

इसका दूध तेज जुलाब माना जाता है। यह प्रायः थूहर के दूध के साथ में उपयोग में लिया जाता है। गर्भपात के कार्यों में भी इसका उपयोग करते हैं। इसके फूल पाचक, अग्निप्रवर्द्धक व पौष्टिक हैं। कफ और जुकाम में भी ये उपयोगी हैं, इसकी जड़ के छिलके का लेप बनाकर चाँवल के सिरके के साथ मिलाकर टाँगों के श्लीपद पर लगाया जाता है। इसकी जड़ का चूर्ण ३ ग्रेन से १० ग्रेन तक की मात्रा में धातु-परिवर्त्तक होता है। ३० से ६० ग्रेन तक की मात्रा में यह वमनकारी होता है।

आँकड़े की जड़ की छाल प्राप्त करने की रीति—

डाक्टर मोहिउद्दीन शरीफ का कथन है कि औषधि के लिये आक का वृक्ष जितना ही पुराना

होगा, उतनी ही उसकी जड़ें गुणकारी होगीं। क्योंकि उसमें कड़वी राल की मात्रा अधिक होती है। इसलिये इस वृक्ष की जड़ ग्रहण करने के लिये अप्रैल या मई महीने के दिनों में तपती हुई मरुभूमि में उगे हुए आक के झाड़ की जड़ें खोदकर लाना चाहिये और उन जड़ों के ऊपर की रेती को पोंछकर हलके हाथ पानी में धोकर छाया में सुखा देना चाहिये। चौबीस घंटे के पश्चात् उसके ऊपर की मिट्टी और निर्जीव छाल को निकालकर अंतर्छाल को छाया में सुखा देना चाहिये। जब वह बराबर सूख जाय तब उसको पीसकर कपड़े में छानकर मजबूत काग वाली बोतल में भर कर रख देना चाहिये। बढ़िया छाल में से बने हुए चूर्ण का रंग चाँवल के आटे के रंग के समान होता है।

इसकी जड़ के ऊपर बतलाई हुई रीति से तैयार किये हुए चूर्ण में खूनी अतिसार को मिटाने की अद्भुत-शक्ति है। इसी प्रकार श्वास-नलियों की बीमारियों पर भी इसका बहुत उत्तम असर होता है। श्वास-नलिका की सूजन की प्रथम अवस्था में प्रति घण्टा एक रत्ती की मात्रा में यह औषधि देने से गले के अन्दर गीलापन आता है, पसीना होता है, दस्त साफ होता है, कफ छूटने लगता है और सूजन कम हो जाती है। सूजन की दूसरी अवस्था में देने से कफ पतला होकर जल्दी गिरने लगता है।

अन्तर-त्वचा, बाह्य-त्वचा और त्वचा के नीचे के प्रस्तरों की व्याधियों में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। सभी जाति के व्रण और फोड़े, फिर चाहे वे सादी रीति से हुए हों, चाहे रक्त-दोष से हुए हों, चाहे उपदंश से हुए हों, चाहे और किसी कारण से हुए हों, उन सब में इस चूर्ण को खाने से और बाहर लगाने से बड़ा लाभ होता है।

उपदंश की दूसरी अवस्था में जब चमड़ी पर चट्टे पैदा हो जाते हैं, इसके उपयोग से बड़ा लाभ होता है।

आक के फूल दीपक, पाचक, और कफघ्न हैं। इसकी जड़ की छाल की अपेक्षा फूलों में यह गुण विशेष होने से ये अतिरिक्त कफ का शमन करते हैं और सूखी खाँसी, रक्तपित्त, उरक्षत, तथा क्षय की खाँसी में अच्छा फायदा दिखलाते हैं।

इंडियन मेडिकल प्लांटस् के रचयिताओं के अनुसार सफेद आक, मूत्रकृच्छ्र और पथरी में लाभ पहुँचाने वाला और व्रण ठीक करने वाला है। इसकी राख कफनाशक है। इसके पत्ते गरम करके पेट पर बाँधने से पेट में लाभ पहुँचता है। इसके फूल पुष्टिकारक, क्षुधावर्द्धक, अग्निप्रवर्द्धक तथा बवासीर व श्वास में लाभ पहुँचाने वाले हैं। पठान लोग इसकी जड़ के ताजा दतून को दंतपीड़ा-नाशक समझते हैं। इसके फूलों में विरेचक गुण भी हैं। ये हैजे की बीमारी में भी दिये जाते हैं।

इसका ताजा दूध अधिक मात्रा में बहुत जहरीला है। इसका एक ड्राम ताजा रस १५ मिनट में अच्छे बड़े कुत्ते को मार सकता है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डाक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार आक का दूध प्रबल-विरेचक और गरम है। कीड़े से खाये हुए दाँत में और कान के दर्द में थूअर के दूध के

साथ इसका प्रयोग करने से बड़ा लाभ होता है। इसका योनि के अन्दर प्रयोग करने से गर्भस्राव होता है। गर्मी की बीमारी में यह बहुत लाभदायक हैं। इसी लिये इसको व्हिजीटेबल मरक्यूरी (वानस्पतिक पारा) कहते हैं। दारुहल्दी के चूर्ण और सेहूँड के दूध के साथ आक के दूध की बत्ती बनाकर गुदा स्थान में रखने से बारम्बार मल-त्याग करने की चेष्टा निवृत्त होती है। बिच्छू, भिड़, ततैया इत्यादि जहरीले जानवरों के डंक पर इसका लेप करने से जलन मिट जाती है। भगन्दर व नासूर का मुँह बंद हो जाने पर उसे खोलने के लिये दूसरी औषधियों के साथ आक के दूध का उपयोग किया जाता है। आक का दूध अधिक मात्रा में सेवन करने से अत्यन्त वामक और विरेचक होकर जहर के तुल्य हो जाता है।

उपयोग—

बवासीर—

(१) तीन बूंद आक के दूध को रूई पर डालकर और उस पर थोड़ा कुटा हुआ जवाखार बुरक कर उसे बताशे में रखकर निगल जायँ। इस प्रयोग से बवासीर बहुत जल्दी नष्ट हो जाती है।

(२) आधापाव आक का दूध लेकर उसको इतना खरल करें कि खरल में चिपक जाय। दूसरे दिन फिर उसी खरल में आधापाव आक का दूध डालकर खरल करना चाहिये। इस प्रकार आठ दिन में एक सेर आक का दूध उस खरल में सुखा लेना चाहिये। फिर उसको खुरचकर उसके दो भाग करलें। मिट्टी के एक बड़े प्याले में नीचे एक भाग बिछाकर उसपर एक तोला सुहागा रखें और उसपर दूसरा भाग बिछा दें, इस औषधि के ऊपर एक छोटा प्याला जिसके बीच में छेद हो, रख दें तथा उसके बाद बड़े प्याले के ऊपर एक और बड़ा प्याला रखकर कपड़-मिट्टी कर दें। फिर उसके बाद उन प्यालों को चूल्हे पर रखकर चिराग की तरह हल्की आँच दें। जब ऊपर वाला प्याला गरम होने लगे तब उसपर चार तह कपड़ा पानी में तर करके रख दें, चार प्रहर की आँच होने के बाद उसको उतार कर खोलने पर तीनों प्यालों में तीन प्रकार की चीजें प्राप्त होती हैं। सबसे ऊपर वाले प्याले में इसका जौहर रहेगा। बीच के प्याले में पीले रंग की सलाखें रहेंगी तथा तीसरे प्याले में औषधि का बचा हुआ भाग रहेगा।

मिफ्ताउल खजाइन नामक हकीमी ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि इसमें से नीचे के प्याले वाली चीज वज़उल् मुफ़ासिल अर्थात् गठिया रोग के लिये एक रत्ती की मात्रा में रोजाना बताशे में रख कर खिलाना चाहिये। इसके तीन रोज सेवन कराने से गठिया की बीमारी में बहुत लाभ होता है। शेष दो प्यालों की औषधियाँ बवासीर वालों के लिए बहुत लाभदायक है। इनका उपयोग इस प्रकार किया जाता है। पहले बीच के प्याले वाली दवा को एक रत्ती की मात्रा में मक्खन में मिलाकर दो दिन तक खिलावें और खाने के लिए रोगी को केवल मिश्री मिला हुआ दूध देवें। दो दिन के बाद रात को रोगी के पेट में दर्द मालूम होगा, परन्तु इससे डरने की जरूरत नहीं है। तीसरे दिन

बड़े सबेरे ऊपर के प्याले वाला जौहर एक रत्ती की मात्रा में मक्खन में मिलाकर खिलाना चाहिये और रोगी को लिटा देना चाहिये। एक प्रहर के बाद काँच निकाल कर मस्से गिर जायँगे। उन्हें स्वच्छ वस्त्र से धीरे से अलग कर देना चाहिये। फिर एक तोला फिटकरी का बारीक चूर्ण कपड़े पर रख कर काँच पर रख देना चाहिये और लंगोट बाँध देना चाहिये। उसी वक्त अगर रोगी मांसाहारी हो तो उसे मुर्गी का शोरवा पिलाना चाहिये और दो घण्टे तक रोगी को दोनों पाँवों पर बिठाये रखना चाहिये। इसके पश्चात् रोगी को नरम खाना देना चाहिये। मिफ्ताउल खजाइन के ग्रन्थकार इस योग को अपना परीक्षित योग बतलाकर इसकी सिफारिश करते हैं।

खाँसी और दमा—

(१) आक के फूल की मगज १॥ माशा, सेंधा नमक १॥ माशा, अफीम ३ रत्ती और अजवायन ६ माशा, इन सब चीजों को कूट, पीस, मिलाकर चने की दाल के बराबर गोलियाँ बना लेना चाहिये। तीन घण्टे के अन्तर पर इसमें से एक २ गोली देने से खाँसी और दमे में बहुत लाभ होता है।

(२) अजवायन ८ तोला, हरड़ का चूर्ण, बीड़ नमक, खेरसार, सेंधा नमक, हल्दी, उपलेट, भारंगी की जड़, इलायची, सुहागा, कायफल, अड़ूसा, अपामार्ग की जड़, जवाखार और सज्जीखार, ये सब चार-चार तोला, आक के फूलों की सूखी मगज १६ तोला, इन सबों का चूर्ण करके घीग्वार के रस में घोटना चाहिये। फिर उसकी टिकड़िएँ बनाकर सुखाकर एक हाँडी में रखकर सरावले से हाँडी का मुँह बंद कर कपड़-मिट्टी कर लेना चाहिये। इस हाँडी को आग पर चढ़ा कर सब दवाइयों को जला लेना चाहिये। जब सब दवाइयाँ जल जायँ तब उस हाँडी को उतारकर उस राख को निकाल लेना चाहिये। इस राख को डेढ़ माशे से तीन माशे तक की खुराक में शहद के साथ चटाने से खाँसी और श्वास में बहुत लाभ होता है।

(३) आक की बंद मुँह की कली २ तोला, अजवायन १ तोला, और कन्द स्याह ५ तोला, इन तीनों औषधियों को कूट,पीस कर एक दिल कर लें, फिर मदार के सात पत्तों को ऊपर-नीचे रखकर उनमें इन दवाइयों को रख, सी-कर कपड़-मिट्टी करलें। फिर इसको गरम भूभर में दो प्रहर तक गाड़ दें। उसके बाद निकाल कर दवाओं को बारीक पीसकर भर लें। इसमें से एक माशे की खुराक मक्खन के साथ देने से श्वास, दमा और पुरानी खाँसी में बहुत लाभ होता है।

(४) आँकड़े के फूल की मगज और कालीमिर्च समान भाग लेकर खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेना चाहिये। इनमें से एक-एक गोली दिन में चार बार देने से दमा, खाँसी, हिस्टीरिया, वायु और कनव्हलशन की बीमारियों में बड़ा लाभ होता है।

(५) आक के कोमल पत्तों का काढ़ा करके उस काढ़े की जौ की धानी को सात भावना देकर सुखा लेना चाहिये। फिर उसका चूर्ण करके छः माशे की मात्रा में शहद के साथ चटाने से श्वास रोगों में लाभ होता है।

उदर रोग—

(१) मदार की कली ६ तोला, कालीमिर्च ३ तोला, सेंधा नमक ३ तोला, लौंग कुलाह्दार ६ माशा, कली का चूना ३ माशा, शुद्ध अफीम १॥ माशा, इन सब औषधियों को एक भावना अदरख के रस की, एक भावना नीम्बू के रस की देकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। ये गोलियाँ सब प्रकार के पेट दर्द, आमाशय की खराबी और अजीर्ण में लाभकारी है। हैजे के अन्दर भी ये गुलाबजल के साथ देने से शर्तिया लाभ पहुँचाती है।

(२) आक के पीले पत्ते १००, करंज के पत्ते १००, वायवर्णा की छाल ४० तोला, थूहर के डोड़े १०० तोला, भोरीगंणी के डोड़े १००, घीग्वार ८ तोला, गूगल २ तोला, लहसन २० तोला, काञ्चन की छाल २० तोला, संचर-नमक १२ तोला, सोंठ ७ तोला, कालीमिर्च ७ तोला, पीपर ७ तोला, समुद्र नमक ४० तोला, बीड़ नमक ४ तोला, अजवायन २ तोला, अजमोद २ तोला, हींग ४ तोला, जीरा ४ तोला, स्याहजीरा ४ तोला, राई १६ तोला, चित्रक की जड़ ३२ तोला, इन सब औषधियों को कूट कर इनमें ३२ तोला आक का दूध और १६ तोला सरसों का तेल डाल कर एक हाँडी में भरना चाहिये। उसके बाद उस हंडी का मुँह सरावले से बंद करके कपड़-मिट्टी कर आग पर चढ़ा देना चाहिये। जब सब चीजें जल कर राख हो जायँ, तब हाँडी को उतार कर उस राख को निकाल कर बोतल में भर देना चाहिये। इस औषधि को आधे तोले की मात्रा में मट्ठे के साथ लेना चाहिये। यह औषधि प्राचीन अजीर्ण और मंदाग्नि के लिये बहुत ही उपयोगी है। आमाशय के अन्दर रहे हुए अपच्य पदार्थों को पचाने में तथा विदग्ध पदार्थों को दस्त के द्वारा बाहर निकाल देने में यह बहुत उत्तम कार्य करती है। इसलिये वायुगोला, उदरशूल, अजीर्ण इत्यादि बीमारियों में यह औषधि बड़ा लाभ पहुँचाती हैं।

(३) सज्जीखार ५ तोला, नौसादर ५ तोला, सेंधा नमक २॥ तोला, संचर-नमक २॥ तोला, इन सब चीजों को ४० तोला आंकड़े के दूध में तथा ४० तोला थूहर के दूध में घोटकर एक हाँडी में भरकर कपड़-मिट्टी कर गजपुट में फूंक देना चाहिये। शीतल होने पर इसकी राख निकाल कर जितना उसका वजन हो, उसका पाँचवा हिस्सा चित्रक की जड़, पाँचवा हिस्सा हरड़, पाँचवा हिस्सा बहेड़ा, पाँचवा हिस्सा आँवला और पाँचवा हिस्सा निसोत की जड़ की छाल लेकर उन सबका चूर्ण कर इसमें मिला देना चाहिये। इस औषधि को तीन माशे से छः माशे की मात्रा में थोड़ी-सी शंखभस्म मिलाकर सेवन करने से लीवर और कलेजे की वृद्धि को दूर करने में बहुत असर बतलाती है। पत्थर के समान सख्त पेट को यह धीरे २ मुलायम कर ठीक स्थिति में ला देती है। इसी प्रकार आफरा और कब्जियत के लिये भी यह रामबाण औषधि है। कुमारी-आसव के साथ देने से यह बड़ी लाभप्रद सिद्ध हुई है।

(४) आक के फूल का मगज १ तोला, लाहोरी नमक १ तोला, पीपर १ तोला, इन तीनों चीजों को कूट, पीसकर कालीमिर्च के बराबर गोलियाँ बना लें। रात में सोते वक्त बालकों को एक

गोली और वयस्क पुरुषों को दो गोली देने से सब तरह की खाँसी और दमे में लाभ होता है। ये गोलियाँ उदरशूल, हैजा, अजीर्ण तथा सोते समय मुँह में से लार बहने के रोग में भी यह अद्सीर है।

(५) सूखे हुए आक के फूल लेकर उनको महीन पीसकर उसको तीन दिन तक आक के पत्तों के रस में खरल करके चने बराबर गोलियाँ बना लें। इनमें से दो गोली गरम पानी के साथ निगलने से कठिन से कठिन पेट का दर्द तुरन्त आराम होता है।

(६) आक के हरे फूलों को कूटकर दो सेर रस तैयार कर लें। इस रस में पावभर आक का दूध और १। सवा सेर गाय का घी मिलाकर कलईदार कढ़ाई में आगपर चढ़ा दें, जब सब चीजें जलकर घी मात्र शेष रह जाय, तब आग पर से उतार कर घी को छानकर सुरक्षित रख लें। यह घृत आँतों के अन्दर पड़े हुए कीड़ों को नष्ट करने में मूल्यवान औषधि है। आँतों के कृमियों की वजह से जिनकी पाचन-शक्ति खराब होगई हो या जिनको बवासीर हो उसे इस घी में से ३ माशे से ६ माशे तक घी, गाय के आधपाव दूध के साथ देने से बड़ा लाभ होता है।

विशूचिका या हैजा—

(१) आक के फूलों के भीतर से उनकी लौंग निकालकर १ तोला वजन में लें। इसमें १ तोला कालीमिर्च और १॥ तोला अदरख मिलाकर घोटकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। इनमें से हैजे के रोगी को १ गोली देने से तत्काल असर होता है।

(२) मखजनूल अक्सीर के लेखक का कथन है कि आक की जड़ की छाल और कालीमिर्च समान भाग लेकर खरल में खूब बारीक पीसकर चने के बराबर गोलियाँ बनाना चाहिये, इसमें से एक या २ गोली अर्क सौंफ या अर्क सिकंजबीन के साथ देने से कठिन हैजे के आसन्नमृत्यु रोगी को भी तत्काल लाभ होता है।

(३) आक की जड़ की छाल १ तोला, कालीमिर्च ३ माशे, संचर-नमक ३ माशे, इन तीनों चीजों को बारीक पीसकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। ६ माशे घी के साथ एक २ गोली सुबह-शाम देने से हैजे की मायूसी अवस्था में भी लाभ होता है।

कोढ़, नासर और रक्त-विकार—

(१) सरसों का तेल १६ तोला, गाय का घी ८ तोला और आक के पत्तों का रस ९६ तोला, इन तीनों चीजों को मिलाकर, कलईदार कढ़ाई में धीमी आंच से पकाना चाहिये। जब केवल घी और तेल शेष रह जाय, तब उसको उतार कर छान लेना चाहिये। इस तेल में आक के सूखे पत्तों का कपड़-छन चूर्ण ४ तोला, गन्धक और पारे की खूब घुटी हुई कजली १ तोला, सिंदूर आधा तोला, हरताल आधा तोला, मेन्सिल आधा तोला, हल्दी आधा तोला, सोनागेरू आधा तोला, ये सब चीजें बारीक पीसकर अच्छी तरह से मिला देना चाहिये। इस मलहम को लगाने से पुराने घाव और नासूर जोकि कभी नहीं भरते हैं और शस्त्र-क्रिया के बिना आराम होने की संभावना नहीं होती वे भी इस मलहम के भरने से आराम होते हुए देखे गये हैं।

(२) पीपर, हल्दी, शंख की भस्म, सज्जीखार, कांकच के बीज, सेंधा नमक, निर्गुण्डी के पत्ते, चनगोटी के बीज, केशर, शराब का कचरा, मूली, नीला-थूथा, नागकेशर, मुर्गे का विष्ठा, धतूरे के बीज और अजवायन, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर कपड़छन चूर्ण करके, एक भावना थूहर के दूध की, एक भावना आक के दूध की और एक भावना गाय के दूध की, देकर खरल में घोंटकर, बरनी में भर लेना चाहिये। यह सुप्रसिद्ध आचार्य बंगसेन का 'सिद्ध लेप' नाम का सुप्रसिद्ध लेप है। इसका लेप करने से हर तरह का नासूर, कंठमाला, बवासीर और नहीं फूटने वाली गाँठ भी आराम होती है।

(३) आक की जड़ की छाल ४ सेर लेकर एक मिट्टी के बर्तन में डाल दें और फिर पावभर गेहूँ, एक सफेद कपड़े में बाँधकर उसी बर्तन में डाल दें, फिर उस बर्तन को तिहाई पानी से भर दें। फिर इस बर्तन का मुँह बन्द करके २१ दिन तक घोड़े की लीद में गाड़ दें। उसके पश्चात् उस बर्तन को निकाल कर, अगर उसमें कुछ पानी शेष हो तो आग पर रख कर उस पानी को सुखा लें। फिर उस हाँडी में से गेहूँ की पोटली को निकाल लें। इन गेहूँ को पीसकर इनकी ६१ गोलियाँ बना लें। इसमें से १ गोली प्रतिदिन खाने से तथा पथ्य में नमक छोड़कर केवल गेहूँ की रोटी और घी खाने से कुष्ठरोग में लाभ होता है।

दाद की अमोघ औषधि—

(१) हल्दी ५ रुपये भर, लेकर पानी के साथ पीसकर, चटनी के समान बना लेना चाहिये। फिर आक के पत्तों का रस ४ सेर, पीली सरसों का तेल आधा सेर, लेकर उसमें यह हल्दी की लुग्दी डालकर मंदाग्नि से पकाना चाहिये। जब रस का भाग जलकर तेल मात्र शेष रह जाय, तब उसे उतार कर छान लेना चाहिये। इस तेल में १० रुपये भर मोम डालकर फिर मंदाग्नि पर चढ़ाकर, जब मोम तेल में मिल जाय, तब उतार लेना चाहिये। फिर इसमें गंधक, फुलाया हुआ सुहागा, सफेद कत्था, रेवन्द चीनी, कपीला, कालीमिर्च, राल, मुर्दासिंगी, फुलाया हुआ नीला-थूथा और फुलाई हुई फिटकड़ी, ये सब चीजें ढाई २ रुपये भर लेकर उनको बारीक चूर्ण करके उसमें मिला दें। साथ ही ४ रुपये भर गंधक और पारे की घुटी हुई कजली मिला दें। इन सब चीजों को अच्छी तरह से मिलाकर बरनी में भर लें।

दाद के लिये यह एक अव्यर्थ महौषधि है। भयंकर से भयंकर दाद भी इसके व्यवहार से नष्ट हो जाते हैं। जो लोग सैकड़ों प्रकार की पेटेंट औषधियों से निराश हो चुके हों, उन्हें भी इस औषधि से लाभ उठाना चाहिये। दाद के सिवाय खाज, खुजली में भी यह लाभ पहुँचाती है।

लकवा, फालिज, गठिया और अन्य वात व्याधियाँ—

(१) आक के हरे पत्ते, धतूरे के हरे पत्ते, अरंड के हरे पत्ते, सेहुंड के पत्ते, बकायन के पत्ते, सहेंजन के पत्ते, भाँगरे के पत्ते और भाँग के पत्ते, इन सबको समान भाग लेकर इनका स्वरस निकाल लें।

जितना स्वरस हो, उतने ही वजन का काली-तिल्ली का तेल डालकर अग्नि पर चढ़ाकर पकावें। जब केवल तेल मात्र शेष रह जाय, तब उतार कर छान लें। इस तेल में मालिश करते समय पीपर और काली-मिर्च का थोड़ा महीन चूर्ण मिला लेना चाहिये। इस तेल की मालिश से लकवा, फालिज़ और संधिवात में बहुत लाभ होता है।

(२) मिफ्ताहुल-खजाइन के लेखक ने शरीर के नीचे के हिस्से के फ़ालिज़ के लिये एक परीक्षित प्रयोग दिया है जिसको यहाँ पर उद्धृत किया जाता है।

एक गड्ढा इतना गहरा खोदा जाय, जिसमें आदमी अच्छी तरह से बैठ सके, उस गड्ढे में जंगली कंडे भरकर जला दें, जिससे उसकी दीवारें लाल हो जायँ। फिर उसको साफ करके उसमें ताजे आक के पत्ते भर दें, जब वे पत्ते गरम होंगे, तब उनमें से भाप निकलेगी, ऐसे समय में रोगी को पशमीने की चादर में लपेट कर उस गड्ढे पर बिठायें। उसका मुँह खुला रखें, जिसमें वह भाफ इत्यादि से सुरक्षित रहे। यह क्रिया मकान के भीतर एकांत-स्थान में होनी चाहिये। इस क्रिया से रोगी पसीने से सराबोर हो जायगा। दूसरे दिन रोगी को ६ माशे अरंडी का मगज, बादाम के तेल में भूनकर शहद के साथ चटावें, इससे उसको कै और दस्त होंगे। इसके उपरान्त उसे फिर उसी प्रकार गड्ढे पर बिठाकर बफारा दें। इसी भाँति तीन दिन तक करने से गयागुजरा रोगी भी आराम हो जाता है। इस प्रयोग से शरीर पर छोटी २ फुंसियाँ निकल आती हैं पर वे दूसरे-तीसरे दिन स्वयं लुप्त हो जाती हैं। एक रोज बुखार भी आता है, मगर उससे डरने की कोई जरूरत नहीं।।

(३) आक के पत्ते ७, भिलावें नग ७, इन दोनों चीजों को तिल के तेल में डालकर आग पर चढ़ा दें। जब ये दोनों अच्छी तरह से जल जायँ, तब तेल को छानकर शीशी में भर लें। इस तेल को धूप में बैठकर मालिश करने से हर प्रकार की वात-व्याधि में लाभ पहुँचाता है।

(४) गूगल ५ माशे, मेंहदी सुर्ख २ माशे, सनाय मक्की २ माशे, कतीरा १ माशा, इन सबको आक के दूध में खूब घोटकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। इनमें से प्रतिदिन एक गोली गर्म पानी के साथ खाने से गठिया, संधिवात, ग्रध्रसी तथा दूसरी वात-व्याधियों में लाभ होता है।

(५) मदार का बिना खिला फूल, सोंठ, कालीमिर्च और बाँस की पत्ती समान भाग लेकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। सवेरे-शाम दो गोली पानी के साथ खाने से गठिया में बड़ा लाभ होता है।

(६) आक की जड़ को काँजी के साथ पीसकर लेप करने से हाथी-पाँव और अण्डवृद्धि-रोग में बड़ा लाभ होता है।

साँप, बिच्छू और पागल कुत्ते का जहर—

(१) आक की जड़ की छाल का चूर्ण १। रुपये भर, धतूरे के पत्तों का चूर्ण २ माशे और मिश्री १। रुपये भर लेकर सबों को पानी के साथ घोटकर एक २ रत्ती की गोलियाँ बना लेनी चाहिये। रोगी को पहिले अरंडी के तेल का जुलाब देकर, इन गोलियों का सेवन कराना चाहिये। पाँच वर्ष की ऊमर वाले

को एक २ गोली, १० वर्ष की ऊमर वालों को दो २ गोली तथा १५ वर्ष से ऊपर ऊमर वालों को तीन २ गोली, सवेरे-शाम देना चाहिये। दवा खाने के बाद २-३ घंटे तक पानी नहीं पीना चाहिये और एक-दो मुट्ठी भुने हुए चने खाना चाहिये, जिससे उल्टी न होकर दवा पच जायगी। दवा लेने के तीन घंटे बाद खुराक पानी लेना चाहिये।

इस प्रकार इस औषधि को ४० दिन तक सेवन करने से तथा बीच २ में आठवें दिन अरंडी के तेल का जुलाब लेते रहने से, जिन लोगों को पागल कुत्ते ने या पागल स्यार ने काटा होगा, उनको हड़काव (पागलपन) पैदा होने का भय जाता रहेगा। 'जंगलनी जड़ी-बूटी' के लेखक का कथन है कि यह एक अनुभवसिद्ध-योग है। हड़काव के सिवाय धनुर्वात, ताण, खांसी, कफ, दमा, हिचकी, उपदंश-रोग, त्वचारोग, कोढ़, नारू इत्यादि रोगों में भी यह औषधि अच्छा असर दिखाती है। इन गोलियों के सेवन करने पर भी अगर किसी को हड़काव पैदा हो जाय तो उसे आक के पत्ते का रस एक तोला, धतूरे का रस १॥ माशा और तिल का तेल २॥ रुपये भर, मिलाकर पिलाना चाहिये। दूसरे और तीसरे दिन इससे आधी खुराक पिलाना चाहिये, जिससे पैदा हुई व्याधि दूर हो जायगी।

सर्प-विष का योग—

(१) हलजून कलां (मोटा शंख) अफीम, नीलाथूथा, कालबोल, सफेद फिटकरी, शुद्ध कतरा हुआ कुचला, नौसादर और हुक्के का मैल, इन आठ औषधियों को समान भाग ले चूर्ण कर लें। फिर इस चूर्ण को तीन भावनाएँ आक के दूध की देकर छांह में सुखा लें और फिर पीस कर शीशी में भर लें।

मख़जनूल अकसीर नामक ग्रन्थ के ग्रन्थकार का कथन है कि कैसे ही जहरीले सांप ने काटा हो, उसपर इस औषधि के प्रयोग से लाभ होता है। काटे हुए स्थान पर थोड़ा-सा चीरा लगाकर एक रत्ती दवा उस पर मसल देना चाहिए। यदि जहर चढ़ चुका हो तो, एक रत्ती दवा पानी में घोलकर पिलाना चाहिये जिससे वमन होकर जहर निकल जायगा। अगर रोगी बेहोश हो तो थोड़ी-सी दवा पोली नली के जरिये नाक में फूंकने से वह होश में आ जायगा।

(२) आक की जड़ को कपास की जड़ के साथ पीसकर थोड़ा जल मिलाकर पीने से सांप के जहर में लाभ होता है।

(३) बिच्छू के डङ्क पर पहले गूगल की धूनी देकर फिर आक के पत्तों को पीसकर लेप करने से वेदना शान्त होती है।

(४) बिच्छू के डङ्क पर आक का दूध मसलने से भी लाभ होता है।

(५) आक के सम्पूर्ण पञ्चाङ्ग (फल, फूल, पत्ते, डाली और जड़) को जलाकर राख कर लें। उस राख को पानी में घोलकर तीन दिन तक पड़ी रहने दें। उसके बाद उसपर के साफ़ पानी को नितार कर आग पर चढ़ा दें। जब खड़ी के समान हो जाय, तब उतार कर सुखा लें। यह आक का क्षार है।

जिस आदमी को बिच्छू ने काटा हो, उसको दो रत्ती यह क्षार लेकर हथेली में थोड़े नमक और पारे के साथ थूँक में मिलाकर डङ्क पर लगाने से तत्काल वेदना का शमन होता है।

मस्तकरोग, नजला और आधाशीशी—

(१) जङ्गली कराडों की राख को आक के दूध में तर करके छाया में सुखाकर शीशी में भर लेना चाहिये ; इसमें से एक रत्ती भस्म सुँघाने से छींकें आकर सिर का दर्द, आधाशीशी, जुकाम, बेहोशी इत्यादि रोग आराम होते हैं। यह औषधि बहुत तीव्र है। इसलिये इसे गर्भवती स्त्री और बालकों को नहीं सुँघाना चाहिये। अगर इसकी छींकें बन्द न हों तो थोड़ा गाय का घी गरम करके सुँघाने से शान्ति हो जाती है।

(२) सफेद चाँवल, नीलाथूथा, कपूर दो-दो तोला, सोंठ एक तोला, इन सब चीजों को बारीक पीस कर आँकड़े के दूध में तर करके सुखा लेना चाहिये। फिर इस चूर्ण को थोड़ा आग पर भूनकर पीस लें। इस चूर्ण को थोड़ी मात्रा में बादाम के तेल में या बकरी के दूध में मिलाकर नाक में टपकाने से सिर-दर्द, आधाशीशी, समलबायु, पुराना नजला इत्यादि रोग दूर होते हैं।

(३) अनार की छाल चार तोला खूब महीन पीस कर आक के दूध में आटे की तरह गूंध कर उसकी रोटी बना, मंदी आँच से पकालें, फिर इसे सुखाकर बारीक पीसलें और ३ माशे जटामांसी, ३ माशे छड़ीला, १॥ माशे इलायची और १॥ माशे कायफल, इन सबका चूर्ण बनाकर रख लें। इसकारुल इतिब्बा के लेखक लिखते हैं कि इस दवा को सुँघाने से सख्त छींकें आकर नजला, जुकाम, बेहोशी इत्यादि रोग दूर होते हैं।

मृगी और अपस्मार—

(१) इसके ताजे फूल और कालीमिर्च दोनों को बराबर लेकर ढाई २ रत्ती की गोलियाँ बना कर दिन में तीन-चार बार देने से मृगी, श्वास, बाइंटे, रुधिर-विकार और स्नायुरोग मिटते हैं।

(२) इसकी जड़ की छाल को बकरी के दूध में पीसकर नाक में टपकाने से मृगी का वेग रुकता है।

(३) एक यूनानी लेखक का कथन है कि जब चार घड़ी दिन शेष रहे, तब मृगी के रोगी के पैर के तलवों पर आक का दूध लगाकर उस पर कालीमिर्च का बारीक चूर्ण भुर-भुरा दें। फिर पाँव के तलवे पर मदार का पत्ता बाँध कर मौजा पहन लें। चालीस दिनतक बिना पैर धोए, यह योग करते रहने से मृगी का नाश हो जाता है।

नेत्ररोग—

(१) वंगसेन का कथन है कि १ तोला आक की जड़ की छाल को कूटकर, पावभर पानी में घंटे भर तक भिगोकर उस पानी को छान लें, इस पानी को बूंद २ आंख में डालने से आंख की लाली, भारीपन और आंख की खुजली दूर होती है।

(२) सफेद आक की जड़ को मक्खन के साथ पीसकर सुरमें की तरह आंख में आंजने से आंख की रोशनी तेज होती है।

(३) पुरानी रूई को तीन बार आंकड़े के दूध में भिगोकर सुखा देना चाहिये, फिर उसको तेल में तर करके सीपी में जला लेना चाहिए। इस राख को आँख में आंजने से आँख की फूली कट जाती है, ऐसा एक यूनानी हकीम का कहना है।

(४) पुरानी ईंट का महीन चूर्ण एक तोला लेकर आक के दूध में तर करके सुखा लें और ६ दाने लौंग के मिलाकर उसे बारीक कर लें, इसमें से थोड़ा-सा चूर्ण नाक के जरिये सूंघने से मोतियाबिन्द में लाभ होता।

कर्णरोग—

(१) आक के पीले पत्तों को पोंछ कर उन पर कुछ घी लगाकर अग्नि पर तपाना चाहिये, जब वे सिमटने लगें तब हाथ में उनको मसल कर कान में निचोने से कान का दर्द मिटता है।

(२) आक का बिना छेद का पीला पत्ता लेकर अग्नि पर उसे तपा कर उसका रस कान में निचोने से बहरेपन में लाभ होता है।

(३) आक के फूल और कोमल पत्तों को कांजी में पीसकर थोड़ा तिल का तेल और सेंधा नमक मिलाकर थूहर के डण्डे को पोला कर उसमें भर देना चाहिये, फिर उस डण्डे के चारों ओर आक का पत्ता लपेट कर धागे से बाँधकर कपड़-मिट्टी कर आग में पकाना चाहिये, जब ऊपर की मिट्टी लाल हो जाय, तब उसे निकाल कर, उसका गरम २ रस कान में टपकाना चाहिए। सुश्रुताचार्य का कथन है कि इससे सब प्रकार के कान के दर्द दूर होते हैं।

(४) बृहन्निघंटु-रत्नाकर का मत है कि पौकरमूल, दालचीनी, चीता, गुड़, दन्तीबीज, कूट और कसीस को आक के दूध में पीसकर लेप करने से कर्णशूल नष्ट होता है।

दंतरोग—

(१) आक के दूध में रूई भिगोकर उसे घी में तलकर डाढ़ में रखने से डाढ़ का दर्द मिटता है।

(२) आक की जड़ की छाल को पानी में घिसकर दांत में रखने से दांत का कीड़ा मर जाता है।

(३) वाग्भट्ट का कथन है कि कीड़े से खाए हुये दांत की कोचर में आक का दूध और सतीवन का चूर्ण करके भर दें और रोगी को थूँक निगलने से रोक दें। इससे दंत-शूल दूर हो जाता है।

पथरी—

(१) बृहन्निघंटु-रत्नाकर का कथन है कि आक (मदार) के फूल को गाय के दूध में पीसकर तीन दिन तक रोज प्रातःकाल लेने से जलनयुक्त पथरी रोग नाश होता है।

(२) छाया में सुखाए हुए आक के फूल, जवाखार, कलमीशोरा और कुसुमबीज, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर हरी दूब के रस में खरल कर सुखा लेना चाहिये। इसमें से ३ माशा चूर्ण बकरी के दूध के साथ लेने से बस्ती और गुर्दे की पथरी तथा मूत्रावरोध का नाश होता है।

बाजीकरण—

(१) एक सेर गाय का घी कढ़ाई में डालकर उसमें साफ किया हुआ एक २ आक का नवीन पत्ता डालकर जलाते जायँ, जब सौ पत्ते जल जायँ, तब उस घी को छानकर बोतल में भर लें। इस घी में से २ तोला घी, दूध या रोटी के साथ सेवन करने से कफप्रकृति के लोगों में अत्यन्त मैथुनशक्ति जागृत होती है। इसके अतिरिक्त यह घी कफज-व्याधि और पेट में पड़े हुए केंचुओं को भी नष्ट करता है।

(२) गंधक, मस्तगी, हीरा कसीस प्रत्येक ६ तोला, फिटकिरी और सिंगरफ हर एक तीन २ तोला लेकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को रोहू मछली के पित्ते की सौ भावना दें। फिर आक के बीज जो उसके रूई के बीच में काले रंग के होते हैं, उनको इकट्ठे करकोल्हू में पेर कर उनका तेल निकलवायें। इस तेल को एक पाव लेकर ऊपर लिखी दवाइयों का चूर्ण इसमें खरल करके एक दिल करलें। उसके बाद आक की रूई की कुछ मोटी बत्तियाँ बनाकर इस खरल की हुई औषधि में तर करलें, फिर इन बत्तियों को लोहे की छड़ पर लपेट कर उनमें आग लगा दें और उन छड़ों के नीचे एक चीनी का साफ बर्तन रखें। जिससे उन बत्तियों में से जो तेल टपके वह उसके अन्दर इकट्ठा हो जाय। इस तेल को छान कर शीशी में भरकर रख लेवें।

मखजनूल अक्सीर के लेखक का कथन है कि यह एक अक्सीर तेल है, जो जवानी को हमेशा कायम रखता है और बालों को काला करता है। इसकी सेवन विधि इस प्रकार है—लगभग एक खस के बराबर यह तेल रोटी के ग्रास में रखकर निगल जाना चाहिए और एक खस रोटी के कवल में रख, रात के समय एक तरफ के दांतों के बीच में रक्खें। दूसरे दिन दूसरी तरफ के दांतों में रक्खें। इस प्रकार दस रात्रि तकप्रयोग करें। इस प्रयोग से बुड्ढा फिर नौजवान हो जाता है। बाल सफेद नहीं होते। गिरे हुए दाँत फिर पैदा होते हैं। काम-शक्ति को पूरी ताकत मिलती है और मुख-मंडल खिल जाता है।

(३) आक के दूध को १२ पहर तक गाय के घी में खरल करना चाहिये। इसमें से एक रत्ती घृत प्रतिदिन मूत्रेंद्रिय पर मालिश करने से हस्तमैथुन द्वारा पैदा हुई नपुंसकता मिटती है।

आक का दूध निकालने की विधि—

कई औषधियों को तैयार करने और धातुओं को फूंकने के लिये वैद्यों को आक के दूध की दिन-रात आवश्यकता हुआ करती है, मगर इस दूध को निकालना बड़ा कठिन काम है। इसलिये इसकी एक सरल विधि मिफ्ताहुल खजाइन के ग्रन्थकार ने लिखी है जो इस प्रकार है—

"आक का एक पुराना झाड़ जड़ सहित उखाड़ कर जड़ की मिट्टी को भली प्रकार से साफ कर लें, फिर उसकी जड़ से ऊपर का छिलका इस तरह छील डालें, जैसे मूली गाजर इत्यादि को छीला

जाता है। जड़ की छाल छुड़ा कर सम्पूर्ण झाड़ को किसी बड़े बर्तन में रख दें। उस बर्तन में सारे झाड़ का दूध अपने आप जड़ की राह से इकट्ठा हो जायगा। इस विधि से विना कष्ट के सेरों दूध इकट्ठा हो जाता है।

आग के द्वारा धातुओं का फूंकना—

अभ्रक भस्म—शुद्ध धान्याभ्रक ❀ को लेकर आँकड़े के दूध में एक दिन तक अच्छी तरह से घोटकर उसकी दो २ रुपये भर की टिकड़ियाँ बना लेना चाहिये। इन टिकड़ियों को धूप में सुखाकर, सराव-संपुट में रखकर, जंगली कंडों की आँच में गजपुट में रखकर, फूंकना चाहिये। इस प्रकार ५० बार इन टिकड़ियों को आक के दूध में घोट २ कर गजपुट में फूंकना चाहिये। उसके पश्चात् भस्म को हथेली में घिसकर धूप में रखकर देखना चाहिये। अगर उसमें जरा भी चमक नजर आवे तो दस-पाँच पुट और देना चाहिये। जब भस्म बिल्कुल निश्चंद्र अर्थात चमक रहित हो जाय, तब उसे बड़ की अन्तरछाल के काढ़े में घोट २ कर तीन पुट और देना चाहिये। इस प्रकार उत्तम भस्म तैयार हो जायगी।

इस भस्म को १।। रत्ती से ३ रत्ती तक की मात्रा में शहद के साथ लेने से सब प्रकार की कमजोरी, क्षीणता, धातुक्षय, खाँसी, क्षय, कफ, श्वास इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। पान के रस के साथ लेने से सर्दी के विकार, निमोनियाँ खाँसी और श्वास में लाभ होता है।

साँभर के सींग की भस्म—साँभर के सींग को लेकर उसके चार २ इंच के लम्बे और उँगली के बराबर मोटे टुकड़े कर, उन्हें २४ घंटे तक आक के दूध में भिगोकर रखना चाहिये। फिर जंगली कंडों की भरी हुई सिगड़ी में उन्हें रखकर जलाना चाहिये। यह जलाने की क्रिया खुले स्थान पर करना चाहिये, क्योंकि इसमें से बहुत दुर्गन्ध निकलती है। जब धुआं बंद हो जाय और वे टुकड़े जल जायँ, तब उन्हें निकाल कर ठंडे करके पीस लेना चाहिये। इस चूर्ण को आंकड़े के दूध में खरल करके दो २ तोले की टिकड़ियाँ बनाकर सुखा लेना चाहिये। सूखने पर इन टिकड़ियों को मिट्टी की हांडी में रखकर उस पर ऐसी ढँकनी लगाना चाहिये, जिसके बीच में उँगली के बराबर छेद हो। फिर इस हांडी को गजपुट में रखकर फूंक देना चाहिये। ठंडा होने पर निकालने से इसमें सफेद रंग की उत्तम भस्म प्राप्त होगी। अगर इसका रंग बराबर सफेद नहीं हुआ हो तो इसी प्रकार एक पुट और देना चाहिये।

इस भस्म को ३ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ देने से पसली का दर्द, खांसी, निमोनिया, डिब्बा, इनफ्ल्यूएन्झा, सर्दी और सांस लेने के कष्ट में बड़ा लाभ होता है।

शंखभस्म—अच्छे बड़े शंख को लाकर उसको आग में गरम कर के दो-तीन दफे नीम्बू के रस में बुझा लेना चाहिये। इससे वह शुद्ध होकर उसका चूर्ण हो जायगा। शंख के इस चूर्ण को आँकड़े के दूध में घोटकर टिकड़ी बना लेना चाहिये। इस टिकड़ी को आँकड़े के फूलों की लुग्दी में रखकर, सराव-संपुट में रख, कपड़-मिट्टी कर, गजपुट में फूंक देना चाहिये। इस प्रकार २१ बार उसे आँकड़े के दूध में घोट २ कर गजपुट में फूंकना चाहिये, जिससे अति उत्तम प्रभावशाली शंखभस्म तैयार

❀ नोट—धान्याभ्रक बनाने की विधि पहले इसी ग्रन्थ में अभ्रक के प्रकरण में दी जा चुकी है।

होगी। इस भस्म को ३ से ६ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ देने से पेट के तमाम दर्द, वायुगोला, अतिसार, अजीर्ण, आफरा और खाँसी, कफ, श्वास, मन्दाग्नि और यकृत की दुर्बलताओं का नाश होता है।

नागभस्म—शुद्ध किये हुए सीसे को लोहे की कढ़ाई में डालकर उसको आग पर चढ़ाकर, जब वह पिघल जाय, तब उसमें आंकड़े के हरे फूल थोड़े २ डालते हुए लोहे की चमची से हिलाते जाना चाहिये। ८ घंटे तक इस प्रकार करने से जब उसकी भस्म हो जाय, तब उसे उतार कर ठंडा करके कपड़े से छान लेना चाहिये। इसमें जो सीसे का कच्चा भाग निकले उसे फिर आग पर चढ़ाकर आँकड़े के फूलों के साथ जलाना चाहिये। फिर इस सब भस्म को इकट्ठी कर उसका जितना वजन हो उससे बारहवाँ भाग शुद्ध मैंसल डालकर उसे अड़ूसे के पत्तों के रस में या गवांरपाठे के रस में घोट-कर टिकड़ी बनाकर हलके गजपुट में फूंकना चाहिये। इस प्रकार दस-बारह बार उसे घोट २ कर गज-पुट में फूंकना चाहिये जिससे उत्तम पीले रंग की भस्म तैयार हो जायगी।

इस भस्म को एक से दो रत्ती की मात्रा में शहद के साथ लेने से प्रमेह, प्रदर, वीर्य की कमजोरी श्वास गुल्म वगैरह रोग दूर होते हैं।

इसके सिवाय और भी अनेकों भस्में आँकड़े के दूध के संयोग से तैयार होती है, जिनका वर्णन यथा स्थान किया जायगा। शायद ही कोई भस्म की विधि ऐसी होगी, जिसमें आँकड़े के दूध को योजित न किया गया हो। इसी बात को लक्ष्य में रखकर शायद शार्ङ्गधर-संहिता में यह श्लोक कहा गया है—

श्लोक—"शिला गंधार्क दुग्धाक्ताः, स्वर्णाद्याः सर्वधातवः।
म्रियंते द्वादश पुटैः, सत्यं गुरु बचो यथा॥"

शिलागन्ध (गन्धक) और आक (मन्दार) के दूध में भिगोकर सुवर्ण से लेकर सब प्रकार की धातुएँ मारी (भस्म) जाती हैं, बशर्ते कि उनको इसी प्रकार बारह बार भावनाएँ दी जाएँ। यह बात गुरु के कहे हुये वचन के प्रमाण के अनुसार सत्य है।

उपरोक्त सारे अवतरणों से यह मालूम होता है कि प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों ने और यूनानी हकीमों ने इस औषधि के अनेकों प्रभावशाली और दिव्य गुणों का अनुभव किया था। आज भी यह औषधि उसी प्रभाव के साथ आयुर्वेद में अपना काम कर रही है।

आकाहूली

वर्णन तथा गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी ग्रंथों के अन्दर यह एक प्रसिद्ध बूटी मानी गई है, जो खास तौर से बवासीर में लाभदायक है। यह पहले दर्जे में गरम और खुश्क मानी गई है। पुट्ठों और जोड़ों को यह हानि पहुँचाती है। इसका प्रतिनिधि खुरपे का शाक है तथा इसके दर्प को नष्ट करने वाले शहद और अदरख हैं।

मुहीत आज़म के मतानुसार यह औषधि पेट के कीड़े, कफ तथा पित्त के विकार और प्रमेह को दूर करती है। इसको ७ माशे की मात्रा में, ७ कालीमिर्च के साथ ठंडाई की तरह पीसकर आधपाव पानी के साथ छानकर रोजाना पीने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

बुस्तानुल-मुफरीदात के मतानुसार यह सूजन को उतारने वाली और मिचलाहट (मतली) तथा पित्त की दस्तों में लाभ पहुँचाती है।



आगनाद

नाम—

संस्कृत—अम्बष्टपाठा, वनतिक्तिका। हिन्दी—आगनाद। बंगाली—अकनदी। नेपाली—तम्बार्कि। उड़िया—ओकनुभिंडी। लेटिन—Stephania Hernandifolia. (स्टेफनिया हरनँडी-फ़ोलिया)

वर्णन—

यह एक प्रकार का पराश्रयी झाड़ीनुमा वृक्ष है। इसकी शाखाएँ बड़ी नाजुक होती हैं। इसके पत्ते ऊपर कुछ चिकने और नीचे की तरफ कुछ हलके हरे रंग के रहते हैं। इसके फूल नर और नारी दो तरह के होते हैं। यह पौधा पूर्वीय बंगाल, आसाम तथा पश्चिमीय और पूर्वीय सामुद्रिक किनारों पर होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि प्रायः पाठा (Cissampelos Poreira) के स्थान पर काम में ली जाती है। यह कड़वी, संकोचक, सरलता से पचने लायक तथा ज्वर, अतिसार, मूत्र सम्बन्धी बीमारियाँ और मंदाग्नि में बड़ी लाभदायक है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार वन-तिक्तिका, मंदाग्नि रक्तातिसार और मूत्र सम्बन्धी बीमारियों में बड़ी उपयोगी है। इसमें सेपॉनिन नामक एक पदार्थ निकलता है।

———

आड़ू

नाम—

संस्कृत—आरुक। **हिन्दी**—आड़ू। **बंगाली**—पीच। **अरबी**—खुज, परसिक। **पंजाब**—आरु। **फारसी**—शफ्तालू। **उर्दू**—अदूद। **अंग्रेजी**—Peach. (पीच)। **लेटिन**—Prunus Persica. (प्रूनस परसिका)

वर्णन—

वास्तव में यह वृक्ष चीन का है। योरप और पश्चिमी एशिया में भी यह बोया जाता है। भारतवर्ष में हिमालय पहाड़, मनीपुर और उत्तरी बर्मा में यह वृक्ष होता है। यह एक छोटे कद का झाड़ होता है। इसके फूल हलके गुलाबी रंग के और फल खट मीठे और गुठलीदार होता है। इसकी गुठली पर रेखाएँ होती हैं। इसके एक प्रकार का गोंद लगता है। इसकी जड़ की छाल रंगत के काम में आती है। इसकी गिरी में से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है। जो कड़वे बादाम के तेल की तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से आड़ू हृदय को बल देने वाला तथा प्रमेह, बवासीर, गुल्म और रक्तदोष को नष्ट करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और तर है। यह बात एवं कफ प्रकृति के लोगों को हानि पहुँचाने वाला और ज्वर पैदा करने वाला है। इसका प्रतिनिधि अमरूद और इसके दर्प को नाश करने वाले शहद और सोंठ हैं।

इसके पत्ते कृमिनाशक और घाव को भरने वाले होते हैं। ये धवलरोग और बवासीर में भी उपयोग में लिये जाते हैं। इसके फूल दूध बढ़ाने वाले होते हैं। इसके फल कामोद्दीपक, मस्तिष्क को बल देने वाले और खून को बढ़ाने वाले होते हैं। ये मुँह और कफ की दुर्गन्धि को दूर करते हैं। इसके बीजों का तेल गर्भ-स्रावक है। यह बवासीर, बहरापन, पेट की तकलीफ और कान के दर्द को मिटाता है। पंजाब के निवासी इस फल को कृमिनाशक वस्तु की तरह उपयोग में लेते हैं।

इंडो-चायना में इसकी छाल जलोदर रोग में लाभदायक समझी जाती है। इसके बीज कृमिनाशक और दुग्धवर्द्धक माने जाते हैं।

यूरोप में इसकी छाल और पत्ते शान्तिदायक, मूत्रल और कफ-निस्सारक माने जाते हैं। अँतड़ियों जलन की और पाकस्थली के दर्द पर भी यह बहुत मुफीद माना गया है। खांसी, कुक्कुर खांसी और वायु-नलियों के प्रदाह में भी यह दिया जाता है।

ट्रांसवाल में इसके पत्तों का शीतल क्वाथ उन लड़कियों को देते हैं, जिनको बहुत समय तक मासिक स्राव नहीं होता।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके फूल विरेचक हैं और इसका फल अग्निवर्द्धक और शान्ति-दायक है। इसमें (ूसिक एसिड नामक एक तत्व पाया जाता है।

वेलफ़ोर के मतानुसार इसका फल स्कर्व्हीरोग में लाभ पहुँचाने वाला, आमाशय को बल देने वाला और पाचक है।

इंडियन मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसका पका हुआ फल कोठे को मुलायम करने वाला और लघुपाकी है। इसकी पत्तियों का काढ़ा पेट के कृमियों को नष्ट करने वाला और अवसादक है।

एक अन्य यूनानी ग्रंथकार के मतानुसार इसके पत्तों का स्वरस १ छटांक की मात्रा में पीने से तथा पेड़ू पर पत्तों का लेप करने से पेट के कीड़े और केंचुए निकल जाते हैं। इसके फूल और गुठली बवासीर में लाभदायक है।

उपयोग—

विरेचन—इसके फूलों का क्वाथ पिलाने से हल्का विरेचन होता है।

आमाशय का शूल—इसके फल के रस में अजवायन का चूर्ण मिलाकर पिलाने से आमाशय का शूल मिटता है।

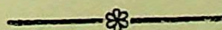
आँतों के कीड़े—इसके फल के रस में थोड़ी-सी सेंकी हुई हींग मिलाकर पिलाने से आँतों के कीड़े मरते हैं।

बच्चों के पेट के कृमि—इसके पत्तों का रस पिलाने से बच्चों के पेट में पड़ने वाले कृमि (चुरने) नष्ट होते हैं।

कर्णशूल—इसके बीजों का तेल कान में डालने से कान के दर्द और बहरेपन में लाभ होता है।

चर्म-रोग—इसके बीजों के तेल की मालिश करने से चमड़े पर होने वाली पीली फुंसियाँ मिटती है।

इसका उपयोग करने के लिये प्रायः इसका ठंडा काढ़ा (हिम) और इसका शर्बत ही उपयोग में लिया जाता है।



आतजौ

नाम—

फारसी—जौगन्दुम, जौविरहन। अरबी—सुल्त, सिल्त। यूनानी—तरागीश।

वर्णन—

यह एक प्रकार की छोटी जाति का जौ है, जो कि अरब और फारस में विशेष पैदा होता है। कोई २ इसे खन्दरूस भी कहते हैं। किसी २ ने इसको काल-मेध और यव-तिक्ता भी लिखा है। मगर वास्तव में यह एक दूसरी वस्तु है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पहिले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में तर है। इसका स्वाद कुछ मिठास लिये हुए फीका होता है। यह आमाशय को हानि पहुँचाता है। इसके दर्प को नष्ट करने वाली चीजें सौंफ, शक्कर और गाय का दूध है।

मुहीतआजम के मतानुसार यह मूत्रवर्द्धक और गुर्दे तथा बस्ती के मल को शुद्ध करने वाला है। इसका लेप सूजन और बढ़ी हुई तिल्ली को नाश करता है। इसके काढ़े में बैठने से बवासीर का दर्द शान्त होता है। इस काढ़े से मुँह धोने से मुँह की कांति निखर जाती है। इसकी अध-पकी रोटी को गरम-गरम सिर पर रखने से प्रलाप में लाभ होता है। यह औषधि खांसी और सीने की बीमारी में भी लाभदायक है।

आतरीलाल

नाम—

हिन्दी और यूनानी—आतरीलाल, इतरीलाल। फारसी—तुख्म खिलाले खलील। लैटिन—Anthriscus Cerefolium. (एंथ्रिसकस सेरीफोलियम)

वर्णन—

यह एक प्रकार की बूटी है, जो योरप तथा मिश्र में होती है। इसके बीज जंगली अजमोद की तरह होते हैं। यह वस्तु भारतीय बाजारों में करीब २ दुष्प्राप्य है। कोई २ औषधि विक्रेता इसके स्थान पर काकजंघा और बकुची के बीज देते हैं, मगर वह असली आतरीलाल नहीं है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यह औषधि तीसरे और चौथे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे के अंत में रुक्ष है। विशेष तौर से इस औषधि का उपयोग श्वित्र (सफेद दाग) और व्यंगरोग में किया जाता है। इसका उपयोग करने की कई रीतियाँ हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार है—

(१) पहले वमन-विरेचन से शरीर को शुद्ध करके उसके बाद ३॥ माशे आतरीलाल, ७ रत्ती अकरकरे के साथ पीसकर शहद में मिलाकर चटाना चाहिये और थोड़ी सिरके में पीसकर सफेद दाग के स्थानपर लेप करना चाहिये। उसके पश्चात् घंटा-दो-घंटा धूप में बैठना चाहिये। इसके परिणाम स्वरूप उस स्थान पर एक फोला पैदा होगा और उसके जरिये सफेद रंग का पानी बिना किसी तकलीफ के बाहर निकल जायगा। फिर उस स्थान पर दवा लगाना बंद करदें, जिससे खुरंट जमकर रोगी आराम हो जायगा।

(२) आतरीलाल ३॥ माशे, सुदाब की पत्ती १॥। माशे और साँप की काँचली १॥। माशे, इन सबको कूट, छानकर एक सप्ताह तक १० तोला अंगूरी शराब के साथ पिलावें। इससे बहुत शीघ्र रोगी श्वित्र के रोग से मुक्त होता है।

इसके अतिरिक्त यह औषधि मूत्रनिस्सारक, रजस्राव-प्रवर्तक, कृमिघ्न और गर्भघातक है। आमाशय और यकृत के रोगों में यह लाभकारी है। इसका लेप घाव को सुखाने वाला है तथा इसका शर्बत श्वासोच्छ्वास की नलियों को साफ करता है। इसके बीजों को पीसकर गर्भिणी के नाक में फूंकने से गर्भपात हो जाता है, इसलिये गर्भिणी स्त्री को इसका कोई प्रयोग नहीं करना चाहिये।

प्लाइनी के मतानुसार यह औषधि अत्यन्त सम्भोग से आई हुई शरीर क्षीणता को दूर करती है, और वृद्धावस्था की शक्तिहीनता में उत्तेजक प्रभाव पैदा करती है।

हकीम डिसकोरीडस के मतानुसार यह मूत्रनिस्सारक, आमाशय-बलप्रद और रोधोद्घाटक है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह वस्तु मूत्रल व अग्निप्रवर्द्धक है। यह कुछ आक्षेपनाशक भी मानी जाती है, इसमें इसेंशिअल ऑइल व ग्लुकोसाइड पाया जाता है।

इंडियन मेडिकल प्लांट्स के रचयिताओं ने आतरीलाल का लेटिन नाम Peristrobhe Bicalyeulata लिखकर उसका वर्णन किया है। मगर वास्तव में यह नाम काली अंधीझरिया का है, जिसका वर्णन यथास्थान पर किया जायगा।

आनिसुननफस

वर्णन तथा गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि मिस्र और शाम में अधिकतर पैदा होती है। यूनानी-चिकित्सा ग्रंथों में इस औषधि का उल्लेख पाया जाता है। उनके मतानुसार यह पहिले दर्जे में गर्म और रुक्ष है। इसका रस मस्तिष्क और अंतःकरण को बल देने वाला और आल्हादकारक है। इसके स्वरस का प्रयोग करने से आँख की फूली में लाभ होता है। इसके स्वरस से बनाई हुई शराब मादक और स्मरणशक्ति को बढ़ाने वाली है। इसके बीज कामोद्दीपक, सौंदर्यवर्द्धक तथा दूध, आर्त्तव, स्वेद, और मूत्रप्रवर्तक हैं। (आयुर्वेदीय-कोष)

आबनूस

नाम—

फारसी—आबनूस। **लैटिन—**Diospyros Ebinaster.

वर्णन—

यह एक तिंदु की जाति का हमेशा हरा रहने वाला पेड़ है। इसकी पत्ती सनोवर की पत्ती से कुछ बड़ी व फूल और बीज मेंहदी के बीज व फूलों की तरह होते हैं। इसका पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है, तब इसके सार की लकड़ी बहुत काली और वजनी हो जाती है। यह काली लकड़ी आबनूस के नाम से मशहूर है। यह पानी में डालने से डूब जाती है और इसे आग पर डालने से सुगन्ध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—मखज़नूल अदविया के मतानुसार आबनूस की लकड़ी का सार मूत्रनिस्सारक, पथरी को नष्ट करने वाला और नकसीर में लाभ पहुँचाने वाला है। इसके सार को बहुत महीन पीसकर आंख में आंजने से आंख की हल्की फूली, आँख की खुजली और रतोंधी में लाभ पहुँचता है, इसको शराब में मिलाकर लगाने से कंठमाला में लाभ होता है। इसके सूखे फलों का चूर्ण श्वेत-प्रदर और अतिसार में लाभ पहुँचाता है।

आम्बीहलदी

नाम—

संस्कृत—आम्रहरिद्रा, कर्पुरहरिद्रा, आम्रगन्धहरिद्रा, वनहरिद्रा। हिन्दी—आंबाहलदी, आमाहलदी। मराठी—आंबेहलद, राणहलुद। गुजराती—आंबहलद, वनहल्दर। तामील—कस्तूरीमंजल। तेलगू—कस्तूरीपसुपु। बङ्गाली-वनहलद। अरबी—जद्वार। लैटिन—Curcuma Aromatica. (करक्यूमा एरोमेटिका)।

वर्णन—

यह औषधि खास करके बंगाल और पश्चिमी प्रायद्वीप में होती है। इसकी जड़ें लम्बी और बहुत दूर तक फैली हुई होती हैं। उनमें कुछ गन्ध भी होती है। इसके पत्ते बड़े और हरे रंग के होते हैं। ऊपर से उनका अनेक प्रकार का रंग नजर आता है। पत्ते निकलने के बाद ही इसके फूल निकलने लगते हैं, जो सुगन्धित होते हैं। इसका कन्द, हलदी या शलगम की तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से आंबी हलदी शीतल, वात-रक्त और विष को नष्ट करने वाली, वीर्यवर्द्धक, सन्निपातनाशक, रुचिदायक, हलकी, अग्नि को दीपन करने वाली, सारक तथा कफ, उग्रव्रण, खांसी, श्वास, हिचकी, ज्वर और चोट से उत्पन्न हुई सूजन को नष्ट करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में उष्ण और रुक्ष, स्वाद में कड़वी और बदजायका होती है। यह हृदय को नुकसान पहुँचाती है। इसके प्रतिनिधि बकुची और हलदी हैं।

यह बातरोग को नष्ट करने वाली, पथरी को निकालने वाली और मूत्रावरोध, खुजली और चोट पर लाभ पहुँचाने वाली है।

डायमाक के मतानुसार जंगली हलदी के गुण, धर्म विशेष कर सादी हल्दी के समान है। चोट तथा मोच इत्यादि में हिन्दुस्तानी लोग दूसरी औषधि के साथ लेपद्रव्यों में इसका उपयोग करते हैं। मोतीज्वर वगैरह के दबे हुए दानों को उभाड़ने के लिये भी कड़वी और सुगन्धित औषधियों के साथ इसका उपयोग होता है।

एन्सली के मतानुसार दक्षिणी भारत के मुसलमान इसे सर्पदंश में एक मूल्यवान औषधि समझते हैं। वे इसे थोड़ी २ मात्रा में हरताल और अजवायन के साथ काम में लेते हैं। मगर महेस्कर और केस के मतानुसार सर्पदंश में यह औषधि बिल्कुल निरुपयोगी है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पेट के आफरे को दूर करने वाली होती है। यह सर्पदंश में भी उपयोगी मानी जाती है। इसमें .६ इसेंशियल ऑईल पाया जाता है।

उपयोग—

सर्पविष—तबकिया हरताल, कूट और अजवायन के साथ में इसकी गोली बनाकर देने से सर्प के विष में लाभ होता है।

मस्तक पीड़ा—लोबान के साथ इसको पीसकर गरम कर ललाट पर लेप करने से स्नायु सम्बन्धी मस्तक पीड़ा मिटती है।

उदर पीड़ा—इसका धुआँ पीने से पेट का दर्द शान्त होता है।

———:०:———

आम

नाम—

संस्कृत—आम्र, फलश्रेष्ठ, कामशर, कामवल्लभ, वसंतदूत इत्यादि। **हिन्दी**—आम। **बंगाल**—आम। **मराठी**—आँवा। **गुजराती**—आँबो। **कर्नाटकी**—माविनफल। **तेलंगी**—माविडी। **इंग्लिश**—Mango.। **फारसी**—आँबा। **अरबी**—अंबज। **लेटिन**—Mangifera Indica. (मेंगिफेरा इंडिका)।

वर्णन—

आम के वृक्ष भारतवर्ष की एक बहुमूल्य सम्पत्ति है और ये सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस देश में शायद ही ऐसा कोई भाग्यहीन मनुष्य होगा, जिसने इस अमृतफल का रसास्वादन नहीं किया हो। इसलिये इस फल के विशेष परिचय की यहाँ पर आवश्यकता नहीं। आम की कई जातियाँ होती हैं। जो आम जंगलों में अपने आप पैदा होते हैं, उन्हें रानी आम कहते हैं। जो आम खेतों और बाग-बगीचों में गुठली बोकर पैदा किये जाते हैं, उन्हे देशी आम कहते हैं और जो आम ऊंची जाति के आमों पर से कलम बाँधकर तैयार किये जाते हैं, वे कलमी आम कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त आकार, रूप, रंग, स्वाद, गुण इत्यादि के फरक से इनकी सैकड़ों तरह की जातियाँ जैसे—हाफुस, पायरी, सफेदा, लंगड़ा, नीलम, तोतापरी, राजभोग, कृष्णभोग, मोहनभोग, गुलाबखास इत्यादि होती हैं। फिर भी कलमी और देशी आमों में एक महत्व का भेद होता है और वह यह है कि देशी आम में रेशा होने से उसका रस पतला होता है, जो चूसकर खाने में आ सकता है, मगर कलमी आम में रेशा नहीं होने से वे केवल काट कर खाने में आते हैं औषधि कार्य में कलमी आम की अपेक्षा चूसने के लायक देशी आम ज्यादा गुणकारी होते हैं। क्योंकि वे आसानी से पचजाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आम के वृक्ष का छिलके से लेकर फल तक प्रत्येक अंग-प्रत्यंग औषधि के कार्य में आता है। इसलिये उन सबका एक साथ उल्लेख करने की अपेक्षा अलग २ उल्लेख करना ज्यादा उपयुक्त होगा।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से आम का कच्चा फल कसैला, खट्टा, रुचिकारक तथा वात-पित्त को पैदा करने वाला है। यह आँतों को सिकोड़ने वाला, गले की तकलीफों को दूर करने-वाला तथा अतिसार, मूत्रव्याधि और योनिरोग में लाभ पहुँचाने वाला है। कच्चे आम की अमचूर खट्टी, स्वादिष्ट, कसैली, भेदक और कफ, वात को हरने वाली है।

पका हुआ आम—मधुर, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, सुखदायक, भारी, वातविनाशक, कांतिवर्द्धक, शीतल, प्रमेहनाशक तथा व्रण, श्लेष्म और रुधिर के रोगों को दूर करने वाला है।

आम का मोर—शीतल, वातकारक, मलरोधक, अग्निदीपक, रुचिवर्द्धक तथा कफ, पित्त, प्रमेह, प्रदर और अतिसार को नष्ट करने वाला है।

आम की अंतर्छाल—आम की अन्तर्छाल कसैली, मलरोधक, दाहकारक तथा पित्त, प्रमेह और कफ को नाश करने वाली है।

आम की जड़—आम की जड़ कसैली, मलरोधक, शीतल, रुचिदायक, सुगंधित तथा कफ और वात को नाश करने वाली है।

आम के पत्ते—आम के कोमल पत्ते कसैले, मलरोधक, रुचिकारक तथा वात, पित्त और कफ को हरने वाले हैं।

आम की गुठली—आम की गुठली मीठी, तुरी और कुछ कसैली होती है। यह वमन, अतिसार और हृदय के आस-पास की पीड़ा को दूर करती है। इसके बीज का तेल कसैला, स्वादिष्ट, रूखा, कड़वा तथा मुखरोग, कफ व वात को दुरुस्त करता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से आम की छाल संकोचक रक्तस्राव को बंद करने वाली तथा वमन और अतिसार को नष्ट करने वाली है। इसके पत्ते बवासीर में लाभ पहुँचाते हैं। इसके पत्तों का धूम्र-पान, कुक्कुर खाँसी को नष्ट करता है।

इसके फूल कफनाशक और रक्तवर्द्धक हैं। इसका फल सुगंधित, मृदु, सुस्वादु और पौष्टिक है। यह यकृत और तिल्ली के लिये लाभदायक है। मुँह की बदबू को दूर करता है, मस्तिष्क को साफ करता है। आलस्य और शरीर की जलन को हटाता है। सौंदर्यवर्द्धक है तथा कफ, बवासीर और यकृत की पीड़ा में उपयोगी है। इसका बीज आँतों के लिये संकोचक है। यह जीर्ण अतिसार में उपयोगी है, ठंडा और कामोद्दीपक है।

इंडियन मेडिकल प्लांट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसकी छाल और इसका गूदा संकोचक माना जाता है और रक्तस्राव, रक्तातिसार तथा अन्य पीड़ाओं में काम में लिया जाता है। इसके गूदे का काढ़ा, अदरख और बेल की जड़ के साथ रक्तातिसार में दिया जाता है। इसकी गिरी का रस नकसीर को बन्द करता है। इसके जलते हुए पत्तों का धूम्रपान गले की तकलीफ में मुफीद माना जाता है। इसकी छाल का रस गरमी की बीमारी में काम में आता है। पश्चिमी आफ्रिका के कुछ हिस्सों में आम की अन्तर्छाल बवासीर को ठीक करने में दी जाती है। मेडागास्कर में इसकी छाल संकोचक मानी जाती है और इसके फल ज्वरनिवारक समझे जाते हैं। इसके बीज संकोचक और कृमिनाशक माने जाते हैं। अमेरिका के अन्दर श्लेष्मिक झिल्लियों को बल देने के लिये इनका अर्क मुफीद माना जाता है। डिफ्थीरिया तथा गले के दूसरे रोगों में भी यह अपना अच्छा असर दिखलाता है।

सुश्रुत और शार्ङ्गधर ने इसकी जड़ की छाल और पत्तों को सर्प के विष को नष्ट करने वाला माना है, मगर केस और महेस्कर के मतानुसार साँप के जहर में इसके सभी अवयव निरुपयोगी सिद्ध हुए हैं।

इंडियन मटेरिया मेडिका के लेखक डाक्टर नॉडकरनी के मतानुसार आम का फल किंचित कोठे को मृदु करने वाला, मूत्रल, पौष्टिक और रसायन है। इसका कच्चा फल आमाशय को बल देने वाला और स्कर्व्ही रोग को नष्ट करने वाला है। भुने हुए कच्चे आम के गूदे में शक्कर मिलाकर तैयार किया हुआ, अवलेह हैजे व प्लेग के दिनों में सेवन करने से बड़ा लाभप्रद होता है। इसके फल और फल के छिलके से पैदा किया हुआ अर्क डिफ्थीरिया और कंठमाला के रोगों में लाभदायक होता है।

शरीर पर लू लगने की बीमारी में कच्चे आम को भून कर, उसका रस निकाल कर शक्कर मिला कर पिलाने से बड़ा लाभ होता है।

डाक्टर मोहिउद्दीन शरीफ के मतानुसार कलमी आम का गूदा बहुत पोषक होता है। इसका प्रभाव आँतों पर बहुत अच्छा होता है।

डाक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार कचा आम स्कर्व्ही रोग में बड़ा लाभदायक है और पक्का आम रसायन, तृप्तिदायक, पौष्टिक और किंचित !मृदुरेचक है।

डाक्टर चोपरा के मतानुसार इसका फल विरेचक, मूत्रल और संकोचक है। इसका छिलटा गर्भाशय के रक्त बहाव में, मुँह से बलगम के साथ खून जाने में एवम् रक्तमय काले दस्त पर काम में लिया जाता है, इसके पत्ते बिच्छू के काटने पर भी लाभदायक है।

आम का रस और मानव शरीर की भीषण व्याधियाँ—

गुजरात के अन्दर कई प्रसिद्ध वैद्यों ने मनुष्य शरीर में होने वाले महान रोगों पर जैसे—क्षय, संग्रहणी, श्वास, रक्त-विकार, वीर्य की कमजोरी इत्यादि रोगों पर केवल आम के रस और दूध पर मनुष्यों को रखकर बड़ी सफलता प्राप्त की है। उनका कथन है कि उत्तम

जाति के पके हुए आमों में मनुष्य शरीर को पोषण करने वाले प्रायः सभी तत्व विद्यमान रहते हैं। इसके मीठे रस में विटामिन (A) "ए" और विटामिन (C) "सी" दोनों प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इन में से व्हिटामिन "ए" रोगी को बाहर के विषों और कीटाणुओं के प्रभाव से बचाता है, और व्हिटामिन "सी" चर्मरोगों को नष्ट करता है। पके हुए फलों का रस अत्यंत पौष्टिक और बलवर्द्धक माना जाता है और यदि उसे दूध के साथ खाया जाय तो उसके गुणों में और भी वृद्धि हो जाती है। कई एक बीमारियों में जिनमें रोगी को केवल दूध के पथ्य पर रखने की आवश्यकता होती है, उनमें कई रोगियों को दूध अनुकूल नहीं पड़ने से विवश होकर छोड़ देना पड़ता है, ऐसे समय में अगर आम के रस के साथ में दूध का उपयोग किया जाय तो दोनों का सम्मिलित प्रयोग बड़ा लाभदायक सिद्ध होता है। इस रस में मृदुरेचक गुण होने से यह दस्त को साफ लाता है। इस कारण जिन लोगों को कब्जियत रहती है, उन लोगों के लिये यह पथ्यरूप सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त आमाशय और शोष सम्बन्धी रोगों में भी यह बहुत फायदा दिखलाता है। इसलिये इसका प्रयोग करने से संग्रहणी, श्वास, अरुचि, अम्लपित्त, आंतों की व्याधियाँ, यकृतवृद्धि इत्यादि रोगों में बड़ा लाभ होता है। क्षय के रोग में भी यह रक्त, मांस, वीर्य, ओज व शक्ति को बढ़ाने के लिये बड़ा उत्तम माना जाता है, इसकी प्रयोग विधि इस प्रकार है—

प्रयोग विधि—

आम के रस का जिस समय प्रयोग जारी किया जाय, उस समय आम के रस और दूध को छोड़कर बाकी सब भोजन बंद कर देना चाहिये। आम रस के साथ गाय का दूध ही विशेष उत्तम होता है। पर यदि क्षयरोग को मिटाने के लिये इसका उपयोग करना हो तो बकरी का दूध भी श्रेष्ठ है। दूध तुरंत का निकाला हुआ धारोष्ण मिल जाय तो बहुत ही अच्छा। अगर न मिल सके तो उसे साधारण तौर से गरम करके पीछा ठंडा करके उपयोग में लेना चाहिये। आम उत्तम जाति का देशी लेना चाहिये। खट्टे अथवा अधिक पके हुए आम का कभी उपयोग नहीं करना चाहिये। आम का उपयोग करने के पहले उसे पानी में ठंडा कर देना चाहिये, जिससे उसकी गरमी शांत हो जाय। उसके बाद उसको अच्छी तरह से धोकर साफ करके उसका बींट अलग कर देना चाहिये और बींट के पास का थोड़ा-सा रस निकाल कर फेंक देना चाहिये। फिर उस आम को धीरे २ चूसना चाहिये। कई लोग उसको चूसने के बदले उसका रस निकाल कर उपयोग करते हैं, मगर बाहर का निकाला हुआ रस वातजनक और पचने में भारी हो जाता है। इसलिये उसको चूसकर खाना ही उत्तम है। जिस समय रस का उपयोग किया जा रहा हो, उस समय अगर वायु और कफ का कुछ जोर दिखलाई दे तो अदरक को कतर के उसमें थोड़ा-सा सेंधा नमक मिलाकर खाना चाहिये। साधारण तौर से साधारण प्रकृति के व्यक्ति को दिन भर में एकबार आम का रस और एकबार दूध का सेवन करना चाहिये। पर यदि पाचन-क्रिया आज्ञा दे, तो दो बार आम का रस और दो बार दूध का सेवन भी किया जा सकता है। पहले दूध का उपयोग करके उसके बाद आम के रस का उपयोग करना चाहिये।

इस प्रकार एक महीने से दो महीने तक केवल आम के रस के ऊपर रहने से पाचन-क्रिया शुद्ध होकर लम्बे समय की कब्जियत, मंदाग्नि, क्षय, दमा और हृदयरोग के रोगियों को बहुत लाभ होता है, शरीर में नव-जीवन मालूम होता है, खून बढ़ता है, शक्ति आती है और चेहरा सुर्ख हो जाता है।

शोष क्षय के लिये आम का रस—एक पत्थर या चीनी मिट्टी के बर्तन में उत्तम पके हुए आमों का रस पन्द्रह से बीस तोला डालकर, उसमें शुद्ध मधुमक्खियों की शहद ५ तोला, मिलाकर सवेरे सेवन करना चाहिये। इसी प्रकार इतनी ही मात्रा में शाम को भी सेवन करना चाहिये। इसके सिवाय इसके बीच के टाइम में दो तीन दफे गाय अथवा बकरी का धारोष्ण दूध पीना चाहिये। पानी जहाँ तक बने बिल्कुल नहीं पीना चाहिये न दूसरी कोई वस्तु ही खाना चाहिये। अगर पानी के बिना बिल्कुल ही न चले तो बहुत ही थोड़ी मात्रा में थोड़ा-सा अदरख का रस मिलाकर पीना चाहिये।

इस प्रकार एक महीने से दो महीने तक यह प्रयोग जारी रखने से जीर्णज्वर, शरीर का सूखना, खाँसी इत्यादि उपद्रव दूर हो कर बल, वीर्य, रक्त, मांस और ओज की वृद्धि होती है।

संग्रहणी और उदर रोगों के लिये आम—प्रातःकाल दो उत्तम जाति के पके हुए आमों को लेकर, उनको छीलकर उनको चाकू से कतर लेना चाहिये। फिर एक चीनी मिट्टी के या कलई के बर्तन में उन्हें डालकर, उनके ऊपर औटा कर ठण्डा किया हुआ दूध इतना डालना चाहिये कि वे टुकड़े उसमें डूब जायँ। कुछ समय के बाद उन टुकड़ों को चमची से निकाल कर अच्छी तरह चबा कर खा जाना चाहिये और उसके ऊपर वही दूध पी लेना चाहिये। उसके पश्चात् दिन भर में तीन २ घंटे के अन्तर से पाव २ भर दूध पीते रहना चाहिये। इस प्रकार दूध और आम के सिवाय और कोई भी वस्तु खाने-पीने के उपयोग में नहीं लेना चाहिये। ऐसा करते २ जब दस्तों की संख्या घटने लगे तब दोपहर के टाइम में भी दो पके हुए आम की चीरें दूध के साथ देना प्रारंभ कर देना चाहिये।

इस प्रकार रोग के अनुसार तीन-चार सप्ताह तक यह प्रयोग चालू रखने से भयंकर संग्रहणी रोग को काबू में लिया जा सकता है। ऐसे भयंकर रोगों के लिये दो-तीन महीने तक यह प्रयोग करने से अत्यंत लाभदायक सिद्ध होता है। पर यदि इतना समय न मिल सके तो कम से कम एक महीने तक तो अवश्य इस प्रयोग का उपयोग करना चाहिये।

उपयोग और बनावटें—

श्वेत प्रदर—डाक्टर नॉडकर्नी का मत है कि श्वेत-प्रदर, खूनी बवासीर और फेंफड़े के द्वारा रक्तस्राव होने की दशा में तथा कृमिरोग में आम की छाल का रस या इसका ठंडा काढ़ा ४ तोला और चूने का नितरा हुआ पानी १ तोला, मिलाकर सात दिन तक लेने से बहुत लाभ होता है। आम के पेड़ की छाल और फल के छिलके का रस एक चाय के चम्मच की मात्रा में एक छटांक जल में

मिलाकर दो २ घंटे के अंतर से देने से फेंफड़ा, जरायु और आँतों के द्वारा होने वाला रक्तस्राव बंद होता है।

सुजाक—आम के वृक्ष की छाल २ तोला ४ माशा, लेकर जौकुट करके पावभर जल में भिगो दें। सबेरे उसे मल, छानकर पीएँ। इस प्रकार सात दिन तक पीने से सुजाक में लाभ होता है।

गले के रोग—आम के सूखे पत्तों को चिलम में रखकर पीने से गले के रोग मिटते हैं।

अतिसार-(१) आम की गुठली, बेलगिरी और मिश्री तीनों के समान भाग चूर्ण को तीन माशे से छः माशे तक की मात्रा में देने से अतिसार मिटता है।

(२) इसकी गुठली की गिरी का लपटा करके देने से कष्ट-साध्य अतिसार भी मिट जाता है।

रक्त-प्रदर—इसकी गुठली की गिरी का १०-१५ रत्ती चूर्ण खिलाने से रक्त-प्रदर, खूनी बवासीर और आँतों के कीड़ों का नाश होता है।

हिचकी—आम के पत्तों को चिलम में रखकर पीने से हिचकी मिटती है।

लू लगना—कच्ची केरी को भूभल में भूनकर उसका रस निकाल कर उसमें मिश्री मिलाकर पीने से लू का असर मिटता है।

आग का जलना—इसकी गुठली की गिरी को पानी में भिगोकर पीसकर आग के जले हुए स्थान पर लगाने से फौरन ठंडाई हो जाती है।

आमातिसार—आम की गुठली की गिरी, गोंद और इन्द्रजौ समान भाग ले पीसकर चूर्ण कर एक माशे की मात्रा में दिन में दो-तीन बार देने से जवान मनुष्य का अतिसार मिटता है।

खूनी बवासीर—इसकी कोमल कोंपलों को पानी के साथ पीसकर, थोड़ी-सी शक्कर मिलाकर पिलाने से खूनी बवासीर बन्द हो जाता है।

दाद—इसके फल को तोड़ते समय उसके बींठ में से जो चेप निकलता है, उसको लगाने से दाद मिटता है।

मकड़ी का विष—आमचूर को पीसकर उसका लेप करने से मकड़ी का विष नष्ट होता है।

कर्ण पीड़ा—इसके पत्तों के रस को गुन-गुना करके कान में डालने से कर्णशूल मिटता है।

बवासीर—इसके और जामुन के पत्तों के सवा २ तोले स्वरस को और यदि स्वरस न निकल सके तो पानी के साथ निकाले हुए रस में पावभर दूध मिलाकर थोड़ी मिश्री डालकर ८ दिन तक पीने से खूनी और बादी के बवासीर मिटते हैं।

नेत्र पीड़ा—केरी को पीसकर आँख पर बाँधने से नेत्र-पीड़ा मिटती है।

नक्सीर—इसकी गुठली की गिरी को पीसकर सूँघने से नक्सीर में फायदा होता है।

रक्त-स्राव—बवासीर, प्रदर, अतिसार या और भी किसी कारण से होने वाला रक्तस्राव, आम की अन्तर्छाल का रस २ से ४ तोला दिन में दो बार पीने से बन्द होता है।

बनावटें—

आम्रपाक—पके हुए आमों का रस ४ सेर, मिश्री १ सेर, घी १ पाव, सोंठ का चूर्ण आधापाव, कालीमिर्च का चूर्ण १ छटांक, पीपर का चूर्ण आधी छटांक और पानी १ सेर, इन सबको मिलाकर कलईदार कढ़ाई या मिट्टी की कढ़ाई में मन्दाग्नि से पकाओ और आम की लकड़ी से चलाते रहो। जब रस गाढ़ा हो जावे, तब नीचे उतार लो।

उतारकर धनियां, सफेद जीरा, चीते की छाल, तेजपात, नागरमोथा, दालचीनी, स्याहजीरा, पीपरामूल, नागकेशर, छोटीइलायची, लौंग और जावित्री का महीन पिसा-छना चूर्ण एक २ तोला मिला दें। जब एक दम शीतल हो जावे, तब आधपाव शहद मिला दो।

इसकी मात्रा एक तोले से चार तोले तक की है। इसे भोजन से पहले खाना चाहिये और ऊपर से मिश्री मिलाकर दूध पीना चाहिये। यह आम्रपाक बलवीर्य पैदा करने वाला और रतिशक्ति बढ़ाने वाला है। इसके सिवाय संग्रहणी, क्षय, दमा, अम्लपित्त, रक्तपित्त और पीलिया वगैरह अनेक रोगों में इससे आराम होता है। इसको सदा खाने वाला रोग रहित, पुष्ट और महाबलवान हो जाता है। वीर्य की कमी से जो नपुंसक हो गये हैं, उनके लिये यह बड़ा लाभदायक है।

स्वर शोधक बटी—आम के सूखे मौर ३ तोला, मुलेठी का सत ३ तोला, आँवला ३ तोला, चनकवाव १ तोला, छोटी इलायची के बीज १ तोला, बरियारी १ तोला, मिश्री ४ तोला, इन सब चीजों का कपड़-छन चूर्ण करके, उस चूर्ण को बीज निकाली हुई काली दाखों में अच्छी तरह से घोटना चाहिये। फिर उसकी चने के बराबर गोलियाँ बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से एक २ गोली दो २ घण्टे के अन्तर से मुँह में रखने से खाँसी मिटती है, कंठ साफ होता है और स्वर सुरीला हो जाता है। (जंगलनी जड़ी-बूटी)।

आम्बगुल

नाम—

बंगाल—गुअरा। बंबई—नागरी, नरगी, आम्बगुल। बर्मा—मिंगु। कनाड़ी—हालिगेबलि, हेजला, हंसिबालि, केराहुलि। गढ़वाल—लोहारू। कुमायूँ—घिवेन, मिजहोला। हिन्दी—घिवेन, आम्बगुल। तामील—कुलंगि,कुलारि। लैटिन-Elaeagnus Lotifolia. (इलेगिनस लोटिफोलिया)

वर्णन—

यह एक प्रकार की बहुशाखी झाड़ी है यह अक्सर ऊँचे वृक्षों पर चढ़ती है। इसकी छाल फिसलनी होती है। इसके पत्ते बर्छी के आकार के और फिसलने होते हैं। इनके ऊपर छोटा व सफेद रुआँ रहता है। इसके फूल बड़े २ गुच्छों में लगते हैं। इसका फल हलके गुलाबी रंग का होता है और उसमें आठ मजबूत धारियाँ रहती हैं, यह वनस्पति विशेष कर भारतवर्ष और सीलोन के पहाड़ी भागों में तथा चीन और मलायाद्वीप समूह में होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके फूल हृदय को बल देने वाले और संकोचक माने जाते हैं।

ग्रिफिथ के मतानुसार इसका फल काश्मीर में संकोचक औषधि के रूप में काम में लिया जाता है।

आमपीच

वर्णन—

यह एक बड़ा फलदार वृक्ष होता है जो ऊँचाई में नासपाती के पेड़ के बराबर या उससे भी ऊँचा होता है। इसके पत्ते आम के पत्तों से छोटे और फल बेर के बराबर होते हैं। इसका फल कोई खट्टा, कोई मीठा, कोई बेस्वाद होता है। इन फलों पर खस २ के दानों की तरह सफेद २ दाग होते हैं। इसके फल का छिलका पतला, गुदा सफेद और भीतर काले रंग का घुंगची के बराबर बीज होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी प्रकृति शीतल और रुक्ष है। इसका फल खाने से कारबंकल (Carbuncle.) नामक सांघातिक फोड़ों में बहुत लाभ होता है। यह रक्तोत्पादक भी है। यह फल गुर्दे को नुकसान पहुँचाने वाला है और इसके दर्प को नाश करने वाली शहद है।

आम्रगंधक

नाम—

संस्कृत—अम्बुज, आम्रगंधक । हिन्दी—कुत्र । बंगाली—कर्पूर ; मलायलम—मंगानरी । मराठी—अम्बुली । तेलगू—इनाटा । लेटिन—Limnophila Gratioloides. (लिम्नोफिला-ग्रेटिग्रोलॉइड्स)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का पौधा होता है, जिसमें तारपीन के समान तेज गंध आती है। अक्सर करके यह पौधा प्रारंभ से ही बहुशाखी होता है। इसकी जड़ें नीचे की ओर ज्यादा फैलती हैं। यह पौधा भारतवर्ष के शीत-प्रान्तों में तथा बिलोचिस्तान, सीलोन और चीन में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से यह औषधि सड़ान को रोकने वाली और कृमिनाशक मानी जाती है। सांघातिक ज्वरों में शरीर पर मालिश करने के लिये इसका रस काम में लिया जाता है। सोंठ और जीरे के साथ इस औषधि को लेने से अतिसार और प्रवाहिका में लाभ होता है। इसके पौधे का नारियल के तेल के साथ मलहम बनाकर लगाने से हाथी पाँव (श्लीपद) में लाभ होता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि सड़ान को रोकने वाली है। सांघातिक ज्वर में इसकी मालिश और हाथी पाँव (श्लीपद) में इसके मलहम का लेप लाभदायक होता है। इसमें एक प्रकार का इसेंशियल ऑइल पाया जाता है।

इसकी एक जाति और है जिसे लेटिन में Limnophila Gratissima (लिम्नोफिला ग्रेटिसिमा) कहते हैं। इसके गुण दोष भी प्रायः उपरोक्त औषधि की ही तरह हैं, इसके अतिरिक्त यह औषधि ज्वर में ठंडी दवा के बतौर दी जाती है।

आयदुआरीद

नाम—

फारसी—आयदुआरीद।

वर्णन—

यह एक पौधा होता है, जिसकी पत्तियाँ आसबरी के समान होती हैं। यह दूसरे दर्जे में ठंडा और रूक्ष है। इसके खाने से जीभस्तम्भित हो जाती है। इसकी जड़ प्रत्येक अंग से होने वाले रक्तस्राव को फिर वह चाहे जिस समय में हो, रोकती है। इसीसे इसका प्रयोग खूनी अतिसार, खूनी बवासीर और खूनी प्रदर इत्यादि रोगों में किया जाता है। जरायु से होने वाले रक्तस्राव को भी यह बंद करता है।

———:०:———

आयापान

नाम—

संस्कृत—विशल्यकर्णी। **बंगाली**—विशल्यकर्णी, आयापान, आयापानी। **लेटिन**—Eupatorium Ayapan. (यूपेटोरियम आयापान) or Etriplinarve.

वर्णन—

यह वनस्पति बंगाल की एक प्रसिद्ध वनस्पति है। इसके वृक्ष मझोले कद के होते हैं। इसके पौधे बंगाल के बाग-बगीचों में चारों तरफ रोपे जाते हैं। इसके पत्ते बड़े होते हैं और पत्तों के डंठल और उनकी नसें लाल रंग की होती हैं। बगीचों के सिवाय बंगाल के जंगलों में भी यह वनस्पति पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

ऐसा कहा जाता है कि जब लक्ष्मण को मेघनाद की ब्रह्मशक्ति लगी थी और वे मूर्छित हो गये थे, तब हनुमान गंधमादन-पर्वत के ऊपर से इस औषधि को लाये थे और इसी के द्वारा सुषेण वैद्य ने उन्हें जीवित किया था। इस कथानक में सत्य का कितना अंश है, यह तो नहीं कहा जा सकता, मगर इसके घाव पूरक और रक्तस्राव-रोधक महान गुण के लिये कलकत्ते के प्रतिष्ठित कविराज हरलाल गुप्ता लिखते हैं कि "रक्तस्राव बंद करने के लिये यह एक अमोघ औषधि है। रक्तातिसार, रक्तप्रदर, खूनी बवासीर इत्यादि शरीर के किसी भी भाग से गिरने वाले खून के लिये इसके पत्तों का रस पीने से अत्यन्त लाभ होता है।

कविराज श्रीद्वारकानाथ विद्या-रत्न का कथन है "कि जिस मनुष्य को शस्त्र का गहरा घाव लगा हो, उस मनुष्य को आयापान के पत्तों का रस पिलाने से और इसी रस को घाव की जगह पर लगाने से खून का बहना बंद हो जाता है। इसी प्रकार इसका रस पीने से आमाशय में से गिरने वाला खून भी बंद हो जाता है।

इण्डियन मेडिकल प्लांट्स के रचयिता इस औषधि के सम्बन्ध में लिखते हैं "कि यह एक उत्तेजक औषधि है। कम मात्रा में पौष्टिक और अधिक मात्रा में विरेचक है। इसका गरम काढ़ा वमनकारक और ज्वरनिवारक है। यह मलेरिया के अन्दर भी दिया जाता है।

"इंडोचायना और गायना में इसके पत्तों का सत्व ज्वरनिवारक और पसीना लाने वाली औषधि के रूप में दिया जाता है। गायना, ब्राफील, फिलिपाइन और हिन्दुस्तान में यह औषधि सर्पविष को दूर करने के काम में ली जाती है। इसके लिये इसके सर्वांग का काढ़ा और पत्तों का रस पिलाया जाता है और काटे हुए स्थान पर लगाया जाता है।"

मगर केस और महेस्कर का मत है कि सर्प-विष के इलाज में यह पौधा बिलकुल निरुपयोगी है। इसके पत्ते चाहे पिलाये जायँ, चाहे लगाये जायँ, दोनों ही रूप में कुछ असर नहीं दिखाते हैं।



आरार

नाम—

संस्कृत—प्लीहहंत्री, मत्स्यगंधा, विषघ्नि, अश्वत्थ फल। **हिन्दी**—हाउबेर, आरार, होबेर। **मराठी**—होश। **पंजाबी**—पेत्थरी। **दक्षिणी**—अभल। **अरबी**—अभल। **उर्दू**—अबहल। **फारसी**—ओरस। **लैटिन**—Juniperus Communis.

वर्णन—

यह ६-७ फुट ऊँचा वृक्ष होता है। इसके पेदड़ की गोलाई डेढ़-दो फीट की होती है। यूरोप में यह ३०-४० फीट ऊँचा होता है। उसके पेदड़ की गोलाई ४-५ फुट की होती है। इसकी छाल कुछ सफेद भूरे रंग की होती है। इसकी छोटी शाखा सुगन्धयुक्त होती है। इसका फल मीठा और सुगन्धयुक्त होता है। इसके पत्ते कुछ भूरे हरे रंग के होते हैं। इसके छोटे २ फल लगते हैं। उनमें बहुधा तीन २ बीज निकलते हैं। जब इसके फल पूरे बड़े हो जाते हैं और नहीं पकते हैं, तबतक उनमें बहुत तेल रहता है, जब वे पक जाते हैं तो उस तेल का राल जैसा पदार्थ बन जाता है, जो बहुत हलके पीले रंग का होता है और उसमें फूल जैसी बहुत तीव्र गंध होती है।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से यह वनस्पति चरपरी, कड़वी, भारी, गरम, दीपन, क्षुधा-वर्द्धक, पेट के अफरे को दूर करने वाली, कृमिनाशक, विषनिवारक और विरेचक है। यह रक्तातिसार, उदरपीड़ा, पथरी, यकृत और पेट की पीड़ा, जलोदर, अर्बुद, बच्चों की खाँसी, वायु-नलियों के प्रदाह, कब्जियत तथा योनिरोगों में लाभकारी है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पौधा खराब गंध वाला, खट्टा, मीठा, और तीखे स्वाद वाला होता है। यह आँतों के लिये हल्का और संकोचक है। यह ज्वरनिवारक और पौष्टिक है। इसकी लकड़ी कड़वी, विरेचक, कृमिनाशक, रक्तस्राव को रोकने वाली, घाव को भरने वाली, मूत्रल और ऋतुस्राव नियामक है। यह कामोद्दीपक, पौष्टिक और रक्तवर्द्धक है। सीने (छाती) की तकलीफों में, वायु-नलियों के प्रदाह में, आधाशीशी में, यकृत की बीमारियों में, बवासीर में तथा अधिक परिश्रम के कारण उत्पन्न हुई तकलीफों में यह लाभकारी है।

इसके फल का तेल ऋतुस्राव-नियामक, गर्भस्रावक और पौष्टिक है। यह कृमिनाशक तथा कर्णशूल, दंतशूल और बवासीर में मुफीद है। यह तेल भिन्न २ प्रकार के जलोदर रोगों में उपयोग में लिया जाता है। इसे स्वतंत्ररूप से या दूसरी औषधियों के साथ भी काम में लेते हैं। पुरातन प्रमेह, सुजाक, और श्वेत-प्रदर में भी इसकी उपयोगिता मानी जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह मूत्रनिस्सारक और पेट के अफरे को दूर करने वाली है। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल रहता है तथा इसके फलों में ऑक्जेलिक एसिड पाया जाता है।

आरकज्वार

नाम—

संथाल—आरक ज्वार। लेटिन—Utricularia Bifida. यूट्रीक्यूलेरिया बिफीडा।

वर्णन—

यह औषधि प्रायः एशिया के गरम प्रांतों में पैदा होती है। इसका वृक्ष बहुशाखी होता है। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं। इसकी फलियाँ बहुत छोटी होती हैं। इसके बीज गोल होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि मूत्र सम्बंधी बीमारियों को दूर करने के लिये उपयोगी मानी जाती है।

आरामशाली

नाम—

हिंदी—रामशीतला, आराम शीतला, गंधाढ्या, महानंदा ।

वर्णन—

यह एक प्रकार की सुगंधित तरकारी है जो महाराष्ट्र प्रांत में विशेष उपयोग में ली जाती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह ठंडी, कड़वी, पित्तनाशक, जलन को मिटाने वाली, सूजन को कम करने वाली तथा अर्श और सांघातिक फोड़ों में लाभ पहुँचाने वाली है ।

आरी

नाम—

संस्कृत—आरि, संदानिका, उद्दाला, खदिरपत्रिका । **हिन्दी**—आरी, खैरबैल । **मराठी**—अराटी, वेल्याखेर । **कर्नाटकी**—सिगूरी । **गुजराती**—खेरवेल्य । **लैटिन**—Acacia Penata (एकेशिया पिनेटा) **बंगाली**—कचुरी । **तामील**—इन्दु, कटिन्दु । **तेलगू**—मुलुकोरिंदा, गीदूकोरिन्दा ।

वर्णन—

आरी की बेल काँटेदार होती है । इसके पत्ते छोटे खैर के समान और फूल कुछ हलका पीलापन लिये हुए सफेद रंग के होते हैं । इसकी फलियाँ चपटे नीले रंग की और फूल तंतुयुक्त कीकर के फूल के समान होते हैं । इसके बीज गहरे बदामी रंग के होते हैं, यह वनस्पति खासकर के मध्य और पूर्वी हिमालय, बिहार, सीलोन तथा मलायाद्वीप में पाई जाती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह कसैली, चरपरी, कड़वी, गरम और रुधिरविकार, पित्त, त्रिदोष, वात तथा खाँसी को दूर करती है ।

मसूड़ों से खून निकलने की बीमारी में और बच्चों के दूध के अजीर्ण में भी इस औषधि का उपयोग होता है ।

किसी २ के मत से इसके वृक्ष की छाल दूसरी औषधियों के साथ सर्प-विष के उपयोग में ली जाती है । मगर महेस्कर और केस का कथन है कि इसकी छाल सर्पदंश में बिलकुल निरुपयोगी है ।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके पत्ते बदहजमी और मसूड़ों में खून बहने की बीमारी में काम में आते हैं । सर्पविष में भी यह औषधि उपयोगी मानी जाती है ।

आर्थोसिफन स्टेमिनियस

नाम—

इंग्लिश—Java tea, जावाटी । लेटिन—Orthosiphon Stamineus, (आर्थोसिफन स्टेमीनियस ।

वर्णन—

इस वनस्पति का पौधा झाड़ीनुमा होता है । यह बहुत नाजुक रहता है । इसके पत्ते गोल, नुकीदार और कटे हुए किनारों के होते हैं । इसका फल कुछ गोल, दबा हुआ और चपटा रहता है । यह औषधि आसाम, बर्मा, निकोबार द्वीप, फिलिपाइन द्वीप, दक्षिण भारत और आस्ट्रेलिया में पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि जावा के अन्दर गुर्दे और बस्ती की बीमारियों के ऊपर बहुत समय से उपयोग में ली जा रही है । पथरी की अत्यन्त वेदनापूर्ण अवस्था में भी यह औषधि बहुत उपयोगी सिद्ध हो चुकी है । जावा के अन्दर इसके पत्तों को चाय की तरह तैयार करके उपरोक्त रोगों पर, इसका इस्तेमाल करते हैं । पेशाब को स्वच्छ करने, गुर्दे के शूल को मिटाने और पथरी को तोड़ने के लिये यह औषधि काफी नाम पा चुकी है ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इस औषधि का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें ग्लुकोसाइड, (Glucoside) आर्थोसिफानिन (Orthosiphonin) और एसेन्शियल आइल (Essential Oil) नामक तीन पदार्थ पाये गये । उनके मतानुसार इस औषधि के पत्ते मूत्राशय की बीमारी में दिये जाते हैं ।

आल

नाम—

संस्कृत—आच्छुकः, अच्छुकः, रंजनद्रुः । मराठी—आल, बारतोंडी, बारतुंडी, नागकुंड, सुंरगी । गुजराती—आल, सरोजी । हिंदी—आल । बम्बई—आल, अब्र, बारतुंडी, नागकुद्र । बर्मा—मानबिन । लेटिन—Morinda Citrifolia. (मोरिंडा साइट्रीफोलिया)

वर्णन—

जिस समय आधुनिक ढंग के रंगों का प्रचार नहीं हुआ था, उस समय भारतवर्ष में रंग के लिये बहुत बड़े पैमाने पर आल की खेती की जाती थी । मगर अब दूसरे रंगों का प्रचार हो जाने से

इसकी खेती बहुत कम हो गई है। आल की दो जातियाँ होती हैं। एक बड़ी जिसको लेटिन में Morinda Tinctoria(मोरिन्डा टिन्क्टोरिया) कहते हैं और दूसरी छोटी, जिसको मोरिंडा साइट्री-फोलिया कहते हैं।

बड़ी आल का झाड़ मझले कद का होता है। इसकी छाल भूरे और पीले रंग की होती है तथा इसमें दरारें रहती हैं। इस छाल पर छोटी २ गठानें होती हैं और इसके फूल खुशबूदार होते हैं। यह पौधा अपर, लोअर बर्मा, बंगाल, बिहार, मध्यप्रांत, कर्नाटक, ट्रावनकोर और दक्षिण में पैदा होता है।

छोटी आल का छोटा पौधा होता है और इसकी छाल मुलायम, पीली और सफेद रहती है। इसके पत्ते गोल तीखी नोकवाले, चमकीले, नुकीले और गहरे हरे रंग के रहते हैं। इसके फूल सफेद होते हैं। इसके फल का आकार और रंग अंडे के समान होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

छोटी आल—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक,ज्वरनिवारक और मासिकधर्म को व्यवस्थित करने वाली है। यह रक्तातिसार और पेचिश की बीमारी में लाभदायक है। रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें ग्लुकोसाइड और मोरिण्डिन नामक (Morindin) दो प्रकार के तत्व पाये जाते हैं।

इसकी जड़ विरेचक वस्तु के तौर पर काम में ली जाती है। इसके पत्तों का काढ़ा सरसों के साथ में मिलाकर बच्चों के रक्तातिसार में दिया जाता है। गठियारोग पर इसके पत्तों की मालिश करने से लाभ होता हुआ देखा गया है। बम्बई में इसके पत्ते घाव पूरक औषधि के रूप में काम में लिये जाते हैं। ज्वर को दूर करने के लिये तथा पौष्टिक औषधि के बतौर इसके पत्तों का अंतःप्रयोग किया जाता है। मसूड़ों की सूजन को दूर करने के लिये इसके कच्चे फल को नमक के साथ पीसकर लगाते हैं। इन्डोचायना में इसका भूँजा हुआ फल पेचिश और श्वास की बीमारी को दूर करने के लिये दिया जाता है।

बड़ी आल यूनानी मत—यूनानी मत से बड़ी आल की जड़ रक्तस्राव को रोकने वाली और आँतों को सिकोड़ने वाली होती है। यह फोड़ों को सुखाने के काम में आती है और विषनाशक भी मानी जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसकी जड़ संकोचक है।

उपयोग—

घाव और चट्टे—इसके पत्तों को पीसकर घाव पर लेप करने से घाव सूख जाता है।

ज्वर—इसके पत्तों का काढ़ा पिलाने से ज्वर में लाभ होता है।

बच्चों का अतिसार—इसके पत्तों को जलावें और फिर उन्हें औटाकर तथा छानकर उस पर राई भुरका कर पिलाने से बच्चों का अतिसार मिटता है।

दंत रोग—इसके कच्चे फलों को जलाकर उनके साथ नमक को पीसकर मंजन करने से दांत के मसूड़े मजबूत होते हैं।

घाव—इसके फल का चूर्ण घाव में भर देने से खून आना बन्द हो जाता है।

संधिवात—इसके पत्तों के रस की मालिश करने से संधिवात में लाभ होता है।

आलू

नाम—

संस्कृत—आलू, आलुक, वीरसेन। **हिन्दी**—आलू। **गुजराती**—बटाटा। **बंगाली**—आलू। **पंजाबी**—आलू। **तैलंगी**—उर्लगड्डु। **द्राविड़ी**—वल्लेरकिंडंग। **कर्नाटकी**—बटाटेआलू। **फारसी**—आलूएफिरंग, सेबेजमीं। **अरबी**—तुफाहुलअर्ज। **तामील**—उर्लकलंगे। **अंग्रेजी**—Potato.। **लैटिन**—Solanum Tuberosum. (सोलेनम ट्यूबरोसम)।

वर्णन—

आलू का मूल उत्पत्ति-स्थान अमेरिका है, मगर अब यह भारतवर्ष के गाँव-गाँव में बोये जाने लगे हैं और इनसे देश का प्रत्येक आदमी भलीभाँति परिचित है। आलू की खेती के सम्बन्ध में कई अच्छे ग्रंथ निकल चुके हैं। इसकी खेती की मिकदार दिन २ बढ़ती चली जा रही है। अतः इसके विशेष परिचय की यहाँ पर आवश्यकता नहीं।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से आलू शीतल, मधुर, रुक्ष, पचने में भारी, मल को गाढ़ा करने वाला और शरीर में आलस्य पैदा करने वाला है। यह बलकारक, रक्त-पित्तनाशक, मल-मूत्र-निस्सारक और दुग्धवर्द्धक है।

रक्तालू अर्थात् लाल आलू शीतल, मधुर, अम्ल, श्रमनाशक, पित्तनाशक, दाहनिवारक, वृष्य, बलकारक, पौष्टिक और भारी है। इनको अधिक खाने से आफरा चढ़ता है, इसलिये मंदाग्नि वालों को इनका सेवन नहीं करना चाहिये।

यूनानी मत—यूनानी मत से ये पहिले दर्जे में रुक्ष और शीतल हैं। ये शुक्रवर्द्धक और कामोद्दीपक हैं। यह मेदे को नुकसान पहुँचाने वाला और आफरा पैदा करने वाला है। इसका प्रतिनिधि अरवी और दर्प को नष्ट करने वाला गरममसाला और अदरख है। इसके द्वारा बनाया हुआ सुरमा आँखों को शक्ति देता है और जाले काटता है। यह मृदुरेचक, मूत्रनिस्सारक और स्कर्वी रोग में लाभ पहुँचाने वाला है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डाक्टर नॉडकरनी के मतानुसार इसके पत्ते आक्षेपयुक्त खाँसी में लाभ पहुँचाते हैं। इस रोग में इन पत्तों का प्रभाव अफीम के समान होता है। आग से जले हुए स्थान पर इसका प्लास्टर रखने से बड़ा लाभ होता है।

एक यूनानी लेखक के मत से आलू खून बिगाड़ने वाला और खुजली को पैदा करने वाला है।

आलूचा

नाम—

हिन्दी—भोटिया बादाम, गर्दालू, शनालू। **फारसी**—आलुएदमिश्क, आलुएफरांसिसी। **लेटिन**—Prunus Domestica. P. Aloocha. । **अंग्रेजी**—Comman Plum. ।

वर्णन—

यह आलूबुखारे की जाति का एक वृक्ष है, जो पश्चिम हिमालय पर, गढ़वाल से काश्मीर तक पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से इसका कच्चा फल पहले दर्जे में शीतल और पका फल दूसरे दर्जे में शीतल होता है। यह प्रकृति को मुलायम करने वाला, प्यास को हरने वाला, शांतिदायक तथा वमन को दूर करने वाला है। पके हुए आलूचे का रस खाँसी के लिये उपकारी और क्षयरोगी को बड़ा लाभदायक है। इसके पत्तों का रस पेट के कृमियों को निकालने वाला है। यह मेदे को नुकसान पहुँचाने वाला और आफरा पैदा करने वाला है। इसके फल का गूदा मृदुरेचक और पौष्टिक है। इसका प्रतिनिधि आलू-बुखारा और दर्प को नाश करने वाला गुलाब का गुलकंद है।

इंडियन मेडिकल प्लांट्स के रचयिताओं के मतानुसार यह फल विरेचक और ज्वरनाशक है। पेट का आफरा उतारने के लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है। धवलरोग में, अनियमित मासिक-धर्म में और गर्भपात के बाद की अव्यवस्था को दूर करने के लिये भी इसको काम में लेते हैं।

आलूबालू

नाम—

उर्दू—आलूबालू । पंजाब—गिलास, ओलची । सीमांत—आलूबालू । फारसी—आलूबालू, आलूबुआली । यूनानी—क़रूसियून, क़रासुस । अरबी—फरासिया, जेरासायान, करासया । लैटिन—Prunus Carasus.

वर्णन—

यह एक प्रकार की झाड़ीदार बनस्पति होती है । इसकी शाखाएँ और जड़ें बहुत फैली हुई रहती हैं । इसकी शाखाएँ लाल रंग लिये हुए होती हैं । इसके पत्ते चौड़े, कटे हुए किनारों के होते हैं, इसके फूल बहुत आते हैं, वे सफेद रंग के होते हैं । इसके फल का रंग कुछ कालापन लिये हुए लाल होता है । फल का बीज चने के समान छोटा, छिलका कड़ा और गुदा सफेद होता है । फल का स्वाद खट-मीठा होता है । यह वनस्पति विशेष करके पश्चिमी एशिया में पैदा होती है । पर यह उत्तरी,पश्चिमी हिमालय प्रान्तों में भी बोई जाती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानीमत से इसका मीठा फल दूसरे दर्जे में गरम और तर है । इसका कच्चा फल पहिले दर्जे में शीतल और रुक्ष है । इसका प्रतिनिधि आलूबुखारा और इसका दर्पनाशक शिकंजवीन है ।

इंडियन मेडिकल प्लांट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसका फल खट्टा व मीठा होता है । यह अग्निवर्द्धक, विरेचक और मस्तिष्क को बल देने वाला होता है । गले और फेफड़े के रोगों में तथा प्यास, वमन और पित्त में भी यह उपयोगी है । इसके बीज मूत्रनिस्सारक, मृदुविरेचक, मासिकधर्म को नियमित करने वाले, ज्वरनाशक और घाव को भरने वाले होते हैं । इनका उपयोग सुजाक, पथरी और वायु-नलियों के जीर्णप्रदाह में किया जाता है । गले की तकलीफ और यकृत सम्बंधी रोगों को भी यह रोकने वाला है ।

इसकी छाल कड़वी और ज्वर को नाश करने वाली है । इसके फल का गुदा स्नायु-मंडल को बल देने वाला होता है । इसका उपयोग हाइड्रोसायनिक एसिड के स्थान पर किया जाता है ।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसकी छाल कड़वी, संकोचक और ज्वरनिवारक होती है । और इसके फल का गुदा स्नायु-मंडल को बल देने वाला होता है ।

मख़ज़नूल अदविया के मतानुसार इसका मीठा और ताज़ा फल फेंफड़े और गले की कर्कशता को दूर करता है । इसका खट-मीठा फल प्यास को दूर करने वाला, रक्त और पित्त की गर्मी को नष्ट करने वाला और पित्त की मूर्च्छा को दूर करने वाला होता है । इसके बीजों को थोड़ी सौंफ के साथ पीसकर

पिलाने से यह पथरी को तोड़कर बाहर निकाल देता है और मूत्रनली के घावों को दुरुस्त कर मूत्र-प्रणाली को ठीक कर देता है। इसके गोंद को २ माशे की मात्रा में ठंडे पानी के साथ देने से यह पुरानी खाँसी को दूर करता है। इसके द्वारा तैयार किया हुआ सुरमा आँखों की खुजली को दूरकर दृष्टि को बढ़ाता है। भोजन के बाद लेने से यह बदहज़मी करके आमाशय को दुर्बल करता है।

इसका एक भेद और होता है, जिसको लेटिन में Prunus Verginiana. और देशी भाषाओं में विलायती आलूबालू कहते हैं। इसकी छाल जिसको Pruni Virgineanae Cortax. (प्रूनी व्हरजीनियेनि कॉरटेक्स) कहते हैं, औषधि प्रयोग के काम में आती है। इसकी मिलावट से एलोपेथी में टिंचर और शर्बत तैयार किये जाते हैं, जो सूखी खाँसी में लाभदायक होते हैं। इसका फल गुर्दे के रोगों में बड़ी मूल्यवान औषधि है।

आलूबुखारा

नाम—

संस्कृत—आल्लुकम, आलुकम, भल्लुकम, रक्तफलम। **हिन्दी**—आलूबुखारा। **गुजराती और मराठी**—आलूबुखार। **बंगाली**—आलूबोखार। **तैलंगी**—आलूबोकारा। **अरबी**—इज्जास। **फारसी**—आलू। **लैटिन**—Prunus Insititia. (प्रूनस इन्सिटिशिया)

वर्णन—

यह वृक्ष मझोले कद का होता है। इसकी शाखाएँ सीधी होती हैं, इसके पत्ते नीचे से नरम रहते हैं। इसकी डंडियाँ एक साथ दो २ निकलती हैं। इसके फल आँवले के बराबर कुछ ललाई और पीलास लिये हुए चमकदार होते हैं। कच्चे फल खट्टे और पके हुए फल खट-मीठे और रसदार होते हैं। इसके पत्ते सेव के पत्तों की तरह होते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं,जिनमें एक को बागी और दूसरे को जङ्गली कहते हैं। इसके अतिरिक्त सफेद, पीले और लाल इत्यादि भेदों से इसकी पाँच जातियाँ मानी गई हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघण्टु-रत्नाकर के मतानुसार आलूबुखारा मलरोधक, कसैला, हृदय को बल देने वाला, शीतल, भारी, मलस्तंभक, ग्राही, दस्तावर, गरम, कफ-पित्तनाशक, पाचक, मधुर, मुखप्रिय, मुख को स्वच्छ करने वाला तथा प्रमेह, गुल्म, बवासीर और रक्तवात का नाश करने वाला है।

पका हुआ आलूबुखारा मधुर, भारी, कफकारक, पित्तजनक, गरम, रुचिकारक, धातुवर्द्धक तथा बवासीर, ज्वर और वात को हरने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में शीतल और तर है। इसके पत्ते पहिले दर्जे में शीतल और रुक्ष हैं। यह मस्तिष्क और आमाशय को नुकसान पहुँचाता है। इसका प्रतिनिधि इमली और इसके दर्प को नाश करने वाला गुलकंद है, इसके पत्ते खून को साफ करते हैं, नकसीर को बंद करते हैं तथा तालू के प्रदाह को दूर करते हैं। इसका फल खट्टा-मीठा, मृदुविरेचक और ज्वर को नाश करने वाला होता है। यह फोड़ों को दुरुस्त कर खुजली को मिटाता है। मीठा आलूबुखारा आमाशय में शिथिलता पैदा करता है, सिरके के साथ मिलाकर इसके गोंद को लगाने से यह दाद को नष्ट करता है। इसके पत्तों का लेप पेडू पर करने से यह आँत के कीड़ों को निकाल देता है। सूखा आलूबुखारा रेचक होता है।

आलूबुखारे का गोंद, दोषों को छेदन करने वाला, खाँसी को मिटाने वाला, फेंफड़े और छाती के दर्द में लाभ पहुँचाने वाला तथा गुर्दे और बस्ती की पथरी को तोड़कर निकाल देने वाला होता है। इस गोंद का बारीक चूर्ण घाव पर भुर-भुराने से या इसके पानी से घाव को धोने से घाव सूख जाता है। इस गोंद को सिरके में मिलाकर दाद, खाज और सिर की गंज पर लगाने से बड़ा लाभ होता है।

उपयोग—

पित्तज्वर—इसके फल को गरम पानी में भिगोकर, छानकर पिलाने से पित्तज्वर में शान्ति होती है।

पित्त के विकार—भोजन करने से पहिले आलूबुखारे को खाने से पित्त के विकार मिटते हैं।

प्यास—आलूबुखारे को मुंह में रखने से प्यास कम होती है।

आलुसन

नाम—

अरबी—हरजूश्शयातीन, रज्लुलतुराब। यूनानी—आलूसन।

वर्णन—

यह वनस्पति श्याम इत्यादि प्रदेशों में विशेष पैदा होती है। इसका पौधा एक गज के करीब ऊँचा होता है। इसके पत्ते उँगली के बराबर लम्बे, कुछ गोलाकार, रुएँदार और काँटे वाले होते हैं। फूल लाल अथवा काला होता है। इसके बीज फलियों में लगते हैं। इनमें सोये की सी सुगंध और अजवायन सा स्वाद होता है। इसकी जड़ शलगम के आकार की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदीय-विश्वकोष के रचयिताओं के मतानुसार यह औषधि सिरदर्द, जुकाम, दमा, गुर्दे की बीमारी इत्यादि रोगों के लिये गुणकारी है। इसके बीजों को पीसकर, शहद में मिलाकर लगाने से सिर में होने वाली पीली फुन्सियाँ आराम हो जाती हैं। साढ़े-तीन माशे की मात्रा में इसके बीजों के चूर्ण को लेने से गुर्दे की पथरी का नाश होता है। इससे पेट के कीड़े भी निकल जाते हैं। इन बीजों का काढ़ा पीने से श्वास-कष्ट आराम होता है। ये अत्यन्त कामोद्दीपक हैं।

इस औषधि का दूसरा और महत्वपूर्ण गुण, पागल कुत्ते के विष को नष्ट करने का है। आयुर्वेदीयकोष के रचयिता लिखते हैं कि इस विष के लिये यह औषधि रामबाण सिद्ध हुई है। वे इसको देने की तीन विधियों का उल्लेख करते हैं जो इस प्रकार है—

(१) रोगी के खाने में इसके बीज पीसकर मिलाते हैं। ये बीज अपने प्रभाव से रोगी के जल-त्रास को निवारण करते हैं।

(२) गर्मी के दिनों में आलूसन के पत्तों को सुखाकर रख लेते हैं, जरूरत के समय इन पत्तों को कूट, छानकर ४॥ माशे से ६ माशे तक की मात्रा में ६। तोला मधु-वारि (शहद और पानी) के साथ दिन में कई बार खिला देते हैं। फिर एक दिन का बीच में अन्तर देकर उसी प्रकार खिलाते हैं। इससे पागल कुत्ते के जहर में बड़ा लाभ होता है।

(३) इसकी ताजी जड़ को कुचल कर उसका रस निकाल कर ताजे दूध के साथ पागल कुत्ते के काटे हुए को पिलाते हैं। यदि ताजी जड़ न मिले तो सूखी जड़ को ही पीसकर रोगी के बल के अनुसार साढ़ेतीन माशे तक की मात्रा में देते हैं।

विष का प्रभाव चाहे कितनाही जोरदार क्यों न होगया हो, उपरोक्त प्रयोगों से उसमें बड़ा लाभ होता है।

आँवला

नाम—

संस्कृत—आमलकी, पंचरसा, शिवा, धातृकी, अमृता, वयस्था, अमृतफला, शिव, श्रीफल इत्यादि। **हिन्दी**—आँवला। **गुजराती**—आँवला। **कर्नाटकी**—नेल्लि। **तेलगू**—उसरकाय। **फारसी**—आम्लझम्। **अरबी**—अम्लज्। **इंग्लिश**—Emblic Myrobalan. **लेटिन**—Phyllanthus Embelica. (फिलेन्थस इम्बेलिका)

वर्णन—

आँवले के वृक्ष भारतवर्ष के जंगलों में कुदरती तौर से बहुत पैदा होते हैं तथा बाग-बगीचों में भी बो कर लगाये जाते हैं। ये झाड़ बीस से पच्चीस फीट तक ऊँचे रहते हैं, इनका तना बाँका-टेढ़ा

और इनकी छाल राख के रंग की होती है। इनके पत्ते इमली के पत्तों से मिलते-जुलते मगर कुछ बड़े होते हैं। इनकी डालियों पर पीले रंग के छोटे २ फूल आते हैं और उन पर फलों के गुच्छे लगते हैं। ये फल गोल, चमकते हुए, पीले और पकने पर सेव की तरह सुर्ख हो जाते हैं। बनारस का आँवला भारतवर्ष में सबसे अच्छा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के अन्दर जितनी प्रभावशाली और रसायन औषधियों का उल्लेख हुआ है, उनमें हरीतिकी (हरड़) और आँवला, ये दो औषधियाँ सर्वोत्कृष्ट मानी गई है। इनमें हरीतिकी उष्णवीर्य और आँवला शीतवीर्य है। इसलिये आँवले का महत्व और भी बढ़ जाता है। महर्षि-चरक का कथन है कि संसार के अन्दर अवस्था-स्थापक जितने द्रव्य हैं, उनमें आँवला सबसे प्रधान है और रोगनिवारक जितने द्रव्य हैं, उनमें हरीतिकी सबसे प्रधान है। इससे पता चल जाता है कि आयुर्वेद के अन्दर आँवला कितनी महत्वपूर्ण औषधि के रूप में माना गया है। इसके बढ़िया फल ग्राही, मूत्रल, रक्तशोधक और रुचिकारक होने से ये अतिसार, प्रमेह, दाह, कामला, अम्लपित्त, विस्फोटक, पाण्डु, रक्त-पित्त, वात-रक्त, अर्श, बद्धकोष्ट, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, खाँसी इत्यादि रोगों को नष्ट करते हैं, दृष्टि को तेज करते हैं; वीर्य को दृढ़ करते हैं और आयु की वृद्धि करते हैं।

हमारे आयुर्वेदाचार्य्यों के उपरोक्त कथन के साथ जब हम आधुनिक रसायन-शास्त्रियों के कथन की तुलना करते हैं तो उनमें अद्भुत साम्य नजर आता है। आधुनिक यूरोप, अमेरिका वगैरह सुधरे हुए देशों के रसायन-शास्त्रियों का मत है कि रक्त ही प्राणि-मात्र का जीवन है। जब तक यह रक्त पोषण करने लायक शुद्ध स्थिति में रहता है, तब तक मानव-शरीर में किसी प्रकार की व्याधि खड़ी नहीं होती और न वृद्धावस्था का ही प्रवेश हो सकता है। पर विपरीत आहार-विहार से जब खून में क्षार, अम्ल, कृमि इत्यादि विजातीय तत्व कम-ज्यादा मात्रा में संचित हो जाते हैं, तब रक्त-शरीर की पोषण-क्रिया को बराबर संचालित नहीं कर सकता, जिससे शरीर में अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं और शक्ति घट कर वृद्धावस्था का प्रारंभ हो जाता है।

अगर मनुष्य खून में एकत्रित हुए विजातीय तत्वों को किसी उपाय से दूर करने में समर्थ हो जाय तो सब व्याधियों और वृद्धावस्था पर विजय प्राप्त करके नव-यौवन को प्राप्त कर सकता है। इन विजातीय तत्वों को दूर करने के लिये रसायनशास्त्रियों ने वर्षों की ढूंढ-खोज के पश्चात् तीन चीजों का आविष्कार किया है। उन्होंने प्रगट किया है कि यह गुण केवल सफरजन, ओलिव के फल, और आँवला, इन तीन वस्तुओं में ही पाये जाते हैं। सफरजन और ओलिव ये दो वस्तुएँ भारतवर्ष में पैदा नहीं होतीं। ऐसी स्थिति में हमारे महर्षियों के द्वारा आँवले के अन्दर इन गुणों की घोषणा करना बिलकुल विज्ञान-संगत था।

इन्हीं कारणों से आँवले के प्रति हमारे धार्मिक ग्रन्थों में भी अत्यंत पूज्यभाव प्रदर्शित किये गये हैं। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों के अन्दर एक बड़ी सुन्दर आख्यायिका है। वह इस प्रकार है—

"किसी पुण्य दिन के अन्तर्गत भगवती पार्वती और लक्ष्मी प्रभासतीर्थ को गई थीं। पार्वती ने लक्ष्मी से कहा कि देवी! आज हम स्वकल्पित किसी नूतन द्रव्य से हरि का पूजन करना चाहती हैं। लक्ष्मी ने कहा कि हम भी किसी नूतन द्रव्य से शिव का पूजन करना चाहती हैं। उस समय उन दोनों की आँखों से भूमि पर आनन्दाश्रु गिरे और उन्हीं आँसुओं से माघ शुक्ला एकादशी के दिन 'आमलकी वृक्ष' की उत्पत्ति हुई, जिसको देखकर देवता और ऋषि आनंद से पुलकित हो उठे।"

ये सब बातें इस औषधि के अमूल्य गुणों को सूचित करने वाली हैं। इन्हीं अमूल्य गुणों की वजह से प्राचीन निघण्टुकारों ने इस औषधि को शिवा अर्थात् कल्याण करने वाली, वयस्था अर्थात् अवस्था को कायम रखने वाली और धात्री अर्थात् माता के समान रक्षा करने वाली आदि पवित्र नामों से सम्बोधित किया है और रसायन औषधियों में इसको सर्वोच्च स्थान दिया है। आयुर्वेद का शायद ही कोई ऐसा प्रकरण होगा जिसमें आँवले का उपयोग न आया हो।

रसायन औषधियों का वर्णन करते हुए प्राचीन महर्षि कहते हैं कि दीर्घायु, स्मरणशक्ति, बुद्धि, तन्दुरुस्ती, नवयौवन, तेज, कांति, ज्वर, उदारता, शरीर, इन्द्रियों का बल, वाणी की सिद्धि और वीर्य की पुष्टता ये सब गुण रसायन के सेवन से प्राप्त होते हैं। ऐसे रसायन द्रव्यों में आँवला शीत-वीर्य्य होने से सर्व प्रधान है।

आँवले के फलों के सिवाय इसके दूसरे अङ्ग भी औषधि के लिये काफी उपयोग में आते हैं। इसके पत्तों को पानी के साथ उबाल कर उस पानी से कुल्ले करने से मुँह के छाले और क्षत नष्ट होते हैं, क्योंकि इन पत्तों में टेनिन एसिड का काफी भाग रहता है। इसके बीज की मगज को कूटकर गरम पानी में उबाल कर उस पानी से आँखें धोने से बहुत दिनों की दुखती हुई आँखें आराम होती है। इसके कोमल पत्तों को छाछ (मट्ठा) के साथ देने से अजीर्ण और अतिसार में लाभ होता है। इसके सूखे फलों में गेलिक एसिड की काफी मात्रा रहती है, इस कारण यह खूनी अतिसार, मरोड़ी के दस्त, बवासीर और रक्त-पित्त की बीमारियों में खास तौर से उपयोगी है। लोह भस्म के साथ इसको लेने से पाण्डु, कामला और अजीर्ण में काफी लाभ होता है। इसके फूल ठण्डे और मृदु-विरेचक हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में शीतल तथा रुक्ष है। यह आमाशय, मस्तिष्क, एवम् हृदय को बल देने वाला तथा पित्तशामक, शीतल, शोधक और सारक है। यह प्लीहा को हानि पहुँचाने वाला है। इसके प्रतिनिधि काबुली हड़ और दर्प को नाश करने वाली शहद है। अपने शीत गुण के कारण यह रक्त की गरमी और पित्त की तेजी को कम करता है। अपने रूखे गुण की वजह से यह रक्त को शुद्ध करके उसको बदलता है। ग्राही होने की वजह से यह आमाशय, नेत्र

और गर्भाशय को शक्ति-प्रदान करता है। मस्तिष्क के लिये यह अत्यन्त बलदायक है। क्योंकि यह मस्तिष्क के वाष्पारोहण को रोकता है। इसीसे यह बुद्धि को तीव्र करने वाला माना जाता है। यह मसूड़ों और जबान को शुद्ध करके उन्हें बल देता है। मतलब यह कि यह शरीर के तमाम अवयवों पर अनुकूल असर डालता है।

आँवले के रसायन और उनकी सेवन विधि—

महर्षि चरक, वाग्भट्ट इत्यादि आचार्यों ने मनुष्य के धातु-परिवर्तन और पुनर्यौवन की प्राप्ति के लिये कई दिव्य रसायनों का उल्लेख किया है, उन रसायनों में आँवलों के द्वारा तैयार किये हुए रसायन उत्कृष्ट माने गये हैं। रसायनों की सेवन विधि भी बड़ी कठिन और इनका फल भी बहुत दिव्य बतलाया गया है। महर्षि चरक अपने चिकित्सा स्थान में इन रसायनों के सेवन की दो प्रकार की विधियों का निर्देश करते हैं। इनमें से पहिली का नाम 'कुटिप्रावेशिक विधि' और दूसरी का नाम "वात-तापिक विधि" है। इनमें से कुटिप्रावेशिक विधि उत्तम और वाततापिक विधि मध्यम फल रखती है।

कुटिप्रावेशिक विधि—कुटिप्रावेशिक विधि से जिसको रसायन का सेवन करना होता है, उसे एकान्त स्थान में सुन्दर भूमि पर उत्तर या पूर्व दिशा में ऐसी कुटि बनानी चाहिये, जो पर्याप्त लम्बी, चौड़ी हो और जिसमें एक के अन्दर दूसरा और दूसरे के अन्दर तीसरा कमरा हो। जिसमें छोटी २ खिड़कियाँ और रौशनदान हों, जो प्रत्येक ऋतु में सुखकारक हो, प्रकाशयुक्त हो, स्त्री रहित हो। जिसमें सब प्रकार की सामग्री पहिले से ही संचित करके रक्खी गई हो। मकान में प्रवेश करने के पहिले जिसको लीप-पोत कर साफ कर रखा हो, ऐसी कुटि में जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो, जिसने अपनी इंद्रियों को वश में कर रक्खा हो, जो सहज उपद्रव से घबराने वाला न हो, ऐसे धैर्यशाली मनुष्य को वमन, विरेचन, स्वेदन इत्यादि पंच कर्मों से शुद्ध होकर एक उत्तम वैद्य के साथ, उस कुटि में प्रवेश करना चाहिये और नीचे लिखे रसायनों में से वैद्य की सलाह और अपनी प्रकृति के अनुकूल किसी भी रसायन का सेवन करना चाहिये और भोजन में अन्न-जल को छोड़कर केवल दूध पर निर्वाह करना चाहिये। इस प्रकार ६ महीने तक इनमें से किसी रसायन का सेवन करने से तमाम रोग दूर होते हैं और बालों की सफेदी, चमड़े की झुर्रियाँ, इंद्रियों की क्षीणता और दाँतो का हिलना सब बन्द होकर, हृष्ट-पुष्ट पुनर्यौवन प्राप्त होता है।

वाततापिकविधि—जो लोग कुटिप्रावेशिक विधि के समान कठिन विधियों से रसायन सेवन में असमर्थ हैं, उनके लिये यह दूसरी विधि आसान है। इस विधि से रसायन सेवन में विशेष कठिनता नहीं है। प्रतिदिन सवेरे-शाम उचित मात्रा में औषधि लेकर उस पर गरम दूध पीना, हल्का और सात्विक भोजन करना, जीवन-संग्राम से जहाँ तक बने वहाँ तक तटस्थ रहना और शान्तिमय जीवन व्यतीत करना यही इस विधि की खास २ बाते हैं। इस विधि से एक-दो वर्ष तक ये रसायन सेवन करने से जीवनप्रद तत्वों का देह के अन्दर संचय होता है, जिसकी वजह से रस, रक्त,वीर्य इत्यादि में रही हुई तमाम विकृति दूर होकर जठराग्नि प्रबल होती है। मलमूत्र की प्रवृत्ति उचित ढंग से होती है, स्मरणशक्ति बढ़ती है,

देह की कांति और रंग निखर जाता है, शरीर और इन्द्रियों का बल बढ़ता है, वीर्य शुद्ध और काफी परिमाण में पैदा होता है और स्वर गम्भीर बनता है। इस प्रकार मनुष्य अपने खोए हुए यौवन को पुनः प्राप्त कर लेता है।

ब्राह्म रसायन—

शालपर्णि, पृष्ठपर्णि, बृहती, छोटी कटेरी, गोखरू, बेल, अरनी, अरलू, गम्भारि, पाढ़ल, पुनर्नवा, मुग्दपर्णि, माषपर्णि, बला, एरंड, जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतावरी, सरकंडा, ईख, डाब, काश और शाल की जड़ ये सब औषधियाँ एक २ सेर, हरड़ १२॥ सेर और ताजे बढ़िया आँवले ३७॥ सेर, इन सब औषधियों को एकत्र करके सबके वजन से दसगुना जल डालकर आग पर उबा लें। जब जल का १० वाँ भाग शेष रह जाय, तब उसे नीचे उतारकर निर्मल-वस्त्र से छान लें। अब हरड़ और आँवलों को अलग कर उनकी गुठलियाँ निकाल दें और उन्हें कुचल कर औजार से उनके सब रेशों को निकाल दें। फिर उन्हें अच्छी तरह से एक जीव करके उस क्वाथ में डाल दें और उसमें मंडूकपर्णी, पीपर, शंखाहूली, मोथा, केवटी मोथा, बायविडंग, लालचंदन, अगर, मुलेठी, हल्दी, वच, नागकेशर, छोटी इलायची, दालचीनी, प्रत्येक का चूर्ण ३२ तोले, कपड़छन करके मिला दें। फिर मिश्री १ मन ३० सेर, तिल का तेल २५॥ सेर और घी ३८॥ सेर भी उसमें डाल दें। फिर इन सब औषधियों को कलई किये हुए तांबे के बड़े बर्तन में आग पर धीरे २ पकावें। जब अवलेह सरीखा हो जाय, तब उसे उतार लें और ठण्डा होने पर उसमें ३२ सेर शुद्ध शहद मिलादें और अच्छी तरह से एक रस करके घी के खाली घड़ों में भर कर रख दें।

अपने बलाबल के अनुसार उचित मात्रा में यह रसायन साधारणतया एक तोला सबेरे और एक तोला शाम को खाकर गरम दूध पीना चाहिये। भोजन में दूध के साथ सांठी का भात खाना चाहिये।

महर्षि चरक लिखते हैं कि वैखानस, बालखिल्य तथा अन्य तपस्वी लोग इस रसायन को सेवन कर दीर्घायु को पा चुके हैं। उन्होंने अपने जीर्ण शरीर को छोड़कर श्रेष्ठ पुनर्यौवन को प्राप्त किया था। इसके सेवन से पुरुष निरोग, दीर्घायु, महाबलशाली और अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है।

दूसरा ब्राह्म रसायन—

उत्तम पके हुए १ हजार आँवले लेकर एक ऐसी हाँडी या घड़े में जिसके पेंदे में बारीक २ कई छेद हों उसमें भर दें। फिर एक दूसरी हाँडी में दूध भरकर नीचे उसको और उसके ऊपर आँवले की हाँडी को रखकर दोनों की संधियाँ आटे से बंद कर दें। दूध की हाँडी में दूध इतना ही डालना चाहिये, जो उबलने पर ऊपर की हाँडी में न जा सके। यदि उफान आता हुआ दिखलाई दे, तो नीचे की हाँडी पर जल से भिगोया हुआ कपड़ा रख दें। इन हाँडियों को मंदी आँच पर चढ़ा दें। इससे दूध में से जो भाफ निकलेगी, उससे ऊपर के आँवले बफ जायँगे। जब सब आँवले बफ जायँ, तब उनको उतार कर उनकी गुठली निकाल कर फेंक दें और शेष हिस्से को छाया में सुखा लें। अच्छी तरह सूख जाने पर

उनका चूर्ण कर लें। आँवलों के इस चूर्ण को १ हजार ताजे आँवलों के स्वरस में तर कर लें। उस रस के सूख जाने पर उस चूर्ण में शालपर्णि, पुनर्नवा, जीवंती, गंगेरन, ब्राम्ही, मंडूकी, शतावरी, शंखपुष्पी, पीपर, बच, बायबिडंग, कोंचबीज, गिलोय, लालचंदन, अगर, मुलेटी, महुए के फूल, नीलकमल, श्वेतकमल, मालती के फूल, गुलाब और जूही के फूल, इन सब का समान भाग चूर्ण जिसका वजन आँवले के चूर्ण से अष्टमांश हो, आँवले के उस चूर्ण में मिला दें। उसके बाद इस सारे चूर्ण को २॥ मन नागबला के स्वरस की भावना दें। जब सूख जाय तब उसको पीस लें, फिर दो हिस्सा घी और एक हिस्सा शहद में इन दोनों चूर्णों को मिलाकर अवलेह के तुल्य कर लें। फिर इस अवलेह को घी के खाली घड़ों में भरकर उन घड़ों का मुंह बंद कर दें। उन घड़ों को जमीन के अन्दर गड्ढा खोदकर, उस गड्ढे में १६ अंगुल उपलों की राख बिछाकर, उस राख पर घड़ा रख दें और उसके बाद सारे गड्ढे को उपलों की राख से भर दें। १५ दिन के बाद उन घड़ों को निकालकर, उस औषधि में सोना, चाँदी, ताँबा, प्रवाल, और फौलाद की भस्मों को उचित मात्रा में मिलाकर रख लें।

महर्षि चरक लिखते हैं कि इस रसायन का बलाबल के अनुसार उचित मात्रा में सेवन करने से और सात्विक भोजन करने से मनुष्य निरोग, दीर्घायु और अत्यन्त प्रतिभाशाली हो जाता है और अपने खोये हुए यौवन को पुनः प्राप्त कर लेता है।

च्यवनप्राश रसायन—बेल की जड़ की छाल, अरनी की जड़ की छाल, अरलू की जड़ की छाल, गाम्भारी की जड़ की छाल, पाटला की जड़ की छाल, खिरेंटी की जड़, शालपर्णि, पृष्टपर्णि, मुग्दपर्णि, माषपर्णि, पीपर, गोखरू, छोटी कंटकारी, बड़ी कंटकारी, काकड़ासिंगी, भुई आँवला, मुनक्का, भोरिंगणी उभी रींगणी, जीवन्ती, पुष्करमूल, अगर, हरड़, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, मोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलायची, लालचन्दन, नीलकमल, बिदारीकंद, अड़ूसे की जड़, काकोली, काकनासा, ये सब औषधियाँ चार २ तोले और पके हुए उत्तम आँवले ५०० लेकर उन्हें इन सब दवाइयों के जौकुट चूर्ण के साथ १२॥ सेर पानी में पकावें। आँवलों को कपड़े की ढीली पोटली में बाँधकर डालना चाहिये। जब औटाते-औटाते चौथाई जल शेष रह जाय, तब काढ़े को छानकर औषधियों के भूसे को फेक दें और आँवलों को पोटली में से निकालकर उनकी गुटलियों को निकाल दें और फिर इन आंवलों को हाथ से अच्छी तरह मसल कर तार की बारीक चलनी में छान लें, जिससे रेशा ऊपर रह जायगा, उस रेशे को फेक दें और उस पीठी को ४८ तोला घी और ४८ तोला तिल्ली के तेल में लोहे की कढ़ाई में डालकर खूब भून लें, फिर २॥ सेर अच्छी शक्कर लेकर उसकी चाशनी कर लें और उसमें आँवले की भुनी हुई पीठी डालकर धीमी आँच से पकावें। जब पीठी घी और तेल छोड़ने लगे, तब उसे जमीन पर उतारकर, उसमें २४ तोला पुरानी शहद, १६ तोला वंशलोचन, ८ तोला पीपर, तज, तेजपत्र, छोटी इलायची और नागकेशर एक २ तोला, लेकर सबका कपड़छन चूर्ण करके अच्छी तरह से मिलाकर एक रस करके बरनियों में भर लें।

नोट—शालपर्णि और पृष्टपर्णि के बदले भो रिंगणी की जड़, ऋद्धि के बदले वाराहीकन्द, जीवक और ऋषभक के बदले बिदारीकन्द, मेदा के बदले शतावरी और काकोली के बदले असगंध ली जा सकती है।

यह च्यवनप्राश परम रसायन है। विशेषतः खाँसी और श्वास (दमा) को नष्ट करता है। क्षय और उरक्षत के रोगियों, वृद्धों और बालकों के अंगों को बढ़ाता है। स्वरक्षय, छाती के रोग, हृदयरोग, वात-रक्त, तृषा, मूत्रदोष और वीर्य-दोषों को नष्ट करता है। कुटिप्रावेशिक विधि से इस रसायन का प्रयोग करने से वृद्ध पुरुष भी बुढ़ापे के चिन्हों से रहित होकर नई जवानी के रूप को धारण करता है। मेधा, स्मृति, कान्ति, दीर्घायु, मैथुन में सामर्थ्य, तीव्रकान्ति इत्यादि दिव्य वस्तुओं को मनुष्य इसके सेवन से प्राप्त कर सकता है। इसी रसायन को सेवन करके अत्यन्तवृद्ध च्यवन-ऋषि (च्यवनोऽभूत्पुनर्युवा) पुनः युवक हो गये थे। तब से यह रसायन बराबर उन्हींके नाम से प्रसिद्ध है। यह अश्विनि कुमारों का बतलाया हुआ है। इसकी मात्रा एक तोले से दो तोले तक है।

यह च्यवनप्राश अवलेह भिन्न २ अनुपानों के साथ देने से भिन्न २ रोगों पर लाभ पहुँचाता है। इसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

जीर्ण-ज्वर—मनुष्य के शरीर में जीर्ण-ज्वर हो जाने पर ज्वर का हल्का अंश हमेशा बना रहता है और वह बड़ी कठिनाई से निकलता है। इस ज्वरांश को निकालने के लिये च्यवनप्राश अच्छा काम करता है। इसकी एक तोला मात्रा, ३ रत्ती गिलोय सत और एक रत्ती बंसत-मालती के साथ दिन में दो बार लेने से बड़ा लाभ होता है।

मंदाग्नि—मनुष्य की जठराग्नि कम हो जाने पर वैद्य लोग भिन्न २ प्रकार के क्षारों के द्वारा बनाई हुई औषधियाँ रोगी को देते हैं। मगर ये औषधियाँ आँतों के ऊपर स्थायी रूप से खराब असर डालती हैं। इसलिये इनका प्रयोग करने के बदले अगर एक तोला च्यवनप्राश दिन में, दो बार द्राक्षासव के साथ दिया जाय और प्रति सप्ताह रोगी को अरण्डी के तेल का जुलाब दे दिया जाय तो मंदाग्नि में स्थायी लाभ होता है। इसी प्रकार पुराने अतिसार, पुराने अजीर्ण और पुराने अम्ल पित्त रोग में भी धैर्य्य के साथ द्राक्षासव के साथ च्यवनप्राश का सेवन करने से आशातीत लाभ होता है।

कामला और पाण्डुरोग—इन रोगों में तथा खूनी बवासीर में लोहभस्म एक रत्ती और गंधक रसायन के साथ च्यवनप्राश का सेवन करने से आश्चर्यजनक असर होता है।

क्षय और खाँसी—क्षय, खाँसी और दमे के रोग में हरीतिकी अवलेह के साथ अभ्रकभस्म अथवा स्वर्ण-बसंत का सेवन करने से और भोजन में केवल च्यवनप्राश और दूध पर रहने से क्षय और दमे के कष्ट-साध्य रोगी भी अच्छे हो जाते हैं, पर औषधि का सेवन धैर्य के साथ तीन-चार महीने तक करना चाहिये।

रक्त पित्त—च्यवनप्राश ६ माशा, वासावलेह ६ माशा और लोहभस्म २ रत्ती, इन तीनों वस्तुओं को मिलाकर दिन में दो बार लेने से रक्त-पित्त का कष्ट-साध्य रोग आराम होता है।

प्रदर और प्रमेह—इन रोगों में चन्द्रप्रभा वटी के साथ च्यवनप्राश लेने से बड़ा लाभ होता है।

आमलाक्य रसायन—ताजे सूखे हुए आँवलों का कपड़छन चूर्ण लेकर उसमें ताजे हरे आँवलों के रस की भावना देकर सुखाना चाहिये। इस प्रकार उस चूर्ण को हरे आंवलों के रस में २१ बार तर करके सुखाकर रख लेना चाहिये। इस चूर्ण को तीन माशे से छः माशे की मात्रा में दिन में दो बार गाय के दूध के साथ सेवन करने से वीर्य पुष्ट होता है, कांति बढ़ती है और पित्त की शांति होती है।

आम्लक घृत—बढ़िया भूमि में उत्पन्न उत्तम आँवलों का स्वरस ८ आढ़क (५१ सेर १६ तोला) और पूनर्नवा की लुग्दी आधा आढ़क (३ सेर १६ तोला) लेकर उसमें दो आढ़क घी डालकर मंदी आँच पर पकावें। जब रस जलकर घी मात्र शेष रह जाय, तब उसको छान लें। इस प्रकार इस घी को सौ बार आँवलों के रस में और पुनर्नवा की लुग्दी में तथा १०० बार बिदारीकंद के स्वरस में और जीवन्ती की लुग्दी में तथा सौ बार अतिबला के काढ़े में और शतावर की लुग्दी में पकावें। इस प्रकार सिद्ध हो जाने पर उस घी को छानकर उस में १२८ तोला शहद और १२८ तोला शक्कर मिला दें। फिर उस घी को घी से तृत शुद्ध मिट्टी के घड़ों में भर दें। इस घी का कुटिप्रावेशिक विधि से अग्नि बल के अनुसार सेवन करने से मनुष्य सौ वर्ष तक जरा रहित होकर जीता है, श्रुतधर होता है। उसका रूप अत्यंत ही सुन्दर और तेजस्वी होता है, उसकी स्त्री सहवास की शक्ति बहुत बढ़ जाती है, और उसकी संतान भी बहुत दृढ़ होती है।

आमलकी अवलेह—तरुण खाँखरे (पलास) के झाड़ को जलाकर उसका खार निकालें। उस खार को छः गुने जल में घोल लें। उस खार के जल में १००० आँवले और १००० पीपर डाल दें। ये दोनों चीजें उस क्षार जल में डूबी हुई रहनी चाहिये। जब यह देखें कि क्षार जल उनके अंदर अच्छी तरह पहुँच गया है, तब उन्हें निकाल कर, आँवलों की गुठलियाँ निकाल कर, उन्हें फेंक दें तथा उन्हें छाया में सुखा लें। सूखने पर उन्हें और पीपर को कूटकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण के वजन से चौगुने वजन की शहद और घी क्रमशः उस चूर्ण में मिला दें। फिर उस चूर्ण के वजन से चौथाई बढ़िया शक्कर भी मिला दें। फिर इस सब औषधि को घी से भावित मिट्टी के घड़े में रख कर, उस घड़े का मुँह बन्द करके छः महीने तक जमीन में गाड़ दें। उसके बाद उसे निकाल कर आधे तोले से एक तोले तक की मात्रा में दूध के साथ सेवन करें और सात्विक भोजन करें। इस अवलेह का गुण भी उपरोक्त रसायन के गुण के बराबर होता है।

धात्रीलोह—अच्छे ताजे सूखे हुए आंवलों का चूर्ण ८ तोला, लोहभस्म ४ तोला, मुलेठी २ तोला, इन तीनों चीजों का बारीक चूर्ण करके इस चूर्ण को ७ भावना हरे आंवलों के रस की और ७ भावना नीमगिलोय के रस की देना चाहिये। इस चूर्ण को एक माशे से दो माशे तक की मात्रा

में लेने से पाण्डु, कामला, अजीर्ण और अम्लपित्त आदि रोग दूर होते हैं। भोजन के पहिले इस चूर्ण को तीन माशे घी और ६ माशे शहद के साथ लेने से पित्त और वायु की व्याधियां दूर होती हैं। भोजन के अन्त में लेने से खट्टी डकारें, हृदय की जलन, परिणामशूल और पेट के दर्द दूर होते हैं।

महातिक्त घृत—अतीस, अमलतास, कुटकी, कालीपाढ, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीम की अन्तर्छाल, धमासा, रक्तचंदन, पीपर, गजपीपर, पद्माक, हल्दी, दारूहल्दी, बच, इन्द्रायण, शतावरी, गोरीसर, कालीसर, इन्द्रजौ, अड़ूसा, गिलोय, चिरायता, मुलेठी, त्रायमाण, ये सब चीजें एक २ तोला लेकर पानी के साथ पीसकर चटनी जैसी बना लेना चाहिये। फिर उस लुग्दी को लोहे की कढ़ाई में रखकर, उसमें १२८ तोला पानी, २५६ तोला ताजे आंवले का रस और १२८ तोला घी डालकर, मन्दाग्नि से उबालना चाहिये। जब सब चीजें जलकर केवल घी मात्र शेष रह जाय, तब उताकर, छानकर रख लेना चाहिये। इस घी को एक तोले से २ तोले तक की मात्रा में दिन में दो बार लेने से और ऊपर से थोड़ा ठण्डा पानी पीने से कोढ़, वात-रक्त, रक्त-पित्त, खूनी बवासीर, अम्लपित्त, विस्फोटक, खुजली, पाण्डु, कामला, कंठमाल, भगन्दर इत्यादि कष्ट-साध्य स्थिति में पहुँचे हुए रोग भी नष्ट होते हैं। गरम प्रकृति के लोगों को खून या पित्त के विकार में जब दूसरी कोई भी औषधियां अनुकूल नहीं पड़तीं, उस समय यह औषधि आश्चर्यजनक ढङ्ग से लाभ पहुँचाती है। बशर्ते कि धैर्य के साथ इसका सेवन किया जाया।

बृहद्धात्री घृत—आँवले का रस, बिदारीकंद का रस, शतावरी का रस, गाय का दूध और घी, ये सब चीजें चौंसठ २ तोला, कांस, डाभ, काला गन्ना, मूंज और खस, इन सबकी जड़ें सोलह २ तोले लेकर जौकुट करके ८ सेर पानी में उबालना चाहिये। जब ६४ तोला पानी शेष रह जाय, तब उसको छानकर, उपरोक्त रसों में डालकर मंदाग्नि से पकाना चाहिये। जब सब चीजें जलकर केवल घी मात्र शेष रह जाय,तब उसको उतारकर,छानकर उसमें मुलेठी,निसोथ,यवक्षार और विधारा, इन सब चीजों का चूर्ण चार २ तोला और शक्कर तथा शहद ३२ तोला डालकर मिला लेना चाहिये। इस घी में से प्रतिदिन एक से दो तोला तक की मात्रा में घी लेकर ऊपर से अशोक, गिलोय, अड़ूसे की जड़ की छाल, दारूहल्दी, नागरमोथा और लालचन्दन, इन सब चीजों के चूर्ण का बनाया हुआ काढ़ा पीने से स्त्रियों को होने वाले सब प्रकार के प्रदर नष्ट होते हैं और उनका शरीर पुष्ट होता है।

बवासीर नाशक महौषधि—गाय का मक्खन पावभर लेकर लोहे की कढ़ाई में मन्दाग्नि पर चढ़ाना चाहिये। जब उसमें से फेन का भाग जल जाय, तब उसमें गुठली निकाले हुए सूखे आँवलों का चूर्ण दो तोला डालकर हिलाना चाहिये। जब वह थोड़ा सिक जाय, तब उसमें बड़ के कोमल पत्तों की पीसी हुई लुग्दी २ तोला डालकर फिर हिलाना चाहिये। जब दोनों चीजें अच्छी तरह सिक जाय, तब उस कढ़ाई को उतारकर २४ घण्टे तक पड़ी रहने देना चाहिये। उसके बाद उसे नीम के हरे डण्डे से अच्छी तरह से घोट कर रख लेना चाहिये। इस औषधि को प्रतिदिन सबेरे-शाम

६ माशे से १ तोले तक की मात्रा में लेने से और भोजन में केवल दूध और भात लेने से कुछ दिनों में बवासीर में होने वाली पीड़ा और गिरने वाला खून बन्द हो जाता है। इतनाही नहीं कुछ दिनों तक लगातार सेवन करते रहने से धीरे २ बवासीर निर्जीव होकर खिर जाता है। जंगलनी जड़ी-बूटी नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के रचयिता का कथन है कि यह औषधि अनेक रोगियों पर आजमाई हुई है।

आँवले का तेल—आँवले का स्वरस ४ सेर, शैवाल का स्वरस ४ सेर, भाँगरे का स्वरस ४ सेर, शुद्ध तिल का तेल ३ सेर, इन सब औषधियों को पीतल के कलई किये हुए बर्तन में भर दें। फिर इसमें बालछड़ १ तोला, छोटी इलायची १ तोला, सफेद चंदन का बुरादा १० तोला, खस १० तोला, गुलाब के फूल १० तोला, कपूरकचरी १ तोला, लौंग १ तोला, दालचीनी १ तोला, तेजपात १ तोला, जटामासी १ तोला, इन सब चीजों को पानी के साथ बारीक पीसकर इनकी लुग्दी को उस बर्तन के बीच में रख दें, इसके साथ ही नागरमोथा २ तोला, मुलेठी २ तोला, कमल के फूल २ तोला, गिलोय २ तोला, मजीठ २ तोला, हलदी २ तोला, केवड़े की जड़ २ तोला और त्रिफला २ तोला, इन सब चीजों को जौकुट कर ८ सेर पानी में इनका काढ़ा बनाकर, २ सेर पानी रहने पर, छानकर वह भी उस बर्तन में डाल दें और उस बर्तन को मंदाग्नि पर चढ़ा दें। जब सब चीजें जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उतारकर तेल को छान लें और उसमें बेंजील डालकर दिन-रात पड़ा रहने दें। फिर उसे छानकर उसमें रूह गुलाब ६ माशे, रूह केवड़ा ६ माशा, रूह हिना ६ माशे, रूह मोतिया ६ माशे, इत्र मौलसरी ६ माशे, रूहसन्दल ६ माशे, रूहखस १ तोला, रूह मदनमस्त १ तोला, सतपोदीना १ तोला और कपूर १ तोला, ये सब चीजें भलीभांति मिलाकर बोतलों में भर कर रख लें।

यह योग आयुर्वेदीय-कोष का है। इस ग्रंथ के रचयिताओं का कथन है कि इस तेल को सर में डालने से बाल अत्यन्त मुलायम रहते हैं। एक दिन लगाने से इसकी भीनी २ खुशबू कई दिनों तक बनी रहती है। इससे बाल काले और लंबे हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह तेल हर प्रकार के सिरदर्द, चक्कर आना, बाल टूटना, मूर्छा आना इत्यादि मस्तक से सम्बन्ध रखने वाली बीमारियों की अनुपम औषधि है।

आँवले के अन्य उपयोग—

अतिसार—आँवलों को जल में पीसकर रोगी की नाभि के आस-पास उनकी पाल बाँध दें और उस पाल में अदरक का रस भर दें। इस प्रयोग से अत्यन्त भयंकर नदी के वेग के समान दुर्जय अतिसार का भी नाश होता है। (भाव-प्रकाश)

हिचकी—आंवला, कैंथ का रस और पीपर का चूर्ण शहद के साथ रोगी को सेवन कराने से हिचकी में लाभ होता है।

बवासीर—आँवलों को भलीभाँति पीसकर उस पीठी का एक मिट्टी के बर्तन में लेप कर देना चाहिये। फिर उस बर्तन में छाछ भरकर उस छाछ को रोगी को पिलाने से बवासीर में लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र—आँवलों के २ तोला स्वरस में इलायची का चूर्ण भुरभुरा कर पीने से मूत्रकृच्छ मिटता है।

सोमरोग—आँवले का स्वरस, पका केला, शहद और मिश्री को एक साथ मिलाकर चटाने से सोमरोग मिटता है।

श्वेत प्रदर—आंवलों के बीजों को पानी के साथ पीसकर, उस पानी को छानकर, उसमें शहद और मिश्री मिलाकर पिलाने से श्वेत-प्रदर में लाभ होता है।

नेत्ररोग—आँवलों को जौकुट कर दो घण्टे तक पानी में औटाकर, उस जल को छानकर, दिन में तीन बार आंखों में डालने से नेत्ररोगों में बहुत लाभ होता है।

गठिया—२ तोले सूखे आंवले और दो तोलें गुड़ को डेढ़ पाव पानी में औटाकर, आधपाव पानी रहने पर मल, छानकर पिलाने से गठिया में लाभ होता है। मगर इस औषधि को सेवन करते समय नमक छोड़ देना चाहिये।

पित्तज्वर और पित्त की घबराहट—पके हुए आंवलों का रस निकालकर उसको खरल में डाल कर घोटना चाहिये, जब गाढ़ा हो जाय तब उसमें और रस डालकर घोटना चाहिये। इस प्रकार घोटते २ सबको गाढ़ा करके उसका गोला बनाकर चूर्ण कर लेना चाहिये। यह चूर्ण अत्यन्त पित्त-शामक है। इसको सेवन करने से चित्त की घबराहट, प्यास और पित्त का ज्वर दूर होता है।

रक्त-पित्त—दही के साथ आंवले का सेवन करने से रक्त-पित्त में लाभ होता है।

योनिदाह—योनि की जलन में आंवले के रस में शक्कर और शहद मिलाकर पिलाने से योनिदाह में फायदा होता है।

पाण्डुरोग—लोह-भस्म के साथ आंवले का सेवन करने से कामला, पाण्डु और रक्ताल्पता के रोगों में अत्यन्त लाभ होता है।

सुजाक—आंवले का चूर्ण जल में मिलाकर पिलाने से और उसी जल की मूत्रेन्द्रिय में पिचकारी देने से सुजाक की जलन शान्त होती है और धीरे-धीरे घाव भर कर पीब आना बन्द हो जाता है।

नक्सीर—आंवले के पत्तों को कपूर के साथ पानी में पीसकर सिर पर लेप करने से नक्सीर का आना तत्काल बन्द होता है।

आँख की फूली—सात माशे आंवले को जौकुट कर ठण्डे पानी में तर कर दें। दो-तीन घण्टे बाद उन आंवलों को निचोड़ कर फेक दें और उस जल में फिर दूसरे आंवले भिगो दें। दो-तीन घण्टे बाद उनको भी निचोकर फेक दें। इस प्रकार तीन-चार बार करके उस पानी को आंखों में डालना चाहिये। कई दिनों तक इस प्रयोग के करने से आंखों की फूली में लाभ होता है।

मूत्ररोग—आंवले को घोट छानकर शक्कर मिलाकर पीने से मूत्र के साथ रुधिर आना बन्द होता है।

आशफल

नाम—

बंगाल—आशफल। बम्बई—उम्ब। कनाड़ी—मलेहक्कूट। मराठी—उम्ब, बुम्ब। लेटिन—Nephelium Longana (नेफीलियम लोंगाना)

वर्णन—

यह वनस्पति कोकण से दक्षिण के हरे जंगलों में, खासिया पहाड़ी पर और बर्मा में पैदा होती है। इसकी छाल फिसलनी होती है, पत्ते दो से लगाकर पांच २ तक के जोड़ में आते हैं, फूल छोटा और सफेद रहता है। फल जब छोटा रहता है, तब खाने के लायक रहता है। इस फल में एक काले रंग का चमकीला बीज रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि अग्निवर्द्धक, कृमिनाशक और पौष्टिक है। इसमें सेपानिन नामक एक पदार्थ होता है।

आस

नाम—

अरबी—हब्बुलआस। फारसी—आस, असबिरी, मउरिद। हिन्दी—मुराद, विलायती मेंहदी उर्दू—हब्बुलआस। लेटिन—Myrtus Communis. (मायर्टस कम्युनिस)

वर्णन—

यह औषधि भूमध्य प्रदेश से उत्तर, पश्चिम हिमालय तक पैदा होती है। भारतवर्ष के बगीचों में भी यह बोई जाती है।

इसके बागी और जंगली ऐसे दो भेद होते हैं। बागी का वृक्ष अनार के वृक्ष की तरह और पत्ते अनार के पत्तों से कुछ छोटे होते हैं, ये स्वाद में कुछ मीठे होते हैं। इसके फूल सफेद सुगंधित स्वाद में किंचित, तिक्त और फीके होते हैं। फल काले और उसके बीज सफेद होते हैं। जंगली आस का वृक्ष बागी आस से किसी कदर छोटा होता है। इसका फल पकने पर लाल रंग का और पत्ते पीले होते हैं। दोनों प्रकार के वृक्ष सदा बहार होते हैं। इस वृक्ष के तने पर एक खास चीज पैदा होती है, जिसको बुंख-आस कहते हैं। यह वस्तु उसके दूसरे सब अंगों से अधिक प्रभावशाली होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी-चिकित्सा के अन्दर आस को बहुत प्राचीन समय से बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त है। हिपॉक्रेटस, डिसकोरिडस, प्लाइनी, गेलन तथा दूसरे अरबियन लेखकों ने अपने २ ग्रन्थों में इस औषधि की बड़ी तारीफ की है। इस औषधि में एक सबसे बड़ी विशेषता जो शायद दूसरी औषधियों में नहीं पाई जाती, यह है कि इसमें परस्पर विरुद्ध गुणों का समावेश पाया जाता है। इस एक ही औषधि में शीतल और गरम, संकोचक और उत्तेजक इत्यादि अनेक विरुद्ध गुणों का सम्मेलन पाया जाता है। पहले गुण इसके पत्तों में हैं और दूसरे गुण इसके फलों में पाये जाते हैं।

यूनानी मतानुसार बागी-आस पहले दर्जे में शीतल और दूसरे दर्जे में रुक्ष है। यह अतिसार और प्रवाहिका रोग में लाभ पहुँचाता है। इसके अधिक सूँघने से खराब स्वप्न दीखने का रोग हो जाता है। आँतों को भी यह हानि पहुँचाता है, इसका फल गर्मी की खांसी में लाभ पहुँचाता है, दस्तों को बन्द करता है, मूत्रनिस्सारक है, पथरी को तोड़ता है, हृदय को बल देता है, पेचिश में लाभकारी है, रक्तस्राव को बन्द करता है। इसके तेल से बनी हुई मरहम को आग से जले हुए स्थान पर लगाने से फोला नहीं होता। बिच्छू के जहर में भी यह फायदा पहुँचाता है। यह आमाशय को बल देने वाला, प्यास, कै और मतली को निवारण करने वाला और हिचकी को दूर करने वाला है। इसके तेल को बालों पर लगाने से बालों का गिरना बन्द होकर नये बालों का आना प्रारम्भ हो जाता है।

इसके पत्ते दिमाग की तकलीफों में बड़े मुफीद माने जाते हैं। खास करके मृगी के रोग में ये बड़े उपयोगी हैं, ये अग्निमांद्य, पेट और यकृत की बीमारियों को दूर करते हैं। इसके पत्तों के पानी से मुँह साफ करने से लार की बाहुल्यता रुकती है।

इसके पत्तों का तेल फ्रांस में बहुत काम में लिया जाता है। वहाँ पर यह संक्रमण को दूर करनेवाला माना जाता है। यह एक प्रकार की रोगाणुनाशक औषधि है। पेरिस के अस्पतालों में श्वासक्रिया और मूत्राशय की तकलीफों में तथा फेफड़े के कतिपय विकारों में इसका उपयोग किया जाता है। आमवात की बीमारी में भी इसकी मालिश करने से बड़ा लाभ होता है।

इसके फूलों के तेल को बालों में लगाने से बालों की जड़ें मजबूत होती हैं। उनमें शक्ति आती है, उनका चमकीलापन तथा कालापन वृद्धि पाता है। बालों के लिये यह एक अत्यंत पौष्टिक खुराक है। आग से जले हुए स्थान पर भी इसका लगाना बड़ा लाभदायक है। यह गरमी की सूजन को मिटाने वाला, घावों को भरने वाला तथा सिर की गंज में लाभ पहुँचाने वाला है। इस तेल को कान में टपकाने से कान का दर्द मिटाता है। नौ माशे की खुराक में पिलाने से सिर का दर्द मिटता है, श्वासरोग में भीयह लाभदायक है।

डाक्टर नॉडकर्नी के मतानुसार आस का पौधा उत्तेजक और संकोचक है। आमवात के विकारों में इसके पत्तों से निकाला हुआ तेल मालिश करने के काम में लिया जाता है। इसके बीजों से बनाये

हुए तेल के उपयोग से बालों की जड़ें मजबूत होती हैं । इसका फल आफरे को नष्ट करने वाला है, अतिसार और प्रवाहिका रोग में इसकी फाएट पिलाने से और श्वेत-प्रदर में इसकी बस्ती देने से बड़ा लाभ होता है ।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह संकोचक, उत्तेजक, रोगाणुनाशक, और चर्मदाहक औषधि है। यह बिच्छू के जहर में उपयोग में ली जाती है। इसमें एक प्रकार का इसेन्शियल ऑइल पाया-पाया जाता है । केस और महेस्कर के मत के अनुसार यह औषधि बिच्छू के डंक में निरुपयोगी है ।

उपयोग—

बवासीर—इसके पंचांग की धूनी देने से अर्शरोग में लाभ होता है ।

सिरदर्द—आस के पत्तों को शराब में उबाल कर लेप करने से कठिन सिरदर्द भी आराम हो जाता है ।

अण्डवृद्धि—इसके पत्तों का लेप करने से अण्डवृद्धि में लाभ होता है ।

संधिवात—आस के पत्तों को पानी में उबालकर उस पानी की धार देने से संधिवात में लाभ होता है ।

कुष्टरोग—इसकी ताजी लकड़ी से दातुन करने से कुष्टरोग में कुछ शान्ति मिलती है ।

नेत्ररोग—यदि गरमी से आंखे दुखती हों या वायु से वे फूल जायँ तो इसके पत्तों का स्वरस टपकाने से बड़ा लाभ होता है ।

संग्रहणी—इसके पत्तों का स्वरस पीने से अतिसार, संग्रहणी बवासीर और कामलारोग में लाभ होता है ।

पथरी—इसके फल और पत्तों का मद्य के साथ उपयोग करने से वस्तीगत पथरी में लाभ होता है तथा पेशाब साफ आने लगता है ।

दंतशूल—इसके सूखे पत्तों के चूर्ण से मंजन करने से दांतों की जड़ें मजबूत होती हैं तथा इसके पत्तों के काढ़े से कुल्ले करने से गरमी से होने वाला दांत का शूल आराम हो जाता है ।

आस्से ओड़ा

वर्णन—

यह एक छोटा वृक्ष है जो पल्लीग्राम के जङ्गलों में होता है । लोग इसकी डाल की दतुन करते हैं । इसके फल की चुरट बनाकर पीने से गले के घाव और डिफ्थीरिया रोग में बड़ा लाभ होता है ।

चुरट बनाने की तरकीब यह है । आस्से ओड़ा के पके फल १६ और कालीमिर्च १६, इन दोनों चीजों को अच्छी तरह पीस लें । फिर एक पतले कागज पर गाय का घी लगा कर सुखा लें, सूख जाने पर उपरोक्त पिसी हुई चीज का उस कागज पर लेप करके उसे फिर सुखालें । फिर उस कागज को लपेट कर चुरट तैयार कर लें ।

इक्लीलुल् मलिक

नाम—

अरबी—असाबउल मलिक, इक्लीलुल् मलिक। **हिंदी**—नाखुना। **फारसी**—नाखुना, ग्याह-कैसर। **लेटिन**—Trigonella Uncata. (ट्रिगोनेला अंकेटा) और Meli Lotus Alba (मेली-लोटस एल्बा)

वर्णन—

यह एक प्रकार की मुलायम वनस्पति है। इसके पत्ते तीन २ के गुच्छे में रहते हैं, ये गोल रहते हैं। इसके फूल सफेद और लम्बे रहते हैं। इसकी फली लम्बगोल होती है। इसमें एक-दो बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह सूजन को उतारने वाला, दोषों को पचाने वाला और कठिन सूजन को मुलायम करने वाला है। आमाशय, यकृत और प्लीहा के दर्दों में भी यह विशेष उपयोगी है। अफसंतीन रूमी के साथ इसको मिलाकर लेप करने से यकृत और प्लीहा की सूजन घट जाती है।

मध्य यूरोप के अन्दर यह औषधि अस्पर्क (Melilotus Officinalis) के बदले में उपयोग की जाती है।

इसका काढ़ा लकवा, धनुष्टंकार, आक्षेप और स्नायु-जाल की अन्य बीमारियों में भी लाभ पहुँचाता है। श्वास और दमे में भी यह लाभदायक है। इसके प्रयोग से पथरी भी कट कर निकल जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह संकोचक और निद्रा लाने वाली औषधि है। इसमें कोमेरिन (Coumarin) नामक पदार्थ पाया जाता है। यह हृदय की क्रिया को धीमी करता है।

उपयोग—

सूजन—कठोर और दृढ़ सूजन के लिये इस औषधि को बनफशा, अलसी और मेथी के साथ उपयोग करना चाहिये।

सिर की गंज—इसको सिरके में पीसकर सिर की गंज पर लेप करने से लाभ होता है।

कान का दर्द—इसके काढ़े को कान में टपकाने से कान का दर्द आराम होता है।

सिर दर्द—सिरका और गुलरोगन के साथ इसका सिर पर लेप करने से गरमी का सिरदर्द मिटता है।

इन्द्रजौ

नाम—

संस्कृत—कुटजबीज, यव, इन्द्रयव, कालिंग, भद्रयव इत्यादि। **हिन्दी**—इन्द्रजौ। **गुजराती**—इन्दरजव। **बंगाली**—इन्द्रयव। **मराठी**—कुड़्याँ चें बीज। **कर्नाटकी**—कोड़ा सिगय बीज। **फारसी**—जवान कुंचिस्क। **अरबी**—लेसानुत् असाफीर। **लैटिन**—Holarrhena Antidysenterica.

वर्णन—

इन्द्रजौ का पौधा जिसको कुड़े का झाड़ कहते हैं भारतवर्ष की एक अत्यन्त प्रसिद्ध वनस्पति है। इसके झाड़ ४ से १० फीट तक ऊँचे होते हैं। इसकी छाल आध इंच मोटी और कुछ मोटी तथा भूरे रंग की होती है। इसकी शाखाओं पर चार से आठ इंच लम्बे और तीन-चार इंच चौड़े पत्ते आमने-सामने आते हैं, इसके फूल गुच्छेदार और सफेद रंग के होते हैं। इसकी फलियें एक से दो फीट तक लम्बी, पाव इञ्च मोटी और दो २ एक साथ जुड़ी हुई होती हैं, ये फलियाँ लाल रंग की होती हैं। इनके भीतर के बीज जो इन्द्रजौ के नाम से मशहूर हैं, कच्ची हालत में हरे और पक्की हालत में गेहूँ के रंग के होते हैं।

कूड़े का वृक्ष दो प्रकार का होता है। एक सफेद और दूसरा काला। सफेद कूड़े के बीज मीठे इन्द्रजौ के नाम से और काले कूड़े के बीज कड़वे इन्द्रजौ के नाम से मशहूर हैं। कड़वे इन्द्रजौ को लैटिन में Antidysenterica. और मीठे इन्द्रजौ को Wrightia Tinetorica. कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—कूड़े के झाड़ की छाल और उसके बीज अर्थात् इन्द्रजौ बहुत प्राचीन समय से इस देश में औषधि के रूप में व्यवहृत होते आ रहे हैं। इसकी छाल कड़वी, शुष्क, गरम, कसैली और कृमिनाशक होती है। अतिसार, रक्तातिसार, पित्तातिसार, आमातिसार इत्यादि रोगों पर यह वनस्पति बहुत ही उत्तम कार्य करती है। मरोड़ी के दस्तों में जब कि भयङ्कर रीति से दस्तों में खून गिरता है, उस समय कूड़े की छाल आशीर्वाद की तरह लाभ पहुँचाती है। चाहे जैसा खूनी अतिसार हो और चाहे जैसी मरोड़ी आती हो, उसको भी यह औषधि मिटा देती है। आयुर्वेद के अन्दर रक्तातिसार में कूड़े की छाल की बराबरी करने वाली दूसरी कोई भी औषधि नहीं है। यह एलोपेथी की सुप्रसिद्ध दवा इपीकोना का मुकाबला करती है। बवासीर और रक्त-पित्त के रोगों में भी यह औषधि बड़ा लाभ पहुँचाती है। इससे बवासीर के अन्दर से पड़ने वाला खून बंद हो जाता है। शरीर में ताकत आती है। चेहरे का पीलापन मिटता है और आंखों में जीवन आता है। मलेरिया ज्वर, इकांतरा तथा मियादी बुखारों में भी यह औषधि बड़ा काम करती है। जिस समय अकेली क्विनाइन किसी बुखार

को तोड़ने में नाकामयाब होती है, उस समय क्विनाइन के साथ कूड़े की छाल का सत्व मिलाकर देने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। इसकी छाल का स्वरस शहद के साथ लेने से प्रमेह और कामला में लाभ होता है। लोहभस्म के साथ इसके चूर्ण का सेवन करने से प्रदर में बड़ा जबर-दस्त लाभ होता है।

इसके बीज अर्थात् इन्द्रजौ ग्राही और शीतल है। बालकों के अतिसार, रक्तातिसार और आंतों की व्याधियों में जब गुदाद्वार से खून गिरता है और साथ में बुखार भी रहता है, तब यह औषधि छाछ के साथ देने से बड़ा लाभ पहुँचाती है। दूसरी ग्राही औषधियों में जहां केवल स्तम्भन का गुण रहता है। वहां कूड़े की छाल और इन्द्रजौ में स्तम्भन के साथ पाचन का गुण भी रहता है। इससे जहां यह एक तरफ दस्तों को बंद करती है, वहां दूसरी ओर आम का पाचन भी करती है। इन्हीं दिव्य गुणों के कारण चिरकाल से यह औषधि आयुर्वेद की प्रियपात्र रहती आई है।

यूनानी मत—यूनानी मत से कूड़े की छाल कड़वी, जख्म भरने वाली और रक्तस्राव-रोधक है। यह सिरदर्द को मिटाने वाली और मसूड़ों को मजबूत करने वाली है। इसका धुआँ बवासीर के लिये लाभकारक है। इसके पत्ते संकोचक और स्तनों के दूध को बढ़ाने वाले हैं, ये पौष्टिक और कामोद्दीपक है। कटिवात और पुरातन वायु-नलियों के प्रदाह में भी यह मुफीद है। मूत्र-नाली सम्बन्धी रोगों में भी ये अपना असर दिखाते हैं तथा ऋतुस्राव की क्रिया को नियमित रूप में ला देते हैं। इनका खास उपयोग प्रसूति काल के बाद माता और बच्चे को बफारा देने के लिये किया जाता है।

इसके बीज पेट के आफरे को दूर करने वाले, संकोचक, कामोद्दीपक और पौष्टिक हैं, ये सीने के दर्द में, श्वास में, पेट के शूल में और मूत्रकृच्छ रोग में उपयोगी होते हैं। इसके सिवाय ज्वर में, पेचिश में, रक्तातिसार में व अँतड़ियों के कृमिरोगों को नष्ट करने में मुफीद हैं।

चरक, सुश्रुत, भाव-प्रकाश व योग-रत्नाकर के मतानुसार इस वनस्पति की छाल और बीज, साँप और बिच्छू के जहर में बहुत उपयोगी हैं। मगर केस और महेस्कर का कथन है कि सर्प और बिच्छू के जहर में इस वनस्पति का प्रत्येक अंग निरुपयोगी है। उनके मतानुसार न तो यह वृक्ष विषनिवारक है, न कृमिनाशक है, न उत्तेजक है, न रक्तस्राव-रोधक है और न संकोचक है। यह कड़वी है, जिससे क्षुधा को उत्तेजना मिलती है और पाचनशक्ति बढ़ती है। यह पेचिश को दूर करने वाली और रक्तातिसार को मिटाने वाली है। इसका अतिसार-निवारक गुण किसी रासायनिक उपादान के ऊपर निर्भर नहीं है। फिर भी अतिसार सम्बन्धी तकलीफों में यह वनस्पति सस्ता, सुरक्षित और विश्वस्त गुण बतलाती है। दमा और अतिसार रोग में इसको ६० से १२० ग्रेन तक की मात्रा में दिन में तीन या चार बार एक निश्चित औषधि के रूप में उपयोग में ले सकते हैं।

कर्नल चोपरा—कर्नल चोपरा इस औषधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि पुरानी कथाओं के आधार पर इस वृक्ष की उत्पत्ति अमृत की उन बूँदों से हुई है, जोकि रामचन्द्र की सेना के बन्दरों

को जीवित करने के लिये इन्द्र ने ऊपर से गिराया था। कई लोग Holarrhena Anti dysenterica (कड़वा इन्द्रजौ) "होलेरिना एन्टिडिसेन्ट्रिका" के पौधे को तथा Wrightia Tinctoria (मीठा इन्द्रजौ) "राइटियाटिंक्टोरिया" के पौधे को एक समझ कर गड़-बड़ा जाते हैं। एक के बजाय दूसरे को काम में ले लेते हैं। इसलिये यह ख्याल रखना चाहिये कि मीठे इन्द्र जौ के फूलों में एक प्रकार की खुशबू होती है, जो जूही या चमेली के फूलों से मिलती-जुलती होती है, लेकिन कड़वे इन्द्रजौ के फूलों में किसी प्रकार की गन्ध नहीं होती। इसके अतिरिक्त मीठे इन्द्रजौ की छाल का रंग बादामी और कुछ ललाई लिये हुए होता है और हाथ लगाने से वह कुछ चिकनी मालूम होती है। मगर कड़वे इन्द्रजौ की छाल मोटी, कड़वी और मटमैले रंग की होती है। इसकी फली के अन्त में एक बालों का गुच्छा रहता है।

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसकी छाल पेचिश को दूर करने वाली और इसके बीज ज्वर, अतिसार और कृमियों को नष्ट करने वाले माने गये हैं।

अरेबियन चिकित्साशास्त्रों में भी इसकी उपयोगिता बहुत बतलाई गई है। उनके मतानुसार यह पेट के अाफरे को दूर करने वाला, संकोचक और फेफड़े के दर्दों में बहुत उपयोगी माना गया है। यह पौष्टिक, पथरीनाशक और कामोद्दीपक होता है। यदि इसको शहद और केशर के साथ मिलाकर, उसकी "पेसरी" (Pessaries) बनाकर योनिमार्ग में रक्खी जाय तो गर्भाधान में बहुत मदद मिलती है।

रासायनिक विश्लेषण—

कूड़े के वृक्ष के रासायनिक तत्वों के सम्बन्ध में बहुत कुछ अन्वेषण हो चुके हैं। यूरोपियन लोगों ने खास तौर से "होलेरिना कांगोलेंसिस' के सम्बन्ध में और भारतीय लोगों ने "होलेरिना डिसेण्ट्रिका" के सम्बन्ध में अनुसन्धान करके अपनी २ खोजें जाहिर की हैं। केस और महेस्कर ने सन् १९२७ में इसका रासायनिक विश्लेषण करके यह तत्व निकाला कि इसके बीजों में .०२५ प्रति सैकड़ा अलकेलाइडल और छाल में .२२ परसेन्ट अलकेलाइडल पाया जाता है। सन १९२८ में घोष और बोस, ने इसका नवीन विश्लेषण करके यह सिद्धान्त निकाला कि इसके सारे पौधे में अलकालॉइडल (Alkaloidal) की मात्रा, जैसा कि अभी तक कहा जाता है, उससे अधिक पाई जाती है। अर्थात् १.२ प्रति सैकड़ा से भी इसकी मात्रा अधिक पाई जाती है। इसका यह बढ़ा हुआ अङ्क यह बतलाता है कि व्यवसायिक स्केल पर अगर इससे उपक्षार तैयार किये जायँ, तो वे लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।

सन् १८५८ में सबसे पहले 'हेन्स' ने इसमें से कोनेसिन (Conessine) नामक एक उपक्षार निकाला, रामचंद्रदत्त ने इसके सभी उपक्षारों को निकाला और उन्होंने उनका नाम कुर्चिसिन (Kurchicine) रक्खा। सन् १८८६ में "वार्नेक" (Warnecke) ने और १९२५ में ऐय्यर और सियोनसेन ने इसके बीजों से शुद्ध "कोनेसिन" निकाला। सन् १९१९ में "पायमेन" ने इसकी छाल से एक नया "अलको-

लॉइड" निकाला जिसका नाम उन्होंने Holarrhenine. (होलेरीनाइन) रक्खा। सन् १६२८ में घोष और बोस ने यह बताया कि कोनेसिन के अतिरिक्त इसमें अन्य उपक्षार भी हैं, जिनके नाम "कुर्चिसिन" और "कुर्चाइन" है। "कुर्चाइन" नामक क्षार इसकी छाल में अधिक मात्रा में रहता है।

सन् १६३२ में घोष और बोस ने कलकत्ते के "स्कूल ऑफ ट्रोपिकल मेडिसिन" में "करचाइन" और "कर्चेसाइन" नाम के दोनों उपक्षार बिलकुल शुद्ध मात्रा में प्राप्त किये और इसके रासायनिक तत्वों का और मुख्य २ क्षारों का पूरा २ अध्ययन किया।

आगे चलकर कर्नल चोपरा लिखते हैं कि इसके बीज पेचिश, अतिसार, ज्वर और पित्त सम्बन्धी तकलीफों में बहुत ही लाभकारी हैं। खूनी बवासीर के उपचार में इसके बीजों का काढ़ा दूध के साथ तैयार करके उपयोग में लिया जाता है और यह बड़ा लाभ करता है। इन्द्रजौ को पीसकर या गरम पानी में उसका सत्व निकाल करके कृमियुक्त पेचिश रोग में देने से बड़ा लाभ होता है।

बीजों की अपेक्षा इसकी छाल की बहुत ही तारीफ की गई है और सुश्रुत, भाव-प्रकाश तथा निघण्टुकारों ने रक्तातिसार-नाशक औषधि की हैसियत से इसे बहुत ही ऊँचा स्थान दिया है। भारतीय और यूरोपियन दोनों ही प्रकार के चिकित्सक इसको पेचिश की एक उत्तम दवा मानते हैं। सन् १८८१ में डाक्टर आर० सी० दत्त ने जीर्ण और भयङ्कर पेचिश के रोगियों को इसकी छाल के सत्व से आराम करने में सफलता पाई। टुलवाल्श (Tullwalsh) ने भी सन् १८६१ में इसकी छाल के प्रति अपना पूर्ण संतोष प्रगट किया। कनाईलाल दे को तो इस छाल की उपयोगिता पर इतना विश्वास हो गया कि उन्होंने ब्रिटिश फरमाकोपिया में इस औषधि को सम्मिलित करने की सिफारिश की।

इण्डिजेनस ड्रग कमेटी ने पेचिश की बीमारी में कूड़े की छाल की इतनी उपयोगिता देखकर इसकी जाँच करना चाहा और इसके सत्व को निकालकर कई गवर्नमेंट अस्पतालों में भेजा और उनसे इस बात की रिपोर्ट मांगी कि आँतों सम्बन्धी शिकायतों में इसकी उपयोगिता कहाँ तक सिद्ध होती है।

इसके परिणाम स्वरूप समय २ पर जो रिपोर्टें प्राप्त हुईं वे अत्यंत उत्साह वर्द्धक थीं और उन्होंने उस कमेटी के मेम्बरों के हृदय पर यह छाप जमा दी कि रक्तातिसार को नष्ट करने के लिये यह एक बहुत उत्तम औषधि है! वॉरिंग (Waring) का कथन है कि यह सभी प्रकार के जीर्ण पेचिश के रोगों में एक उत्तम दवा है। चाहे वह पेचिश अन्य रोगों के अथवा ज्वर के साथ हो, चाहे वह उग्ररूप में हो, अगर इस औषधि का इस्तेमाल किया जाय तो उसमें अवश्य लाभ होगा। मद्रास के डाक्टर कोमान का कथन है कि बच्चों और युवकों की पेचिश की बीमारियों में इस वृक्ष की छाल का सत्व अत्यन्त सन्तोषजनक लाभ पहुँचाता है।

पेचिश की बीमारी के अन्दर इस औषधि की पूरी तरह से आजमाइश हो चुकी है, इस वस्तु का उपयोग सबसे पहिले इसकी जड़ की छाल के सत्व से प्रारम्भ किया गया। यह स्वाद में बिलकुल कड़वा

श्रौर श्रग्राह्य है। ब्यूरो वेलकम एंड को० (Burroughs Wellcome & Coy.) ने इसकी छाल के सत्व से तैयार की हुई गोलियाँ बाजार में बेचना शुरू कीं, जिसमें थोड़ी २ मात्रा में दूसरे पदार्थों को भी सम्मिलित किया। ये गोलियाँ सरलता से ली जा सकती हैं श्रौर लाभप्रद भी हैं।

सन् १६२७ में केस श्रौर महेस्कर ने भी इसकी छाल के चूर्ण को इस्तेमाल किया श्रौर वे भी अत्यन्त संतोषजनक परिणाम पर पहुँचे। सन् १६२८ में नॉवेल्स श्रौर दूसरे लोगों ने करीब सोलह बीमारों को इसकी छाल का सेवन कराया, जिसमें से १० को तो इसका अर्क दिया गया श्रौर ६ को इसके सत्व से तैयार की हुई गोलियाँ दी गईं, इसके परिणाम में आराम होने वाले रोगियों की संख्या का अनुपात बहुत ऊँचा रहा श्रौर विशेषता यह पाई गई कि बिना इञ्जेक्शन लगाये ही रोगी में किसी प्रकार के टॉक्सिक या विषैले लक्षण पैदा नहीं होने पाते। गोलियाँ देने से, बिना किसी प्रकार की असुविधा के ६० ग्रेन की मात्रा रोगी के शरीर में पहुँच जाती है श्रौर इसमें रोगी को किसी भी प्रकार की दूसरी शिकायत पैदा नहीं होती है।

कर्नल चोपड़ा ने इस दवा को २ ड्राम की मात्रा में दिन में तीन बार ४ सप्ताह से लगाकर पांच सप्ताह तक अकेले ही या ईसबगोल के साथ में जीर्ण आँतों की पेचिश की बीमारी में काम में लिया श्रौर उसका परिणाम बहुत संतोषजनक रहा। किसी भी प्रकार के असन्तोषजनक चिन्ह या विषैले पदार्थों का एकत्रित होना नहीं पाया गया। यहाँ तक कि उन बीमारों को भी जो अँतड़ियों के सिवाय दूसरे कारणों से भी पेचिश के रोग से ग्रसित थे, इससे लाभ पहुँचा।

पेचिश निवारक-शक्ति के अतिरिक्त यू० पी० के अन्दर यह भी विश्वास किया जाता है कि इस औषधि में मलेरिया के कीटाणुओं की दमन करने की शक्ति भी है। मगर प्रयोगों से मालूम हुआ है कि इस विश्वास को कोई भी वैज्ञानिक आधार नहीं है। मलेरिया में यह औषधि किसी प्रकार का प्रभाव नहीं बतलाती।

मतलब यह है इसमें जितने उपक्षार पाये गये हैं उनको रसायनशाला श्रौर अस्पतालों में आजमाइश करके देखा गया तो मालूम हुआ कि अँतड़ियों के कीटाणुओं से उत्पन्न हुई पेचिश की बीमारी में ये प्रशंसनीय फायदा पहुँचाते हैं। ये उपक्षार अधिक मात्रा में दिये जाने पर भी किसी प्रकार के खराब चिन्ह पैदा नहीं करते। यदि इसका इंट्रामसक्यूलर (Intramus Cular) इंजेक्शन दिया जाय श्रौर उसमें उपक्षार १ ग्रेन की मात्रा में हो तो यह इंजेक्शन एमेबिक डिसेंट्री में इमेटाइन के मुकाबले ही तुरन्त फायदा पहुँचाते हैं। इतना जरूर है कि इंजेक्शन देने के स्थान पर २४ घण्टे से लगाकर ४८ घण्टे तक सूजन की तकलीफ रहती है। पुरानी बीमारियों में यदि १० ग्रेन की मात्रा में दिन में दो बार ये उपक्षार १० दिन तक दिये जायँ तो संक्रामक कीटाणुओं को नष्ट कर देते हैं। कई हठीले मामलों में १५-२० दिन तक भी इनका उपयोग किया जाता है।

इंडियन मेडिकल गजट में सन् १६३० में कर्नल चोपड़ा ने यह मत प्रगट किया कि इन सब उपक्षारों को जाँचने से हमें यह अनुभव हुआ है कि स्नायु में एक ग्रेन की मात्रा में अगर इसका इंजे-

क्शन दिया जाय तो अंतड़ियों की कार्यशक्ति में यह तुरन्त ही अपना असर दिखलाता है। सर्व प्रथम इसका असर वमन से शुरू होता है। हम आशा करते थे कि ये उपचार, यकृत सम्बन्धी पीड़ाओं में भी उतने ही गुणकारी सिद्ध होंगे, लेकिन यकृत-प्रदाह में इन उपचारों की उपयोगिता सिद्ध नहीं हुई।

फरीदपुर के सिव्हिल सर्जन टी-बसु का कथन है कि जेल अस्पताल में लगातार रक्तातिसार के १४ केसों के अन्दर इसकी छाल का काढ़ा देने से बहुत ही फतहमन्द असर देखने में आया। इसी प्रकार और भी अनेक प्रसिद्ध डाक्टरों, सर्जनों, रसायन-शास्त्रियों और वैद्यों के अभिप्रायों से मालूम होता है कि सब प्रकार के अतिसारों पर यह एक रामबाण औषधि है।

इन्द्रजौ का अद्भुत चमत्कार—सन् १६२२ के जून मास के 'वैद्य' कल्पतरु में इन्द्रजौ के सम्बन्ध में उपयोगी एक नोट प्रकाशित हुआ था, वह इस प्रकार है-सेठ इस्माइल इब्राहीम नामक एक बीमार को ६५ वर्ष से रक्तातिसार, ज्वर इत्यादि की तकलीफ थी। उन्हें किसी इलाज से लाभ नहीं हुआ। वे एक दिन अनायास ही शास्त्री प्रभुलाल भाई से मिलने आये और उनसे सारा हाल कहा। तब शास्त्री जी ने उन्हें सिर्फ दो आने की एक शीशी इन्द्रजौ की दी, उसको चालू करने पर पहले ही दिन दस्त में से खून गिरना बन्द हो गया, दूसरे दिन दस्तों की संख्या कम हो गई और सात दिन खाने के बाद एक दिन अचानक पेशाब में जोर पड़कर चने के बराबर पथरी बाहर निकल पड़ी। उस दिन से फिर उन्हें कोई तकलीफ न रही।

प्रयोग और बनावटें—

कुटजाष्टक अवलेह—कुटज की जड़ की ताजी छाल ५ सेर लेकर उसका १६ सेर जल में काढ़ा करें। जब दो सेर रह जाय तब उसे छानकर फिर आग पर चढ़ा दें। जब पानी पकते २ गाढ़ा हो जाय, तब उसमें पाढ़, सेमर का गोंद, धाय के फूल, नागरमोथा, अतीस, लाजवंती और नरम बेल गिरी, इन सब चीजों का चार-चार तोला पिसा, छना चूर्ण उसमें डालकर उसका अवलेह बना लें। इस अवलेह को ३ माशे से एक तोला तक की मात्रा में चाँवलों के माँड या बकरी के दूध या छाछ या शहद के साथ देने से अतिसार, संग्रहणी, रक्त-प्रदर, रक्त-पित्त और खूनी बवासीर इत्यादि रोग आराम होते हैं। चिकित्सा-चन्द्रोदय के लेखक बाबू हरिदास वैद्य इस योग को अपना परिक्षित योग बताते हैं।

कुटज पुटपाक—कीड़ों से न खाई हुई कुटज की आधापाव ताजी छाल लेकर उसे सिल पर रख चाँवलों के धोवन में चटनी के समान पीसकर उसका गोला बना लें। उस गोले पर जामुन के पत्ते लपेट कर उन पत्तों को डोरे से बाँध दें। उसके बाद गेहूँ का सना हुआ आटा उसके चारों ओर लपेट कर उस आटे पर गीली मिट्टी की दो अंगुल तह चढ़ा दें, फिर उसे सुखाकर जङ्गली कंडों की आग में डाल दें। जब पक कर गोला कुछ सुर्ख हो जाय (अधिक लाल न होना चाहिये) तब उसे निकाल कर ठंडा कर उसकी मिट्टी और आटा दूर करके मोटे गजी के कपड़े में उसको रखकर जोर से उसे निचोड़ लेना चाहिये। इस रस को छः माशे से दो तोले तक की खुराक में जवान आदमी को देने

से सब तरह के अतिसार शर्तिया आराम होते हैं। बाबू हरिदास वैद्य लिखते हैं कि यह पुटपाक हमारी अनेकों बार की आजमाई हुई है । यह कभी व्यर्थ नहीं जाती। यह अतिसार के सौ में से नब्बे रोगियों को आराम करती है।

कुटजादि घृत—इन्द्रजौ, कूड़े की छाल, नागकेशर, नीलकमल, लोद और धाय के फूल, इन सब चीजों को दो २ रुपये भर लेकर सबको सिल पर पानी के साथ महीन पीसकर गोला बनाकर उस गोले को एक कढ़ाई में रखकर उसमें पाव भर घी और १ सेर कूड़े की छाल का औटाया हुआ जल डालकर मन्दाग्नि पर चढ़ा दो। जब काढ़ा जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब उतार कर छान लो। इस घी को बलाबल के अनुसार छः माशे से दो तोले तक की मात्रा में लेने से खूनी बवासीर में बड़ा लाभ होता है।

कुटजारिष्ट—कूड़े की अन्तर्छाल ४०० तोला, द्राक्ष २०० तोला, महुए ४० तोला, गम्भारी की छाल ४० तोला, लेकर उनको जौकुट करके १ मन ११ सेर पानी में औटाना चाहिये। जब १२॥ सेर पानी शेष रह जाय तब उतार कर, छानकर उसमें ५ सेर गुड़ और १ सेर धावड़ी के फूलों का चूर्ण डालकर अच्छी तरह से मिलाकर एक चिनाई मिट्टी की बरनी में भरकर उसका मुँह बंद करके उसको पड़ी रखना चाहिये। उसके बाद उसको छानकर उपयोग में लेना चाहिये।

प्रतिदिन सवेरे, दोपहर और शाम को एक २ रुपये भर यह आसव चार २ रुपये भर पानी के साथ मिलाकर लेने से पुरानी संग्रहणी, अतिसार, मंदाग्नि, जीर्णज्वर और रक्तातिसार में बहुत लाभ होता है।

इंद्रजौ मीठा

नाम—

संस्कृत—श्वेतकुटज, मधुइन्द्रयव । **हिन्दी**—मीठा इन्द्रजौ । **मराठी**—गोदा इन्द्रजौ, कालाकुद्दी । **गुजराती**—कालीकरी । **अरबी**—लसनुलासफिर । **फारसी**—अहरेशिरिन, इन्द्रजौ । **तेलगू**—अमकुदु, पल्लुमिली । **तामिल**—नीलपलाई, वेपाली । **लेटिन**—Wrightia Tinctoria (राइटिया टिंक्टोरिया) ।

वर्णन—

इसका वानस्पतिक वर्णन कड़वे इन्द्रजौ से मिलता-जुलता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वेद के मत से इसकी छाल और बीज बवासीर, चर्मरोग और पित्त में उपयोगी हैं। ये पौष्टिक तथा कामोद्दीपक औषधि के रूप में उपयोग में लिये जाते हैं। इसके शेष गुण कड़वे इन्द्रजौ से ही मिलते-जुलते हैं।

केस और महेस्कर के मतानुसार इसकी छाल और इसके बीज दोनों ही रक्तातिसार में निरुपयोगी हैं।

इंद्रायन

नाम—

संस्कृत—आत्मरक्ष, वृहद्वारुणि, वृहद्फल, चित्रल, चित्रफल, चित्रावली, देवि, दीर्घवल्ली, हस्तिदांत, कपिलाक्षी, कटुरस, काया, कुम्भासि, महाफल, महेन्द्रवारुणी इत्यादि। **गुजराती**—इन्द्र-वारुणी,इन्द्रानन, इन्द्रक। **मराठी**—इन्द्रावण,इन्द्रफल,इन्द्रायण। **हिन्दी**—इन्द्रायण, मकल, घोरुम्ब। **बंगाली**—इन्द्रायन, माखल। **उर्दू**—इन्द्रायण। **अरबी**—हब्ज़ल, हम्ज़क, दुमजिल। **फारसी**—काबिश्तेतल्ख। **तामील**—पेयकुमुटि। **तेलगु**—वेरिपुत्स। **कनारी**—तुमतिकाइ। **लेटिन**—Citrullus Colocynthis. (सायट्रूलस कोलोसिंथस)

वर्णन—

इन्द्रायन के सम्बन्ध में वैद्य लोगों में तथा प्राचीन ग्रंथों में कुछ मतांतर सा दिखलाई पड़ता है। कई लोग Cucumis Trigonus. (क्यूक्यूमिस ट्रिगोनस) नामक वनस्पति को जिसे हिंदी में विष-लोम्बी या जंगली इंद्रायण कहते हैं, उसीको बड़ी इंद्रायण समझकर काम में लेते हैं। काठियावाड़ के भी कई वैद्य महाफला की जगह छोटे फल वाली इन्द्रायण को काम में लेते हैं। मगर वास्तव में इन्द्रायण की बेल उससे लम्बी होती है और उसमें तरबूज के पत्तों के समान पत्ते लगते हैं। इस बेल पर नर और मादा दो प्रकार के फूल लगते हैं। इसके फल गोलाई में दो से तीन इंच तक व्यास में होते हैं और उनका रंग पहले हरा और फिर पीला तथा सफेद रंग की धारियों वाला होता है। इसके बीज भूरे, चिकने, चमकदार, लम्बे, गोल और चपटे होते हैं। इस बेल का पंचांग ही कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से इन्द्रायण कड़वी, चरपरी, शीतल, रेचक तथा गुल्म, पित्त उदररोग, कफ, कृमि, कोढ़ और ज्वर को हरने वाली है। यह अर्बुद (सांघातिक फोड़ा) जलोदर,

कफ, धवलरोग, व्रण, श्वास, खाँसी, मूत्र सम्बन्धी व्याधियाँ, पीलिया, तिल्ली, क्षयरोग जन्य कण्ठमाला, मंदाग्नि, कब्जियत, रक्ताल्पता और श्लीपद में लाभदायक है। इसकी जड़ सीने की जलन और जोड़ों के दर्द में मुफीद है। चक्षुरोग और गर्भाशय के रोगों में भी यह लाभ पहुँचाती है तथा गर्भस्थ बालक को असमय में बाहर आने से रोकती है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह तीसरे दर्जे में गर्म और दूसरे दर्जे में रुक्ष है। इसके बीज और छिलके ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि ये अत्यन्त मरोड़ी पैदा करके मृत्यु के कारण होते हैं। अधिक मात्रा में यह आमाशय को हानि पहुँचाने वाला और मरोड़ तथा पेचिश उत्पन्न करने वाला है। इसके पत्ते आँतों को हानिकारक हैं। इसके दर्प को नाश करने वाला बबूल का गोंद है। इस औषधि की मात्रा १॥ माशे से ३ माशे तक की है।

इन्द्रायण का गुदा सूजन को उतारने वाला, वायु को नष्ट करने वाला और स्नायु-मण्डल संबंधी बीमारियों में, जैसे लकवा, फालिज, आधाशीशी, मृगी, विस्मृति इत्यादि रोगों के लिये उपयोगी है। यह मस्तिष्क के विकारों को शुद्ध करता है। इससे सिद्ध किया हुआ तेल कान में टपकाने से कर्णशूल नष्ट होतां है।

कर्नल चोपरा का इस औषधि के सम्बन्ध में कथन है कि "आयुर्वेद में यह पुरानी औषधि है। इसका फल विरेचक गुणवाला बतलाया गया है। यह पित्त,कब्जियत, ज्वर और अँतड़ियों के कीड़ों में लाभकारी है। इसकी जड़ जलोदर, पीलिया, मूत्र की बीमारी और आमवात में उपयोगी है। यूनानी हकीम इस वस्तु को जलोदर, पीलिया, नष्टार्तव और गर्भाशय की तकलीफों में बहुत ज्यादा उपयोग में लेते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

"भारत और यूरोप की दोनों वनस्पतियों के रासायनिक तत्वों में कुछ भी अंतर नहीं पाया जाता है। इन दोनों में अलकालॉइड (उपक्षार) और कोलोसिन्थिन (Colocynthine) नामक कटु पदार्थ पाये जाते हैं। इसके अन्दर उपक्षार बहुत कम मात्रा में पाये जाते हैं और वे शुद्ध हालत में अलग निकाले भी नहीं जा सकते। ट्रापिकल मेडिसिन स्कूल, कलकत्ता के रासायनिक विभागों में भारत के अन्दर पैदा हुए इन्द्रायण की जांच की गई और परिणाम इस प्रकार प्राप्त हुआ। पेट्रोलियम ईथर एक्सट्रेक्ट इसके गूदा में .६१ प्रतिशत और सारे सूखे हुए फल में १.३६ पाया गया। सलफ्यूरिक ईथर एक्सट्रेक्ट गूदा में ३.१७ प्रतिशत और सूखे हुए फल में २.०४ प्रतिशत पाया गया और एलकोहेलिक एक्सट्रेक्ट गूदा में १०.६० प्रतिशत और सारे सूखे फल में १२.१५ पाया गया।

यह औषधि तेज विरेचक के रूप में काम में ली जाती है और बहुत-सी विरेचक गोलियाँ इसके सम्मेलन से बनाई जाती हैं।

के० एल० दे के मतानुसार इसमें पाया जाने वाला प्रधान तत्त्व कोलोसिंथिन नामक ग्लुकोसाइड है। इसका स्वाद कड़वा है, थोड़ी मात्रा में यह कटु-पौष्टिक है। साधारण मात्रा में यह अंतड़ियों की ग्रंथियों को उत्तेजना देता है और पतले दस्त लाता है। अधिक मात्रा में यह तेज विरेचक का काम करता है और आँतों में दर्द पैदा करता है। गर्भवती स्त्री को यदि दिया जाय तो गर्भपात का डर रहता है।

मटेरिया मेडिका ऑफ वेस्टर्न इंडिया के लेखक डाक्टर डायमाक का कथन है कि स्नायु-मण्डल की कमजोरी से होनेवाली कब्जियत, जलोदर, पीलिया, कृमि, उदरशूल व श्लीपद में इस औषधि का उपयोग होता है। मखजन के लेखक ने इसके उपयोग करने की एक विचित्र विधि बतलाई है। वह इस प्रकार है। इन्द्रायन का एक फल लेकर एक तरफ से उसकी डिग्री निकालकर उसमें कालीमिर्च भरकर पीछी बंद करके कपड़-मिट्टी करके कुछ दिनों तक चूल्हे के पास की गरम राख में पड़ा रहने देना चाहिये। उसके बाद उन मिर्चों को निकाल कर, सुखाकर, उनका चूर्ण करके देने से दीपन, पाचन और रेचन होता है।

ब्रिटिश मटेरिया मेडिका के मतानुसार इन्द्रायण अतिशय रेचक, प्रवाही, मल लाने वाली तथा शीघ्र जुलाब है। इसलिये यह हमेशा रहने वाली सख्त कब्जियत में, बुखार में, जलोदर में, ऋतुस्राव और गर्भस्राव के दर्द में तथा पेट और कामले की बीमारियों में बहुत उत्तम असर बतलाती है।

इस औषधि का विरेचन उन मनुष्यों के लिये अधिक उपयोगी है, जिन की प्रकृति सुदृढ़ और सबल हो, जिनका शरीर स्थूल हो। गर्भवती स्त्रियों, कमजोर मनुष्यों, बालकों तथा अतिसार, प्रवाहिका के रोगियों को इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसके सिवाय इस औषधि को अकेली भी सेवन नहीं करना चाहिये। बल्कि बबूल के गोंद, कतीरा इत्यादि इसके दर्प को नाश करने वाली औषधियों के साथ इस औषधि का सेवन करना चाहिये। इसका बहुत महीन चूर्ण बनाकर उपयोग करना चाहिये। चूर्ण दरदरा रहने से यह मरोड़ और पेचिश पैदाकर आँतों को काट डालता है।

मटेरिया मेडिका ऑफ थेरोप्यूटिक्स के लेखक डाक्टर विलियम व्हिटला लिखते हैं कि कोलोसिंथ (इन्द्रायण) एक उत्कृष्ट तेज विरेचन और पतले दस्त लाने वाली औषधि है पर इससे मरोड़ पैदा होती है। इसलिये इसका अकेले कभी व्यवहार नहीं करना चाहिये। बल्कि एलुआ (Aloes) और पारे (Mercury) के साथ मिश्रित कर देने से यकृत की विकृति और पुरानी कब्जियत में बहुत लाभ होता है। इससे पानी की तरह दस्त आते हैं। इसलिये कभी २ जलोदर उदरशोथ और मस्तिष्क के अन्दर रक्त संचय होने की बीमारी (Crebral Congestion) में इसका प्रयोग किया जाता है। मगर इन बीमारियों में Scammony और Elaterium इसकी अपेक्षा अधिक प्रभावशाली औषधियाँ हैं। खुरासानी अजवायन का सत्व और बेलेडोना कोलोसिंथ के द्वारा पैदा हुई मरोड़ी और शूल को बिना उसके विरेचक गुण को हानि पहुँचाये शांत करता है। इसलिये पुरानी कब्जियत में आवश्यकता

पड़ने पर इन तीनों औषधियों की सम्मिलित गोली (Compound Pill) देने से निरुपद्रव विरेचन होता है।

उपयोग—

स्तन शोथ—इसकी जड़ का लेप करने से या उसकी पुल्टिस बाँधने से स्त्रियों का स्तनपाक दूर होता है।

मूत्ररोग—जब गुर्दे के अन्दर मूत्र का बनना बन्द हो जाता है अथवा मूत्र रुक जाता है, तब इन्द्रायण के गूदे में रेवंद चीनी मिलाकर देने से लाभ होता है।

डिब्बा रोग—इसकी जड़ के एक माशे चूर्ण में दो रत्ती सेंधा नमक मिलाकर गरम जल के साथ देने से बच्चों के डिब्बा रोग में लाभ होता है।

आफरा—इन्द्रायण की गिरी और एलवे को पीसकर गरम पानी के साथ लेने से आफरा मिटता है।

प्रसव कष्ट—इसकी जड़ को पीसकर गाय के घी में मिलाकर योनि पर लेप करने से बच्चा तुरन्त सुख से पैदा हो जाता है।

उपदंश—इसकी जड़ के टुकड़ों को पाँच गुने पानी में औटाकर, जब तीन भाग पानी रह जाय, तब उसको छानकर, उसमें बूरा डालकर, फिर चढ़ा कर शर्बत बना लेना चाहिये। इस शर्बत को बलाबल के अनुसार उचित मात्रा में देने से उपदंश और वात-पीड़ा में लाभ होता है।

सूजन—इसकी जड़ को सिरके में पीसकर सूजन पर लेप करने से सूजन मिटती है।

दाँतों के कीड़े—इसके पके हुए फल की धूनी देने से दाँतों के कीड़े मर जाते हैं।

संधिवात—इन्द्रायण की जड़ १ एक तोला, पीपर १ तोला और गुड़ ४ तोला, इन सब को मिलाकर छः माशे से एक २ तोला की मात्रा में रोज लेने से संधिवात में लाभ होता है।

योनि शूल—इन्द्रायण की जड़ को योनि के अन्दर रखने से योनिशूल और पुष्पावरोध मिटता है।

बालों की सफेदी—इसकी जड़ को गाय के दूध के साथ कई दिनों तक सेवन करने से और इसके बीजों का तेल सर में लगाने से बाल काले हो जाते हैं।

कंठमाल—कंठमाल में इसकी जड़ का गौ-मूत्र के साथ उपयोग करने से लाभ होता है।

आँख का रोयाँ—आँखों की पलक के भीतरी बाजू में एक ऐसा बाल उत्पन्न होता है जो आंख के अन्दर तकलीफ पहुँचाता रहता है, इससे आंख से हमेशा आँसू बहा करते हैं। इस दर्द को मिटाने के लिए इन्द्रायन एक अद्भुत औषधि है, इसका उपयोग करने की विधि इस प्रकार है—इन्द्रायन का एक

फल लेकर एक डिगरी लगाकर उसमें २ तोला काले सुरमे का टुकड़ा रखकर डिगरी को फिर पीछे बन्द करके धूप में रख देना चाहिये, जब वह फल सूख जाय, तब उस सुरमें को निकाल कर दूसरे फल में रखकर उसे भी सुखा लेना चाहिये। इस प्रकार तीन फलों में उस सुरमें को रख २ कर सुखाने के पश्चात् फिर उसे निकाल कर बारीक पीसकर पलकों के भीतरी रोयें को निकलवाकर, उस सुरमें को आंजना प्रारम्भ करना चाहिये। इससे वह बाल फिर पैदा नहीं होगा। (जंगलनी जड़ी-बूटी)

इन्द्रायनादि चूर्ण—अजवायन १० तोला, मीठे आंवले के पत्ते ८ तोला, निसोथ की जड़ की छाल २ तोला, हरड़ १ तोला, आंवला १ तोला, बहेड़ा १ तोला, सूँठ १ तोला, मिर्च १ तोला, पीपर १ तोला, रेवन्द चीनी का सत १ तोला, एलुवा १ तोला, चित्रक की जड़ १ तोला, अकलकरा १ तोला, मेदा लकड़ी १ तोला, आंबीहल्दी १ तोला, सज्जीखार १ तोला, फुलाई हुई फिटकरी १ तोला, लवंग १ तोला, जायफल १ तोला, संचर नमक १ तोला, सेंधा नमक १ तोला, बीड़ नमक १ तोला, साम्भर नमक १ तोला, भोरिंगणी की जड़ १ तोला, पीपलामूल १ तोला, कालीजीरी १ तोला, राई १ तोला, स्याह जीरा १ तोला, सुहागा १ तोला, मोथा १ तोला, इन सब औषधियों को लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। फिर इन्द्रायन के १०-१२ फल लेकर उनमें डिगरियाँ लगाकर उन फलों में उस चूर्ण को भर कर पीछी डिगरियें बन्दकर कपड़-मिट्टी करके उपले-कंडों की आग में डाल देना चाहिये। जब फलों के ऊपर की मिट्टी पक कर लाल होजाय तब उनको निकाल कर उनकी कपड़-मिट्टी दूरकर फलों के अन्दर भरे हुए चूर्ण को और फलों के गर्भ को छाया में सुखा कर पीस लेना चाहिये। इस चूर्ण को प्रतिदिन सबेरे-शाम ३ माशे से ६ माशे की खुराक में १ तोला अरंडी के तेल के साथ मिलाकर आधापाव गाय के दूध में डालकर पीने से अंडवृद्धि का रोग दूर होता है। इसी मात्रा में इस चूर्ण को ५ तोला गौ-मूत्र के साथ पीने से जलोदर के रोग में लाभ होता है। इसी चूर्ण को २ तोला घीग्वार के गूदे के साथ मिलाकर खाने से कलेजे की गांठ,तिल्ली और कामला रोग दूर होते हैं। तथा बेर की जड़ के काढ़े के साथ लेने से वायुगोला दूर होता है। इसी प्रकार भिन्न २ अनुपानों के साथ यह औषधि भिन्न २ रोगों में काम करती है।

इन्द्रायन छोटी

यह इन्द्रायन की एक छोटी जाति होती है, जिसको लेटिन में Cucumis Trigonus (क्यूक्यूमिस ट्रिगोनस) हिन्दी में विसलोम्बि तथा जंगली इन्द्रायन और संस्कृत में बहुफल, चित्रफल, इत्यादि नाम हैं।

इसका हरा फल कड़वा और कुछ तूरा होता है। यह अग्निप्रवर्द्धक स्वाद को सुधारने वाली और कफ-पित्त को ठीक करने वाली है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह सर्पदंश में उपयोगी है। इसमें कोलोसिन्थ से मिलते-जुलते कटु तत्व रहते हैं।

केस और महेस्कर के मतानुसार इसके पत्ते और इसकी जड़ सर्पदंश में निरुपयोगी है।

इंद्रायन लाल

नाम—

संस्कृत—श्वेतपुष्पी, मृगाची, महाकाल, इत्यादि। **हिन्दी**—लालइन्द्रायन, इन्द्रायण, महाकाल। **गुजराती**—लालइन्द्रवारुणी। **बंगाली**—माकाल। **तेलगु**—अबदुत। **तामील**—कोर्टइ। **अरबी**—हंजले अहमर। **फारसी**—हंजले सुर्ख। **उर्दू**—इन्द्रायन। **लेटिन**—Trichosanthes Palmata. (ट्रिकोसेंथस पेलमेटा)।

वर्णन—

लाल इन्द्रायन की बेलें बहुत लम्बी बढ़ती हैं। ये बड़े ऊँचे २ झाड़ों पर चढ़ जाती हैं। इनके पत्ते २ से ६ इञ्च व्यास के और त्रिकोण से सप्तकोण तक होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के तथा नर और मादा दो तरह के होते हैं। इसके फल गोल नारंगी के समान होते हैं और पकने पर लाल हो जाते हैं। इन फलों पर नारंगी रंग की १० धारियाँ होती हैं। इसका गूदा कालापन लिये हुए हरे रंग का होता है और उसमें बहुत से बीज रहते हैं। इसकी जड़ जमीन में बहुत गहरी बैठती है और उसमें एक के नीचे एक ऐसे कई गाँठें होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका फल श्वास, कर्णरोग और पीनस में उपयोगी है। यह कंठरोग, अपच, श्वास, कास, प्लीहा, उदररोग, और मूढ़गर्भ को निवारण करने वाला और कुष्ट एवम् दुष्टव्रण को जीतने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल कड़वा, पेट के आफरे को दूर करने वाला, विरेचक और गर्भ-स्रावक है। आधाशीशी, मस्तिष्क की गरमी, नेत्ररोग, कुष्टरोग, मृगी और आमवात में भी यह मुफीद है। इसके कुल्ले करने से दाँत की पीड़ा में लाभ होता है। इसके बीज वमनकारक और विरेचक हैं।

बम्बई में इसके फल का धुवाँ श्वास के रोगियों को पिलाया जाता है। इसकी जड़ और बड़ी इन्द्रायण की जड़ को बराबर की मात्रा में लेकर एक लेप तैयार किया जाता है, जो सांघातिक फोड़ों (दुष्ट विद्रधि) पर लगाने के काम में आता है। त्रिफला और हलदी के साथ तयार किया हुआ इसका शीतल क्वाथ सुजाक में मुफीद माना जाता है।

कोमान के मतानुसार इस वनस्पति का फल बहुत तेज विरेचक है। इसको नारियल के तेल के साथ उबालकर एक तेल तैयार किया जाता। यह तेल आधाशीशी, पीनस, कर्णशूल और अर्धाङ्गशूल में लाभजनक होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि श्वास और फुफ्फुस के रोगों में मुफीद है। इसमें "ट्रिको-सेन्थीन" नामक एक कटु तत्व पाया जाता है, जो "कोलोसिंथ" के तुल्य ही होता है।

"इण्डियन प्लांट्स एन्ड ड्रग्स" के रचयिता का कथन है कि इसके फलों के रस या जड़ की छाल के काढ़े के साथ तेल को पकाकर उस तेल को छानकर उपयोग में लेने से आधाशीशी और शिरःशूल के प्राचीन रोग नष्ट होते हैं। कान में इसकी बूंदे टपकाने से कर्णस्राव भी बन्द होता है।

प्लेग और लाल इन्द्रायण—प्लेग के ऊपर भी इसकी जड़ के नीचे निकलने वाली गाँठ बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। इसका उपयोग करने की रीति इस प्रकार है। इसकी जड़ के नीचे, एक के नीचे एक, ऐसी कई गाँठें निकलती हैं। उन गाँठों में सबसे नीचे वाली, या सातवें नम्बर की गाँठ को लाकर उसे ठण्डे पानी में घिसकर, प्लेग की गाँठ पर दिन में दो-चार बार लगाना चाहिये और डेढ़ माशे से तीन माशे तक की खुराक में उसे पिलाना भी चाहिये। इस प्रयोग से गाँठ एकदम बैठने लगती है, बुखार भी हलका पड़ने लगता है। और दस्त की राह से प्लेग का जहर निकल जाता है तथा बीमार को चैतन्य आने लगता है।

जंगलनी जड़ी-बूटी नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के रचयिता वैद्य-शास्त्री शामलदास लिखते हैं कि हमारे एक परिचित सद्गृहस्थ जो लोगों की जिन्दगी प्लेग से बचाने के लिए डाक्टरों को हजारों रुपये खिला देने पर भी निष्फल हुए थे, उन्हें अचानक एक जंगली मनुष्य से यह योग हाथ लग गया और इसी योग से वे सैकड़ों मनुष्यों को प्लेग के पंजे से मुक्त करने में समर्थ हुए हैं।

उपरोक्त लेखक यह भी लिखते हैं कि अकेली लाल इन्द्रायन की गाँठ का लेप करने के बदले अगर इस गाँठ के साथ संखिया, जहरी कुचले की जड़, कालीजीरी, लोध और हरड़, ये वस्तुएँ समान भाग में मिलाकर गौ-मूत्र में पीसकर प्लेग की गाँठ पर लेप किया जाय तो विशेष हितकर होता है।

अन्य उपयोग—

कान का दुष्ट व्रण—इसके फल को पीसकर नारियल के तेल के साथ गरम करके कान के भीतर लगाने से कान का दुष्ट व्रण साफ होकर भर जाता है।

नाक का फोड़ा—सर्दी, गर्मी से नाक में फोड़े होते हैं और जिनमें से सड़ा हुआ पीव निकलता है, उनमें भी यह तेल लगाने से लाभ होता है।

मूत्र कृच्छ्र—लाल इन्द्रायण की जड़, हलदी, हरड़ की छाल, बहेड़ा और आँवला प्रत्येक बराबर लेकर जौकुट कर इनका काढ़ा बनाकर शहद के साथ पीने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

दमा—इसके फल को चिलम में रखकर पीने से दमे में लाभ होता है।

इपिकेकोना

नाम—

लेटिन—Psychotria Ipecacuanha.

वर्णन—

इपिकेकोना एक मशहूर वनस्पति है जोकि संसार के कई देशों में चिकित्सा-प्रणाली के अन्तर्गत उपयोग में ली जाती है। यह साइकोट्रिया इपिकेकोना नामक वृक्ष की जड़ है। यह वृक्ष दक्षिण आफ्रिका के ब्राभील में पैदा होता है। रिओडिभेनेरियो नामक बंदरगाह से सारे संसार को इसकी जड़ें भेजी जाती हैं। इसकी और भी कई जातियाँ ब्रिटिश चिकित्सा-शास्त्र में उपयोग में ली गई हैं। एक जाति मायनस इपिकेकोना के नाम से मशहूर है जो ब्राभील में मायनस भेरियस नाम के स्थान में पैदा होती है। दूसरी जाति जोहोर इपिकेकोना है जोकि फेडरेटेड मलाया स्टेट्स के जोहोर और सेलिंगन नामक स्थान में पैदा होती हैं। इन दो भेदों के अतिरिक्त एक तीसरा भेद और होता है। यह कोलंबिया में पाया जाता है। उपचार की दृष्टि से यह तीसरी जाति उपरोक्त दोनों जातियों के मुकाबिले में नहीं है।

इपिकेकोना वृक्ष की जड़ें बड़ी नाजुक और बेलनाकार होती हैं, इसकी छाल मोटी होती है, जिसपर बाकायदा रेखाएँ तथा गाँठें सरीखी पड़ी हुई रहती हैं, इसका रंग लाल और भूरा होता है। इसको तोड़ने से यह मोम के पदार्थ की तरह टूटती है। इसकी छाल और इसकी मोटी जड़ें ही वास्तव में व्यापार और उपचार की वस्तुएँ हैं।

भारतवर्ष के अन्दर इस औषधि के वृक्ष पैदा नहीं होते। मगर कुछ वनस्पतियाँ यहाँ पर ऐसी पैदा होती हैं, जो गुण और धर्म में बिलकुल इसके समान ही हैं। उनमें से एक अन्तमूल है, जिसको लैटिन में Tolophora Asthmatica. टायलोफोरा आस्थमेटिका और अंग्रेजी में Indian Ipecacaunha इण्डियन इपीकेकोना कहते हैं। इसका विवरण इस ग्रन्थ में पहिले दिया जा चुका है। एक और औषधि जिसको लैटिन में Naregamia Alata. नरगेमिया एलेटा और अंग्रेजी में Goanese Ipecacuanha. गोआनीज इपीकेकोना और मराठी में पित्वल तथा तिनियानी कहते हैं। यह वनस्पति दक्षिणी भारत के पश्चिमीय प्रांतों में पाई जाती है। इसके गुण इपीकेकोना से मिलते-जुलते हैं। मद्रास में इसे तीक्ष्ण पेचिश और वमनकारक औषधि के रूप में काम में लेते हैं। इसमें नरगेमाइन Naregamine. नामक उपक्षार पाया जाता है, जो इमेटिन से कुछ मिलता-जुलता है। एक वनस्पति जिसको लेटिन में Asclepias Curassavica. एस्क्लीपिएस क्यूरासाविका तथा अंग्रेजीमें Bastard Ipecacuanha. और हिन्दी में काकतुंडि और मराठी में कारकी कहते हैं। यह वनस्पति भी इपीकेकोना से मिलते-जुलते गुण-धर्म रखती है। इसके अन्दर खास प्रभाव दिखाने वाला पदार्थ ग्लुकोसाइड एस्क्लेपाइन है। इस वृक्ष की छाल वमनकारक है। इसके अतिरिक्त आँकड़े की जड़ की छाल भी इपिकेकोना की उत्तम प्रतिनिधि मानी जाती है।

गुण धर्म और प्रभाव—

भारतवर्ष के अन्तर्गत इपिकेकोना एक बहुत महत्व की वस्तु सिद्ध हुई है। क्योंकि यह एमेबिक अतिसार की जगत् प्रसिद्ध औषधि है और यहाँ पर एमेबिक डिसेंट्री (एमोयबी नामक एक प्रकार के कृमि से होनेवाला अतिसार) का रोग अधिक मात्रा में फैला हुआ है। कलकत्ता स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडिसिन एण्ड हाँयजिन के प्रोटोफ्लॉजी डिपार्टमेंट में बहुत से लोगों के मल का परीक्षण किया गया और उसका परिणाम यह निकला कि १४ सैकड़ा रोगी एमेबिक अतिसार के पाये गये। इससे इस बनस्पति का महत्व भली प्रकार जाना जा सकता है। यह वनस्पति भारतवर्ष में नहीं बोई जाती है। इस कारण इसकी और इसके एमेटिन एलकालाइड्स की मात्रा प्रति वर्ष दूसरे देशों से बुलाई जाती है।

कर्नल चोपड़ा लिखते हैं कि इस वृक्ष को अच्छी मात्रा में भारतवर्ष में पैदा किया जा सकता है। गवर्मेंट ऑफ इंडिया ने इसके गुणों को महसूस कर सन् १९१६-१७ में नीलगिरी और दार्जिलिंग के पास इसे बोया और फिर बर्मा में भी इसकी खेती प्रारंभ की। इसके पौधे बहुत अच्छे परवरिश हुए। १९२० और २२ की रिपोर्ट से इसका बहुत आशाजनक भविष्य दिखलाई देने लगा। मगर टेम्परेचर

के शीघ्रता से बढ़ने और घटने का इस वनस्पति पर बहुत खराब असर होता है और कई खराबियाँ पैदा हो जाती हैं। जहाँ तक इस विषय में उचित इंतजाम न हो, वहाँ तक इसके बिगड़ने की संभावना ही अधिक है। इन कठिनाइयों के बावजूद भी दार्जिलिंग के समीप मम्पू नामक स्थान पर यह वनस्पति अच्छी परविश हो रही है और ज्ञात हुआ है कि अकेले मम्पू में ही इसके २२६४६६ पौधे मौजूद हैं। बर्मा में भी सिंकोना की खेती के साथ इसके ६८८५२ पौधे परवरिश हुए हैं।

इसकी जड़ के गुण और उसमें पाये जाने वाले एमेटिन और एलकोलाइड्स भी संतोषजनक हैं-जैसा कि नीचे लिखे अंकों से ज्ञात होता है।—

इपीकेकोना	टोटल उपक्षार प्रतिशत	एमेटिक प्र० श०
ब्राझील की जड़	२.७	१.३५
ब्राझील का प्रकाण्ड	१.८०	१.१८
कोलम्बिया की जड़	२.२०	०.८६
हिन्दुस्तानी पौधे की जड़	१.६८	१.३६

ऊपर लिखे अंकों से स्पष्ट मालूम होता है कि भारत में पैदा हुई इपीकेकोना की जड़ में ब्राझील के एपिकेकोना की जड़ से एमीटाइन की मात्रा अधिक है। अगर भारत में इसकी खेती पर ध्यान दिया जाय तो इसमें अच्छी सफलता प्राप्त हो सकती है।

इमली

नाम—

संस्कृत—अम्लिका, अम्ली, अत्यम्ला, भुक्ता, चरित्रा, चिंचा, चिंचिका, चुक्रा, दंतशठा, गुरुपत्रा, पंक्तिपत्रा, सर्वाम्ला, तिंतिड़का, यमदूतिका इत्यादि। हिन्दी—इमली। बंगाली—तेंतूल। मराठी—चिंच। गुजराती—आम्बली। तेलंगी—चितचेट्ट। तामील—पुलि। फारसी—खुर्माये हिंदी, तमरे हिन्दी। लैटिन—Tamarindus Indicus (टैमरिन्डस इन्डिकस)।

वर्णन—

इमली के वृक्ष प्रायः सब दूर होते हैं और सब लोग इनको जानते हैं। इसलिये इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कच्ची इमली भारी, वातनाशक, पित्तजनक, कफकारक, और रक्त को दूषित करने वाली है। पक्की इमली दीपन, रूखी, किंचित दस्तावर और गरमी, कफ तथा वात को नाश करने वाली है।

इमली का वृक्ष भारी, गरम, खट्टा, पित्तजनक, कफ पैदा करने वाला, रक्त को दूषित करने वाला और वातविनाशक है। इसके फूल कसैले, स्वादिष्ट, खट्टे, रुचिकारक, अग्निदीपक, हलके तथा वात, कफ और प्रमेह को नाश करने वाले हैं। इसके पत्ते सूजन और रक्तविकार को दूर करने वाले हैं। कच्ची इमली खट्टी, अग्निदीपक, मलरोधक, गरम तथा रक्त-पित्त और रक्त को कुपित करने वाली है। पकी हुई इमली मधुर, सारक, खट्टी, हृदय को बल देने वाली, दीपन, रुचिकारक, वस्तिशोधक और कृमि नाश करने वाली है। इसका रस मधुर, मीठा, खट्टा, रुचिकारक, व्रणविनाशक तथा सूजन और पंक्तिशूल को नष्ट करने वाला है।

इस वृक्ष की छाल पक्षाघात रोग में उपयोगी है। चेतनहीन अङ्गों पर इसे लगाने के काम में लेते हैं। इसकी छाल की राख सुजाक और मूत्र सम्बन्धी बीमारियों में देने के काम में ली जाती है। इसके पत्ते कर्णरोग, नेत्ररोग, रक्तरोग, सर्पदंश और बड़ी माता के अन्दर उपयोग में लिये जाते हैं। इसका कचा फल आँतों के लिये संकोचक, वातनिवारक और रक्त को दूषित करने वाला है। इसका पका फल घावों को तथा हड्डी की मोच को दूर करने वाला है। इसके बीज फोड़े, फुंसी और प्रसवद्वार सम्बन्धी तकलीफों के लिये लाभदायक हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में शीतल और रुक्ष है। यह स्वरयंत्र, प्लीहा और और खाँसी तथा जुकाम में हानिकारक है। इसका प्रतिनिधि आलूबुखारा तथा दर्प को नाश करने वाला बनफशा और उन्नाब है।

मखज़नूल अदविया के मतानुसार यह हृदय को बल देने वाली, साफ दस्त लाने वाली, पित्त की वमन को रोकने वाली तथा मृदु-रेचन के द्वारा शरीर को शुद्ध करने वाली है, गले के घाव में इमली के पानी से कुल्ले करने से बड़ा लाभ होता है, आँख के रोगों पर इसके फूलों का पुल्टिस बाँधने से लाभ होता है। खूनी बवासीर के अन्दर भी इसके फूलों का रस लाभदायक है। इसके बीजों को उबालकर विस्फोटक के समान फोड़ों पर पुल्टिस बाँधने से लाभ होता है।

एक यूनानी लेखक के मत से यह हृदय और आमाशय को बल देने वाली, मूर्छा को दूर करने वाली, सिरदर्द में लाभ पहुँचाने वाली और संक्रामक रोगों को दूर करने वाली है। इसके बीज संग्राही और वीर्य-स्तम्भक हैं। इसका पका फल ज्वर में शांति देने वाला, पेट के आफरे को दूर करने वाला और मृदु-विरेचक है। शरीर की जलन में तथा नशीले पदार्थों के असर में भी यह लाभ पहुँचाती है।

मेडागास्कर में इसका हर एक हिस्सा औषधि के प्रयोग में लिया जाता है। इसकी छाल को श्वास की बीमारी में लाभदायक समझते हैं। इसके पत्तों का सत्व कृमिनाशक औषधि के रूप में काम में लिया जाता है। यह पेट की तकलीफों में भी उपयोगी है।

गायना में इसके पत्तों को पानी में उबालकर उस उबले हुए पानी को घाव धोने के काम में लिया जाता है। इसके सूखे पत्तों का चूर्ण खराब घावों पर लगाने के काम में लिया जाता है। इसके ताजे पत्तों की पुल्टिस सूजन और मोच के ऊपर बाँधी जाती है। ;इस फल का गूदा ज्वर और मंदाग्नि में उपयोगी समझा जाता है।

कम्बोडिया में इसकी छाल अतिसार रोग में व मसूड़ों की सूजन में संकोचक औषधि की तरह काम में ली जाती है। यह पौष्टिक भी माना जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके फल का गूदा पानी के साथ उबालकर शक्कर मिलाकर ज्वर, पेट का आफरा और कब्जियत मिटाने के काम में लिया जाता है। इसके बीज के ऊपर का लाल छिलका अतिसार, रक्तातिसार और पेचिश की उत्तम औषधि मानी जाती है। इस रोग में इसके पीसे हुए बीज ५ रत्ती, जीरा ५ रत्ती, और शक्कर ५ रत्ती, इनको मिलाकर दिन में दो-तीन बार देना चाहिये। शीतादिक रोग में नींबू की अनुपस्थिति में इमली का उपयोग किया जाता है। इसके फल का पका हुआ गूदा रात-दिन की कब्जियत की बीमारी में विरेचन का काम करता है। आयुर्वेदीय-चिकित्सा में इसका बहुत-सी जगह उपयोग होता है। इसके पत्तों की पुल्टिस प्रदाहिक सूजन में काम में ली जाती है।

डाक्टर डायमॉक के मतानुसार इमली में कुछ शक्कर, ऐसेटिक साइट्रिक, टॉरटेरिक एसिड्स और पोटाश का सम्मेलन रहता है। इसमें ऐसा कोई भी तत्व नहीं दिखलाई देता, जिससे इसमें विरेचक गुण पाया जाय, भारतीय लोग इस वृक्ष के अम्ल निस्सरणों को स्वास्थ्य के लिये हानिकारक समझते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इमली के वृक्ष के नीचे तम्बू के कपड़े को बहुत दिन तक रखने से उसका कपड़ा सड़ जाता है। यह भी कहा जाता है कि इसके वृक्ष के नीचे दूसरे पौधे नहीं उगते, मगर ऐसा मालूम होता है कि यह नियम सर्वव्यापक नहीं है। क्योंकि हमने इस वृक्ष की छाया में चिरायता या दूसरे प्रकार के छाया-प्रेमी पौधों को परवरिश होते देखा है।

सीलोन के अन्दर यकृत और प्लीहा में गांठ होने की बीमारी में इमली के फूल की एक प्रकार की मिठाई बनाकर रोगी को देते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि इमली की छाया में सोने से मनुष्य का शरीर ऐंठ जाता है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसके पत्तियों के स्वरस को लाल किये हुए लोहे से छौंककर प्रवाहिका रोग में देते हैं। इसकी छाल की भस्म का पाचक रूप से आंतरिक उपयोग होता है। इसका तरीका इस प्रकार है—इसकी छाल को सेंधे नमक के साथ एक मिट्टी के बर्तन में रखकर जला लें। जब उसकी सफेद राख हो जाय, तब उसे रख लेना चाहिये। इस राख को १ रत्ती की मात्रा में देने से अजीर्ण और उदरशूल रोग में बड़ा लाभ होता है।

डा० आर० एन० खोरी के मतानुसार पकी इमली का गूदा 'स्कर्व्ही' रोग को नष्ट करने वाला और मृदुरेचक है। यह ज्वर, प्यास, सर्दी, गरमी और पित्त-प्रधान रोगों में व्यवहृत होती है। हमेशा की कब्जियत में इसका गूदा लाभदायक है। चोट लगने के कारण यदि किसी अङ्ग में सूजन आ गई हो तो कच्ची इमली और इमली के पत्तों को पीसकर गरम कर सूजन पर लेप करने से लाभ होता है। इमली के बीज आमातिसार और रक्तातिसार में लाभदायक हैं।

उपयोग—

आमातिसार—इसके पके हुए बीज के छिलके का चूर्ण ४ माशा, जीरा ६ माशा, मिश्री ६ माशे, इन सब को मिलाकर चूर्ण कर चार माशे की मात्रा में तीन २ घंटे के अन्तर पर देने से पुराना आमातिसार मिटता है।

एक वर्ष के इमली के पौधे की जड़ और काली मिर्चें दोनों बराबर लेकर मट्ठे के साथ पीसकर गोलियाँ बनाकर दिन में तीन बार देने से कम से कम ६ दिन में आमातिसार मिट जाता है।

वीर्य की कमजोरी—इमली के बीजों को रात में भिगोकर सवेरे उन्हें छीलकर, पीसकर बराबर का गुड़ मिलाकर छः २ माशे की गोलियाँ बना लें। इनमें से एक २ गोली सवेरे-शाम लेने से वीर्य की कमजोरी मिटकर पुरुषार्थ बढ़ता है, गरीबों के लिये यह वस्तु बहुत उपयोगी है।

लू लगना—पकी हुई इमली के गूदे को हाथ और पैरों के तलवे पर मलने से लू का असर मिटता है।

हृदय की दाह—मिश्री के साथ पकी हुई इमली का रस पिलाने से हृदय की जलन मिटती है।

कब्जियत—पंद्रह-बीस वर्ष की पुरानी इमली का शर्बत बनाकर पिलाने से पुरानी कब्जियत मिटती है, ऐसा कहा जाता है कि पुरानी इमली पुरुषार्थ बढ़ाने के लिये अच्छी औषधि है।

शीतला—चक्रदत्त का मत है कि इमली के पत्ते और हलदी से तैयार किया हुआ ठंडा पेय शीतला की बीमारी में बहुत मुफीद है।

बनावटें—

क्षुधा-वर्द्धक पन्ना—इमली के फल का गूदा २॥ तोला लेकर आधा सेर पानी में मसलकर छान लिया जाय, उसके बाद उसमें १ छटांक मिश्री, ३॥। माशे दालचीनी, ३॥। माशे लौंग और ३॥। माशे इलायची मिला दी जाय। शीतादिक रोगों के बाद की कमजोरी को मिटाने में और वात सम्बन्धी शिकायतों को दूर करने में यह शर्बत बहुत अच्छा है, यह क्षुधा-वर्द्धक भी है।

हलका विरेचन—इमली के फल का गूदा २॥ तोला, खारक २॥ तोला और दूध पाव भर, इन तीनों को उबालकर, छानकर पीने से हलका जुलाब लगता है।

———:०:———

इलायची छोटी

नाम—

संस्कृत—वयःस्था, तीक्ष्णगंधा, सूक्ष्मैला, द्राविडि, भृगपर्णिका, छर्दिकारिपु, गौरांगी, चन्द्रबाला इत्यादि। **हिंदी**—छोटी इलायची। **बंगाली**—छोट एलाच, गुजराती इलायची। **मराठी**—वेलची। **गुजराती**—एलची कागदी। **तेलंगी**—एलाकु। **फारसी**—हैल, हाल। **अरबी**—काकिलेसिगारा। **लेटिन**—Elettaria Cardamomum. (इलेटेरिया कार्डेमॉमम्)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का हमेशा हरा रहनेवाला पौधा होता है। इसका पौधा अदरख से मिलता-जुलता होता है। इसकी ऊँचाई ४ से ८ फीट तक होती है। इसकी जड़ें जमीन में जमती हैं। इसका पेड़ १० से १२ वर्ष तक रहता है। यह सामुद्रिक तर हवा में और छायादार जमीन में परवरिश होता है। इसके फल गुच्छों में लगते हैं। छोटी इलायची के चार भेद होते हैं। एक को मलाबारी इलायची कहते हैं, दूसरी को मैसूरी इलायची, तीसरी को मेंगलोरी इलायची और चौथी को लंका की अथवा जंगली इलायची कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से छोटी इलायची के बीज शीतल, तीक्ष्ण, कड़वे और सुगन्धित होते हैं। ये पित्तजनक, मुख और मस्तक को शुद्ध करनेवाले और गर्भ-घातक होते हैं। ये वात, श्वास, खांसी, बवासीर, क्षयरोग, विषविकार, बस्तिरोग, गले के रोग, सुजाक, पथरी और खुजली का नाश करने वाले होते हैं।

भारतवर्ष के अन्दर इस वस्तु को प्राचीनकाल से ही बहुत मान प्राप्त है। यहाँ के खान-पान के अन्दर तथा उत्तम पकवानों के अन्दर सुगन्धित द्रव्य के रूप में इसका उपयोग होता आया है। इसी प्रकार आयुर्वेदिक औषधियों में चूर्ण, वटी, पाक, अवलेह इत्यादि सब चीजों में गुण और रुचिवर्द्धन की दृष्टि से यह चीज काम में ली जाती है।

सुश्रुत तथा वाग्भट्ट के अन्दर इलायची मूत्रकृच्छ्रनाशक, बंगसेन में हृदयरोगनाशक, द्रव्य-रत्नाकर में अश्मरी नाशक तथा धन्वंतरि-निघण्टु और भाव-प्रकाश में श्वास, खाँसी, क्षय और बवासीर-नाशक मानी गई है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल सुगन्धित, हृदय को बल देने वाला, अग्निवर्द्धक, विरेचक, मूत्रनिस्सारक और पेट के आफरे को दूर करने वाला है। इसके बीज सिरदर्द, कर्णवेदना, दाँत की पीड़ा, यकृत, वक्ष और गले के रोगों में भी लाभकारी है।

यह पाचक, आमाशय तथा हृदय को शक्ति देने वाली, अरुचि और उबाक को बन्द करने वाली तथा अपस्मार, मूर्छा और वायुजन्य सिरदर्द में लाभकारी है। इसके भुने हुए बीज संग्राही तथा गुर्दे और बस्ति की पथरी को निकालने वाले हैं। इसका तेल रतौंधी के लिये रामबाण दवा है। आँख में इसका तेल लगाने से पुरानी से पुरानी रतौंधी नष्ट हो जाती है। इसको कान में डालने से कर्णशूल नष्ट होता है। छोटी इलायची को मस्तगी और अनार के स्वरस के साथ देने से वमन और मिचलाहट का नाश होता है। यह पाचनशक्ति को बहुत सहायता पहुँचाती है। आमाशय के विकारों को नष्ट करती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार छोटी इलायची अग्निवर्द्धक और मूत्रनिस्सारक है। यह बिच्छू के डंक में भी काम में ली जाती है। इसमें एक प्रकार का इसेंशियल ऑइल पाया जाता है।

उपयोग—

मस्तक पीड़ा—इलायची के बीजों को महीन पीसकर सूंघने से छींके आकर मस्तक पीड़ा मिटती है।

केले का अजीर्ण—इलायची के दाने खाने से केले का अजीर्ण मिटता है।

पेशाब की जलन—इलायची को सेक कर मस्तगी के साथ दूध में फंकी देने से मूत्राशय की दाह मिटती है।

हृदय रोग—इलायची के दाने और पीपला-मूल के चूर्ण को घी के साथ चटाने से कफ-जनित हृदयरोग मिटता है।

विशूचिका—इलायची के २ तोला छिलकों को आधा सेर पानी में औटाकर पावभर पानी रहने पर, छानकर पीने से विशूचिका में लाभ होता है।

पथरी—खीरे के बीज के साथ इलायची को देने से गुर्दे और वस्ति की पथरी में लाभ होता है।

नकसीर—इलायची के अर्क को डेढ़-दो माशे की खुराक में सात-आठ बार पिलाने से नकसीर बंद होता है।

इलायची बड़ी

नाम—

संस्कृत—ऐला, स्थूलैला, कान्ता, दिव्यगंधा, इन्द्राणी इत्यादि। हिन्दी—बड़ी इलायची। मराठी—वेलदोड़े, थोरवेला। गुजराती—मोटीएलची, एलचा। फारसी—हलेकलाँ। अरबी—काकलेकिवार। तेलंगी—पेद्दएलकुलू। लेटिन—Amomum Subulatum. (एमॉमम सुब्यूलेटम)

वर्णन—

बड़ी इलायची के वृक्ष भारतवर्ष तथा नैपाल के पहाड़ों में पैदा होता है। इसके वृक्ष दो-तीन हाथ ऊँचे होते हैं। इसके फल तिकोने और आधे इंच की लम्बाई के होते हैं। इसके बीज छोटी इलायची से कुछ बड़े होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से बड़ी इलायची रक्त-पित्तनाशक, वमननिवारक और पथरी को दूर करने वाली, शीतल, हलकी, वातनाशक और अग्निदीपन करने वाली है।

इसके बीज तेज, सुस्वादु, सुगन्धित, अग्निवर्द्धक और आक्षेपनिवारक होते हैं। कफ, वात, मंदाग्नि वमन, प्यास, खुजली, उदररोग, गुदाद्वार की पीड़ा, पित्त संबन्धी विकार इत्यादि रोगों में यह मुफीद हैं। धन्वन्तरि-निघंटु के मतानुसार बड़ी इलायची, तिक्त, हलकी, कफ, वात तथा विष एवम् व्रण का नाश करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके बीज तीक्ष्ण और सुस्वादु हैं। ये अग्निवर्द्धक, हृदय तथा यकृत को बल देने वाले, निद्राकारक, क्षुधावर्द्धक और आँतों को सिकोड़ने वाले हैं। इसके बाहर का छिलका सिरदर्द, दाँतों के रोग और मुख की सूजन में लाभ पहुँचाने वाला होता है।

इसके बीजों में से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है, जो सुगन्धित, अग्निवर्द्धक, दिल को प्रसन्न करने वाला और उत्तेजक होता है।

इसके बीज खरबूजे के बीज और सिकंजबीन के साथ देने से गुर्दे की पथरी का नाश होता है। पाचन-प्रणाली और रस-क्रिया के अव्यवस्थित होने पर भी इसके बीज लाभ पहुँचाते हैं।

सौंफ के साथ इसका सेवन करने से पाचनशक्ति की निर्बलता मिटती है। मिश्री के साथ लेने से आमाशय की जलन और गरमी मिटती है। काले नमक के साथ इसके चूर्ण को लेने से पेट का दर्द और आफरा मिटता है। इसके काढ़े से कुल्ले करने से मसूड़े और दाँतों के रोग मिटते हैं।

इसके बीज स्नायुशूल में भी उपयोगी पाये गये हैं। स्नायुशूल की बीमारी में ३० ग्रेन की मात्रा में कुनेन के साथ देने से ये अच्छा लाभ पहुँचाते हैं।

अ० सर्जन गुलाम नबी का मत है कि यह विशूचिका तथा अन्य रोगों के कारण उत्पन्न हुई पेट की पीड़ा को दूर करती है। दाँतों और मसूड़ों की पीड़ा में इसके पानी से कुल्ले किये जाते हैं। गुर्दे और मूत्रकृच्छ्र के रोगों में खरबूजे के बीजों के साथ इसके बीज मूत्रनिस्सारक औषधि के रूप में दिये जाते हैं।

पेलेवरम (मद्रास) के सर्जन मेजर सी० आर० जी० पारकर लिखते हैं कि यकृत सम्बन्धी तकलीफों में और खासकर उस समय जब कि विद्रधि का भय हो, यह औषधि बड़ी उपयोगी है। इसकी मात्रा पाँच रत्ती की है।

सर्जन जे० मेटलेन्ड एम० बी० का मत है कि पाचनक्रिया के बिगड़ने पर व ग्रंथि-रस के अल्प मात्रा में बनने पर तथा यकृत के रक्तावरोध में यह औषधि उपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह अग्निवर्द्धक तथा स्नायुशूल, सर्पदंश और बिच्छू के दंश में उपयोगी है।

रासायनिक विश्लेषण--

इसके बीजों में एक प्रकार का उड़नशील तेल पाया जाता है, जो ४ प्रतिशत से ८ प्रतिशत तक की मात्रा में रहता है। इसमें Terpinylacetata और Cinule तथा सम्भवतः Limonene भी पाया जाता है।

इस इलायची का एक भेद और होता है, जिसे लेटिन में Amomum Xanthioides. (एमॉमम एक्सेंथीडस) कहते हैं। इसके वृक्ष बंगाल के पूर्व की सीमा के ग्रामों में होते हैं। इसके फलों को मोरंग इलायची कहते हैं। यह अतिसार में, प्रवाहिका में तथा अंतड़ियों में होने वाले मरोड़ों में बहुत उपयोगी है। उपरोक्त रोगों में इसको पीसकर मक्खन के साथ उपयोग करना चाहिये।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके बीज उत्तेजक और पेट के आफरे को दूर करने वाले होते हैं।

इल्लन्दा

नाम—

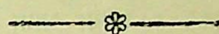
यूनानी—इल्लन्दा।

वर्णन—

यह एक वृक्ष होता है, जिसके पत्ते मोतिया के पत्तों से कुछ छोटे, मुलायम और रुएँदार होते हैं। इसका फल कच्ची हालत में हरा और खट्टा तथा पकने पर लाल और खट-मीठा हो जाता है। यह फालसे की तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी प्रकृति मौतदिल, समशीतोष्ण और खुश्क है। यह सूजन को मिटाने वाला है। इसकी जड़ सर्प के विष को नष्ट करने वाली है। ऐसा कहा जाता है कि सांप इस वृक्ष को देखते ही अपना फण जमीन पर डाल देता है। इसकी छाल रक्त-दोष और प्रमेह में लाभदायक है। इसका फल पौष्टिक, क्षुधावर्द्धक, कब्जियत और वमन तथा मतली का निवारण करने वाला है। (आयुर्वेदीय कोष)।



इश्कपेंचा

नाम—

संस्कृत—कामलता। **हिन्दी**—कामलता, चांदरैल, अमेरिकन चमेली। **बंगाली**—तरुलता, कामलता। **मराठी**—विष्णुक्रांता। **अरबी, फारसी**—इश्कपेंचा, आशिकुश्शजर, लवलाबसगीर। **लेटिन**—Ipomoea Quamoclit. (इपोमोइआ क्वामोक्लिट)।

वर्णन—

यह एक प्रकार की नाजुक वनस्पति है। इसकी पत्तियां सूत की तरह बारीक होती हैं। फूल आने की अवस्था में इसकी बेल बहुत ही सुन्दर होती है। इस पर रंग-रंगीले पुष्प आते हैं। जिस वृक्ष पर यह चढ़ती है, उसका रस चूस कर उसे सुखा देती है। इसका फल गोल और फिसलना होता है। यह वनस्पति अमेरिका में पैदा होती है, परन्तु भारतवर्ष के बगीचों में भी बहुत लगाई जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—हिन्दू लोग इसे शीतल बतलाते हैं। इसके पीसे हुए पत्ते खूनी बवासीर पर लगाये जाते हैं और इसके रस को गरम घी के साथ पकाकर बवासीर को दूर करने के लिए पिलाते हैं। बम्बई में इसके पत्ते सिर के सांघातिक फोड़ों में लेप के रूप में लगाये जाते हैं।

इसका एक भेद और है जिसको लेटिन में Quamoclit Vulgaris (क्वामोक्लिट व्हलगेरियस) कहते हैं। इसके पत्ते भी संकोचक और रक्तार्श में उपयोगी हैं । ये सांघातिक फोड़ों में, वमन में और रक्तातिसार में लाभदायक है। गर्भवती स्त्री के गर्भाशय को दृढ़ करने में ये सहायता देते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि शीतल होती है और इसके पत्ते सांघातिक फोड़ों (Carbuncle) में लाभदायक है।

इश्रास

वर्णन—

यह एक वनस्पति की जड़ है। इस वनस्पति के फूल ललाई लिये हुए सफेद, फल गोल और कुछ कड़वे होते हैं। इसका शाक बनाकर भी खाया जाता है। इसके पत्ते प्याज के पत्तों की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह औषधि पहिले दर्जे में गरम और रूखी है और जला लेने के पश्चात् यह दूसरे दर्जे में गरम और तीसरे दर्जे में रुक्ष हो जाती है। इसकी जड़ आमाशय को शिथिल करके अवरोध पैदा करने वाली है। इसके दर्प को नाश करनेवाला गुलकंद है।

इसके पीने से पार्श्वशूल आराम होता है। यह पित्तजनित कामला और गले की खुश्की को दूर करता है। इसकी राख मूत्र और आर्तव-प्रवर्तक और कफ की सूजन को मिटाने वाली है। सिरके के साथ लगाने से सिर की गंज, दाद, अण्डवृद्धि फोड़े, फुन्सी और शोथ में लाभ पहुँचाती है। यह टूटी हुई हड्डी को भी जोड़ने में लाभकारी साबित हुई है। (आयुर्वेदीय कोष)

इस्पंद

नाम—

हिंन्दी——इस्पंद लाहोरी, हरमाल। मराठी—हरमाल। गुजराती—इस्पंद। उर्दू—इस्पंद। बंगाली—इस्पंद। लेटिन—Peganum Harmala (पेगानुम हरमाल)

वर्णन—

यह औषधि बिहार, संयुक्तप्रांत, डेकन, कोकन, सिन्ध, बिलोचिस्तान इत्यादि स्थानों पर पैदा होती है, यह एक प्रकार का झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। इसका फल गोल होता है। इसकी काली और सफेद के भेद से दो जातियाँ होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से दोनों ही जातियाँ कफ निस्सारक, बलवर्द्धक, मज्जावर्द्धक, कृमिनाशक, मूत्रनिस्सारक, विरेचक और ऋतुस्राव नियामक होती हैं। कटिवात, पक्षाघात, मस्तक की कमजोरी, चक्षुरोग, आमवात और श्वासरोग में यह उपयोगी है। यह बच्चों की खाँसी को दूर करती है। इसका धूम्रपान, दंत-पीड़ा और यकृत की पीड़ा को दूर करता है।

डाक्टर मुहीउद्दीन शरीफ के मतानुसार इसके बीज मादक, उत्तेजक, आक्षेपनिवारक, वमनकारक, मासिकधर्म को नियमित करने वाले और शूल को दूर करने वाले होते हैं। वे इस औषधि को श्वास, कुक्कुर खाँसी और गुल्म वायु में उपयोग में लेने की सिफारिश करते हैं। इसके अतिरिक्त उदरशूल, पीलिया और गवीनी तथा पित्त की पथरी, स्नायु-शूल तथा रजोकष्ट में भी यह उपयोग में ली जाती है। इस वनस्पति से साधारण खाँसी और छाती के दर्दों में भी संतोषजनक फायदा होता है। यह एक उत्तम वमनोत्पादक औषधि है। अपने निद्राकारक स्वभाव के कारण यह कष्ट को दूर करके शीघ्र ही नींद लाती है।

हॉनिक बर्गर के मतानुसार इसके बीज नेत्र-ज्योति की कमजोरी में और मूत्रावरोध के काम में लिये जाते हैं।

डाक्टर चोपरा के मतानुसार यह पार्य्यायिक ज्वर को दूर करने वाली, धातु-परिवर्तक, उत्तेजक, गर्भ-स्रावक और मासिकधर्म को नियमित करने वाली है। रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें हरमाइन और हरमेलाइन नामक दो उपक्षार पाये जाते हैं।

फ्लूरी का कथन है कि हरमेलाइन में कृमिनाशक गुण हैं। गन और मार्शल के मतानुसार हरमाइन और हरमेलाइन मलेरिया में उपयोगी है।

स्टेवार्ट के मतानुसार यह वनस्पति कामोद्दीपक, दुग्धवर्द्धक और मासिकधर्म को नियमित करने वाली है। गर्भ स्रावक औषधि के रूप में भी यह कभी २ काम में ली जाती है। इसकी जड़ के चूर्ण को सरसों के तेल के साथ मिलाकर बालों में कृमि नाश करने को लगाते हैं, इसके पत्तों का काढ़ा आमवात में उपयोगी है।

———

इसबगोल

नाम—

संस्कृत—ईशद्गोलम्, स्निग्धबीजम्, स्निग्धजीरकम् । हिन्दी—इसबगोल । मराठी—इसबगोल । गुजराती—उथमुंजीरुं । बंगाली—इसपगुल । तेलंगी—इस्पगुल । फारसी—इस्पगलम् । अरबी—बज़रेकुतुना । लेटिन—Plantago Ovata, P. Isphagula (प्लेएटेगो श्रोव्हेटा) ।

वर्णन—

यह एक प्रकार का प्रकांड रहित झाड़ीनुमा वृक्ष होता है, जो लगभग गज भर ऊँचा होता है। इसके पत्ते धान के पत्तों के समान और डालियाँ बारीक होती हैं। डाली के सिरे पर गेहूँ की तरह बालें लगती हैं। इन बालों में बीज रहते हैं। इसके बीजों के ऊपर महीन और सफेद झिल्ली होती है। यह झिल्ली ही उतारने पर इसबगोल की भूसी के रूप में हो जाती है। यही इसमें पाये जाने-वाले लुआब का केन्द्र है।

इसबगोल की एक बड़ी जाति और होती है, जिसको लेटिन में Plantago Amplexicaulis कहते हैं। यह पंजाब, मालवा और सिन्ध के मैदानों में अधिक पैदा होता है और इससे भूरे रंग का इसबगोल पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों के अन्दर इस औषधि का कहीं भी उल्लेख नहीं पाया जाता। केवल निघण्टु-संग्रह और मोरेश्वर कृत वैद्यामृत में इसका उल्लेख मिलता है। इन आधुनिक ग्रन्थों के मतानुसार इसके बीज मृदु, पौष्टिक, कसैले, लुआबदार और आँतों को सिकोड़ने वाले होते हैं। ये कफ, पित्त, अतिसार और कोढ़ में उपयोगी हैं।

यूनानी मत—यूनानी ग्रन्थों के अन्दर इसबगोल का बड़ा विशद विवेचन देखने में आया है। अरबी और परशियन लेखकों ने प्रायः इसका वर्णन किया है। १० वीं शताब्दी के करीब अलेवीं नामक परशियन हकीम ने इसका वर्णन किया है। इसके बाद इब्नसीना ने इसका वर्णन किया है। इनके बाद में जितने मुसलमान लेखक हुए, उन सबने अपने २ ग्रन्थों में इसकी बहुत तारीफकी है। इससे मालूम होता है कि यह औषधि मुसलमानों के भारत में आने के बाद ही प्रयोग में ली गई है। इसका उपयोग प्राचीन रक्तातिसार और अँतड़ियों की पीड़ा में किया जाता रहा है। किसी भी प्रकार के रक्तातिसार व ऐसे अतिसार में जिसमें कि खून और आँव, टट्टी के साथ निकलती हो, यह एक प्रकार की लोकप्रिय घरेलू औषधि रही है।

यूनानी मत के अनुसार इसके बीज शीतल, शान्तिदायक और प्रकृति को मुलायम करने वाले हैं। ये साफ दस्त लाते हैं। मलावरोध को दूर करते हैं। पेटकी मरोड़, अतिसार, पेचिश और आँतों के घाव में यह औषधि बहुत उपयोगी है।

मुज़र्रबात अकबरी के मतानुसार मुट्ठी भर इसबगोल को प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करने से श्वास कष्ट और दमे में बहुत लाभ होता है। निरंतर ६ मास से दो वर्ष तक सेवन करने से बीस-बाईस वर्ष का पुराना दमा भी इससे जाता रहता है।

उष्ण प्रकृति के रोगियों को होने वाले शुक्रमेह के अन्दर भी यह औषधि बड़ी लाभदायक है। पाचन-प्रणाली के प्रदाह में तथा पित्त सम्बन्धी विकारों में भी यह बहुत उपयोगी है। संधिवात, ग्रन्थि-वात व अन्य वात रोगों में इसकी पुल्टिस चढ़ाने से बड़ा लाभ होता है।

इसबगोल और आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान—

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के अन्दर भी इस औषधि ने बहुत महत्व धारण किया है। सन् १८६८ में यह औषधि इण्डियन फरमाकोपिया के अन्दर प्रविष्ट की गई। १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ्लेमिंग, एः सेली और रॉक्स वर्ग इत्यादि डाक्टरों ने पुराने अतिसार के अन्दर इस औषधि की उपयोगिता का दृढ़ता से समर्थन किया। उसके बाद तमाम रासायनिक खोजों के अन्दर इस औषधि की उपयोगिता सिद्ध हुई, जिसका वर्णन कर्नल चोपड़ा ने इस प्रकार किया है।—

"इसबगोल के बीज शीतल व शान्तिदायक हैं। अतिसार, रक्तातिसार, पेचिश व पाचन-प्रणाली के अन्य विकारों में तथा ज्वर की हालत में भी इनका इस्तेमाल करना उपयोगी माना गया है। इनमें मूत्रनिस्सारक गुण भी है। मूत्राशय, मूत्रनाली तथा गुर्दे की अन्य पीड़ाओं में छः माशे से लगाकर १ तोले तक की मात्रा में ये शक्कर के साथ देने के काम में लिये जाते हैं। इसके पीसे हुए बीज इन्द्रायन के बीजों के साथ मिलाकर पेचिश की बीमारी में देते हैं। इसके बीजों को कुचलकर उनका पुल्टिस बनाते हैं। इस पुल्टिस से ग्रंथि सम्बन्धी पीड़ाओं में और जोड़ों के गठिया रोग में लाभ होता है। इनके लुआब से तैयार किया हुआ शीतल जल सिर को शान्ति देने वाला है। इसके बीजों का काढ़ा ठंड व कफ की पीड़ाओं में दिया जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपरा इसके रासायनिक तत्वों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि इसबगोल के बीजों में एक प्रकार का मेदावर्द्धक तेल और एक एल्ब्यूमिनस (Albuminous) भी रहता है। इसमें लुआब की मात्रा इतनी अधिक रहती है कि एक भाग बीज में बीस भाग पानी मिलाने पर भी एक प्रकार का स्वाद रहित गाढ़ा अवलेह बहुत थोड़े समय में तैयार हो जाता है। इसके लुआब में किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। गरम जल, अलकोहल, आयडिन, बोरेक्स व परक्लोराइट आफ आयर्न के द्वारा भी इसमें किसी प्रकार परिवर्तन नहीं हो सकता है। सिर्फ जल में ही यह किंचित मात्रा

में घुल सकता है। इसके बीज, जड़, पत्ते व फूल के डंठलों से एक्यूबिन नामका ग्लुकोसाइड प्राप्त किया गया है।

सन् १६३० में कर्नल चोपड़ा ने इस औषधि पर अपने विचार प्रगट किये। उन्होंने इस बात को पुष्ट किया कि इसबगोल के बीजों में ग्लुकोसाइड की कुछ मात्रा रहती है पर उपचार की दृष्टि से उसका विशेष महत्व नहीं है। इसमें टेनिन्स भी काफी मात्रा में मौजूद हैं, परन्तु प्रोटोझुआ और वेक्टेरिया नामक कीटाणुओं पर ये भी किसी प्रकार का असर नहीं दिखाते, अगर इसके अन्दर इसकी उत्तमता सिद्ध करने वाली कोई वस्तु है, तो वह इसमें पाया जाने वाला लुआब है। इसलिये इसी पर विशेष रूप से अनुसन्धान किये गये हैं।

कर्नल चोपड़ा ने इसके सम्बन्ध में १५ वर्षों से जो अनुसन्धान किये हैं। उनके परिणाम इस प्रकार हैं—

(१) जीर्ण आम रक्तातिसार (Chronic Bacillary Dysentery) इस बीमारी की हालत में दस्त में आँव रहता है। एक्टन और नाव्हल्स के मतानुसार हिन्दुस्तान में इस किस्म की पेचिश की बीमारी अधिक होती है। यह दो-तीन प्रकार के संक्रामक कीटाणुओं के जहर से पैदा होती है। इस बीमारी की हालत में आँतों में घाव पैदा हो जाता है। इससे पाचन-क्रिया-प्रणाली में जहर पैदा हो जाता है और उसकी शक्ति भी कमजोर हो जाती है। यह अतिसार कई वर्षों तक चालू रह सकता है, इसमें कभी २ कब्जियत भी रहती है।

(२) जीर्ण अमेबिक आँव रक्तातिसार (Chronic Amoebic Dysentery) इस बीमारी से पीड़ित बीमारों को दस्तों की अनियमितता और कब्जियत रहती है। इसमें घावों का परिणाम भिन्न २ रहता है। इन बीमारों के दो प्रकार रहते हैं। एक तो वे जो दुबले-पतले होते हैं और जिन्हें हमेशा ही कब्जियत रहती है और दूसरे वे जिनको प्रातःकाल के समय दस्त में आँव की पीड़ा रहती है। दूसरे प्रकार के बीमार दिखने में मोटे-ताजे होते हैं।

(३) पुरानी कब्जियत जिसमें कि अन्य कारणों से नशे की मात्रा भी रहती है।

इन रोगों में इसबगोल के बीज काफी फायदा पहुँचाते हैं। यद्यपि इन बीजों के अन्दर कोई भी ऐसा तत्व मौजूद नहीं है, जोकि कीटाणुजन्य विषों को शान्त कर सके, पर यह औषधि घावों के प्रदाहिक भाग को व आंतों के प्रदाहिक हिस्से को अपने लुआब से ढक देती है, इसका परिणाम यह होता है कि खाद्य सामग्री घावों से लगकर किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचा सकती, जिससे घाव और प्रदाह दोनों ही जल्दी मिट जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह औषधि शरीर की विषैली सामग्री को अपने में मिलाकर अपने साथही निकाल देती है। शरीर की आंतरिक क्रिया इस औषधि के ऊपर कुछ भी असर नहीं दिखा सकती। इसलिए १२ घण्टे के अन्दर ही यह औषधि शरीर के तमाम विषैले पदार्थों को लेकर बाहर निकल जाती है। इससे बीमार को क्षणिक शान्ति ही नहीं मिलती, प्रत्युत विषैले पदार्थों के निकल जाने से उसकी हालत में बहुत सुधार हो जाता है।

बहुत दिनों के प्राचीन (एमेबिक) आम रक्तातिसार में जहाँ कि इमेटिन और इंद्रायण या इंद्रजौ के प्रयोग असफल सिद्ध हुए हैं, वहाँ पर इसबगोल और इंद्रजौ तथा इंद्रायण के तरलसार सफल सिद्ध हुए हैं। रोगी को ७॥ माशा की मात्रा में उक्त सत्व दिन में ३-४ बार दिया जाय और दिन में दो बार इसबगोल के बीजों के दो या तीन बड़े चम्मच दिये जायँ तो ६ सप्ताह से ८ सप्ताह के बीच में रोगी के लक्षणों में ही सुधार नहीं होता, प्रत्युत मल की परीक्षा से यह पाया गया है कि रोग के कीटाणु बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं।

प्राचीन (एमेबिक) आम रक्तातिसार में जहाँ पर कि कब्जियत एक मुख्य चिन्ह है, ये बीज आँतों में जमकर के फूल जाते हैं और दस्त में किसी भी प्रकार की तकलीफ नहीं होने देते। मल बिना प्रयास के बाहर निकल आता है और कब्जियत की शिकायत मिट जाती है। अगर कठिन कब्जियत की शिकायत में इसके साथ कुछ हलका विरेचन भी दे दिया तो इसके गुण और भी बढ़ जाते हैं।

(४) पर्वतीय अतिसार (Hill Diarrhoea) यह बीमारी प्रायः उन लोगों को होती है, जो विशेष तौर से पहाड़ी स्टेशनों पर जाया करते हैं। यह यूरोपियन लोगों में भी ज्यादा पाई जाती है। इसमें रोगी को प्रातःकाल के समय कई दस्त होते हैं और उनमें कुछ आँव भी रहता है। इसकी प्रारंभिक अवस्था में इसबगोल के बीजे बहुत उपयोगी हैं। इससे केवल श्लेष्मिक झिल्लियों का प्रदाह ही कम नहीं होता प्रत्युत मल बँधकर दस्त साफ आता है।

(५) बालकों के चिरकालीन अतिसार में भी इससे बहुत लाभ होता है। इस बीमारी में भी इसका लुआब पाकस्थली और अँतड़ियों के घावों को ढाँक देता है और कीटाणुओं को बाहर निकाल देता है।

इसबगोल की खुराक और उसको लेने की विधि—

इसबगोल के बीजों को पहिले साफ करके उनकी धूल-मिट्टी को पहिले निकाल देना चाहिये। फिर इन्हें एक या दो कप पानी में धो लेना चाहिये। इनकी साधारण मात्रा ७॥ माशे से १। तोले तक की है। लेकिन २॥ तोले से पाँच तोला की मात्रा में भी लिये जायँ तो भी कोई हानि नहीं है। क्योंकि इनमें किसी भी प्रकार का विषैला पदार्थ नहीं रहता और इनमें से अधिकांश १२ घण्टे में आँतों के विषैले पदार्थों को लेकर बाहर निकल जाते हैं। अगर कब्जियत अधिक हो तो इसका अधिक मात्रा में लेना ही मुफीद होता है। इससे दो लाभ हैं, पहला यह कि यह लुआब पेट में अधिक मात्रा में रहने से दस्त लाने में सुविधा करता है और दूसरा यह कि यह आँतों में ज्यादा मात्रा में पहुँचकर वहाँ के सब पदार्थों को फुला देता है, जिसके परिणाम स्वरूप मल फूलकर आँतों में आवश्यकता से अधिक हो जाता है और अधिक होने से वह आसानी से बाहर निकल जाता है। इन बीजों को प्रयोग में लाने के लिये चार तरकीबें बतलाई गई हैं—

(१) स्वच्छ सूखे बीज एक कप भर पानी में डालकर धो लिये जाते हैं। धोने के बाद उनमें एक या दो चम्मच शक्कर मिलाकर ले लेते हैं।

(२) दूसरी तरकीब यह है कि इसके बीज एक कप पानी में डाल दिये जाते हैं। आधे घंटे में वे सब फूल जाते हैं । अगर इच्छा हो तो कुछ शक्कर मिलाकर इस लुआब का सेवन कर लिया जाता है।

(३) आधा सेर से एक सेर पानी में इसकी दो-तीन खुराकें डालकर उबाल ली जाती हैं। आधा पानी शेष रहने पर उसे उतारकर २ से लेकर ४ औंस की खुराक में तकसीम कर तीन २ घंटे के अन्तर से ली जाती हैं ।

(४) चौथी विधि में इसबगोल के बीज की जगह उसकी भूसी काम में ली जाती है। इस भूसी को आधा तोला से एक तोला तक की मात्रा में एक कप पानी में डालकर कुछ शक्कर के साथ मिलाकर लेना चाहिये। अगर अँतड़ियों के मार्ग मल से अवरुद्ध हों तो इस विधि का इस्तेमाल करना ज्यादा अच्छा बतलाया गया है। पाचन-प्रणाली की तीव्रता पर भारतीय वैद्य इसी तरकीब को ज्यादा इस्तेमाल में लेते हैं।

कर्नल चोपरा कहते हैं कि जीर्ण पेचिश की साधारण स्थिति में और अतिसार तथा रक्तातिसार की बाधाओं में पहली विधि अधिक उत्तम है। क्योंकि ये बीज आँतों में स्थित पदार्थों के साथ मिलकर काफी फूल जाते हैं और श्लेष्मिक झिल्लियों को पूरी तरह से ढँक देते हैं। अगर यह लुआब इकट्ठा हो जाय, तो इसकी गाँठें बंधकर यह पाचन-क्रिया-प्रणाली में से ज्यों का त्यों निकल आता है। अनुभव से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि जब यह लुआब बीजों के साथ रहता है, उसी हालत में पाचन-क्रिया-प्रणाली इसपर बहुत कम असर डाल सकती है। अगर इसके बीज निकाल-कर केवल इसकी भूसी या काढ़ा उपयोग में लिया जाय तो पाचन-क्रिया-प्रणाली उसपर असर डाल देती है। यहाँ तक की २४ घण्टे में कुछ लुआब का चिकनापन पेट में नष्ट भी हो जाता है। लेकिन अगर यही लुआब बीजों के ऊपर रहे तो उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं होने पाता। इसलिये यह सिद्ध है कि भूसी के बजाय बीजों को उपयोग में लेना ज्यादा मुफीद है। प्रोटोझोल (Protozoal) और बेसीलरी (Bacillary) नामक कीटाणुओं से पैदा होने वाली पेचिश में इसकी भूसी लेना ज्यादा लाभदायक है।

पेरेफिन से बनाये हुए कई पदार्थ अंतड़ियों की स्निग्धता के लिये दिये जाते हैं। वे अँतड़ियों के भीतर के तत्वों के साथ मिल जाते हैं और अन्न-प्रणाली के मार्ग को नरम रखते हैं तथा आँतों के अन्दर संचित पदार्थों को वे जल्दी ही बाहर निकाल देते हैं। पेरेफिन यह एक प्रकार का खनिज तत्व है, इसलिये यह हजम नहीं किया जा सकता और ज्यों का त्यों दस्त के साथ बाहर निकल आता है। इसबगोल के बीजों के साथ पेरेफिन का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद हम (कर्नल चोपड़ा) इस तत्व पर पहुँचे हैं कि कब्जियत को दूर करने में व आँतों को स्निग्ध बनाने में जो कार्य्य तरल पेरेफिन करता है, वही कार्य इसबगोल के बीज भी करते हैं। लेकिन इन बीजों में विशेष लाभ यह है कि पेरेफिन के समान इनमें किसी प्रकार का अवगुण नहीं है। पेरेफिन की उत्तम से उत्तम बनावट भी पेट में जलन

व अन्य प्रकार के विकार फैलाए बिना नहीं रहती। इस पदार्थ को लेने वाले लोगों के गुदा-मार्ग में तकलीफ होती रहती है और इसका सतत उपयोग करने से यह अंतड़ियों के मार्ग में ज्यों का त्यों जम जाता है और पोषक-पदार्थों का समावेश नहीं करता। इसबगोल में ये दोष कुछ भी नहीं हैं। लिक्विड पेरोफिन (पेरोफिन का तेल) से जो फायदा होता है, वही रात को सोते समय इसबगोल के दो-तीन चम्मच बीजों को लेने से हो सकता है और किसी प्रकार का अवगुण भी नहीं होता।

मतलब यह है कि यह औषधि अतिसार, रक्तातिसार और आम रक्तातिसार में अत्यन्त उपयोगी और निरुपद्रव है। यह शीतल और मूत्रनिस्सारक है।

डाक्टर के० एल० दे का कथन है कि इसबगोल के बीज हिन्दुस्तान में पुराने अतिसार और पुराने आम रक्तातिसार के लिये एक अत्यन्त उपयोगी घरेलू दवा है। हम इसे गत पच्चीस वर्षों से तीव्र, पुरातन और अन्य सभी प्रकार की पेचिश में देते आये हैं और यह लाभदायक सिद्ध हुई है। हॉय-ब्लडप्रेशर (रक्तभार की अधिकता) की बीमारी में भी हम इसका उपयोग करते आये हैं। इस बीमारी में जिसके साथ अँतड़ियों व अन्य कार्यों से पैदा हुआ नशा भी हो, यह बहुत उपयोगी है। हमारे अनुभव से हमने यह देखा कि इसके सतत प्रयोग से बीमारी आगे नहीं बढ़ने पाती।

उपयोग—

मूत्र कृच्छ्र—इसबगोल, शीतलमिर्च और कलमीशोरे की फंकी लेने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

खूनी बवासीर—इसके बीजों को ठण्डे पानी में भिगोकर उनके लुआब को छानकर पिलाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

पेशाब की जलन—बूरे के साथ इसका लुआब पिलाने से पेशाब की जलन मिटती है।

गठिया—गठिया और छोटे जोड़ों की पीड़ा पर इसका पुल्टिस बाँधने से लाभ होता है।

नक्सीर—इसको सिरके में पीसकर कनपटियों पर पतला लेप करने से नक्सीर बंद होता है।

श्वास या दमा—साल छः महीने तक लगातार दिन में दो बार इसबगोल की फंकी लेते रहने से सब प्रकार के श्वास रोग मिटते हैं।

पित्तोन्माद—एक तोले इसबगोल का लुआब निकालकर उसमें बूरा मिलाकर पिलाने से पित्तोन्माद मिटता है।

अतिसार—सब प्रकार के अतिसारों में इसबगोल को उपयोग करने की विधियाँ हम ऊपर लिख चुके हैं।

नोट—ऐसा कहा जाता है कि इसबगोल के पीसने से वह जहरी हो जाती है। इसलिये खाने के उपयोग में इसको पीसकर उपयोग में नहीं लेना चाहिये। बल्कि भिगोकर, छानकर या भूसी निकालकर इसका उपयोग करना चाहिये।

———

इसरमूल

नाम—

संस्कृत—अहिगन्ध, अर्कमूल, सुनन्दा, अर्कपत्रा, विषापहा। **हिंदी**—इश्वरमूल, इसरमूल। **गुजराती**-अर्कमूल,नोलवेल। **अरबी**—जरवन्दहिन्द। **बंगाली**—ईशरमूल,ईश्वरी। **मराठी**—सापसन। **तेलगू**—गोबिल। **फारसी**—जरावन्देहिन्दी। **लेटिन**—Aristolochia Indica (अरिस्टोलोकिया इण्डिका)

वर्णन—

यह एक प्रकार का झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। इसका तना प्रारंभ में बड़ा नाजुक रहता है। इसकी छाल मोटी होती है। इसके पत्ते भिन्न-भिन्न आकारों के होते हैं। इन पत्तों की नोक तीखी और किनारें सीधी रहती हैं। इसके फूल कम मात्रा में आते हैं। ये छोटे और गोलाकार होते हैं। इसके बीज चपटे, कुछ गोल और तीखी नोकवाले होते हैं। इस औषधि की जड़ सुगन्धित और कड़वी होती है। यह औषधि विशेष कर बंगाल, कोकण, ट्रावणकोर, सिलोन और समुद्र के पश्चिमी किनारों पर मिलती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से ईश्वरमूल की जड़ कड़वी, कसैली, कृमिनाशक, विष-निवारक, ऋतुस्राव नियामक तथा श्वास, खांसी और हृदयरोग को नष्ट करने वाली है। यह त्रिदोष, जोड़ों के दर्द और बच्चों की आँतों की तकलीफ में उपयोगी होती है।

इसकी जड़ को औटाकर पिलाने से जोड़ों की सूजन उतर जाती है और रुका हुआ मासिकधर्म फिर से चालू हो जाता है। इसको घिसकर लगाने से बिच्छू के दर्द में लाभ होता है। इसकी जड़ गुड़ के साथ उबालकर पिलाने से शिशु-प्रसव के समय की वेदना में बहुत लाभ होता है। यह दवा शक्ति-उत्पादन करती है और ज्वर का नाश करती है। सर्पदंश पर भी यह दवा खाने और लगाने के उप-योग में ली जाती है। इसके पत्तों का रस पिलाने से जलोदर रोग में लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह औषधि पित्तप्रदाह, सूखी खाँसी और जोड़ों के दर्द में लाभदायक है। यह एक प्रकार का विरेचन है। उत्तेजक,पौष्टिक और ऋतुस्राव नियामक गुण के कारण यह औषधि बड़ी उपयोगी है।

इसरमूल और साँप का जहर—

सर्पदंश के सम्बन्ध में यह औषधि बहुत लम्बे समय से इस देश के कई भागों में प्रसिद्ध रही है। पौराणिक ग्रन्थों के अन्दर भी इसके सर्प-विष-नाशक गुण का उल्लेख मिलता है, शिवपुराण के अन्दर एक कथा है कि शिव और पार्वती के विवाह के समय पर सब देवता इकट्ठे हुये थे, उस समय नारदजी को शिवजी के साथ कुछ मजाक करने की इच्छा हुई और वे जंगल में से ईश्वरबूटी औ

उखाड़कर लाये और उसको लेकर हिमालय पर पहुँचे, उस समय विवाह का कार्य समाप्त हो चुका था और शिवजी अन्त:पुर में कई स्त्रियों के बीच में बैठे हुए थे। नारदजी अपनी वीणा को बजाते-बजाते वहाँ पहुँच गये और ईश्वरबूटी को चुपचाप शिवजी के पास रख दी। उसको रखते ही शिवजी के शरीर पर लिपटे हुए सब साँप भागने लगे, जिस साँप से शिवजी ने अपनी कमर के व्याघ्र चर्म को बांधकर रक्खा था, वह भी भागा, जिससे व्याघ्र-चर्म खुलकर शङ्कर दिगम्बर स्वरूप हो गए, जिससे सब स्त्रियाँ उठकर भाग गईं और शिवजी बहुत शर्माए।

इस कथानक में कितना सत्यांश है, इसका विवेचन करने की यहाँ आवश्यकता नहीं। हमारा केवल इतना ही मतलब है कि इश्वरमूल यह बहुत प्राचीनकाल से इस देश में सर्प-विष की अमूल्य औषधि की तरह प्रसिद्ध है।

बंगाल के लोगों को इस औषधि का सर्प-विषनाशक गुण जितना मालूम है, उतना दूसरे प्रांत के लोगों को मालूम नहीं है। इसीलिए यह औषधि वहाँ के गाँवों में बहुत लोकप्रिय है।

डाक्टर ब्रिटन और मिस्टर लोकास इत्यादि कितने ही यूरोपियन डाक्टरों ने इस औषधि के द्वारा साँप के काटे हुये बहुत से रोगियों को प्राण दान दिया है।

डा० ब्रिटन के पास सांप की काटी हुई एक युवती संज्ञाहीन अवस्था में लाई गई। उसकी नाड़ी की गति बन्द हो चुकी थी और शरीर बरफ के समान शीतल हो गया था। इस औषधि के तीन पत्ते, दस कालीमिर्च के साथ बारीक पीसकर थोड़े पानी के साथ उसके मुँह में डाले गए। दवा पेट में पहुँचने के पश्चात् दूसरे मनुष्यों की सहायता से उस स्त्री को बिठाई, दस मिनट के बाद उसके नीचे के होठ की नाड़ी में कुछ गति होने लगी। रक्त-संचालन में सहायता पहुँचाने के लिए कुछ मनुष्यों की सहायता से उस स्त्री को खड़ी करके टहलाना प्रारम्भ किया गया। कुछ समय के पश्चात् रोगिणी अपने पैरों पर खड़ी होने की चेष्टा करने लगी। उसके बाद उसने एक लम्बी सांस ली और उसमें चैतन्य का संचार होने लगा, उसके पश्चात् रोगिणी ने चिल्लाकर कहा कि मेरी छाती जलती है, तब उसे एकबार फिर से दवा दी गई और उसके घाव पर एक पत्ता पीसकर लगाया गया। दो घण्टे में वह युवती स्वस्थ होगई। (जङ्गलनी जड़ी-बूटी)

डा० रेवरेन्ड का कथन है कि सांप के जहर को उतारने वाली औषधियों में से यह भी एक है।

पोर्तगीज लोगों ने सबसे पहिले सर्पदंश-नाशक होने की वजह से इसका नाम Raizde Cobra रक्खा। यह कोबरा-डी-केपेला Cobra-de-capella नामक भयङ्कर सर्प के विष में भी उपयोगी है।

कोमान के मतानुसार इस वृक्ष के पत्तों का रस सर्प-विष को दूर करने वाला होता है। इसकी जड़ भी विषनिवारक है और यह भी विषैले जन्तुओं के काटने पर काम में ली जाती है। धवलरोग में इसकी जड़ का चूर्ण शहद के साथ दिया जाता है।

फिलिपाइन द्वीपसमूह में भी इसकी कड़वी जड़ विषैले जन्तुओं के काटने पर बहुत उपयोग में ली जाती है।

मतलब यह कि चरक वाग्भट्ट इत्यादि प्राचीन और एन्सली, रीड्, राबर्टस्, रेवरेन्डस्, ब्रिटन, कोमान, नॉडकर्नी, चोपरा इत्यादि आधुनिक चिकित्सकों के मत से ईश्वरमूल की जड़, लकड़ी और पत्ते तीनों सर्पदंश में उपयोगी हैं, इनको देने की तरकीब इस प्रकार है।—

सांप के काटे हुए स्थान पर तत्काल इसके पत्तों का रस मसलना चाहिए और दो-तीन पत्तों को आठ-दस कालीमिर्चों के साथ बारीक पीसकर पानी में मिलाकर पिला देना चाहिये। अगर रोगी मूर्च्छित अवस्था में हो तो भी इस पानी को किसी प्रकार युक्ति से पिला देने से बड़ा लाभ होता है। अचेतन अवस्था में इसके रस का हाईपोडर मिक्सरिंज से इन्जेक्शन देने से वह खून में मिलकर विष को नाश करने में सहायक होता है। जहां पर इसके ताजे पत्ते न मिल सकें, वहां पर इसकी जड़ काम में ली जा सकती है। इस जड़ को आधे या एक तोले की मात्रा में २१ कालीमिर्चों के साथ पानी में पीसकर, छानकर पिलाई जाती है। जरूरत के माफिक १५ मिनट और आधे २ घण्टे के अन्तर से इसकी दो-तीन खुराकें पिलाई जाती हैं। यह केवल सांप ही नहीं बल्कि बिच्छू, चूहा तथा अफीम के विष को भी दूर करता है।

विषनाशक गुण के अतिरिक्त इस औषधि में और भी कई विशेष गुण रहे हुए हैं। औषधि-संग्रह नामक मराठी ग्रन्थ के रचयिता डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार ज्वर के अन्दर इस औषधि को देने से सिर का दर्द दूर होता है, पेशाब की जलन कम होती है, पसीना आता है और बुखार उतरता है। विषमज्वर और दूषित सूतिका-ज्वर में यह विशेष तौर से उपयोगी है। त्रिदोषिक सन्निपात में ईश्वरी को तगर और गठोंड़े के साथ देने से यह ज्ञानतन्तुओं को शांति देती है। नये और प्राचीन संधिवात में यवक्षार के साथ देने से और दर्द की जगह इसका लेप करने से बड़ा लाभ होता है।

गर्भाशय के ऊपर इस औषधि की उत्तेजक क्रिया बहुत स्पष्ट रूप से होती है। प्रसूति के समय अगर स्त्री कष्ट पाती हो तो ईश्वरी को पीपलामूल के साथ देने से लाभ होता है। प्रसूति के पश्चात् स्राव को साफ करने लिये इसका बड़ा उपयोग होता है। गर्भावस्था में इसको नहीं देना चाहिए, क्योंकि इससे गर्भपात होने का डर रहता है।

यह औषधि आंतों के दर्द में भी बड़ी लाभदायक है। इसको साधारण मात्रा में लेने से आंतों की शिथिलता कम होती है, अजीर्ण, वमन, हैजा, अतिसार, संग्रहणी और प्राचीन अजीर्ण में इसको कालीमिर्च के चूर्ण के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

केस और महेस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्प दंश के विषनाशक और लाक्षणिक उपचारों में बिलकुल निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि स्वाद में कड़वी होती है। इसमें कपूर के समान कुछ गंध आती है। इसकी जड़ का काढ़ा २॥ से ५ तोले तक की मात्रा में उत्तेजक, पौष्टिक और ज्वरनाशक है। रक्तातिसार व आँतों की अन्य शिकायतों में तथा पेट का आफरा दूर करने के लिये इसे कालीमिर्च और सोंठ के साथ देते हैं। इसके पत्तों का ताजा रस सर्प-विष में लाभदायक है। यह ऋतुस्राव नियामक भी है।

डाक्टर नॉडकर्नी के मतानुसार इसकी जड़ पौष्टिक, उत्तेजक, रजःप्रवर्तक और संधिवात-नाशक है। इसके पत्ते पाचक, पौष्टिक और पार्य्यायिक ज्वरों को दूर करने वाले हैं। इसकी जड़ सर्पदंश तथा बिच्छू वगैरह दूसरे जहरीले जानवरों के लिये मूल्यवान औषधि है, विषों के उपचार में इसका भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार से उपयोग होता है। जलोदर रोग में भी यह उपकारी मानी जाती है। हैजा और अतिसार में इसे कालीमिर्च के साथ मिलाकर देने से बड़ा लाभ होता है। बच्चों के अतिसार और सविराम ज्वरों में भी इसके पत्ते और छाल लाभदायक हैं।

इसरौल

वर्णन—

यह एक प्रकार की लता होती है, जो वृक्षों के आश्रय से अपना विस्तार करती है। यह रंग और पत्तों के भेद से तीन प्रकार की होती है। इसके फूल बैंगनी रंग के होते हैं। इसके बीज चपटे और सूखने पर काले रंग के होते हैं। इसकी जड़ लम्बी और अंगूठे से भी अधिक मोटी होती है। ऊपर से देखने पर यह बादामी रंग की मालूम होती है। इसके पत्तों को मलने से एक प्रकार की तीव्र गंध आती है। इसका बीज कड़वा और तीक्ष्ण होता है। भारतवर्ष के उष्ण प्रधान पहाड़ी स्थानों पर इसकी बेलें पैदा होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ वात-ज्वरनाशक, फोड़े को बिठाने वाली और सर्प-विष में लाभदायक है।

फोड़ा पैदा होते ही इसकी जड़ कालीमिर्च के साथ पीसकर गर्म कर बाँधने से फोड़ा बैठ जाता है। कहा जाता है कि साँप के विष पर भी इसकी जड़ को कालीमिर्च के साथ पीसकर लगाने से लाभ होता है। (आयुर्वेदीय कोष)

इस्पिस्त

नाम—

फारसी—इस्पिस्त।

वर्णन—

यह पुनर्नवा की आकृति का एक पौधा होता है। इसका फूल ललाई लिये हुए पीला होता है। चौपायों के लिये इसका पौधा बड़ा पौष्टिक घास है। इसके लम्बी और टेढ़ी फलियाँ लगती हैं, जिनमें इसके बीज रहते हैं। इसकी बागी और जङ्गली दो जातियाँ होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहिले दर्जे में गर्म और तर है। किसी २ के मत से यह दूसरे दर्जे में गर्म और तर है।

यह पौधा कामोद्दीपक और मृदुता पैदा करने वाला और रक्तवर्द्धक है। इसके पत्तों को कुचल कर शहद के साथ लगाने से शीतल शोथ पर और सिरके के साथ लगाने से उष्ण शोथ पर लाभ होता है।

———:०:———

ईख

नाम—

संस्कृत—इक्षु, दीर्घच्छद, भूरिरस इत्यादि । **हिन्दी**—ईख, ऊख, गन्ना, पौण्डा, सांटा । **गुजराती**—शेरड़ी, शेरड़ीनुंमूल । **बंगाली**—कुशिर, आक । **तैलगू**—चिरक्कु । **फारसी**—नेशकर । **अरबी**—कसउसशकर । **अंग्रेजी**—Sugar-cane **लैटिन**—Saceharum Officinarum (सेकेहरम आफिसिनेरम्)

वर्णन—

ईख को भारतवर्ष में प्रत्येक व्यक्ति भली प्रकार से जानता है, इसलिए इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं । यह सफेद, काली और लाल के भेद से तीन प्रकार की होती है । इसी प्रकार उपयोगिता और जायके की दृष्टि से इसके ऊख, गन्ना और पौंडे ऐसे तीन भेद और हैं । ऊख विशेष कर बिहार में पैदा होती है और शक्कर बनाने के काम में आती है । पौंडा सफेद रंग का मोटा और रसदार होता है, यह विशेष कर रस चूसने के काम में आता है और गन्ना कड़े छिलके का और लम्बा होता है । इससे हलकी शक्कर बनती है । आयुर्वेदिक मत से इसकी पौण्ड्रक, भीरुक, वंशक, शेतपोरक, कान्तार, तापसेक्षु, काण्डेक्षु, सूचिपत्र, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलेपोर, कोशकृत इत्यादि कई जातियाँ मानी गई हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से ईख रक्त-पित्तनाशक, बलकारक, वीर्य्यवर्द्धक, कफकारी, पचने में मधुर, स्निग्ध, भारी, मूत्रल और शीतल है ।

सफेद ईख स्निग्ध, तृप्तिकारक, पुष्टिकारक, संजीवन, स्वादिष्ट, श्रमनाशक, रक्त-पित्त को शान्त करने वाला, दाहनाशक और कफकारक है ।

कालीईख—या कालागन्ना गुणों में सफेद ईख के समान है । यह वीर्य्यवर्द्धक, तृप्तिकारक, दाहनिवारक, क्षारयुक्त, मधुर, शोषनाशक और व्रण को पूरने वाला है ।

लाल ईख—शीतल, पाक में मधुर, मृदु, वीर्य्यवर्द्धक, बलकारक, कान्तिजनक, धातुवर्द्धक, भारी, कसैली तथा पित्त, दाह, वातविस्फोट, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और रुधिर-विकार को नष्ट करने वाली है ।

पौंडा—शीतल, वात-पित्तनाशक, रस और पाक में मधुर, शीतल, पौष्टिक और बलवर्द्धक है ।

बाल अर्थात् कच्ची ईख कफकारी, मेदजनक तथा प्रमेहकारक है, अधपकी ईख वातनाशक, स्वादिष्ट, किंचित, तीक्ष्ण और पित्तनाशक है और पकी हुई ईख रक्त-पित्तनाशक, क्षतनिवारक और बल, वीर्यकारक है ।

दाँतों से चूसी हुई ईख का रस शीतल, रक्त-पित्तनाशक,मधुर,पौष्टिक,कफकारक, स्निग्ध, हृदय को बल देने वाला, सारक,श्रम को हरने वाला, लवणयुक्त, मूत्रवर्द्धक, मेदवृद्धि को मिटाने वाला, त्रिदोष-नाशक, इन्द्रियों को तृप्त करने वाला और अमृतोपम है ।

ईख का रस–चरखी से निकाला हुआ दस्तावर,भारी,चिकना और कफ तथा मूत्र को जीतने वाला है, इसके अग्रभाग का रस क्षारयुक्त, मध्य भाग का मधुर और निम्न भाग का अत्यन्त मधुर होता है।

भोजन से पहले खाई हुई ईख पित्तनाशक, भोजन के मध्य में खाई हुई ईख भारीपन लाने वाली और भोजन के अन्त में खाई हुई ईख वात को कुपित करने वाली होती है ।

ईख स्वाद में मधुर और रसयुक्त होती है, यह मूत्रनिस्सारक, पौष्टिक, शीतल, कमोद्दीपक और थकान को दूर करने वाली होती है । इसके सिवाय यह प्यास, कोढ़, आँतों की तकलीफ, अग्निविसर्प, रक्ताल्पता इत्यादि रोगों में भी लाभ पहुँचाती है।

'वैद्य-कल्पतरु' नामक गुजराती मासिक पत्र के सन् १६१५ की जनवरी के अङ्क में एक वैद्य लिखते हैं—परिश्रम से थके हुए मनुष्य की थकावट ईख के रस से तुरन्त दूर होती है। शरीर में होने-वाली, दाह को मिटाकर यह अमृत के समान शान्ति-प्रदान करता है, इसमें एक विशेष उपयोगी गुण यह है कि तेल, मिर्च इत्यादि गर्म वस्तुओं के अत्यधिक सेवन से पैदा हुए रक्त-विकार, गर्मी, रक्त-पित्त इत्यादि रोग इससे नष्ट होते हैं। इसी प्रकार मूत्रावरोध इत्यादि मूत्राशय की बीमारियों में भी यह अच्छा काम करता है ।

यूनानी मत—यूनानी मत से ईख का रस अवरोध को उद्घाटन करके खून में गति पैदा करता है, यह फेफड़े की रूक्षता को मिटाकर तरी पैदा करता है । जिससे खाँसी में लाभ होता है। यह दस्त साफ लाने वाला, कामोद्दीपक, पेट की जलन को दूर करने वाला और अधिक मात्रा में आफरा पैदा करने वाला है । यह शहद के समान शरीर का संशोधन कर, उसे निर्मल करता है। कोठे को मुलायम करने में यह शहद से बढ़ा-चढ़ा है । यह आमाशय की अम्लता को दूर कर वायु के प्रकोप को निवारण करता है ।

इसके रस में अनार का रस मिलाकर पीने से रक्तातिसार में लाभ होता है। शहद के साथ इसका रस पीने से पित्त की उल्टी बन्द होती है और आँवले के रस के साथ इसके रस का सेवन करने से सुजाक में लाभ होता है। इसके रस के साथ हड़ के चूर्ण की फंकी लेने से कण्ठमाला में लाभ होता है तथा इसको भूमल में भूनकर चूसने से बैठा हुआ गला साफ होता है।

प्रमेह के रोगी, निर्बल पाचनशक्ति वाले, पीनस के रोगी,कृमिरोग वाले तथा जिनके मुँह में दुर्गन्ध आती हो, ऐसे रोगियों को इसके रस का सेवन नुकसान करने वाला है। इसलिये उन्हें इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

इसके दर्प को नाश करने वाले अदरक का रस, आँवला, मस्तगी इत्यादि वस्तुएँ हैं।

ईख से बनी हुई वस्तुएँ—

फाणित—ईख के पकाये हुए कुछ गाढ़े और कुछ पतले रस को फाणित कहते हैं। यह फाणित आयुर्वेदिक मत से भारी, पौष्टिक, कफकारी, शुक्रजनक तथा वात, पित्त, श्रम को दूर करती है और मूत्र तथा वस्ति को शुद्ध करती है।

मत्स्यण्डी—ईख के पकाये हुए अधिक गाढ़े रस को मत्स्यण्डी कहते हैं। यह भेदक, बलकारक, हलकी, वात-पित्तनाशक, मधुर, पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक और रक्त-विकार को हरने वाली है।

गुड़—ईख के रस को पूरी तरह पकाकर उसका गुड़ बनाते हैं। गुड़ भारतवर्ष में बहुत प्राचीन-काल से मङ्गलीक द्रव्य के रूप में व्यवहृत होता आया है। आयुर्वेदिक दृष्टि से प्राचीन और नवीन गुड़ के गुणों में अन्तर है। भारतवर्ष के कई प्रान्तों में प्रसूता स्त्रियों को पुराने गुड़ में बनाई हुई चीजों को देने का रिवाज है। इसके सिवाय गुड़ मूत्रशोधक, वीर्यवर्द्धक, अग्निदीपक, दस्तावर और पित्तकारक माना गया है। यह गुदारोग, कामलारोग, शोष, प्रमेह, गुल्मरोग, पाण्डुरोग, वात, रक्त-पित्त इत्यादि रोगों को हरने वाला है। कास और श्वास में भी यह उपयोगी है तथा भिन्न २ अनुपानों से और भी कई रोगों को हरने वाला माना जाता है।

हार्ट डिसीज (हृदय रोग) और गुड़—सन् १९३३ के २४ अक्टूम्बर के 'मुम्बई समाचार' में रतनशा के० दादा चानजी के नाम से " हार्ट अर्थात् हृदय को मजबूत बनाने के लिये यूरोप के अन्दर हाल ही में शोधा हुआ एक आश्चर्यजनक उपाय" नामक लेख प्रकाशित हुआ था। उसका आशय इस प्रकार है—

" मि० बरजोरजी संजाना एडवोकेट को बम्बई के डाक्टरों ने बतलाया कि तुमको हार्टडिसीज (हृदयरोग) हो गया है और हार्ट का एक रेस टूट गया है। इसलिये उनको सलाह मिली कि बिस्तर पकड़ लेना चाहिए और अधिक हिलना-डुलना नहीं चाहिए……तब मि० संजाना इस रोग का इलाज कराने के लिए विएना गये और वहाँ के प्रसिद्ध डाक्टरों को दिखलाया। वहाँ उनको कहा कि आपको हार्ट-डिसीज नहीं है और उन्हें दस मील रोज घूमने का आदेश दिया।

वहाँ से मि० संजाना इंग्लैड गये और वहाँ के एक हार्ट एक्सपर्ट के पास जाकर उन्होंने हार्ट को मजबूत बनाने का उपाय पूछा। उस डाक्टर ने एक गिन्नी फीस लेकर नुसखा लिखा और उस नुसखे में खाली "शार्प की सुपरक्रीम टॉफी" का नाम लिख दिया। इस नुसखे को देखकर मि० संजाना आश्चर्य चकित होगये और इन्होंने डाक्टर को फिर से दोहराया तब डाक्टर ने कहा कि 'टॉफी,खाने से हार्ट बहुत मजबूत होता है, इसी प्रकार गुड़ की पपड़ी या गुड़ की बनाई हुई चीज खाने से भी हार्ट पर बड़ा अच्छा असर होता है।

इस लेख के लेखक (रतनशा के० दादा चानजी।) ने जब उनके मुंह से इस बात को सुना तब कुछ समय तक इन्होंने भी शार्प की सुपरक्रीम टॉफी का उपयोग किया था। इससे लेखक को विश्वास

हुआ कि गुड़ खाने से हार्ट के ऊपर आश्चर्यजनक ढंग से चमत्कारिक असर होता है। हमारे देश में गुड़ का बहुत भारी तादाद में उपयोग होता है। मगर इसके वास्तविक गुणों से लोग अपरिचित हैं। अगर इसके वास्तविक गुणों से लोग परिचित हो जायँ और इसका नित्य उपयोग जारी कर दें, तो हार्ट-फेल्युअर से होने वाली कई मौतों से बचाव हो जाय।"

उपरोक्त कथन से मालूम होता है कि गुड़ हृदयरोग में लाभ पहुँचाने वाली वस्तु है, इस कथन के साथ जब हम प्राचीन ग्रन्थों में बतलाये हुए गुड़ के गुणों की तुलना करते हैं तो उसमें बहुत कुछ साम्य नजर आता है।

पुराने गुड़ का वर्णन करते हुए आयुर्वैदिक ग्रंथों में लिखा है कि यह रसायनरूप और अग्नि-दीपक है। चेहरे के फीकेपन को, पाण्डु को, पित्त को, त्रिदोष को और प्रमेह को मिटाने वाला है। तीन वर्ष का पुराना गुड़ सबसे उत्तम माना जाता है। पुराना गुड़ अदरख के साथ खाने से कफ, हरड़ के साथ खाने से पित्त और सोंठ के साथ खाने से वायु का नाश करता है। गुल्म, बवासीर, अरुचि, क्षत, खाँसी, हृदयरोग, छाती के जखम, क्षीणता, पाण्डु वगैरह रोगों में पुराना गुड़ पथ्य है। बवासीर तथा श्वास वाले को, हृदयरोग वाले को, परिश्रम से थके हुए को, मूर्छा वाले को, मूत्रकृच्छ्र और पथरी वाले को, रक्तविकार वाले को, जीर्ण तथा विषम-ज्वर वाले को युक्तिपूर्वक अगर गुड़ का सेवन कराया जाय तो बड़ा लाभ होता है। गुड़ भोजन को पचाकर खून की वृद्धि करता है तथा उसे स्वच्छ करता है। पेट और श्वासोच्छ्वास के दर्दों को मिटाता है। शरीर की गठन को मजबूत करता है, मेद और चरबी को कम करता है। समाज में यह एक बहुत सामान्य वस्तु मानी जाती है, मगर यह अमृत के तुल्य है। द्राक्षासव, हरीतिकी अवलेह, वासावलेह इत्यादि मशहूर औषधियों में गुड़ का मिलाया जाना इसकी उपयोगिता को सिद्ध करता है। (वैद्य-कल्पतरु, दिसम्बर सन् १६३३)

शक्कर—आयुर्वैदिक मत से ईख की शक्कर शीतवीर्य, पाक में मधुर, सारक तथा दाह, तृषा, वमन, मूर्छा, रुधिरविकार और कृमिरोग को नष्ट करने वाली है। इसकी बनाई हुई मिश्री नेत्रों को हितकारी, स्निग्ध, धातुवर्द्धक, मुखप्रिय, मधुर, शीतल, इन्द्रियों को तृप्त करने वाली, हलकी, तृषा-नाशक तथा क्षत, क्षय, रक्त-पित्त, मूर्छा, कफ, वात,पित्त, दाह और शोष को हरने वाली है।

अरेबियन मटेरिया मेडिका के अनुसार यह विरेचक और रसयुक्त है। बहुत से लेखक इसे सीने के दर्दों में मुफीद मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि यह स्थूलता को नष्ट करती है और पथरी की शिकायतों में भी लाभदायक है।

विष के मामलों में खास करके ताँबा और संखिया के विष में शक्कर बहुत उपयोगी मानी गई है। रसकपूर के विष में भी यह उपयोगी है। इन मामलों में इससे सफलतापूर्वक काम लिया जा चुका है। घाव में और घाव सम्बन्धी दूसरी पीड़ा में शुद्ध, सफेद शक्कर मांसांकुर लाने के लिये घाव पर छिड़की जाती है।

उपयोग—

सूखी खाँसी—कच्चे गन्ने का रस पीने से सूखी खाँसी में लाभ होता है।

पित्त विकार—पके हुए गन्ने का रस पिलाने से वात और पित्त के विकार मिटते हैं।

रुधिर की वमन—वृद्ध गन्ने का रस पिलाने से रुधिर की वमन बन्द होती है।

मूत्र रेचन—गन्ने का बासी रस पिलाने से मूत्र वृद्धि होती है।

विरेचन—गन्ने के रस में जौ की बाल के नीचे का डंठल मलकर पिलाने से शीघ्र विरेचन होता है।

रक्तातिसार—गन्ने के रस में अनार का रस मिलाकर पिलाने से रक्तातिसार मिटता है।

पित्तगुल्म—गन्ने के रस और आँवले के रस से शुद्ध किये हुए घी को खाने से पित्त गुल्म में फायदा होता है।

ईरसा

नाम—

हिन्दी—ईरसा, सौसन, इन्द्रधनुष पुष्पी। अरबी—इर्सा, सौसने आसमानी। लेटिन—Iris Versicolor. (आइरिस व्हर्सिकलर) Iris Florentina. (आयरिस फ्लोरंटिना)।

(Chopra)

वर्णन—

इस वनस्पति की जड़ चपटी, टेढ़ी, गांठदार और लता की भांति फैलने वाली होती है। इस पौधे के बीच में से एक डाली निकलती है, वही इसका तना होता है। उस डाली के ऊपर पत्तों के गुच्छे और फूल होते हैं। इसके फूल भिन्न २ रंगों के नीले, पीले, सफेद और इन्द्र-धनुष के समान सम्मिलित रंगों के होते हैं। इसीसे इसको इन्द्र-धनुष पुष्पी और ईरसा (इन्द्र-धनुष) कहते हैं। इसके पत्ते मोटे दल के और दीर्घ होते हैं। इसकी जड़ में बनफशा के समान खुशबू आती है। यह औषधि हिमालय पहाड़ पर ५००० फीट से ६००० फीट की ऊँचाई तक होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक ग्रन्थों के अन्दर इस औषधि का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

यूनानी मत—यूनानी ग्रन्थों के अन्दर बहुत प्राचीनकाल से इस औषधि का उल्लेख पाया जाता है। हकीम डिसकोरिडस और सावफ़रिस्तूस ने अपने ग्रन्थों में इसका उल्लेख किया है। प्राचीनकाल में यूनान के अन्दर इस औषधि की जड़ के द्वारा एक उत्तम कोटि का मरहम तैयार किया जाता था।

यूनानी मत से इसकी जड़ शरीर में गरमी पैदा करने वाली, प्रकृति को दुरुस्त करने वाली तथा आक्षेप, लकवा और अंग-स्फुरण को लाभ पहुँचाने वाली है। तेल और सिरके के साथ इसका लेप करने से पुराना सिरदर्द आराम होता है। जैतून के तेल के साथ इसको कान में टपकाने से पुराने बहरेपन में लाभ होता है। हड्डी के टूटने या चोट लगने के स्थान पर इसका लेप करने से लाभ होता है। सूजन और जलंधर की बीमारी में भी यह फायदेमन्द है। इसको महीन पीसकर हड्डी पर भुरभुराने से हड्डी पर मांस पैदा होकर गम्भीर व्रण भर जाता है। संधिशूल में भी इसके खाने से लाभ होता है। इसके पंचांग का ताजा रस आंख में डालने से आंख का जाला कट जाता है।

खाँसी, दमा, पार्श्वशूल, सीने का दर्द और फेफड़े की बीमारियों में भी यह लाभकारी है। हृदय को भी यह शक्ति प्रदान करता है। कामला और बवासीर के रोग में भी यह लाभ पहुँचाता है। गृध्रसी में इसकी वस्ति उपयोगी है। इसको गुदा में रखने से पेट के कीड़े नष्ट हो जाते हैं तथा शहद के साथ गर्भाशय में रखने से गर्भपात होने का अन्देशा रहता है। सरदी से होने वाले यकृत और प्लीहा के दर्द में भी इससे लाभ होता है।

इण्डियन मेडिकल प्लांट्स के मतानुसार इसकी जड़ रक्त-शोधक और धातु-परिवर्तक होती है। यह अनेक रक्त-शोधक औषधियों का एक प्रधान अङ्ग है। यकृत और जलोदर की पीड़ा में भी यह बहुत मुफीद है। सम्भोग सम्बन्धी बीमारियों (Sexual Deseases) में भी यह बहुत काम में आता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह (Iris Florentina) आइरिश जर्मेनिका नामक वृक्ष की जड़ है जोकि काश्मीर में पैदा होता है। यह रक्त-शोधक, मूत्रनिस्सारक और मृदुरेचक है। इसमें एक प्रकार का ग्लुकोसाइड रहता है। पित्ताशय की तकलीफ में इसका उपयोग होता है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसकी सूखी जड़ में एक प्रकार का इसेन्शियल ऑइल, टेनिन, राल और सफेद सत्व होता है।

उटंगन

नाम—

संस्कृत—सितिवार, स्वस्तिक, सुनिषएणक, श्रीवारक, शितिवार इत्यादि। **हिन्दी**—शिरिआरी, चोपतिया, उटिंगन, गुठवा, उटंगन के बीज। **मराठी**—कुरडू। **गुजराती**—ओटीगण, ओटीगणना-बीज, खड़कातेरा। **फारसी व अरबी**—अंजरा, तुख्मेअंजरा। **तैलगू**—सुनिषएण मनेशाकमु। **लेटिन**—Blepharis Edulis. (ब्लेफेरिस एड्यूलिस)

वर्णन—

उटंगन के पौधे सजल स्थानों, ठंडी जगहों तथा नदी के कछारों में उत्पन्न होते हैं। इसके पत्ते चाँगेरी के समान एक साथ चार २ लगते हैं। उन चार पत्तों के बीच में कली लगती है। इसके फलों के बीच में दो चपटे बीज होते हैं। ये बीज तालमखाने के सदृश चिकने होते हैं। इसके पत्तों की शाक बनाकर खाई जाती है। कहा जाता है कि इसकी शाक अच्छी निद्राजनक है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से उटंगन के पत्तों का शाक शीतल, मलरोधक, त्रिदोषनाशक हलका, स्वादिष्ट, कसैला, रूखा, दीपक, रुचिकारक तथा ज्वर, श्वास, प्रमेह, कोढ़ और भ्रम को दूर करने वाला है।

इसके पत्ते सुगन्धित और तिक्त होते हैं। ये आँतों के लिये संकोचक, कामोद्दीपक, क्षुधावर्द्धक, धातुपरिवर्तक, कृमिनाशक और निद्राकारक हैं। त्रिदोष और ज्वर में तथा मूत्र-नाली सम्बन्धी बीमारियों में और मानसिक विकृति में ये बड़े उपयोगी हैं। इनको लगाने से घाव और व्रण में भी लाभ होता है।

इसके बीज मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) की बीमारियों में बड़े लाभदायक हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से उटंगन की जड़ मूत्रनिस्सारक और मासिकधर्म को नियमित करने वाली है। इसके पत्ते पौष्टिक, कामोद्दीपक, विरेचक और नकसीर को बन्द करने वाले हैं। श्वास, कफ, गले की जलन, जलोदर, यकृत और तिल्ली सम्बन्धी रोगों में ये बड़े मुफीद हैं। इसके बीज यकृतरोग, सीने के रोग, फेफड़े के रोग, रक्तरोग तथा पेशाब सम्बन्धी बीमारियों में लाभदायक है। ये मूत्रनिस्सारक आक्षेप निवारक, कामोद्दीपक, वीर्यस्तम्भक, बलदायक और शुक्रमेह तथा शुक्रतारल्य को दूर करने वाले हैं। मूत्रदाह को दूर करके ये गुर्दे को बलप्रदान करते हैं। ये कफ-निस्सारक और चरबी को कम करने-वाले हैं। बिलोचिस्तान में इसके बीज आँखों की तकलीफ में काम में लिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज मूत्रनिस्सारक, कामोद्दीपक, कफनिस्सारक और शक्तिवर्द्धक हैं। इनमें एक प्रकार का कटुतत्व पाया जाता है।

उपयोग—

मूत्राघात—उटंगन के बीज १ माशा, मिश्री १ माशा, इनको मिलाकर लेने से बंद हुआ मूत्र फिर चालू हो जाता है।

मूत्रकृच्छ्र—मट्ठे के साथ इसके बीजों को पीसकर पीने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

उरुस्तम्भ—इसके पत्तों का शाक तेल और जल के साथ बनाकर, बिना नमक के उरुस्तम्भ के रोगियों को देने से लाभ होता है।

उटिगण

नाम—

बंगाल—चोरपाटा। वरमा—पैत्यग्गी। नेपाल—मोरिंगी। तामील—उत्पिलव। हिन्दी—उटिगण। लेटिन—Laportea Carenulata.

वर्णन—

यह वृक्ष हिमालय में सिक्किम से पूर्व की तरफ, आसाम, खासिया पहाड़ी, सीलोन, सुमात्रा, और मलायाद्वीप समूह में पैदा होता है। इसके वृक्ष पर चुभने वाले काँटे होते हैं। इसके फूल मुलायम और पुष्पवृन्त छोटे होते हैं। इसके नर और नारी दो तरह के पुष्प आते हैं। इसका फल गोल होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

कार्टर के मतानुरासार उत्तरी लखीमपुर में इसकी जड़ का रस पुराने ज्वरों को दूर करने के काम में लिया जाता है।

इसके फूल और पत्ते जहरीले होते हैं। केलंतन में कैदी लोग इनको रोटी के साथ मिलाकर किसी को मारने के लिये खिला देते हैं।

इरविन और कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीजों का उपयोग पटना में घनियें के बीजों की तरह लिया जाता है।

उड़द

नाम—

संस्कृत—बीजरत्न, धान्यवीर, माष, कुरुविन्द, वृषांकुर, मांसल, बलाढ्य इत्यादि। हिन्दी—उड़द, उरिद, ठिकिरि। गुजराती—अरद, उड़द। बंगाली—माषकलाई। मराठी—उड़िद। तेलंगी—मिनुमुलु। कनाड़ी—उद्दू। तामील—पट्चैप्यरी। फारसी—माष। अरबी—माषा। लेटिन—Phaseolus Radiatus. (फेसिओलस रेडिटस)।

वर्णन—

उड़द का उपयोग दाल के रूप में प्रायः सारे भारतवर्ष में होता है। इसलिये इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से उड़द स्निग्ध, बलकारक, वीर्यवर्द्धक, पित्तकारक, भारी, तृप्तिजनक, स्वादिष्ट, पौष्टिक, मूत्रल, मलभेदक, दुग्ध पैदा करने वाले, मांसवर्द्धक, मेदवर्द्धक तथा श्वास, श्रम, परिणाम-शूल, अर्दित और बवासीर को दूर करने वाले हैं। किसी २ के मत से ये मल-भेदक और मूत्रजनक नहीं हैं।

इसके बीज मीठे और तेलयुक्त रहते हैं। ये मृदु-विरेचक, कामोद्दीपक, पौष्टिक, भूख बढ़ाने वाले, मूत्रल और दुग्धवर्द्धक हैं। ये हृदय के लिये उत्तम और थकान को दूर करने वाले हैं। ये प्यास, कफ और रक्तरोग को उत्पन्न करने वाले हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से उड़द के बीज कामोद्दीपक, पौष्टिक, मूत्रल, दुग्धवर्द्धक, रक्त-स्रावरोधक हैं। ये खाज, धवलरोग, सुजाक और नकसीर में लाभदायक हैं। पक्षाघत, आमवात, स्नायु-मंडल के रोग, बवासीर और यकृत की तकलीफों में भी ये उपयोगी हैं। इनका उपचार भीतरी और बाहरी दोनों तरीकों से होता है।

ये पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में तर हैं। ये आफरे को पैदा करने वाले और कठिनता से हजम होने वाले हैं। इनके दर्प को नाश करने वाले कालीमिर्च, अदरख और हींग हैं।

उड़द की जड़ निद्राकारक मानी जाती है। संथाल लोग इसे हड्डियों के दर्द में लाभदायक बतलाते हैं। इंडो-चायना में इसके बीज जलोदर और मस्तकशूल में काम में लिये जाते हैं।

सुश्रुत के मतानुसार इसके बीज सर्प और बिच्छू के डंक में उपयोगी हैं। मगर केस और महेस्कर के मतानुसार ये दोनों ही प्रकार के विषों में निरुपयोगी हैं।

इंडियन मटेरिया मेडिका के लेखक डाक्टर नॉडकरनी के मतानुसार उड़द स्निग्ध, शीतल, काम-शक्तिवर्द्धक और स्नायु-मंडल को ताकत देने वाला है। इसमें केवल एक दोष यह है कि यह

वायु को पैदा करता है। इस दोष को नष्ट करने के लिये तथा इसको स्वादिष्ट बनाने के लिये इसमें हींग मिला देना आवश्यक है। इसका काढ़ा अजीर्ण रोगी के लिये उपयोगी है। औषधिरूप में इसका भीतरी और बाहरी दोनों तरीकों से प्रयोग होता है। आमाशय से पैदा होने वाले जुकाम, अतिसार, प्रवाहिका, लकवा, बवासीर, आमवात, यकृत की बीमारियाँ और वात-व्याधियों में इसका काढ़ा पीने के लिये दिया जाता है तथा आमवात, यकृत के रोग और वात-व्याधियों में इसका बाहरी प्रयोग भी होता है। इसकी दाल शरदऋतु में शीत के आक्रमण से रक्षा करती है। जरायु के विकारों में इसको भूनकर खाने से लाभ होता है। इसकी साधारण पकाई हुई दाल दुग्धवर्द्धक है।

उपयोग—

लकवा—उड़द को सोंठ के साथ औटाकर पिलाने से लकवे में लाभ होता है।

गठिया—अरंड की जड़ की छाल के साथ उड़द को औटाकर पिलाने से गठिया में लाभ होता है। इसके मेल से बनाये हुए तेलों के मर्दन से संधियों तथा कंधे की बादी में लाभ होता है।

फोड़ा—पीब वाले फोड़ों पर इसकी पुल्टिस बाँधने से लाभ होता है।

नकसीर—इसके आटे का तालू के ऊपर लेप करने से नकसीर बन्द होता है।

हिचकी—हलदी, सन की छाल और उड़द के आटे का धूम्रपान करने से हिचकी बन्द होती है, उड़द को हुक्के में रखकर तमाखू की भाँति पीने से भी हिचकी बन्द होती है।

स्नायु-शक्ति—उड़द के काढ़े पर एक रत्ती सफेद चिरमी का चूर्ण भुरभुरा कर पिलाने से स्नायु-जाल की शक्ति बढ़ती है।

पित्त की सूजन—उड़दों को उबालकर पित्त की सूजन पर बाँधने से पित्त की सूजन मिटती है।

अर्दित रोग—उड़द के आटे के बड़े बनाकर मक्खन के साथ खाने से मुंह का अर्दित मिटता है।

उड़द की पुल्टिस—उड़द के आटे में थोड़ा नमक, थोड़ी सोंठ और थोड़ी हींग मिलाकर उसकी रोटी बनाकर एक तरफ से सेक लें और उसको उतारकर कच्चे भाग की तरफ तिल का तेल लगाकर शरीर के किसी भी वेदनायुक्त स्थान पर बाँधने से बड़ा लाभ होता है।

उड़द पाक—छिले हुए उड़द का आटा डेढ़पाव, गेहूँ का सत्व डेढ़पाव, जौ का सत्व डेढ़पाव, साँठी के चाँवलों का चूर्ण तीन छटांक, छोटी पीपर शोधी हुई डेढ़ छटांक, घी एक सेर आधपाव, चीनी सवा दो सेर।

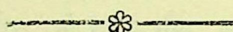
पहले ऊपर की पाँचों चीजों को घी में मंद २ आँच पर भूँज लो। जब चूर्ण लाल हो जाय और खुशबू आने लगे तब उसे उतार लो। फिर चीनी की गाढ़ी चासनी करके उस चासनी में वह चूर्ण

डाल दो। ऊपर से बादाम, पिश्ते, किशमिश आदि मेवे पाव २ भर कतरकर डाल दो। फिर एक २ छटांक के लड्डू बना लो।

चिकित्सा-चन्द्रोदय के लेखक बाबू हरिदास वैद्य का कथन है कि इसमें से सवेरे-शाम एक २ लड्डू खाकर ऊपर से दूध पीने से अत्यंत बलवीर्य बढ़कर धातु पुष्ट होती है। रतिशक्ति को बढ़ाने के लिये यह पाक बहुत मुफीद है। वे इसे अपना परीक्षित बताते हैं।

उड़द का हलवा–उड़द की धोई हुई दाल को लेकर ताजे गाय के दूध में भिगो दें। जब सब दूध उस दाल में रम जाय, तब उसे छाँह में सुखा लें। सूख जाने पर पीसकर आटा कर लें। इस आटे में सिंघाड़े का आटा, सफेद मूसली का चूर्ण और इमली के भुंजे हुए छिलके रहित चीयें का चूर्ण समान भाग मिलाकर चूर्ण तैयार कर लें। इस चूर्ण में से साढ़े तीन तोले चूर्ण का साढ़ेतीन तोले घी और पाँच तोला शक्कर के साथ हलवा बनाकर सेवन करें। अगर पाचनशक्ति कमजोर हो तो इस मात्रा में कमी भी की जा सकती है।

यह योग आयुर्वेदीय-विश्वकोष का है। इस योग के सेवन से भी वीर्यवृद्धि और पुष्टि होकर ओज, कांति और रतिशक्ति की वृद्धि होती है।



उतरण

नाम—

संस्कृत—फलकण्टका, चाण्डाल दुग्धिका, इन्दिवरा, युग्मफला इत्यादि। **हिन्दी**—उतरण। **मराठी**—उतरणी, उतरंडी। **बंगाली**—छागुलवाटी। **पंजाब**—सियाली। **तामील**—उत्तमनी। **गुजराती**—नागली दुधैली। **काठियावाड़ी**—चमार दुधैली। **तेलगू**—गुरुति। **लेटिन**—Daemia Extensa (डेमिया एक्सटेन्सा)

वर्णन—

यह औषधि भारतवर्ष के तमाम गरम आबहवा वाले प्रांतों में तथा सीलोन और अफगानिस्तान में पैदा होती है। यह बहु वर्षजीवी वृक्षाश्रयी लता है। यद्यपि यह बारह मास होती है, फिर भी बरसात के दिनों में ज्यादा पाई जाती है। इसके पत्ते कुछ गोलाई लिये हुए नोंकदार और रुएँदार होते हैं। इसके फूल सफेद और फल आँकड़े के समान, लेकिन दो २ मिले हुए रहते हैं। इसीसे इसे फलयुग्मा कहते हैं। इसके फलों पर काँटे होते हैं। इन फलों में से आँकड़े की तरह रूई निकलती है। इस फल को तोड़ने से उसकी डाली में से दूध निकलता है। इस बेल के अन्दर खराब गंध आती है।

गुण धर्म और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह पौधा तीक्ष्ण, शीतल, कृमिनाशक, विरेचक, ज्वरनाशक और पित्त, कफ, श्वास तथा त्रिदोष का नाश करने वाला है । यह व्रणों के लिये बहुत मुफीद है । नेत्ररोग, मूत्राशय के रोग, गर्भाशय के रोग, पथरी, प्रदाह और धवलरोग में भी यह लाभदायक है ।

इसकी जड़ की छाल पौने चार माशे से साढ़े सात माशे की मात्रा में गाय के दूध के साथ गठिया रोग में विरेचक औषधि के बतौर दी जाती है । इसकी ताजी पत्तियों की लुग्दी उत्तेजक पुल्टिस के बतौर सांघातिक फोड़ों पर लगाई जाती है । इसके पत्तों का रस जुकाम और श्वास की बीमारी में लाभदायक है । चूने और सोंठ के साथ इस रस को मिलाकर लेप करने से संधिवात की सूजन में लाभ होता है । इसके पत्तों को मिर्ची के साथ पीसकर देने से रक्तातिसार में लाभ होता है ।

कोमान कहते हैं कि यह औषधि मलेरिया के पार्य्यायिक ज्वरों में मुफीद बतलाई जाती है । मगर इसके पत्तों का रस आधे औंस की मात्रा में लेने पर भी मलेरिया के रोगियों को कोई लाभ न हुआ ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि बम्बई प्रांत में वामक तथा कफ-निस्सारक औषधि की तरह उपयोग में ली जाती है। इसके पीसे हुए पत्ते का रस पाँच से लगाकर दस ग्रेन तक की मात्रा में एक उत्तम कफ-निस्सारक औषधि है । इसके कफ-निस्सारक गुण को बढ़ाने के लिये इसमें कभी २ तुलसी के पत्तों का स्वरस और शहद भी मिला दी जाती है । इसके पत्ते कफ-निस्सारक और वामक होने से श्वासरोग में भी लाभदायक होते हैं । ये सर्पदंश में भी उपयोगी माने जाते हैं । इस औषधि में एक प्रकार का कड़वा ग्लुकोसाइड रहता है ।

'जंगलनी जड़ी-बूटी' नामक ग्रन्थ के रचयिता वैद्य-शास्त्री शामलदास इस औषधि के अन्दर दो नवीन और चमत्कारिक गुणों का उल्लेख करते हैं । इनमें से पहला गुण खूनी बवासीर को बंद करने का है और दूसरा पारे की गोली बनाने का ।

(१) उनका कथन है कि इस वनस्पति के अन्दर एक दिव्यगुण यह देखने में आता है कि इसके पत्तों को प्रति टाइम दो तोले के करीब लेकर उनके छोटे टुकड़े कर घी में लौंग के बघार के साथ तलकर खाने से बवासीर से गिरने वाला खून बंद हो जाता है । इस प्रयोग को १०-१५ रोज तक चालू रखने से कई रोगियों का हमेशा के लिये खून पड़ना बंद हो जाता है ।

(२) प्राचीन निघंटों में इस औषधि को धातु-वृद्धि करने वाली, हृदय को हितकारी, गरम और पारे को बाँधने वाली लिखा है । मगर इससे पारा किस प्रकार बाँधा जाता है, यह बात बहुत कम लोगों को मालूम है । हमको एक महात्मा ने इसका प्रयोग बतलाया, वह इस प्रकार है—

भलीभाँति शुद्ध किये हुए पारे को एक पत्थर की खरल में डालकर फिर उतरण की जड़ों को मुँह में चबा २ कर उसका रस निकाल २ कर उस पारे में डालना चाहिये और नीम की हरी लकड़ी के डण्डे से उसे घोटते जाना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक घोटने पर पारा मक्खन के समान हो जाता है। इस पारे को कपड़े में बाँधकर धतूरे के डोड़े में बंद कर उस डोड़े पर गाय के गोबर का थर चढ़ाकर सुखा लेना चाहिये। फिर एक रुपये भर ऊपले कंडे का चूर्ण समाय इतना खड्ढा खोदकर उसमें बकरी की मेंगनी भरकर उसके बीच में पारे का डोड़ा रखकर आग सुलगा देना चाहिये। जब अग्नि ठंडी हो जाय तब उसे निकालकर दूसरे धतूरे के डोड़े में पारे को भरकर दूसरी बार दो रुपये भर बकरी की मेंगनियों में उसे फूंकना चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक बार एक २ रुपये भर मेंगनी बढ़ाते हुए उसे सौ पुट देना चाहिये। उसके बाद उसी प्रकार धतूरे के फल में रखकर गाय के गोबर का थर चढ़ाकर दाल, चाँवल की खिचड़ी में उसे पकाना चाहिये। इस प्रकार ६० दिन तक उसे खिचड़ी में पकाते रहना चाहिये। उसके बाद उसे ऊपले कंडों की आग में उसी प्रकार १०० पुट और देना चाहिये। इतनी क्रिया के पश्चात् पारे का जल शुष्क होकर उसकी एक गोली तैयार हो जाती है। कई गुणों के साथही-साथ इस गोली में वीर्य्य-स्तम्भन करने का बहुत बड़ा गुण है। इसको सोने या चाँदी के पतरे में रखकर मुंह में रखने से वीर्य-स्तम्भन होता है।

उपयोग—

पेट के कृमि—इसके स्वरस को दस बूंद से एक माशे तक की मात्रा में देने से या इसके पत्तों का काढ़ा पिलाने से बच्चों के पेट के कृमि नष्ट होते हैं और उदररोग भी मिटते हैं।

सांघातिक फोड़ा—(Carbuncle) इसके ताजे पत्तों की लुग्दी पुल्टिस की तरह सांघातिक फोड़ों पर रखने से वह जल्दी भरता है।

श्वास और खाँसी—इसके पत्तों के रस को पांच रत्ती से दस रत्ती तक की मात्रा में लेने से श्वास और खाँसी में तत्काल फायदा होता है।

गठिया की सूजन—इसके पत्तों के स्वरस में चूना मिलाकर लेप करने से हाथ-पैरों की गठिया की सूजन में लाभ होता है।

उद्जाति

नाम—

हिन्दी—उद्जाति । **कनाड़ी**—कपूरकरणी । **तामील**—नीलाम्बरी । **मराठी**—रणबोलि,धाक्त । **तेलगू**—पच्वदवरम् । **लैटिन**—Ecbolium Liuncanum. (एक्बोलियम लिनकेनम्) ।

वर्णन—

यह एक प्रकार की छोटी झाड़ी है । इसकी शाखाएँ सीधी, पत्ते बड़े, लम्बे और नोकदार, पुष्पावरण तीखे, फल मुलायम और बीज सफेद रहते हैं । यह वनस्पति कोकन,पश्चिमी घाट, दक्षिण और कर्नाटक में पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ पीलिया और अत्यधिक रजःस्राव में उपयोगी है ।

उन्नाव

नाम—

संस्कृत—सौबीर, सौबीरक, सौबीरवदर । **हिन्दी**—बनबेर,कँडियारी, तितनीबेर, सिंगली,सिमली । **काश्मीर**—फिटनी, सिमली । **बम्बई**—रनबोर, उन्नाव । **सीमाप्रांत**—खँडियारी । **फारसी**—पुनर, उन्नाप, सिंजिदेजेलानी । **उर्दू**—उन्नाब । **लैटिन**—*Zizyphus* Vulgaris. (झिझीफस व्हलगेरिस) और Zizyphus Sativa. (झिझिफस सेटिव्हा) ।

वर्णन—

यह एक प्रकार का बेर होता है । इसकी मूल उत्पत्ति अफगानिस्तान की है । मगर यह पंजाब और पंजाब के पास के हिमालय के प्रान्त में ६५०० फीट की ऊँचाई तक होता है । इसके अतिरिक्त पूर्व में बंगाल तक तथा सीमाप्रान्त, बिलोचिस्तान और फारस में भी यह पैदा होता है । इसका वृक्ष बेर के समान झाड़ीदार और काँटे वाला होता है । इसके पत्ते बेर के पत्तों से कुछ बड़े, गोल,बर्च्छी के आकार के और नरम होते हैं । इसका फल मारवाड़ में पैदा होने वाले बड़े झड़बेर के बराबर होता है । इसका पका हुआ फल लाल रङ्ग का होता है । बगदाद का उन्नाव सर्वोत्कृष्ट होता है । यह मीठा, लाल रंग का, सुस्वादु और अधिक गूदा वाला होता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से। ताजा उन्नाव समशीतोष्ण है । किसीके मत से यह पहले दर्जे में सर्द और तर और किसी के मत से यह पहले दर्जे में उष्ण और तर है । कठिनता से पचने वाला होने के कारण यह आमाशय को हानि करने वाला और आफरा पैदा करने वाला है । सूखा उन्नाव वीर्य को घटा कर मैथुन-शक्ति को कमजोर करता है। इसके दर्प को नष्ट करने वाले मुनक्का, शहद और शक्कर हैं तथा इसका प्रतिनिधि सपिश्ता (बड़गूँदा) है।

इसका छिलटा घाव और फोड़ों को पूरने के लिये काम में लिया जाता है। इसके पत्ते विरेचक हैं। ये खाज तथा गले की बीमारी और शरीर की जलन में प्रयोग में लिये जाते हैं । इसका फल मीठा, खट्टा, कफ-निस्सारक, रक्तवर्द्धक और रक्तशोधक है। पुरानी खांसी, वायु-नलियों के प्रदाह, ज्वर और लिव्हर के बढ़ने पर यह बहुत लाभदायक है। इसके बीज सूखी खाँसी और चमड़े के फटने पर बहुत उपयोगी हैं। इसका गोंद नेत्र रोगों के लिये मुफीद है।

मखज़न तुहफ़ा के मतानुसार यह औषधि अवरोधोद्घाटक, दोषों को मुलायम करने वाली, मूत्र-निस्सारक और आर्तव-प्रवर्तक है। इसका काढ़ा बुद्धि और स्मरणशक्ति को तेज करता है। इस्तिक़ा-बारिद (जलोदर) और यर्क़ानस्याह (काला कामला) में यह लाभदायक है। पेट के कृमियों को नष्ट करने में तथा कफ और वात से पैदा होने वाले ज्वरों में यह मुफीद है । सुजाक, संधिशूल और तिल्ली की वृद्धि को यह दूर करता है। घाव पर इसको महीन कर भुरभुराने से घाव भर जाता है। इसके ताजे पत्तों का लेप भी पुराने घावों में लाभदायक है। इसकी धूनी से जहरीले जानवर भाग जाते हैं।

यह खून को साफ करने वाला, खांसी में लाभ पहुँचाने वाला, गुर्दे और वस्ति के रोगों में लाभदायक तथा कंठ की कर्कशता को दूर करने वाला है। चेचक में तथा पित्ती उछलने की बीमारियों में इसको अर्क-कासनी और सिकंजबीन के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

इसके सूखे फलों से बनाया हुआ शर्बत खाँसी, छाती और आमाशय की जलन को मिटाता है तथा रक्त की गरमी को नाश कर उसे शुद्ध करता है । शीतला की बीमारी में यह शर्बत बहुत शांतिदायक होता है ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह शान्तिदायक और कफ-निस्सारक है।

उपदली

नाम—

गुजराती—कालीघावनी; कालीग्रमंथोकली । **मलाया**—उपदली । **सिंहली**—नीलपुरुक । **लेटिन**—Ruellia Prostrata. (रुलिया प्रोस्ट्रेटा)

वर्णन—

यह वनस्पति समस्त भारतवर्ष, सीलोन और पूर्वीय अफ्रीका में पैदा होती है । यह एक बहुशाखी लतानुमा वृक्ष है, जो झाड़ियों पर चढ़ने वाला होता है। इसके पत्ते गोलाकार और नुकीदार होते हैं। इसके फल में सोलह से लगाकर बीस तक बीज रहते हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि सुजाक की बीमारी में लाभदायक है।

उपास

नाम—

संस्कृत—वल्कल । **वम्बई**—चंदुल, जसुंद, करवट। **मराठी**—करवट, खरवट, चंदल। **कनाड़ी**—वैरि, अरण्यी। **तामील**—मरुरि,पतई। **कुर्ग**-थैलेवाला। **लेटिन**—Antiaris Toxicaria. (अॅन्टियारिस टाक्सिकेरिया)

वर्णन—

वर्मा, पेगू, पश्चिमी प्रायद्वीप इत्यादि स्थानों पर यह औषधि पैदा होती है। यह एक बहुत ऊँची जाति का वृक्ष है। इसकी छाल गहरे भूरे रंग की होती है। इसके पत्ते तीखी नोक वाले और गोलाकार होते हैं। यह ऊपर की तरफ से मुलायम और चमकीले होते हैं। इनके पीछे की ओर आठ से लगाकर दस तक नसें रहती हैं। इसके नर और नारी दोनों प्रकार के पुष्प होते हैं। इसका फल लाल मखमली होता है। इस फल में एक ही बीज रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

अठारवीं शताब्दी के अन्त में अपने जहरीले गुणों के कारण यह औषधि बहुत मशहूर हो गई। एक डच सर्जन ने इस औषधि के लिये यहाँ तक लिखा कि अगर इस झाड़ के आस-पास एक मील की दूरी पर भी कोई जीवधारी रहे तो वह इसके जहरीले असर से नहीं बच सकता। मगर इस कथन के अन्दर सचाई की मात्रा बहुत कम थी। फिर भी यह निश्चित बात है की इसके पत्तों का तथा इसकी छाल का रस बहुत विषैला होता है। मलाया और जावा में इस वृक्ष का रस बाणों के ऊपर उनको जहरीले करने के लिये लगाया जाता है।

हृदय के लिये यह एक बहुत भयंकर विष है। इस पदार्थ की तीन बूंदे पानी के साथ में मेंडक को देने से मालूम हुआ कि करीब सात मिनट में उसकी नाड़ी बन्द हो गई और दस मिनट में वह बिलकुल निश्चेष्ट हो गया। ट्रॉपिकल मेडिसिन स्कूल ऑफ कलकत्ता में बिल्लियों के ऊपर भी इसके अनुसन्धान किये गये, जिससे मालूम हुआ कि हृदय के लिये यह एक भयंकर विष है।

इस औषधि की प्रबलता को देखने से मालूम होता है कि अगर इसका उचित रूप से उपयोग किया जाय तो दूसरे तीव्र विषों की तरह यह भी मनुष्य-जाति के रोगों को दूर करने में बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

इस समय कोकन और कनाड़ा में इसका बीज ज्वर और पेचिश की बीमारियों में काम में लिया जाता है। इसकी मात्रा तिहाई हिस्से से लगाकर आधे हिस्से तक दिन में तीन बार दी जाती है। कुर्ग में इस वृक्ष की अन्तर्छाल से थैले और वस्त्र बनाये जाते हैं।

उप्पी

नाम—

हिन्दी—उप्पी।

वर्णन—

इस वृक्ष के पत्ते मोतिया के पत्तों की तरह पर उससे कुछ छोटे होते हैं। इसमें चील की नाखून की तरह कांटे होते हैं। इसका स्वाद तीक्ष्ण होता है। इसका फल गोल और सफेद मोती की तरह होता हैं। इसके फल का स्वाद मीठा और तीक्ष्ण होता है। इसके सफेद और काले दो भेद होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—खज़ानुल अदविया के मतानुसार इसका काला भेद प्रमेह, मूत्र तथा वस्ति के रोग में उपकारी है तथा सफेद भेद ज्वर,कफ,सरदी तथा पित्त का नाश करता है। इसकी जड़ उदरशूल, रक्त-दोष और सुजाक में लाभदायक है।

उफीमूनस

नाम—

लेटिन--Agrimonia Eupatorium

वर्णन—

यह औषधि हिमालय के समशीतोष्ण प्रान्त में मरी और काश्मीर से लगाकर सिक्किम तक ७ हजार फीट से १० हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। यह एक बहुवर्ष स्थायी रुएँदार वनस्पति है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ एक प्रकार की मृदु-संकोचक औषधि है। यह पौष्टिक और मूत्र-निस्सारक है। यूरोप के वनस्पति-विशारदों में इस औषधि की बड़ी तारीफ है। इसका काढ़ा खाँसी, अतिसार और आँतों के ढीलेपन को दुरुस्त करता है। यह पाचन-क्रिया-प्रणाली और पाचन-शक्ति को बढ़ाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि सुगन्धित, संकोचक, कृमिनाशक और मूत्र-निस्सारक है। इसमें एक प्रकार का इसेंशिअल ऑइल पाया जाता है।

उमरी

नाम—

हिन्दी—उमरी। **तामील**—उमरी, कट्टुमारी, सितुमारी। **तेलगू**—कोयालु। **लैटिन**—Salicornia Brachiata.

वर्णन—

यह औषधि बंगाल, काठियावाड़, गुजरात, पश्चिमी प्रायद्वीप और लंका में पैदा होती है। यह एक प्रकार की बहुशाखी झाड़ी है। इसकी शाखाएँ बड़ी नाजुक होती हैं। इसके बीज बादामी रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी राख चर्मरोग और खुजली के काम में ली जाती है। यह ऋतुस्राव नियामक और गर्भ-स्रावक मानी जाती है। (इण्डियन मेडिकल प्लांट्स)

उम्बु

नाम—

पंजाब—हुम्बु, उम्बु । गढ़वाल—वुबु ।

वर्णन—

यह औषधि पश्चिमी हिमालय, कुनवाद, लदक और कुमाऊँ में १४ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। इसका वृक्ष सीधा होता है। इसकी डालियाँ बादामी रंग की और मुलायम होती हैं। इसके पत्ते गोल और बरछी के आकार के होते हैं। इसके फूल सफेद और हलके गुलाबी रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

पंजाब में यह औषधि रगड़न के ऊपर लगाने के काम में ली जाती है।

उम्मुलकल्ब

नाम—

अरबी—उम्मुलकल्ब ।

वर्णन—

यह औषधि मिश्र देश के खेतों में तथा अरब में बहुत पैदा होती है। इसके पत्ते मेंहदी के पत्तों की तरह पर कुछ चौड़े, फूल पीले रंग के और खराब गंधयुक्त होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का रस ६ माशे की मात्रा में या इसके सूखे पत्तों का चूर्ण ७ माशे की मात्रा में जैतून के तेल के साथ देने से साँप, बिच्छू और पागल कुत्ते का जहर वमन की राह निकलकर नष्ट हो जाता है।

———:०:———

उलटकम्बल

नाम—

हिन्दी—उलटकम्बल, सनुकपास । बंगाली—उलटकम्बल । गुजराती व मराठी—उलट-कम्बल । लैटिन—Abroma Augusta. (एब्रोमा अगस्टा) । अंग्रेजी Devils Cotton. ।

वर्णन—

यह एक प्रकार का छोटे कद का झाड़ीनुमा पौधा होता है । इसके पत्तों का आकार स्थल पद्म के समान होता है । कभी २ तो इन दोनों को पहचानने में भी भ्रम हो जाता है । अन्तर केवल इतना ही होता है कि उलटकम्बल के पत्तों के बीच के डण्ठल कुछ लाल होते हैं । इस पौधे में से सन की तरह मजबूत और सफेद रेशे निकलते हैं । सरदी के दिनों में इस पौधे पर लाल रंग के छोटे फूल निकलते हैं तथा गरमी में इसके छत्राकार फल आते हैं। इन फलों के चारों तरफ छोटे २ पत्ते आते हैं और इनके भीतर पीले रंग के बीज रहते हैं । यह पौधा गर्म प्रदेशों की पहाड़ी भूमियों पर कुदरती तौर से बहुत पैदा होता है और इसकी डालियाँ भी लगाने से लगती हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक और यूनानी ग्रन्थों में इस औषधि का कहीं भी उल्लेख नहीं पाया जाता । इसके गुणों की खोज सबसे पहले सन् १८०१ में डा० राक्सबर्ग के द्वारा हुई और उन्होंने इसे कष्टार्तव अर्थात् मासिकधर्म से होने वाले कष्ट के लिये उपयोगी बतलाया । तब से यह औषधि इस व्याधि के सम्बन्ध में बराबर कीर्ति प्राप्त करती आ रही है ।

उसके पश्चात् सन् १८७२ के इण्डियन मेडिकल गजट में भुवनमोहन सरकार ने इसकी रजःप्रवर्त्तिनी शक्ति की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और इसके लिये उन्होंने इसके ताजे रस की तीस ग्रेन की मात्रा निर्द्धारित की ।

दी इकानमिक प्राडक्ट्स ऑफ इण्डिया के विख्यात लेखक सरजार्ज वॉट ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में इस औषधि के दिव्य रजःप्रवर्तक गुण का उल्लेख किया और इसपर कई नामी डाक्टरों की सम्मतियाँ भी उद्धृत कीं ।

सन् १८७३ में डाक्टर थार्नटन ने 'अमेरिकन मेडिकल साइन्स' में इसकी जड़ की छाल के ताजे रस की बहुत प्रशंसा की और इसकी उपयोगिता को जाहिर किया । उन्होंने बतलाया कि यह रक्तसंचय और स्नायुशूल दोनों ही कारणों से होनेवाले रजःकष्ट में बड़ा उपयोगी है । यह मासिकधर्म को व्यवस्थित-रूप में ला देता है । गर्भाशय के लिये यह एक पौष्टिक पदार्थ है ।

के० सी० बोस के मतानुसार भी इसकी जड़ का छिलका मासिकधर्म को नियमित करने वाला और गर्भाशय के लिए पौष्टिक है । इसकी ताजी जड़ का रस और सूखी जड़, दोनों का ही रसायन-शाला में परीक्षण हो चुका है । यह गर्भाशय पर अपना पौष्टिक और सङ्कोचक असर दिखलाता है ।

इसलिये यह गर्भाशय का ठीक तौर से संकोचन करके मासिकधर्म को नियमित कर देता है। अलकोहल के साथ मिलाने से इस वनस्पति का असर नष्ट हो जाता है। इसलिए इसका ताजा रस या चूर्ण ही उपयोग में लेना चाहिये।

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध 'बङ्गाल केमिकलवर्क्स' के विद्वान संचालक इस औषधि का वर्णन करते हुए अपने केटलॉग में लिखते हैं—"उलटकम्बल ने मासिकधर्म के समय की पीड़ा को नष्ट करने में रामबाण होने की ख्याति प्राप्त की है। इस औषधि का रासायनिक और वैद्यकीय अभ्यास करने के पश्चात् हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि इसका व्यवहार कभी व्यर्थ नहीं जाता। स्त्रियों का आरोग्य, उनका सौन्दर्य और उनका स्वभाव सब बातें उनके मासिकधर्म की शुद्धता पर अवलिम्बत रहता है। आँखों के आस-पास काले दाग पड़ना, हमेशा सिरदर्द रहना इत्यादि रोग कष्टार्तव की वजह से ही पैदा होते हैं। इस औषधि के कुछ दिनों तक सेवन करने से यह व्याधि नष्ट हो जाती है और स्त्रियों का बन्ध्यत्त्व दूर होकर वे गर्भाधान के योग्य हो जाती हैं।"

कलकत्ते के प्रसिद्ध कविराज द्वारकानाथ विद्यारत्न इस औषधि के सम्बन्ध में लिखते हैं कि उलटकम्बल की जड़ की छाल का चूर्ण एक ड्राम (पौने चार माशे) की मात्रा में इक्कीस कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर मासिकधर्म के सयम सात दिन तक सेवन करना चाहिये और भोजन में केवल दूध, भात लेना चाहिए। पति-समागम का बिलकुल त्याग करके पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए। इस प्रकार दो चार महीने तक प्रत्येक मासिकधर्म के समय सात दिन तक यह योग करने से गर्भाशय के सब दोष मिट जाते हैं। प्रदर और बन्ध्यत्व की यह सर्वोत्कृष्ट औषधि है।

मगर कर्नल चोपरा, घोष और चटर्जी ने इसके मद्यसार और अलग २ अङ्गों का विश्लेषण करके यह परिणाम निकाला कि रक्त-बहाव, श्वासक्रिया एवम् पाकस्थली और अँतड़ियों के मार्ग पर इस औषधि का कोई भी प्रशंसनीय असर नहीं होता। गर्भाशय पर भी, फिर चाहे वह गर्भ से युक्त हो, चाहे विहीन, इसने कुछ भी असर नहीं दिखाया, संतोषजनक फल न होने से रोगियों पर इसका परीक्षण नहीं किया गया। रासायनिक विश्लेषण पर इसमें मिक्स्ड ऑइल, राल, अलकोहल और कुछ पानी में घुलने वाले पदार्थ पाये जाते हैं।

'जङ्गलनी जड़ी-बूटी' नामक ग्रन्थ के रचयिता कहते हैं कि हमने अनेक स्त्री रोगियों पर इस औषधि का प्रयोग किया है और हमें विश्वास हो गया है कि गर्भाशय के रोगों पर यह अचूक औषधि है।

आर० एन० खोरी के मतानुसार इसकी जड़ और उसका रस गर्भाशय को बल देनेवाला और आर्त्तव-प्रवर्त्तक है। अवरोध सहित तथा वातिककृच्छ्र रजोरोग और रुके हुए मासिकधर्म में कालीमिर्च के साथ ऋतुकाल के समय में एक सप्ताह तक इसका व्यवहार होता है। यह हाइड्रास्टिस, वाईवर्नम और पलसेटिला की उत्तम प्रतिनिधि है।

उत्तूमाली

वर्णन—

यह वृक्ष श्याम देश में पैदा होता है। इसकी लकड़ी और फूल से एक प्रकार का तेल प्राप्त होता है जो शिलारस की तरह होता है। इसे असलेदाउद भी कहते हैं।

गुण धर्म और प्रभाव—

खजानुल अदविया के मतानुसार यह निर्बलता और आलस्य उत्पन्न करने वाला तथा दोषों को उत्सर्ग करने वाला है। संधिशूल पर इसके तेल की मालिश करने से लाभ होता है। इसकी डालियों के काढ़े में पकाये हुए तिल के तेल को आंख में डालने से धुन्ध में लाभ होता है और इसकी मालिश से पट्ठों के दर्द में फायदा होता है।

उलेकुल कल्ब

वर्णन—

इस वृक्ष को फारसी में सहगुल कहते हैं। इसका फल जैतून के फल की तरह होता है। यह पकने पर लाल हो जाता है। इसमें से रूई की तरह एक पदार्थ निकलता है। यह रूई मनुष्य के फेफड़ों और अन्नमार्ग में बहुत नुकसान पहुँचाती है। इसलिए फल में से रूई को अलग कर फल को सुखाकर काम में लेते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

ख़जानुल अदविया के मतानुसार इसका फल काबिज़ है तथा फूल रक्तातिसार और पित्तातिसार में लाभ पहुँचा कर आमाशय को बल प्रदान करते हैं। इनके सेवन से कफ में खून आना भी बन्द हो जाता है। घाव पर इसकी रूई लगाने से घाव भर जाता है।

उलौयन

वर्णन—

यह पौधा पानी के किनारे रेतीली जमीन में तथा गीले स्थानों में पैदा होता है। इसकी ऊँचाई एक हाथ से कुछ कम होती है। इसकी डालियाँ पतली और सख्त होती हैं। ऊपर की छाल कोमल होती है। पत्ता छोटा और बारीक होता है। फूल ललाई और पीलाई लिये हुये होता है। जड़ चुकंदर की तरह और बीज अपतीमून की तरह होते हैं।

गुण धर्म और प्रभाव—

ख़ज़ानुल अदविया के मतानुसार यह औषधि अत्यन्त उग्र और स्थायी उन्माद रोग में बड़ी लाभदायक है। उन्माद के लिये इसके बीज ३॥ माशे से ६ माशे तक की मात्रा में ३॥ माशे नमक, २। तोला सिरके और ६। तोला पानी के साथ देने चाहिये। काले कामले की बीमारी में भी यह फायदेमन्द है।

उल्लैक

वर्णन—

यह एक काँटेदार वृक्ष है जो गुलाब के पेड़ की तरह होता है।

गुण धर्म और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह औषधि दूसरे दर्जे में शीतल और रुक्ष है। यह तिल्ली और गुर्दे को हानि पहुँचाती है। इसके दर्प को नष्ट करने वाला मुलेठी का सत्व, शक्कर और खट्टा अनार है।

यह औषधि व्रण,पित्ती, विसर्प तथा सिर की गंज में लाभदायक है। कहा जाता है कि, इसके काढ़े को मेंहदी में घोलकर सफेद बालों पर लगाने से बाल काले हो जाते हैं। इसका फल काबिज और रक्तस्राव में उपयोगी है। मुँह का रक्तस्राव और बवासीर का खून इससे बन्द हो जाता है। मासिकधर्म के समय इसके पत्ते और फल का काढ़ा पिलाने से स्त्री को संतान होना बन्द हो जाता है। इसके पत्तों को लेप करने से आँख की सूजन और सिर की गंज मिटती है। इसके पत्तों को चबाने से दांत और मसूड़े दृढ़ होते हैं। इसके फूलों के सेवन से खून की दस्त और कफ में खून आना बन्द हो जाता है। यह आमाशय की निर्बलता में लाभ पहुँचाता है।

उशक

नाम—

अरबी—उश्शक, उसक, अजाकुज्जहब, कलख। हिन्दी—समगहमाम, कल्यान। गुजराती—उशक। तामील—गमनायकम। लेटिन—Dorema Ammoniacum. (डोरेमा एमोनायकम), Ferula Orientalis. (फेरुला ओरियण्टेलिस)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का रालदार गोंद है, जो ईरान देश के अन्दर उशक नामक वृक्ष से पैदा होता है। इस वृक्ष को शीराज में बदरान और बुखारा में कन्दल कहते हैं। किसी २ यूनानी लेखक ने इस वृक्ष का नाम तर्सूस भी लिखा है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—आयुर्वेदीय ग्रन्थों के अन्दर इस औषधि का कोई वर्णन नहीं पाया जाता। मगर यूनानी ग्रन्थों में बहुत प्राचीनकाल से इस औषधि का वर्णन चला आता है। सबसे पहिले हकीम डिसकोरिडस ने इस औषधि का रोम देश के एमन नामक देवता के नाम से उल्लेख किया था। सम्भव है, डाक्टरी का एमोनायकम शब्द उसी के अपभ्रंश से बना हुआ हो।

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह औषधि उत्तेजक तथा सूजन और वात को नष्ट करने वाली है,यह कब्जियत को दूर कर आमाशय को साफ करती है। शहद के साथ इसको लेने से मृगी, लकवा और सुन्नवात दूर होती है। इसका लेप तिल्ली की सूजन और कठोरता को तथा संधियों की सूजन को नाश करता है। इसे सिरके में मिलाकर लेप करने से कंठमाला और अण्डकोष की सूजन में लाभ होता है। २। माशे की मात्रा में इसको शहद के साथ सेवन करने से मृगी में लाभ होता है। इसको आँख में लगाने से आँख का जाला और फूली नष्ट होती है। ३।। माशे की मात्रा में इसको सिकंजबीन के साथ चाटने से और पेटपर इसका लेप करने से यकृत, प्लीहा और जलोदर के रोगों का नाश होता है। यह कृमिनाशक भी है। इसको अफसन्तीन के काढ़े के साथ लेने से पेट के कीड़े मरकर निकल जाते हैं। यह गुर्दे और वस्ति की पथरी को तोड़कर निकाल देती है।

पुरानी खाँसी और दमे के रोगों में भी कफ-निस्सारक होने की वजह से यह बहुत लाभ पहुँचाती है। शहद के साथ चाटने से यह श्वास, कष्ट-श्वास, आमवात, गृध्रसी, इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचाती है। यह मूत्र-निस्सारक और आर्तव-प्रवर्तक है।

मतलब यह है कि यूनानी मतानुसार यह औषधि भिन्न २ अनुपानों के साथ अनेक रोगों में लाभ पहुँचाती है। एलोपेथी के अन्दर भी इसके कई प्रयोग बनते हैं, जो भिन्न २ रोगों पर काम आते हैं।



उश्तुरगाज

नाम—

अरबी—जंजबीलुल अजम्, जंजबील। **फारसी**—असारियून।

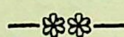
वर्णन—

यह पौधा विशेषकर रोम, बगदाद, अफगानिस्तान इत्यादि के जंगलों में पैदा होता है। इसको ऊँट बहुत खाते हैं। यह पौधा बदबूदार और बदजायका होता है। इसका दूध शरीर पर लगाने से घाव पड़ जाते हैं। विशेषकर इस पौधे की जड़ औषधि प्रयोग के काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—इसकी जड़ मुश्किल से हजम होने वाली और मेदे को खराब करने वाली होती है। यह मगज, पुट्ठे, वस्ति और गुर्दे को हानि पहुँचाने वाली है। इसके दर्प को नष्ट करने के लिये खट्टे अनार का शर्बत या उसका रस मुफीद है। इस औषधि का प्रतिनिधि अंजदान है।

यह औषधि मूत्र-निस्सारक, आमाशय को बल देने वाली और चौथिया ज्वर को नष्ट करने वाली है। संधिवात में भी इससे लाभ होता है। इसका सिरका आमाशय को बल देने वाला और भूख बढ़ाने वाला होता है।



उसबा मग़रबी

नाम—

हिन्दी—विलायती अनंतमूल, विलायती सारिवा, सालसा, उसबा। **बंगाली**—छालछा, सारसा। **गुजराती**—उसबो, उसबोमग़रबी। **अंग्रेजी**—Sarsaparilla (सारसापरिला)। **तामील**—शीमैनन्नारि। **तेलगू**—सारसबेल। **लेटिन**—Sarsae Radix (सारसी रेडिक्स)।

वर्णन—

यह औषधि विशेष कर दक्षिण और मध्य अमेरिका में पैदा होती है। इसकी बेल अनन्तमूल की ही तरह होती है और इसके गुण भी प्रायः उसीसे मिलते-जुलते होते हैं। इसीलिये इसे देशी भाषा में विलायती अनन्तमूल या विलायती सारिवा कहते हैं। विलायती सारिवा की जड़ें बहुत लम्बी, सीधी और लचीली होती हैं। देशी सारिवा की जड़ों की तरह वे आड़ी-टेढ़ी नहीं होतीं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपड़ा इस औषधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं।

"सारसा रेडिक्स स्माइलेक्स आरनेटा नाम की एक बेल से पैदा होता है, यह अमेरिका में पाई जानेवाली, इसी प्रकार की एक अन्य वनस्पति से भी पाया जाता है जो कि जमेका सार्सापरिला के नाम से मशहूर है। जमेका बन्दरगाह से बाहर भेजे जाने की वजह से इसका नाम जमेका पड़ा है। इसकी एक और जाति Smilax Officinalis (स्माइलेक्स ऑफिसनेलीस) हाण्डुरस से आती है, लेकिन व्यापारिक दृष्टि से स्माइलेक्स आरनेटा ही उत्तम माना जाता है।

यह वनस्पति कई वर्षों से उपदंश (Syphilis) के इलाज में और पाचन-क्रिया-प्रणाली की दुर्व्यवस्था के उपचार में उपयोग में ली जा रही है। चर्मरोगों में भी यह काम में ली जाती है। रक्तशोधक औषधि के रूप में भी यह उपयोगी मानी जाती है। लेकिन आधुनिक अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि सारसापरिला में पाये जानेवाले मुख्य पदार्थ एँझीम (Enzyme) इसेन्शियल ऑइल और सेपानिन (Saponin) ये तीनों ही पदार्थ उपदंश तथा उन अन्य रोगों में,जिनमें यह अधिकता से प्रयोग आती है, निरुपयोगी है। इतना होते हुए भी इससे तैयार किये हुए कई कीमती पदार्थ बाजार में प्राप्त होते हैं और करीब ४००००) साल का सार्सापरिला ब्रिटिश इंडिया में बाहर से आता है।

यूनानी मत—यूनानी चिकित्सक लोग भी इसको रक्तशोधक, सूजन उतारने वाला, मूत्र-प्रवर्तक वीर्य को पतला करने वाला, गुर्दे, वस्ति और जरायु सम्बन्धी रोगों को नष्ट करने वाला तथा गठिया, लकवा, चर्मरोग और कुष्ट को नाश करने वाला मानते हैं।

एलोपेथिक डाक्टर इसको धातु-परिवर्तक, मूत्र-निस्सारक और पसीना लाने वाला मानते हैं। मगर कई लोगों के मत से, जैसे कि ऊपर कर्नल चोपरा का उदाहरण दिया गया है, इसमें कोई खास प्रभाव नहीं है। फिर भी रक्त-विकार, उपदंश, संधिवात, चर्मरोग इत्यादि रोगों में इसको दूसरी औषधि के साथ देते हैं। एक्स्ट्रेटम सार्सि लिक्विडम् तथा लिक्विड एक्स्ट्रेट ऑफ सार्सापरिला इत्यादि कई वस्तुएँ इसके योग से तयार की जाती हैं।

सार्सापरिला के समान गुण रखने वाली दो वनस्पतियाँ भारतवर्ष में भी पाई जाती हैं। एक तो अनन्तमूल जिसका वर्णन इस ग्रन्थ में पहले दिया जा चुका है और दूसरी रासना (Saccolabium Papillosum) जिसका वर्णन आगे के भागों में किया जायगा। अनन्तमूल के गुण यूरोपीय चिकित्सकों के द्वारा सन् १८६४ से ही मान्य कर लिये गये हैं और उसी समय से ब्रिटिश फर्माकोपिया के अन्दर यह दर्ज कर ली गई है। प्रत्यक्ष परीक्षण से यह बात तसदीक हो चुकी है कि इसकी उपचारिक योग्यता सार्सा-परिला से किसी कदर कम नहीं है।

———

उस्तखद्दूस

नाम—

हिन्दी—धारू,उस्तखद्दूस । **अरबी**—अनसुलरावाह । **फारसी**—उस्तखद्दूस । **बंगाली**—तुन-तुना । **लैटिन**—Brunella Valgaris. (ब्रूनेला व्हलगेरिस) Lavandula Stoechas.(लेवेण्डुला स्टीकास)

वर्णन—

यह औषधि हिमालय के समशीतोष्ण प्रान्त में काश्मीर से भूटान तक ४००० से ११००० फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। इसी प्रकार खासिया पहाड़ी, नीलगिरी, ट्रावनकोर तथा उत्तरी समशीतोष्ण कटिबन्ध में भी यह पाई जाती है ।

इसका पौधा जाड़े के दिनों में पहाड़ों की तर भूमि में पैदा होता है । यह करीब हाथ भर लम्बा होता है । इसके पत्ते गोलाकार और कटी हुई किनारों के होते हैं । इसके फूल लम्वे और बैंगनी रंग के होते हैं । इस पौधे में एक प्रकार की तीव्र गंध आती है । इसके बीज बहुत छोटे २ और श्याम-पीत वर्ण के होते हैं। इस बीज में भी पौधे की तरह तीव्र गंध आती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके बीज तीक्ष्ण और कड़वे होते हैं । ये ज्वरनिवारक, रेचक, पौष्टिक, मूत्र-निस्सारक और परजीवी कीटाणुओं को नष्ट करने वाले होते हैं, प्रदाह, हृदयरोग, फेफड़े के रोग, खाँसी, श्वास-कष्ट, उन्माद, रगड़, बवासीर, यकृत, तिल्ली और नाक तथा कान की तकलीफों में ये बड़े लाभदायक हैं । ये आँख के पपुटे और कान की पपड़ी के सफेद दागों को मिटाते हैं । वृद्धावस्था जनित दृष्टि की कमजोरी में भी ये लाभदायक हैं ।

इसका काढ़ा वात-वेदना, आमवात तथा मृगी में लाभ पहुचाता है, क्योंकि यह दिमाग को पूरी तरह से संशोधन करता है ।

स्टैवर्ट के मतानुसार हिमालय की तलहटी के लोग इसको कफ-निस्सारक और आक्षेप-निवारक मानते हैं । वे इसके हरे पत्तों को अरण्डी के तेल के साथ मिलाकर गरम करके बवासीर के ऊपर लगाते हैं ।

डायमॉक के मतानुसार इसके फूल से एक प्रकार का तेल तैयार किया जाता है जो खून को बन्द करने में और घावों को पूरने के काम में आता है ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि कफ-निस्सारक और कृमिनाशक है, यह पेट के आफरे।

को दूर करने वाली, प्रदरनाशक और शोथ इत्यादि रोगों को उपशम करने वाली है। इसमें इसेन्शियल ऑइल और कटुतत्व पाया जाता है।

उपयोग—

उदर रोग—दो भाग उस्तखद्दूस और एक भाग कबर की जड़ को पीसकर शहद के साथ चाटने से बवासीर, सूजन, जलोदर, तिल्ली और यकृत की वृद्धि में लाभ पहुँचता है।

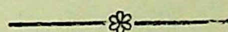
मृगी—अकरकरा और सिकंजबीन के साथ इसका उपयोग करने से मृगीरोग में लाभ होता है।

उस्तखद्दूस की गोली—पीली हरड़, काबुली हरड़, प्रत्येक १७ माशे, निसोत २ तोला, एलुआ पौने दो तोला, उस्तखद्दूस, गारीकून, बसफाइज और अफ्तीमून प्रत्येक दस २ माशे, इन्द्रायन का गूदा ५ माशे, लौंग और पहाड़ी पुदीना चार २ माशे, इन सब औषधियों को कूट पीसकर गोलियाँ बनालें।

ये गोलियाँ मस्तक और सारे शरीर के दोषों का शोधन करती हैं। मालीखोलिया नामक उन्माद में भी ये बहुत लाभ पहुँचाती हैं।

सूँघनी उस्तखद्दूस—उस्तखद्दूस २ तोला, ऊदसलीब १ तोला, कुदंश १ तोला, अरीठे की छाल ६ माशा, कालीमिर्च ३ माशा, कपूर २ माशा, नौसादर ४ रत्ती, सब चीजों को कूट, पीस, छानकर रख लें। इस औषधि को सूँघने से मस्तक के सब विकारों का नाश होता है।

शर्बत उस्तखद्दूस—उस्तखद्दूस १६ तोला, बस्फाइज, बिल्लीलोटन और गावजबाँ प्रत्येक तीन तोला, इनका विधिवत १ सेर शक्कर में शर्बत तैयार कर लें। यह शर्बत चार तोला की मात्रा में १२ तोला अर्क गावजवान के साथ लेने से विस्मृति और भ्रम में बड़ा लाभ होता है। (आयुर्वेदीय-कोष)



उद्वि

नाम—

संस्कृत—श्वेतधातकी। **मराठी**—उद्वि। **मध्यप्रान्त**—कोहरंज। **तैलगू**—अदिविज्म। **उड़िया**—कुकुंडिया। **तामील**—मिनरगोदि। **लेटिन**—Calycopteris Floribunda. (कालिकोपटेरिस फ्लोरिबन्दा)।

वर्णन—

यह औषधि पश्चिमी प्रांत, उड़ीसा, आसाम, चटगाँव, उत्तर और दक्षिणी बर्मा तथा मलाया में पैदा होती है। यह एक प्रकार की पराश्रयी वनस्पति है। इसकी शाखाएँ बड़ी नाजुक होती हैं। इसके पत्ते

गोल और बरछी के आकार के होते हैं। इन पत्तों में पाँच से लगाकर आठ तक नसें होती हैं। इसके फूल पीलापन लिए हुए हरे रंग के होते हैं। इसकी पुष्प-कटोरी रुएँदार होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते विरेचक और कृमिनाशक माने जाते हैं। इनका रस सूतिका-ज्वर में लाभदायक समझा जाता है। ज्वर उतारने के लिये शरीर पर इस रस का मालिश भी किया जाता है।

इसके पत्ते कड़ुवे और संकोचक हैं। इनका रस उदरशूल की बीमारी में मुफीद है। इसकी जड़ को चूका (खाटी भाजी) के रस में पीसकर तथा मिलाकर सर्पदंश के ऊपर लगाने के काम में ली जाती है। इसका फल पीलिये की बीमारी में लाभदायक है।

बापट के मतानुसार समशीतोष्ण आबहवा वाले प्रान्तों में इसकी जड़ सर्पदंश के उपचार में विशेष उपयोगी होती है। मगर केस और महेस्कर के मतानुसार सर्पदंश के उपचार में इसकी जड़ बिलकुल निरुपयोगी है।

कम्बोडिया में इसका शीतल क्वाथ प्रसूति के बाद १५ रोज तक प्रसूता को दिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि कड़वी, संकोचक, कृमिनाशक और विरेचक है। यह उदरशूल और सर्पदंश में उपयोगी है।

उपयोग—

पाण्डुरोग—उद्धि के फलों का चूर्ण, जायफल, जायपत्री, लवंग, इलायची, दालचीनी और छाड़-छड़ीला, इन सबका चूर्ण करके दो २ माशे की मात्रा में शहद के साथ देने से पाण्डुरोग में लाभ होता है।

आग से जलने पर—आग से जले हुए स्थान पर इसके फलों की राख तेल में मिलाकर लगाने से लाभ होता है।



ऊँटकटारा

नाम—

संस्कृत—उष्ट्रकण्टकः, कण्टफलः, करभादनः, वृत्तगुच्छ, कंटालू, इत्यादि । हिन्दी—ऊँटकटारा। मराठी—उटकटीरा । गुजराती—उत्कंटो, शूलियो । अरबी—अस्तरखर। बंगाली—ठाकुरकाँटा । अंग्रेजी—Thistle (थिस्टल) लेटिन—Echinops Echinatus (एक्निोप्स एकिनटस)

वर्णन—

यह एक प्रकार का बहुशाखी पौधा होता है । इसकी शाखाएँ जड़ से ही फूटती हैं। इसके पीले रंग के डोड़े लगते हैं, जिनपर काँटे होते हैं। इस वनस्पति को ऊँट बहुत प्रेम से खाते हैं। यह पौधा मध्यभारत, मालवा, मारवाड़, संयुक्त प्रान्त तथा दक्षिण में बहुतायत से पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से ऊँटकटारा चरपरा, कड़वा, कफ-वातनाशक, हलका, रुचिकारक, गरम, वीर्यवर्द्धक तथा मूत्रकृच्छ्र, पित्तवात, प्रमेह, तृषा, हृदयरोग और विस्फोटक को दूर करने वाला है । इसके बीज शीतल, वीर्यवर्द्धक, तृप्तिकारक और मधुर हैं। इसकी जड़ गर्भस्रावक और कामोद्दीपक है।

प्रसूतिकष्ट और ऊँटकटारा—इस औषधि के अन्दर एक और चमत्कारिक गुण देखने में आता है। वह यह कि प्रसवकाल के समय में जब कोई स्त्री भयंकर रूप से कष्ट पा रही हो और अनेक उपचार करने पर भी उसको प्रसव न होता हो, उस समय में इसकी जड़ को पानी के साथ घिसकर एक रुपये भर की मात्रा में पिलाने से तुरन्त प्रसव हो जाता है । उपरोक्त कार्य में यह औषधि ऐसे समय में काम करती है, जब कि अच्छी २ दाइयें और मिडवाइफें भी निराश हो जाती हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह वनस्पति कड़वी, अग्निप्रवर्द्धक और ज्वर-निवारक है। यह यकृत को उत्तेजना देने वाली और क्षुधावर्द्धक है। आँखों की तकलीफ, जीर्णज्वर, जोड़ों के दर्द और मस्तक की बीमारियों में भी यह लाभदायक है। इसकी जड़ कामोद्दीपक, पौष्टिक और मूत्र-निस्सारक है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह वनस्पति अग्निवर्द्धक,स्नायु-मंडल को बल देनेवाली तथा मंदाग्नि, कंठमाला, गुल्मवायु और खांसी में हितकर है।

उपयोग—

प्रमेह—इसकी जड़ की छाल ३ माशे, गोखरू ३ माशे और मिश्री ६ माशे, इन तीनों का बारीक चूर्ण कर सबेरे-शाम दूध के साथ सेवन करने से प्रमेह की शिकायत मिटती है।

ऊँटकटारे की जड़ की छाल पीस, छानकर उसका चूर्ण करके रख देना चाहिये । फिर मुगली बेदाना १ तोला और मिश्री २ तोला, इन सबको रात्रि के समय पावभर पानी में भिगो देना चाहिये। सबेरे उस पानी को मल, छानकर उसमें उपरोक्त चूर्ण ६ माशे की मात्रा में डालकर पी लेना चाहिये। इस योग के सेवन से पुराना प्रमेह और सुजाक नष्ट होकर वीर्यवृद्धि और पुरुषार्थवृद्धि होती है ।

मंदाग्नि—इसकी जड़ की छाल का चूर्ण और छुहारे की गुठली का चूर्ण, तीन २ माशे लेकर फंकी लेने से मन्दाग्नि में लाभ होता है ।

खाँसी—इसकी छाल के चूर्ण को पान में रख कर खाने से कफ की खांसी मिटती है ।

मूत्रकृच्छ्र—तालमखाना और मिश्री के साथ इसकी जड़ की छाल की फंकी देने से मूत्र-कृच्छ्र में लाभ होता है ।

पुरुषार्थवृद्धि—इसकी जड़ की छाल १ तोला लेकर उसे कुचलकर पोटली में बाँधकर आधा सेर गाय का दूध और १ सेर पानी में औटावें । उसमें चार खारक भी डाल दें । जब पानी जलकर दूध मात्र शेष रह जाय तब उस पोटली को निकालकर फेंक दें और उस दूध को पी लें । यह दूध अत्यन्त कामशक्ति-वर्द्धक है ।

सर्पदंश—ऊँटकटारे की जड़ को पानी में पीसकर लेप करने से और उसको पीने से सर्प और बिच्छू के विष में लाभ होता है ।

ऊदसलीब

नाम—

हिन्दी—ऊदसालप । **काश्मीर**—मिदु । **उत्तर पश्चिमी प्रान्त**—चंद्र । **पंजाब**—ममेख । **उर्दू**—ऊदसलीब । **इंग्लिश**—Official Peony. (आफिशियल पीओनी) । **लेटिन**—Paeonia Emodi. (पीओनिया एमोडी) ।

वर्णन—

यह औषधि पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से कुमायूँ तक पैदा होती है । यह पौधा बहुशाखी होता है । इसका तना ऊँचा होता है । इसके फूल खूबसूरत और तादाद में कम होते हैं और इसके पत्ते गाजर के पत्तों की तरह होते हैं । फूलों का रंग नीला होता है और उनमें ४-५ पंखडियाँ होती हैं तथा उनके बीच में पीले रंग का जीरा होता है । इस के फल गोल और ग्रन्थिनुमा होते हैं । इन ग्रन्थियों में इसके बीज रहते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

प्राचीन यूनानी हकीमों ने इस औषधि की जड़ की, गर्भाशय सम्बन्धी बीमारियों, मृगी, आक्षेप, जलोदर, शूल इत्यादि रोगों के लिये बड़ी प्रशंसा की है।

इसकी जड़ें दो प्रकार की होती हैं। ये स्वाद में मोठी और तिक्त होती हैं। ये क्षुधा को नष्ट करने वाली तथा मृगी, सिरदर्द, गर्भाशय के रोग और मूत्राशय की व्याधियों के लिये मुफीद हैं। दूध के साथ इसका उपयोग करने से रक्त-विकार की बीमारी में बड़ा लाभ पहुँचाती है। मूत्रावरोध और कफ के साथ खून जाने में भी यह उपयोगी है।

इस वनस्पति की गाँठें गर्भाशय सम्बन्धी इलाज की उपयोगिता के लिये मशहूर हैं। ये उदर-शूल, जलोदर, अपस्मार, गुल्मवायु, आक्षेप और तानों की बीमारी में भी लाभदायक है। यूनानी हकीम इस औषधि को मृगी के लिये अचूक और रामबाण इलाज मानते हैं। बच्चों की पथरी में भी वे इसे उपयोगी मानते हैं।

डायमॉक का कथन है कि हकीम जालीनूस के समय से यूनानी हकीमों का यह ख्याल है कि इसके बीजों को किसी ताबीज में या थैली में बन्द करके बच्चों के गले में लटकाने से उसे चाहे कितनी ही पुरानी मृगी हो वह दूर हो जाती है। इस थैली से बच्चे की दोनों तरफ से रक्षा होती है अर्थात् मृगी का दौरा भी रुक जाता है और रोग-निवारण भी हो जाता है। यूरोप के किसानों का यह विश्वास है कि इन बीजों को धारण करने से बच्चों को दाँत आने के समय की तकलीफें नहीं होतीं। मगर आधुनिक खोजों ने प्रगट कर दिया है कि इन सब विश्वासों को कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। यद्यपि किसी २ ने कफवात, मृगी एवं कुक्कुर खाँसी में इसके लाभदायक होने का उल्लेख किया है, पर इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध के प्रमाण बहुत कमजोर हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि उदरशूल तथा पित्त सम्बन्धी तकलीफों में उपयोगी है। इसके बीज वमनकारक और विरेचक हैं। ये मृगी की बीमारी में काम में लिये जाते हैं। इनमें ग्लुकोसाइड रहता है।

ऋद्धि

नाम—

संस्कृत—ऋद्धि, प्राणप्रिया, वृष्या, प्राणदा, जीवदात्री, लोककान्ता, जीवश्रेष्ठा, इत्यादि।

वर्णन—

ऋद्धि आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध अष्टवर्ग की एक औषधि है। ऐसा ख्याल किया जाता है कि अष्ट-वर्ग की औषधियाँ इस समय या तो दुष्प्राप्य हैं अथवा उन्हें पहिचानने वाला कोई भी नहीं है, फिर भी आयुर्वैदिक ग्रन्थों में इस औषधि की पहिचान को लिखते हुए लिखा है कि ऋद्धि लता जाति की औषधि होती है। इस लता की जड़ में से एक कन्द निकलता है, जो कपास की गाँठ के समान होता है और

जिसके ऊपर सफेद रोम होते हैं। यह छिद्रयुक्त होता है। यह लता कौशल पर्वत पर उत्पन्न होती है। इस समय कई लोग अष्टवर्ग की इन औषधियों की छान-बीन में लगे हुए हैं। हमको मलेरकोटला के एक वैद्य ने अष्टवर्ग की इन आठों औषधियों को बतलाया था, जो उन्होंने समीप-वर्ती हिमालय पहाड़ से प्राप्त की थीं। इन औषधियों का रूप और गुण आयुर्वेद में बतलाए हुए लक्षणों से बहुत मिलता-जुलता था और वे इनके गुणों की भी बड़ी प्रशंसा करते थे। कई सुप्रसिद्ध कविराजों के प्रशंसा-पत्र भी उनके कथनानुसार इन औषधियों के सम्बन्ध में उन्हें प्राप्त हुए हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मतानुसार ऋद्धि मधुर, स्निग्ध, मेधाजनक, शीतल, कफकारक, शुक्रवर्द्धक, प्राणदायक, ऐश्वर्यजनक, बलकारक, रक्तशोधक, रुचिकारक, भारी तथा कोढ़, कृमिदोष, मूर्छा, रक्त-पित्त, तृषा, क्षय, पित्त, वातरक्त और ज्वर का नाश करने वाली है।

भाव-प्रकाश के मतानुसार ऋद्धि बलकारक, त्रिदोष-नाशक, वीर्यवर्द्धक, मधुर, भारी, प्राणप्रद, ऐश्वर्यजनक तथा मूर्च्छा और रक्त-पित्त का नाश करने वाली है।

यूनानी और वनस्पति-विज्ञान सम्बन्धी दूसरे ग्रन्थों में इसका पता नहीं मिलता।

जिन नुस्खों में ऋद्धि का उल्लेख हो उनमें ऋद्धि न मिलने की हालत में वराहीकंद या विदारीकंद लेना चाहिये, क्योंकि ये उसके प्रतिनिधि हैं।

ऋषभक

नाम—

संस्कृत—ऋषभ, दुर्धर, द्राक्षा, भूपति, कामी, ऋषिप्रिय, वनवासी, इत्यादि।

वर्णन—

भाव-प्रकाश के मतानुसार जीवक और ऋषभक, ये दोनों औषधियाँ हिमालय पर्वत के शिखर पर उत्पन्न होती हैं। इनका कंद लहसन के कंद के समान होता है। इनके पत्ते सार-रहित और बारीक होते हैं। जीवक का आकार बुहारी के समान और ऋषभक का बैल के सींग के समान होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

निघंटु-रत्नाकर के मतानुसार ऋषभक मधुर, शीतल, गर्भसंधान-कारक, वीर्यवर्द्धक, कफकारक, बलदायक, वीर्यजनक, पुष्टिकारक तथा पित्त,रक्तरोग, रक्तातिसार, दुर्बलता, वातज्वर तथा दाह और क्षय का नाश करने वाला है।

भाव-प्रकाश के मतानुसार जीवक और ऋषभक बलकारक, शीतल, वीर्यवर्द्धक,कफकारक, मधुर, तथा पित्त, दाह, रुधिरविकार, वायु, और क्षय को नष्ट करने वाले हैं।

एकवीर

नाम—

संस्कृत—एकवीर, महावीर, सुवीरक,एकदिवि,इत्यादि । हिन्दी—एकवीर । मराठी—असाणा । गुजराती—एकलकंटो । आसाम—कोहीर । बंगाल—कंटकोई । तेलगू—त्रिगालु, पंतिंगा । मध्यप्रान्त—कर्क । बाँसवाड़ा—अंगनेर । लेटिन—Bridelia Motana, (ब्रिडेलिया मोटेना) B. Retusa ।

वर्णन—

यह एक प्रकार का मध्यम ऊंचाई का वृक्ष होता है । इसके पत्ते बहुत होते हैं । ये पाखर के समान होते हैं । इनका रंग गहरा हरा होता है तथा ऊपर से ये कुछ मखमली होते हैं । इनमें १५ से लेकर २५ तक धारियाँ रहती हैं । इसकी डालों में अलग २ दूर २ पर बड़े २ काँटे होते हैं । इसके फूल गहरे हरे रंग के और सफेद होते हैं । इसके फल छोटे २ बेर की तरह झूमकों में लगते हैं । ये बैंगनी और काले रंग के होते हैं । यह औषधि हिमालय में झेलम के पूर्व की ओर तथा बिहार, उड़िसा और बंगाल में पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से यह औषधि कड़वी, गरम, और वातनाशक होती है । कटिवात, लकवा, अर्द्धाङ्गवायु इत्यादि रोगों में यह लाभदायक है । इस वृक्ष की छाल, मूत्राशय की पथरी में बहुत मुफीद है । इसकी जड़ और छाल एक उत्तम संकोचक औषधि है ।

इसकी छाल का लेप सोंठ के तेल के साथ मिलाकर करने से आमवात में बड़ा लाभ होता है ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि कृमिनाशक और संकोचक है ।

उपयोग—

कृमिरोग—इसके चूर्ण की फंकी देने से पेट के कृमि नष्ट होते हैं और वीर्य पुष्ट होता है ।

अतिसार—बेलगिरी और मिश्री के साथ इसके चूर्ण की फंकी देने से अतिसार मिटता है ।

एडोनिस

नाम—

लैटिन—Adonis Oespivalis.

वर्णन—

यह एक प्रकार की वर्षजीवी वनस्पति है। इसका वृक्ष झाड़ीनुमा और सीधा रहता है। इसके पत्ते कटे हुए अलग २ भागों में विभाजित रहते हैं। इसके फूल सुनहरी और लाल रंग के होते हैं। उनमें एक प्रकार की गहरी बैंगनी रंग की आंख होती है। इसके फूलों के आवरण हरे और कुछ रंगीन होते हैं। इसका फल गोल और लम्बे आकार का होता है। यह वनस्पति तीन प्रकार की होती है और यूरोप तथा एशिया के समशीतोष्ण भागों में, पश्चिमी हिमालय में, पेशावर से हाजरा और कुमायूँ तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह साराही पौधा हृदय के लिये पौष्टिक माना जाता है। यूरोप के अन्दर यह मूत्रनिस्सारक समझा जाता है। इसके फूल विरेचक, मूत्रनिस्सारक और पथरी को नाश करने वाले होते हैं।

इसमें ग्लुकोसाइड अड्डनाईडिन नामक एक सत्व और अड्डनेट नामक दूसरा सत्व पाया जाता है।



एरक

नाम—

संस्कृत—एरक, गुन्द्रमूला, शिम्बि, गुन्द्रा, शरी। हिन्दी—एरक, गोन्दपटेर, मोथीतृण। मारवाड़ी—एरो। बङ्गाली—होंगला। बम्बई—रामबाण। मराठी—एरका, पाणलव्हाणा। गुजराती—एरका। पंजाब—पतीर। तामील—चम्बु। तैलगू—जम्मूगड्डे। लैटिन—Typha Alephantina (टायफा एलिफोण्टिना)

वर्णन—

यह कीचड़ में पैदा होने वाली एक वनस्पति है। इसके पत्ते घास की तरह लम्बे और सीधे रहते हैं, जो मूल से ही निकलते हैं,इनकी चौड़ाई इंच-सवा इंच रहती है। इसके फूल के भँवरे मूल से ही पैदा होते हैं। इसके फूल नर और नारी दो प्रकार के होते हैं। इसके पत्तों के बीच में एक लम्बी डण्डी होती है। उस पर एक फुट लम्बा एक रुएँदार सिट्टा लगता है। यह भारतवर्ष में सभी दूर नदियों और तालाबों के किनारे होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति शीतल, कामोद्दीपक, नेत्रों को फायदा पहुँचाने वाली तथा पथरी, सुजाक, दाह, रक्त-पित्त और तिल्ली बढ़ने के रोग में लाभदायक है। यह वात को कुपित करती है।

इसके फूलों के तन्तु फोड़े और घावों पर लगाने के काम में लिये जाते हैं। यह अपना गुण उसी प्रकार दिखलाते हैं, जिस प्रकार औषधि युक्त लूनीऊन, जो अस्पतालों में प्रयोग में ली जाती है।

इसकी जड़ संकोचक और मूत्रल है। पूर्वी एशिया में यह पेचिश, सुजाक और खसरे की बीमारी में लगाने के काम में ली जातो है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि ज्वरनाशक, कामोद्दीपक और उत्तेजक है।

उपयोग—

व्रण—इसके पके हुए सिट्टे की रूई व्रण और क्षत पर लगाई जाती है।

शीत-पित्त—इसको जल में औटाकर स्नान करने से शीत-पित्त में लाभ होता है।

सुजाक—इसकी जड़ को मिश्री के साथ औटाकर, छानकर, ठण्डा कर पिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

एरावेगेसा

नाम—

बर्मा—पदौक। तैलगू—एत्वेगिसा। लेटिन—Pterocarpus Indicus. (टेरोकारपस इण्डिकस)

वर्णन—

यह औषधि मलाया पेनिनशुला, तिनासरिम, मलाया द्वीप समूह, जावा और बोर्नियो में पैदा होती है। इसकी पत्तियाँ गोल नुकीदार और चौड़ी होती हैं। इसकी पुष्प-कटोरी, बादामी और मुलायम रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक और यूनानी ग्रन्थों में इस औषधि का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

इण्डियन मेडिकल प्लांट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसके फल का गूदा वमनकारक है। गायना में इसके पत्तों का हलका और शीतनिर्यास-ज्वर में दिया जाता है। यह प्रायः लोशन और बफारे की क्रिया में ही उपयोग में लिया जाता है। इसकी लकड़ी कम्बोडिया में बहुत उपयोग में ली जाती है। यह मूत्र-निस्सारक और पेचिश को दूर करने वाली होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी गोंद बड़ी उपयोगी वस्तु है। यह वस्तु शीतल होती है।

ओखराढ्य

नाम—

संस्कृत—ओखराड़ी, भिस्सता। हिन्दी—ओखराढ्य, गन्धिबुद्धि। गुजराती—धोलोओखराड़। बङ्गाली—ओखड़। लेटिन—Mollugo Hirta (मोल्यूगो हिरटा)।

वर्णन—

यह औषधि प्रायः सारे भारत, सीलोन और संसार के अन्य उष्ण भागों में पैदा होती है। यह एक वर्षजीवी वनस्पति है। यह सूखी तलाइयों की तलहटी और नदियों के किनारों पर होती है। इसका पेड़ एक से तीन फुट तक ऊँचा होता है। इसके फूल हलके गुलाबी रंग के रहते हैं। ये तीन २ चार २ के गुच्छे में लगते हैं। इसकी फलियाँ लम्बी और गोलाई लिये हुए रहती हैं। इसमें बहुत से बीज रहते हैं। उनका रंग काला रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—यह औषधि पेशाब रुकने पर तथा सुजाक की बीमारी में बहुत हितकारी है। इसको पीसकर सिरपर लगाने से सिर का व्रण, खुजली, दाद और सूजन दूर हो जाती है।

इसके सूखे पत्ते सिंध में अतिसार रोग में और पंजाब में उदररोगों में विरेचक औषधि की तरह दिये जाते हैं।

हकसबूलर के मतानुसार यह औषधि लासबेला में फोड़े, घाव और पित्तजन्य तकलीफों के उपयोग में ली जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह खुजली और चर्मरोगों में लगाने के काम में ली जाती है।

उपयोग—

कफरोग—बच्चों के कफ रोग में इसकी जड़ की भस्म देने से लाभ होता है।

रक्त विकार—इसके सूखे पत्तों के पचांग का क्काथ कर, उसपर थोड़ी राई भुरभुराकर पिलाने से रक्त शुद्ध होता है।

पुराने व्रण—इसके पंचांग की भस्म और कालीमिर्च को तेल में मिलाकर लगाने से पुराने व्रण अच्छे होते हैं।

पेशाब का रुकना—इसके पंचांग और कालीमिर्च को ठण्डाई की तरह घोट, छानकर पिलाने से पेशाब की रुकावट दूर हो जाती है।

ओट

नाम—

संस्कृत—लामफल, वक्रशोधन, भव्य, भव्यफल इत्यादि। हिन्दी—ओट, दंपेल। मराठी—जरंबी, ओटींचेफल। बंगाली—चालत। गुजराती—ओटफल। तेलगू—सीता कमरखु। तामील—पचलई, तमालू। लेटिन—Garcinia Xanthochymus गारसीनिया एक्सन्थोचाइमस।

वर्णन—

ओट का वृक्ष सीधा और बड़ा होता है। इसकी शाखाएँ चारों ओर भिन्न २ दिशाओं में फैलती हैं। इसके तने तथा बड़ी डालों की छाल, चौथाई इञ्च मोटी, खरदरी और चमकदार होती होती है। इसमें बहुत सी छोटी २ दरारें होती हैं। इसके पत्ते आठ-दस इञ्च लम्बे तीखी नोक वाले चमकीले और कटे हुए किनारों के होते हैं। इसके फूल सफेद और पीले रंग के तथा खुशबूदार होते होते हैं। ये नर और नारी दो प्रकार के होते हैं। ये वर्षाऋतु में आते हैं। इसका फल मध्यम श्रेणी की नासपाती के बराबर होता है। यह चिकना और कुछ नुकीला रहता है। इसमें एक से लगाकर चार तक बीज रहते हैं। यह पकने पर बिलकुल गहरे पीले रंग का हो जाता है। इसके फल के भीतर का गूदा चिकना रहता है। यह फल पौष-माघ में पकता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से इसका कच्चा फल खट्टा, चरपरा, गरम तथा वात और कफ को नष्ट करने वाला होता है तथा इसका पका फल मीठा, कुछ खट्टा, रुचिकारक, शूल और श्रमनाशक, आक्षेप-निवारक, त्रिदोष-नाशक तथा हृदय सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाला होता है। इसके सूखे फल से तैयार किया हुआ अमसूल ढ़ाई तोला लेकर, थोड़ा सेंधानमक, कालीमिर्च, सोंठ, जीरे और शक्कर के साथ शर्बत बनाकर लेने से पित्त सम्बन्धी शिकायतें दूर होती हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पित्त-जन्य बीमारियों में लाभदायक है।

वनौषधि-गुणादर्श के मतानुसार इसके फल की बनाई हुई अमसूलें दूसरी अमसूलों की अपेक्षा विशेष पथ्यकारक होती हैं। दूसरी अमसूलें रक्त-शोषक होती हैं, मगर इस फल की अमसूलें रक्त को बढ़ाने वाली होती हैं। ओट के फल का रायता व लोणचा बड़ा स्वादिष्ट होता है। इसके फलों के रस में शक्कर, जीरा और मिर्च डालकर बनाया हुआ शर्बत शीत-पित्तशामक, पथ्यकर, रुचिवर्द्धक और दीपक होता है। प्रसूता स्त्रियों के लिये ओट के फल का सार-पथ्यकर होता है।

उपयोग—

ज्वर की दाह—इसके फल के रस में मिश्री और जल मिलाकर पीने से ज्वर की दाह मिटती है।

खाँसी—इसके फल के रस में शहद मिलाकर पीने से खाँसी मिटती है।

अतिसार—इसके पत्तों का क्वाथ पिलाने से अतिसार में लाभ होता है।

ओगई

नाम—

पंजाब—ओगई। लेटिन—Astragalus Tribuloides (एस्ट्रागेलस ट्रिब्यूलाइडस)

वर्णन—

यह औषधि पंजाब, अफगानिस्तान और इजिप्ट में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके बीज शान्तिदायक औषधि के तौर पर काम में लिये जाते हैं। यह औषधि कोठे को मुलायम करने वाली है।

—✿✿—

ओलंकराइ

नाम—

मराठी—ओलंकराइ। तामील—उलंगराई। बंगाल—जलपाई। कनाड़ी—पेरिंकर। मलाया-पेरुंकर। संस्कृत—चिरिबिलु। उड़िया—जुलोपारि।

वर्णन—

यह औषधि पश्चिमी प्रायद्वीप, सीलोन और मलाया में पैदा होती है। यह एक प्रकार का छोटा वृक्ष होता है। इसके पत्ते तीखी नोक वाले और कटी हुई किनारों के होते हैं। इसके फूल नीचे की बाजू झुके हुए और गुच्छों में लगे हुए रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इंडियन मेडिकल प्लांट्स के मतानुसार इसके पत्ते गठिया रोग में उपयोगी है तथा ये विष-प्रतिरोधक भी हैं। इसके फल पेचिश और अतिसार की बीमारियों में लाभदायक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते आमवात में लाभ पहुँचाते हैं तथा ये विषनाशक हैं। इसके फल पेचिश और रक्तातिसार में लाभदायक हैं।

——

ओसदी

नाम—

बंगाल—डोकंटि । बम्बई—ओसदी । सीलोन—पंपिलु । गुजराती—अजगंध । मराठी—गनेसैसदि । लेटिन—Ageratum Conyzoides. (एगेरेटम कोनीझोइडस)।

वर्णन—

यह औषधि सारे भारतवर्ष और गरम देशों में पैदा होती है । यह एक मध्य कद का सीधे तने वाला वृक्ष होता है । इसके पत्ते एक दूसरे के आमने-सामने होते हैं । ये गोलाकार और नोकदार होते हैं । इनका पत्र-वृंत रुएँदार होता है । इसके फूल हलके नीले रंग के तथा सफेद होते हैं । इसकी फली काले रंग की होती है, जिसमें बीज होते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

इन्डियन मेडिकल प्लांट्स के मतानुसार इसके पत्ते घावों के ऊपर रक्तस्राव को रोकने वाली औषधि के बतौर लगाये जाते हैं । इनके लगाने से घाव जल्दी ही भर जाता है । इसकी जड़ के रस में बहुत गुण होते हैं । पथरी के रोग को नष्ट करने में यह औषधि अपना खास प्रभाव रखती है । यह कृमिनाशक भी होती है ।

जूड़ी के बुखार में यह औषधि बाह्योपचार के काम में ली जाती है । इसका रस गुदा की पीड़ा में बहुत लाभदायक है । गुदा-निर्गमन में यह मुफीद है ।

सीलोन में इसके पत्ते घावपर लगाने के लिये तथा इंडोचायना में इसकी जड़ और पत्ते पेचिश रोग को दूर करनेवाले माने जाते हैं । मेडागास्कर और लॉरियूनियन में इसके पत्ते और डालियाँ चर्मरोग और कुष्ट रोगों में बफारा देने के उपयोग में लिये जाते हैं । इसके पत्तों की पुल्टिश अर्बुद पर बाँधी जाती है । अगर यह दवा घाव पर लगाई जाय तो उसे साफ कर देती है । इसका शीतनिर्यास नेत्ररोगों में डालने के काम में लिया जाता है ।

ब्राझील और गायना में इसका शीतनिर्यास एक उत्तेजक पौष्टिक पदार्थ के रूप में दिया जाता है । ये रक्तातिसार और वातजन्य उदरशूल में उपयोगी हैं ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पथरीरोग में खास तौर से लाभदायक है । इसमें एक प्रकार का इसेंशियल ऑइल पाया जाता है ।

हिन्दू-धर्म का परमपवित्र ग्रन्थ—

ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का महासमुद्र

श्रीमद्भागवत (महापुराण)

(हिन्दी भाषान्तर सहित)

प्रायः १५ खण्डों में समाप्त होगा ।

टीकाकार—

सुप्रसिद्ध भाषांतरकार स्वर्गीय साहित्याचार्य

पं० चन्द्रशेखर शास्त्री (प्रयाग)।

यह प्रतिमास मासिक-पत्र के रूप में सचित्र और मूलश्लोकों सहित प्रकाशित हो रहा है । हिन्दी में इस अनुपम ग्रन्थ का ऐसा उत्तम भाषान्तर अब तक न था—इस बात की सर्वत्र प्रशंसा हो रही है ।

स्थायी ग्राहकों से १२) मात्र और प्रत्येक खण्ड का मूल्य १)

शीघ्रता करिये, अन्यथा दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ।

पता—

प्रबन्धक—**ज्ञान-मन्दिर**

भानपुरा, (इन्दौर स्टेट) ।


R530.08,BHA- B
37752